समर्पण

जिनकी कृपा कटाक्षसे मुझे इतिहासादिका
यत्किंचित् ज्ञान हुआ

उन्हीं

पूज्यपाद पिता स्वर्गीय

पंडित सरयूप्रसादजी मिश्रके

चरणोंमें

सादर समर्पित

प्रयाग।
मार्गशीर्ष, शुक्ल ५, १९७२.

विषयसूची

बीसवाँ अध्याय

इक्कीसवाँ अध्याय

बाईसवाँ अध्याय

तेईसवाँ अध्याय

चौबीसवाँ अध्याय

पचीसवाँ अध्याय

छब्बीसवाँ अध्याय

सत्ताईसवाँ अध्याय

अट्ठाईसवाँ अध्याय

उन्तीसवाँ अध्याय

इकतालीसवाँ अध्याय

बयालीसवाँ अध्याय

तैंतालीसवाँ अध्याय

चवालीसवाँ अध्याय

परिशिष्ट—सूची

चित्रसूची

प्राचीन भारतके इतिहासके अनुशीलनकी सामग्री

ऋग्वेद, यजुर्वेद शतपथब्राह्मण, ऐतरेआरण्यकय, वाल्मीकीय रामायण, महाभारत, मत्स्यपुराण विष्णुपुराण, वायुपुराण, श्रीमद्भागवत, देवीभागवत, वाल्मीकीय रामायणका ग्रिफ़िथ कृत अँगरेज़ी अनुवाद–

मत्स्यपुराणका अंग्रेज़ी अनुवाद (पाणिनि आफिस प्रयाग द्वारा प्रकाशित)

विष्णुपुराणका विलसन् कृत अंगरेजी अनुवाद।

वेवर विरचित संस्कृत साहित्यका इतिहास

मुग्धानल लिखित संस्कृत साहित्यका इतिहास

मधुसूदन सरस्वती रचित प्रस्थान भेद— श्रीमद्भागवत-पर श्रीधरी टीका

कालिदास कवि विरचित महाकाव्य, रघुवंश, कुमार-सम्भव और मेघदूत तथा शकुन्तला, विक्रमोर्वशी और माल-विकाग्निमित्र नामके नाटक।

भवभूति कवि रचित महावीरचरित और उत्तर रामचरित नाटक

बाणभट्ट कवि विरचित हर्षचरित

मम्मटभट्ट रचित काव्यप्रकाश

राजशेखर कवि कृत कर्पूरमञ्जरी सट्टक और बालरामा-यण नाटक

कल्हण कृत राजतरङ्गिणी

लल्लूजीलाल विरचित प्रेमसागर।

चन्दकवि कृत पृथ्वीराजरासो।

राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द कृत इतिहास तिमिरनाशक प्रथम और तृतीय भाग।

इम्पीरियल गजेटियर आव् इण्डिया, जिल्द २।

विन्सेण्टस्मिथ कृत अर्ली हिस्टरी आव् इण्डिया।

रिसडेविडकी लिखी बुधिष्ट इण्डिया।

विन्सेण्टस्मिथ लिखित अशोक (क्लैरेण्डन यन्त्रालय ग्रन्थावली)।

इन्सक्रिप्शन्स आफ पियदर्शी (जी० ए० ग्रियर्सन द्वारा अनुवादित)।

फाहियान तथा हुएन्थसाङ्के भारत भ्रमण वृत्तान्त।

टाडसाहिब विरचित राजस्थान दोनो जिल्दें।

पार्जिटर सङ्कलित डाइनैष्टिक लिस्ट इन दि पुराणाज़

विलसन् कृत एरियाना एण्टिका

कनिङ्घम साहिब द्वारा प्रकाशित अशोकके लेख।

एशियाटिक रिसर्चेज,

फ्लीट साहिब द्वारा सगृहीत गुप्तोंकी लेखावली।

जर्नल आव् दि एसियाटिक सुसाइटी आफ़ बेङ्गाल

एपिग्राफ़िया इण्डिका,

इण्डियन एण्टिक्वेरी (आई० ए०)

कनिङ्घम साहिब लिखित

आर्कियालाजिकल सर्वे आफ़ इण्डयाकी रिपोर्ट

डिष्ट्रिक्ट गेजिटियर्स आव् यू० पी०

बम्बे गेजिटियर्स—

मैक्समुलर-भारत तथा उससे द्वारा हमें शिक्षा।

सी० वी० वैद्य विरचित-एपिक इण्डिया

मैक्समुलर विरचित-प्राचीन सस्कृत साहित्यका इतिहास

हएटर कृत हिन्दूस्तानके लोगोंका संक्षिप्त इतिहास, दोनों भाग।

डिलाफ़ास लिखित भारतका इतिहास

टामसन रचित भारतका इतिहास

एलफिन्स्टन रचित भारतका इतिहास

ह्वीलर कृत भारतका इतिहास

महामहोपाध्याय पं० हरप्रसाद शास्त्री एम० ए० विरचित भारतवर्षका इतिहास।

रमेशचन्द्र दत्त विरचित भारतकी पुरातन सभ्यता।

मार्सडनकृत भारतका इतिहास, प्रथम भाग हिन्दू राज्यकाल

शालोपयोगी भारतवर्ष।

प्राचीन लेखमाला (निर्णयसागर यन्त्रालय, मुम्बई)

भाण्डारकर विरचित—अर्ली हिस्ट्री आव्‌दि डेकन।

मिस मैबलडफ़—क्रानोलोजी आव इण्डिया।

त्रैलोक्यनाथ भट्टाचार्य लिखित ऐतिहासिक प्रबन्धमाला।

हरिमोहन प्रामाणिक विरचित-संस्कृत कविदिगेर समय निरूपण।

पण्डित सरयूप्रसाद मिश्र विरचित रघुवंशका पद्यबद्ध भाषानुवाद।

मिश्रबन्धुओंका भारतवर्षका इतिहास

हिन्दीप्रदीप, मर्य्यादा, हितकारिणी, सरयूपारीण ब्राह्मण पत्रिका आदि सामयिक पत्रोंकी फ़ैल।

प्राचीन भारत

ब्रिटिश म्यूज़ियम स्थित भारतीय सिक्कोंकी तालिका (१)

संख्या	राजा	सिक्केके मुखभागमें	सिक्केके पृष्ठभागमें	उल्लेख
१.	सोफिटीज़	मालासे बँधा हुआ चुस्त शिरत्राण पहने राजाका मस्तक,	egoytoy मुरगा	
२.	यूक्रेटाइड्स	शिरत्राण (कौसिया) पहन राजाकी मूर्त्ति, वृषभ-विषाण और मुकुटसे शोभित	baeluege melrvoy exμyatiaoy आक्रमण करता हुआ डायसकौरोय, लंबे लंबे और ताड़की डालियाँ लिये हुए	
३.	मनेन्द्र	मुकुट पहने राजाकी ऊर्ध्वकाय प्रतिमा	... ...	
४.	हरमोइस	मुकुट पहने राजाकी ऊर्ध्वकाय प्रतिमा	... ...	
५.	कैडेफाइसिस, प्रथम		... ...	
६.	गोन्डोफेरीस	अपूर्ण यूनानी लेख मुकुट पहने राजाकी उर्ध्वकाय प्रतिमा	... ...	
७.	आंध्रवंशीय शिवालकुर	रामोमधारिपुतस शिवालकुरस, खिंचा हुआ धनुष-वाण	... ...	

संख्या	राजा	सिक्केके मुखभागमें	सिक्केके पृष्ठभागमें	उल्लेख
८.	वैंडफाइसिस, द्वितीय	शिरस्त्राण और मुकुट पहने बादलाके नीचेसे निकलती हुई राजाकी ऊर्ध्वकाय प्रतिमा यूनानी—, दाहिने हाथमें दड	खरोष्ट्री लख— महाराजस इत्यादि, शिव तथा बाँदा	
९	कनिष्क	तुर्की परिच्छद म बरछा और तलवार लिये राजाकी खड़ा मूर्त्ति रूपांतरित यूनानी लेख	अर्दिशृग लिय देवीकी मूर्त्ति	
१०	समुद्रगुप्त	वीणा बजाते हुए राजाकी बैठा मूर्त्ति, लेख—महाराजाधिराज श्रीसमुद्रगुप्त		
११	समुद्रगुप्त	वेदीके सन्मुख खड़ी हुई धाइकी मूर्त्ति लेख—सि		
१२	चन्द्रगुप्त द्वितीय विक्रमादित्य	शेरपर बाण चलाती हुई राजाकी मूर्त्ति लेख—महाराजाधिराज	सिंहवाहिनी देवी, लेख—श्रीसिंह विक्रम	

संख्या	राजा	सिक्केके मुखभागमें	सिक्केके पृष्ठभागमें	उल्लेख
१३.	कीर्त्तिवर्म्मा चंदेला	लेख—श्रीमद् कीर्त्तिवर्म्म देव	चतुर्भुजा देवीकी बैठी मूर्त्ति	
१४.	कोई पाराश्य राजा	छत्रके नीचे दो मछलियाँ तथा अन्य चिह्न	लेख-अनिश्चित	
१५.	राजराज चोल	राजाकी खड़ी मूर्त्ति	राजाकी बैठी मूर्त्ति लेख—राजराज	
१६.	कोई पल्लव सरदार	सिंह	पात्राधार सहित पात्र	
१७.	कोई चेर राजा	बैठी हुई भद्दी मूर्त्ति	धनुष और छत्र	

आदर्श गिर गया है। इसी गिरे हुए आदर्शकी प्रबलतासे अबतक यूरोपके कोरे ऐतिहासिक दुनियाँको नौजवान बनानेकी चेष्टामें प्रवृत्त देखे गये हैं, परन्तु विज्ञानने अब आँखें खोल दी हैं. अब संसारकी कल्पों और युगोंवाली कल्पना यूरोपीय पोशाकमें नज़र आने लगी है। कुछ दिनोंमें यूरोपीय इतिहासविद् भी इतिहासकी सतत वर्धमान सामग्री एवं पुस्तकालयोंसे उकता जायँगे। जो लोग इतिहासके प्रकांड विद्वान होना चाहेंगे वह भी केवल एक छोटेसे देशके ही इतिहासके बहुज्ञ और विशेषज्ञ हो सकेंगे, क्योंकि मानव जीवन इतना पर्याप्त नहीं कि एक विद्वानके छोटेसे दिमागमें किसी भारी ऐतिहासिक पुस्तकालयका अधिकांश विषय आ सके। साथ ही यह भी ध्यान रहे कि वैज्ञानिक और यांत्रिक विकाससे सारा संसार संकुचित होकर प्राचीनकालके एक भारत सरीखे देशसे भी छोटा हो रहा है। अब एक देशके ही इतिहासकी जानकारीसे काम न चल सकेगा। इसीलिए यह प्रवृत्ति भी स्वाभाविक ही है कि हम सम्पूर्ण संसारके इतिहासको जानें। इस तरह दो प्रकारकी प्रवृत्तियोंका मानव स्वभावमें उत्पन्न होना आजकलकी परिस्थितिमें अनिवार्य्य है। इसका परिणाम यही हो सकता है कि मनुष्य ऐसे इतिहासग्रंथोंके पढ़नेका इच्छुक हो जिनमें अत्यावश्यक जाननेके योग्य बातें थोड़ेमें ही बतायी गयी हों और इस तरहके छोटे छोटे कई ग्रंथ अथवा संग्रहरूप एक ही ग्रंथ पढ़नेके लिए मिलें जिसमें सारे संसारका इतिवृत्त एक साथ जाननेमें आवे। ऐसे प्रयत्नके फल कई "संसारके इतिहास"वाली मालाएँ युरोपीय भाषाओंमें प्रकाशित हो चुकी हैं।

प्राचीन भारत भी जिस समय संसारकी सभ्यताका केन्द्र था उस समय संभवतः प्राचीन कालके इतिहास-पुराणकी ऐसी ही असह्य वृद्धि हो चुकी होगी। प्राचीनताके कारण, युगों और कल्पोंकी कथा विस्ताररूपमें लिखा जाना तो असंभव था और है ही, साथही यह

भी देखा गया कि ऐतिहासिक घटनाएँ बारंबार एकही सरीखी होती हैं, विस्तारमें ही थोड़ा बहुत अन्तर होता है, तो उन्हें दुहरानेकी क्या आवश्यकता है। "इतिहास अपनेको दुहराता रहता है" यह पाश्चात्य ऐतिहासिक तथ्य भी है। हमारे यहाँ तो यह स्वयं अत्यन्त प्राचीन सिद्धान्त है। "यथा पूर्वमकल्पयत्"से लेकर आजतककी समस्त पौराणिक और ऐतिहासिक उक्तियाँ इस बातकी साक्षी हैं। इसीलिए आधुनिक ऐतिहासिक कालक्रम, घटनाक्रम और सामाजिक तथा आर्थिक इतिवृत्तके विस्तारके पचड़ेमें न पड़ हमारे प्राचीनोंने इतिहास और पुराणकी शैली ही निराली रक्खी। रामायण महाभारत और अठारह पुराणों उपपुराणोंकी रचनाके हजारों बरस पहलेकी प्राचीन उपनिषदें इस बातकी गवाह हैं कि इतिहास-पुराण पाँचवाँ वेद समझा जाता था और जान पड़ता है कि उन्हींकी नीवपर आजकलके इतिहास पुराणोंकी भीत खड़ी है। पुराणोंको पंचलक्षण कहा है। "सर्गश्चप्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंशानुचरितं चैव पुराणं पंचलक्षणम्।" इस उक्तिके अनुसार पुराणमें सृष्टिकी आदिसे आजतकका वर्णन होना चाहिए और हमारे पुराणकारोंने इस परम्पराको भविष्य पुराणमें "विक्टा" नाम राजमहिषीतकका वर्णन करके निबाहा है। कुछ लोगोंकी प्रवृत्ति है कि इस तरहके वर्णनको क्षेपक कहकर घृणाकी दृष्टिसे देखें परन्तु मैं इसे बहुत सराहनीय उद्योग समझता हूँ। हाँ, जो लोग ऐसी रचनाको बूढ़े बाबा कृष्णद्वैपायन व्यासके गले मढ़ते हैं उनसे मैं सहमत नहीं हूँ।

पुराण जनताके लिए कहे गये हैं और कथा कहनेवालोंकेलिये लिखे गये हैं। इतिहाससे संसारको जो शिक्षा मिल सकती है उसके प्रचार और विस्तारका इससे अच्छा उपाय तो अबतक देखनेमें नहीं आया है। हाँ, छापेखानेको हम इस उपायके बराबरीकी पदवी किसी किसी दृष्टिसे दे सकते हैं। श्रोतागणकी परिस्थितिपर विचारकर वक्ता

अपनी कथाको जगह जगहपर रोचक और भयानक बनानेको लाचार होता था। पुराणोंके इस प्रकारके अंश नयी रोशनीके पाश्चात्य ढंगके फीके ऐतिहासिकोंकी आँखोंमें बेतरह खटकते हैं और इनके कारण वह पुराणोंके उपयोगी अंशको भी कहानी समझकर छोड़ देते हैं। हमारे वर्तमान ग्रंथकारने इस बातपर यथोचित विचार करके नीरक्षीरविवेक पूर्वक पुराणसे प्राचीन भारतका इतिहास संग्रह करनेकी चेष्टा की है और हमारी रायमें अधिकांश सफल भी हुए हैं। यद्यपि कई बातोंमें हम सहमत होनेको तय्यार नहीं हैं, तथापि हम इतना अवश्य कहेंगे कि ग्रंथकारने पुराणोंसे इतिहाससंग्रहका मार्ग प्रशस्त कर दिया है और पुराने इतिहासको अनेक स्थलोंमें बीसवीं शताब्दीकी पोशाक पहनायी है जिससे पाठकोंको पाश्चात्योंके कोरे अनुकरणका भ्रम हो सकता है।

• यह ग्रंथ जब लिखा गया था तबसे आजतकमें अनेक नयी बातें मालूम हुई हैं। भारतके इतिहासकी सामग्री प्रत्नतत्ववाले बड़े उत्साहसे संग्रह कर रहे हैं। बहुत सी संगृहीत सामग्री अभी बेपढ़ी पोथीकी तरह अजायबघरोंमें पड़ी है। इनका अनुशीलन वही कर सकते हैं जो जीविकाकी चिन्तासे मुक्त हो अपनेको इस कार्यमें पुराने गड़े वा उखाड़े हुए मुर्दोंके साथ दफ़न करनेको तय्यार हों। ऐसे निःस्वार्थ विद्वानोंका होना भारतसे दरिद्र देशमें अत्यन्त कठिन है। तोभी जो काम हो रहा है, थोड़ा नहीं है। ऐसी दशामें प्राचीन भारतके इतिहासका बार बार संशोधन और परिवर्धन स्वाभाविक ही है। अनेक अनिवार्य कारणोंसे प्रस्तुत ग्रंथ ऐसी कुछ बातोंमें सात आठ सालके लगभग पिछड़ा हुआ है। इसलिए इस संस्करणके समाप्त होते ही नये संशुद्ध और परिवृद्ध संस्करणका प्रकाशित होना भी आवश्यक है। सम्प्रति यह पुस्तक प्राचीन भारतके एक संक्षिप्त इतिहासकी कमी पूरी करनेके लिए प्रेससे बाहर जा रही है।

ग्रंथकारके दूर होनेसे प्रकाशकको लाचार हो इस पुस्तकके छपवानेका

काम सम्पादकको सौंपना पड़ा । इस पुस्तकके सम्पादन तथा सम्पूर्ण पुस्तकको रोचक मार्मिक और उपयुक्त टिप्पणियोंसे अलंकृत करनेका श्रेय हमारे परम मित्र विद्वद्वर पंडित पद्मसिंह शर्माको है। खेदकी बात है कि इस पुस्तकके थोड़ेसे अंशके छपनेके बाद ही इसके योग्य सम्पादक महोदय इस अयोग्य तथा इतिहाससे अनभिज्ञ व्यक्तिके कंधों-पर इसकी पूर्तिका बोझा डालकर अपने घर जा विराजे।

" जब फ़रिश्तोंसे न उट्ठा बारे इश्क़
आदमे ख़ाकीके सरपर रख दिया।"

ज्यों त्यों करके यह बोझा मंजिलतक पहुँचा दिया गया। इसके मालिक इतिहास-रसिक पाठक देखभाल लें, और माल सँभाल लें।

ज्ञानमण्डल जैसी उपयोगी संस्थाके परम उत्साही विद्यारसिक संचालक काशीके प्रसिद्ध धनकुबेर श्रीमान् बाबू शिवप्रसादजी गुप्तका इस ग्रंथके प्रकाशनमें थोड़ा श्रेय नहीं है। अन्तकी ग्रंथनामावली और वर्णक्रमसूची आपके ही अनुरोध और विचारका फल है। इसके चित्रोंकी उपयोगिता और नकशोंकी तय्यारी आपके पूर्ण मनोयोग और इतिहासप्रेमका प्रमाण है। इन बातोंके लिए हिन्दी संसार आप-का ऋणी है।

भारतवर्षके जो नकशे दिये गये हैं वह अधिकांश पुरानी पुस्तकोंके आधारपर हैं। कई नकशे विंसेण्टस्मिथके ग्रंथके आधारपर है और एक नकशा बुद्धिस्ट इंडिया नामक ग्रंथके आधारपर खींचा गया है। अभी भारतवर्षका और जम्बूद्वीपका प्राचीन भूगोल और तदनुसार प्राचीन नकशे अन्वेषणके गर्भमें हैं। प्राचीन भूगोलकी पूरी सामग्री पुराणोंमें, स्मृतियोंमें, वेदोंमें, ज्यौतिष ग्रंथोंमें, समकालीन वैदेशिक लिपियों और पुस्तकोंमें भरी पड़ी हैं। विल्सनका आर्याना ग्रंटिका इस विषयका बड़े महत्वका ग्रंथ है। एशियाटिक रिसर्चेज़में, एशियाटिक सोसायटीके जर्नलमें, इंडियन ऐंटिक्वेरी आदिकमें यत्रतत्र इस विषयके

लेख भी निकल चुके हैं । इन सबपर विचार करके जम्बूद्वीप और भरतखंडका नकशा प्राचीन भारतका संभवतः बड़े विस्तृत रूपमें दिखायेगा। उस भूगोल और नकशेके अनुसार "प्राचीन भारत"के इतिहासका ढंग अवश्य बदलेगा क्योंकि भूगोल और इतिहासका अटूट सम्बन्ध है। परन्तु जबतक प्राचीन भारतका यथावत् रूप निश्चित होकर सामने न आ जाय तबतक हमको प्रस्तुत सामग्रीपर ही सन्तोष करना पड़ेगा। इतिशम्।

श्रीकाशि
१–१–७७

विनीत
रामदास गौड़

ब्रिटिश म्यूज़ियम स्थित भारतीय सिक्कों और पदकोंकी तालिका (२)

संख्या	राजा	सिक्केके मुखभागमें	सिक्केके पृष्ठभागमें	उल्लेख और टिप्पणी
१	सिकंदर	हाथमें वज्र लिये और फारसी शिरस्त्राण पहने सिकंदरकी खड़ी मूर्त्ति	हाथीपर चढ़े सवारोंपर आक्रमण करता हुआ अश्वारोही	
२.	अगस्तू	अगस्तूका मस्तक	.. . ...	
३.	काजोला कैडफीस (कैडेफाइसिस प्रथम)	राजाका मस्तक और यूनानी लिपिमें लेख	. .	
४.	हुविष्क	राजाकी ऊर्द्धकाय प्रतिमा और रूपान्तरित यूनानी लेख	... ..	
५.	,,	,,	. . ..	
६.	तिबेरियस	तिबेरियसका मस्तक	पोन्टिफेन्स मॉन्सिममकी भाँति बैठा हुआ राजा	
७.	नहपान, छहरात क्षत्रप	क्षत्रपका मस्तक और रूपान्तरित यूनानी लेख	वज्र और तीर, यूनानी लेखका खरोष्ठी रूपांतर	

श्रीगणेशाय नमः

भूमिका

भारतवर्षका प्राचीन इतिहास आज एक विषम समस्या हो गयी है। आजकल लोग साधारणतः इतिहास शब्दका जो तात्पर्य लगाते हैं सो प्राचीन पण्डितोंकी कल्पनामें नहीं समाया था। इसी कारणसे आधुनिक लोगोंका यह कहना कि भारतवर्षका प्राचीन इतिहास हो नहीं है किसी अंशमें ठीक है। यद्यपि रामायण, महाभारत, जैमिनीयाश्वमेध, वेद, उपनिषद्, आरण्यक और पुराणादिमें जो उपाख्यान पाये जाते हैं वे इतिहासहीके नामसे प्रसिद्ध रहते चले आये हैं तथापि अर्वाचीन विद्वान् मनुष्योंकी कल्पनामें वे इतिहास कहे जाने-योग्य नहीं हैं। क्योंकि इन उपाख्यानोंमें इतिहासके लक्षण नहीं घटते। निःसन्देह उक्त ग्रन्थोंके निर्माणकालमें 'इतिहास' शब्दका अर्थ कुछ और था और अब कुछ और है। पण्डित लोग इतिहास—शब्दकी व्याख्या निम्नलिखित रीतिसे करते हैं। इति = वक्ष्यमाण प्रकारसे, ह = निश्चय, आस = था। निदान इतिहास शब्दके अर्थकी तात्कालिक जैसी प्रतीति थी तदनुरूप प्रसिद्ध वार्तोंका रोचक रीतिसे वर्णनमात्र उसका अर्थ था। इतिहास शब्दका अर्थ केवल प्राचीन घटनावलीकी सूचीमात्र न था। परन्तु आजकलके लोग इतिहास शब्दका यह अर्थ करते हैं कि प्राचीन सत्यासत्य घटनावलियोंका सूचीपत्र।

प्राचीन ऋषियोंने जो ग्रन्थ लिखे सो केवल परोपदेशकी इच्छा से। उन दिनों रूखीसूखी घटनाओंकी सूची सुनना

लोगोंको प्रिय न रहा होगा अतएव ऐतिहासिक बातें भी उपदेशके लिये उपाख्यानकी रीतिसे लिख दी गयीं। प्राचीन कालकी मुख्य मुख्य घटनाओंके परिणामादि भागोंको छोड़ शेष बातोंके शपथपूर्वक सत्य लिखनेकी प्रथा तब न थी। उपाख्यानोंको मनभावन रीतिसे रोचक बनाकर सुनानेके लिये कविताकी भांति रूपक, अतिशयोक्ति, अत्युक्ति आदिकी उन वर्णनोंमें यथेष्ट भरती कर देते थे। मनोरञ्जनार्थ कल्पित बातोंके भरनेकी रुचि लोगोंमें इतनी बढ़ गयी कि समय पाके सत्य बातोंका भी पता लुप्त होने लगा। इतिहासग्रन्थोंमें केवल घटनावलीकी सूचीको स्थान नहीं मिला। इस ओर किसीने ध्यान भी न दिया। झूठ सच मिले उपाख्यानद्वारा भी लोगोंको उपदेश दिया जा सकता था इस कारण उपदेशरूप फल ही उपाख्यानोंका मुख्य उद्देश्य समझा गया। ऋषियोंने संसारको मिथ्या समझकर प्राणियोंकी अनुपदेशमयी करतूतोंका वर्णन नहीं किया। आधुनिक पाश्चात्य इतिहासलेखकोंकी नाईं ग्रन्थ लिखनेकी चाल पुराने हिन्दुओंमें नहीं पायी जाती। कुछ लोग यह भी अनुमान करते हैं कि प्राचीन हिन्दुओंके लिखे इतिहास कदाचित् रहे हों पर अब लुप्त हो गये होंगे परन्तु यह अनुमान इस कारण ठीक नहीं समझ पड़ता कि जब कालके प्रभावसे हिन्दुओंके वेद, स्मृति, दर्शन, पुराणादि शास्त्र नष्ट नहीं होने पाये तो केवल इतिहास ग्रन्थ ही क्यों लुप्त हुए इस शंकाका कोई उचित उत्तर नहीं मिलता। काश्मीरमें कल्हण पण्डितने राजतरङ्गिणी नाम एक ग्रन्थ अवश्य लिखा है और यह भी विक्रमकी १३ वीं शताब्दीमें तब लिखा गया जब मुसलमानोंका इतिहास किस भांति लिखा जाता था इसका परिचय प्राप्त हो गया होगा। फिर भी प्राचीन हिन्दुओंकी रीत्यनुसार यह पुस्तक भी निरा

इतिहास कहे जाने योग्य नहीं है क्योंकि इसमें भी कविता तथा कल्पित बातें जहां तहां पायी ही जाती हैं। इसमें लिखा है कि राजा रणादित्यने ३०० वर्षतक राज्य किया। ऐतिहासिक दृष्टिसे यह बात नितान्त अविश्वास्य है। अतएव जो प्राचीन इतिहासग्रन्थ भारतवर्षमें पाये जाते हैं प्रायः सबके सब ही उन उपदेशमय उपाख्यानोंसे पूर्ण हैं जिनमें सत्य और मिथ्या, कल्पित और वास्तविक दोनों बातें भरी हैं।

अब यहां यह प्रश्न उदय होता है कि यदि भारतका प्राचीन ठीक ठीक इतिहास पूर्वमें नहीं लिखा जा चुका है तो क्या अब उसका लिखा जाना सम्भव है? इसी प्रश्नका उत्तर आगेके पृष्ठोंमें देनेका कुछ प्रयत्न किया गया है। जिस प्रकारसे और और देशोंके विद्वानोंने अपने यहांके इतिहास लिख रक्खे हैं वैसे तो भारतवर्षमें हैं नहीं परन्तु यदि प्रयत्न और सावधानतापूर्वक अनुसन्धान किया जाय तो कदाचित् भारतवर्षका भी प्राचीन इतिहास प्रस्तुत कर लिया जा सकेगा। इस कार्यमें युरोपके विद्वानोंने बहुत श्रम किया है परन्तु यथार्थ इतिहास लिख सकनेमें आजलों उनमेंसे कोई भी समर्थ नहीं हुआ। उनकी देखादेखी कुछ भारतवासियोंने भी प्राचीन भारतका इतिहास लिखनेमें हाथ लगाया पर यथोचित अनुसन्धान तथा गवेषणा न करनेके कारणसे उनके प्रयत्न सफल हुए ऐसा कहनेका साहस नहीं पड़ता। बात तो यह है कि समाजकी दशा, रीति रस्म, व्यापार, धर्म, व्यवहार आदिका तो ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करनेमें लोग वेदादि ग्रन्थोंकी सहायतासे कृतकृत्य हो सके हैं पर उन राजवंशोंका ज्ञान जो बिना ५... हो सकता है इन लेखकों को प्राप्त नहीं हुआ।

यदि गम्भीरतापूर्वक विचार किया जाय तो हिन्दुओं की प्राचीन दशा जैसी वेद आदिमें पायी जाती है वैसी ही पुराणादिकोंमें झलकती है। अतएव पुराणोंको भी तनिक सावधानतासे यदि कोई देखे तो राजवंशके इतिहासके साथ भारतके प्राचीन इतिहासकी रचनामें बहुत कुछ सफलता प्राप्त हो जाय। इसमें सन्देह नहीं कि यह बात बहुत कठिन है परन्तु असम्भव भी नहीं है। निज बुद्धि और कल्पनाके अनुकूल इस प्रकारके प्रयत्नका दिङ्दर्शनमात्र आगे कराया जायगा।

जो लोग पुराणोंके इतिहासको निरी कल्पना और मिथ्या बातोंका भण्डार समझके परित्याग कर देते हैं उनको यह विचारना चाहिये कि क्या वेदों, उपनिषदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों और महाकाव्यादि ग्रन्थोंमें उस प्रकार की अत्युक्तियां, रूपक, कथानक, उपाख्यान और अनेक वर्णन नहीं भरे हैं जैसे कि पुराणोंमें पाये जाते हैं और जो सत्य इतिहासरूपसे ग्रहण नहीं किये जाते। जब और और ग्रन्थोंके अनैतिहासिक भाग छाँट लिये जा सकते हैं तो तदनुरूप पुराणोंसे भी न छाँट लिये जा सकें यह बात विश्वासयोग्य नहीं। कहनेका तात्पर्य यही है कि जैसे इतिहासके विषयमें वैदिक उपाख्यान सावधानतापूर्वक देखनेसे इतिहासका पता देते हैं उसी प्रकारसे पौराणिक उपाख्यानोंको भी देखके इतिहासकी खोज करना उचित है। जैसे वेद, रामायण, महाभारत आदि इतिहासके विषय में प्रामाणिक ग्रन्थ हैं वैसेही मत्स्यपुराण, वायुपुराण, विष्णुपुराण और श्रीमद्भागवत आदिको भी समझना चाहिये। रह गया कि जो जन सावधानतापूर्वक इस कार्य में अग्रसर होंगे वही सफल हो सकते हैं। ध्यानपूर्वक देखनेसे वेद, इतिहास और पुराणोंकी बातें परस्पर एक

दूसरे से मेल खा जायँगी और विरोध मिट जायगा। निःसन्देह यदि पुराणग्रन्थ सर्वथा छोड़ दिये जाँय तो प्राचीन भारतका इतिहास सर्वथा वैसाही अपूर्ण रहेगा जैसा कि अबतक रहता आया है। अतएव पुराणोंके प्रामाणिक अंशको ग्रहण करके प्राचीन भारतके इतिहासका पूर्ण करना भारतवासियोंका कर्तव्य है। यदि इस सांप्रतिक प्रयत्नमें कुछ सफलता न भी प्राप्त हो सकी हो तो भी बहुत कुछ आशा की जा सकती है कि इस रीतिसे भविष्यमें भारतवर्षका प्राचीन इतिहास एक प्रकारसे अनेकांशमें पूर्णरूपसे प्रस्तुत हो सकेगा। पुराणोंमें अनेक देशों और वहांके प्राचीन राजवंशोंके नाम लिखे हुए हैं परन्तु सभी पुराणोंकी वंशावलियां यद्यपि साधारणतः एकही चालपर लिखी गयी हैं तथापि कई एक स्थानोंमें उनमें परस्पर विरोध भी है। ऐसी दशामें यह जाँच लेना कि कौन सा ठीक है, न केवल कठिन किन्तु असम्भव सा प्रतीत होता है। ऐसे प्रकरणोंमें जो वंशावली विस्तारपूर्वक लिखी हो और अधिक प्रामाणिक वर्णनोंमें पायीजाय उनसे थोड़े और अधूरे भागोंकी अपेक्षा ठीकमान लेनेसे काम चल जाता है।

यहां इस बातका भी ध्यान रखना चाहिये कि पौराणिक वंशावलियोंमें प्रायः जिन उत्तराधिकारियोंको कहीं पुत्र लिखा गया है वेही कहीं भाई, कहीं भतीजे और कहीं पौत्र भी विश्वसनीय प्रमाणान्तरोंसे निर्णीत होचुके हैं। यथा श्रीमद्भागवतमें कुशध्वजको मिथिलाके राजा सीताके पिता सीरध्वज का पुत्र लिखा है' यद्यपि विष्णुपुराण और श्रीमद्रामायण आदिमें कुशध्वज सीरध्वज के छोटे भाई ही सिद्ध होते हैं। निदान प्रत्येक देशमें यथोचित अनुसन्धान करके पुराणोंमें लिखित राजवंशावलियोंसे काम लेना उचित है। पौराणिक वंशावलियोंमें एक और भी विशेष ध्यान देने

योग्य बात यह है कि उनमें प्रायः समकालीन वंशोंमें कहीं कहीं एक वंशके अन्तिम राजाका उत्तराधिकारी द्वितीय वंशके प्रथम राजाको बनाके गड़बड़ कर दी है। फलतः भिन्न राजाओंके समय, राज्यकाल और मुख्य मुख्य घटनाओंके समझनेमें बड़ी बड़ी अड़चलें पड़ जाया करती हैं। इस बातका निश्चित प्रमाण इस रीतिसे मिलता है कि प्रायः सभी पुराणोंमें मगधके राजवंशके वर्णनमें कण्ववंशकी समाप्तिके पीछे अन्ध्रवंशका राज्यारम्भ लिखा है अर्थात् कण्ववंशके अन्तिम राजा सुशर्माका उत्तराधिकारी और घातक अन्ध्रवंशी राजा सिप्रकको लिखा है। अनेक शिलालेखों और बौद्धादिके ग्रन्थोंसे यह बात सिद्ध हो जाती है कि अन्ध्रवंशका राज्यारम्भ अर्थात् सिप्रकका सिंहासनाधिरोहण विक्रम से १७० वर्ष पूर्व मगधमें मौर्यके राज्यकालहीमें हुआ और उनका राज्य दक्षिणमें अन्ध्र वा तिलिंगाना (त्रिकलिङ्ग) देशमें था जिसकी राजधानी पैठान वा *प्रतिष्ठान तथा पीछे से गोदावरीके तीरपर धनकटक नाम नगरी थी। सिप्रकके चलाये राजवंशके किसी अन्यतम पुरुषने विक्रमाब्द २६में मगध देशको विजय करके कण्ववंशी राजा सुशर्माको मार डाला होगा।

सम्भव है कि ऐसे ही जरासन्धके वंशज रिपुञ्जयके उत्तराधिकारी प्रद्योतको जो उज्जयिनीका भी अधिकारी रहा हो शिशुनागवंशके राज्यारम्भसे भी पूर्व लिख दिया है और प्रद्योतवंशके अन्तिम राजा नन्दिवर्द्धनको मारके शिशुनागवंशियोंका मगधपर अधिकार करना लिखा है। बौद्ध ग्रन्थोंके पढ़नेसे अनुमान होता है कि प्रद्योतका वंश उज्जयिनीमें और शिशुनागका वंश मगधमें समानकालमें राज्य करता था क्योंकि

* यह प्रतिष्ठान, पुरुरवाकी राजधानी प्रतिष्ठान (प्रयाग) से भिन्न है। सम्पादक

शिशुनागवंशी पञ्चम राजा बिम्बिसार और प्रद्योतवंशका प्रतिष्ठाता चण्डप्रद्योत ये दोनों राजा, समकालीन हैं। अवश्यही इसी प्रकारका कुछ गोलमाल अयोध्याके इक्ष्वाकु-वंशी राजाओंके विषयमें भी पुराणोंमें पड़ गया है नहीं तो इक्ष्वाकुसे २४ वीं पीढ़ीमें उत्पन्न मिथिलाके राजा सीरध्वज जनक और इक्ष्वाकुके समकालीन राजा पुरुरवासे २४ वीं पीढ़ीमें उत्पन्न अङ्गदेशके राजा रोमपाद उन महाराज दशरथके समकालीन कैसे हो सकते हैं जिनका कि जन्म इक्ष्वाकुसे ५४ वीं पीढ़ीमें हुआ बतलाया जाता है? यदि महाराज दशरथको भी इक्ष्वाकुसे २५वीं पीढ़ीमें उत्पन्न मानलें और सावधानतासे वंशावलियोंकी जांच करके एक ही समयमें राज्य करनेवाले राजवंशोंको अलग अलग बतला दें तो बहुत कुछ घटनाओंका सामञ्जस्य निर्णीत हो जाय। पद्मपुराण पातालखण्डके रामाश्वमेध प्रकरणमें एक स्थानपर ऋतुपर्णको दशरथपुत्र रामसे थोड़ा पूर्वकालीन लिखा है। महर्षि विश्वामित्र और परशुराम इत्यादि, राजा त्रिशङ्कु, हरिश्चन्द्र तथा दशरथ इत्यादि सभीके समकालीन हो जाते हैं। लङ्काका राजा रावण भी अनरण्य और राम दोनोंका समकालीन प्रकट होता है। जान पड़ता है कि अयोध्या नामकी नगरी भी दो थीं एक तो प्रसिद्ध अयोध्या सरयू तीरपर स्थित ही है जो आजकल ज़िले फ़ैज़ाबादके अन्तर्गत है और दूसरी का नाम साकेत था जो वर्तमान उन्नावके ज़िलेमें कहीं थी। ऐसे ही प्राचीन काशी भी दो थीं एक तो गङ्गातटपर और दूसरी पश्चिममें सिन्धुनदके तटपर जिसे लोग अटक बनारस भी कहा करते हैं। महाराज शिवि इसी पाश्चात्य अटक बनारसके राजा रहे होंगे क्योंकि महाराज ययाति चन्द्रवंशीकी जिस सन्तानपरम्परामें इनका

नाम आया है वह पश्चिम देशकी ही जान पड़ती है। महाराज हरिश्चन्द्र अयोध्याधिप की पटरानी शैव्या भी पश्चिमी बनारसके राजकुलमें हुई होंगी और विपत्तिकालमें पूर्वीय बनारसमें दासी बनके उन्होंने अपना कालक्षेप किया होगा।

इसी प्रकारसे जिन काशिराजकी कन्या अम्बा, अम्बिका और अम्बालिकाका उल्लेख भीष्म पितामह इत्यादिके साथ महाभारतमें किया गया है वह सम्भवतः पश्चिमी काशिराज-की कन्याएँ होंगी।

हो न हो पुराणोंमें सूर्यवंशविषयक भूलें मन्वन्तरोंमें, हर्यश्व और युवनाश्व आदि राजाओंके नाम कई बार आनेसे पड़ गयी होंगी यदि इन राजाओंको एक ही राजवंशकी भिन्न भिन्न शाखाओंका प्रवर्त्तक कल्पना करें तो बहुत कुछ झगड़ा निबट जाय। समकालीन राजाओंकी वंशपरम्पराका मिलान करनेसे प्राय. सभी घटनाओंका सामञ्जस्य सिद्ध हो जाता है।

समकालीन राजवंशोंका मिलान करनेकेलिये निम्नलिखित कतिपय पौराणिक बातोंपर अवश्य ध्यान देना चाहिये।

(१) सूर्यवंशी महाराज मनुके पुत्र इक्ष्वाकु और चन्द्रवंशी महाराज बुधके पुत्र पुरुरवा समकालीन हैं।

(२ अयोध्यापुरीका सूर्यवंशी राजा ककुत्स्थ (परञ्जय) चन्द्रवंशी राजा नहुषका समकालीन है क्योंकि नहुषके पुत्र ययातिने ककुत्स्थकी गो नाम कन्यासे विवाह किया था।

(३) सूर्यवंशी राजा युवनाश्वने चन्द्रवंशी राजा मति-नारकी कन्या गौराका पाणिग्रहण किया। प्रसिद्ध महाराज मान्धाता इन्हीं गौराके पुत्र हैं।

(४) सूर्यवंशी राजा मान्धाताने चन्द्रवंशी (यादव) राजा, शशबिन्दुकी कन्या चैत्ररथीसे विवाह किया और इनके पुत्रका नाम पुरुकुत्स था।

(५) सूर्यवंशी राजा पुरुकुत्सकी कन्या पौरा, चन्द्रवंशी राजा कुशिककी विवाही थी जिसके पुत्र गाधि महाराज विश्वामित्रके पिता थे।

(६) चन्द्रवंशी राजा विश्वामित्रकी कन्या शकुन्तला, चन्द्रवंशी राजा मतिनारके पोते दुष्यन्तकी पटरानी बनी। विश्वामित्र, सूर्यवंशी राजा त्रिशङ्कु, हरिश्चन्द्र और दशरथके समकालीन हैं।

(७) चन्द्रवंशी (हैहय) राजा कृतवीर्यकी कन्या चन्द्रवंशी राजा महंयाति (पुरुवंशी) को विवाही थी।

(८) कृतवीर्यका पुत्र (हैहयवंशी) सहस्रार्जुन, चन्द्रवंशी विश्वामित्रके भांजेके पुत्र परशुराम, लङ्काका राजा रावण, अयोध्याके राजा अनरण्य और मान्धाता तथा महाराज दशरथ, श्रीरामचन्द्र, ये सबलोग समकालीन हैं वा थोड़ेही आगे पीछे समयके हैं।

(९) सूर्यवंशी प्रतापी राजा सगरके साथ सहस्रार्जुनके वंशजों अर्थात हैहय और तालजङ्घनामक क्षत्रियोंका युद्ध हुआ अतः सगर सहस्रार्जुनके वंशजोंके समकालीन हैं।

(१०) अयोध्याका सूर्यवंशी राजा हिरण्यनाभ चन्द्रवंशी राजा संकृतिका समकालीन है क्योंकि हिरण्यनाभने उसे योगविद्या सिखलायी थी। हिरण्यनाभके गुरु महर्षि जैमिनि थे।

(११) अयोध्याका इक्ष्वाकुवंशी राजा बृहद्बल, चन्द्रवंशी कौरव, पाण्डव, जरासन्ध तथा यदुवंशी उग्रसेन, कंस, बलराम, श्रीकृष्णचन्द्र, चेदि देशका राजा शिशुपाल, मिथिलाका सूर्यवंशी राजा बहुलाश्व (जनक) इत्यादि भी समकालीन हैं।

(१२) अयोध्याके सूर्यवंशी राजा दिवाकर, हस्तिनापुरके चन्द्रवंशी राजा (महाराज परीक्षितके वंशज) अधिसीम कृष्ण और मगधके (जरासन्धके वंशज) महाराज सेनजित् एकही समयमें अपने अपने देशके राज्याधिकारी थे। क्योंकि इन्हींके राज्यकालमें मत्स्यपुराण और वायुपुराणमें उल्लिखित कथायें सुनायी गयी हैं।

(१३) सूर्यवंशी राजा शुद्धोदन (कपिलवस्तुके शाक्य कुल वाले) उनके पुत्र सिद्धार्थ वा गौतम बुद्ध, राजा प्रसेनजित (श्रावस्तीके सूर्यवंशी) और कौशाम्बीके चन्द्रवंशी (हस्तिनापुरके परीक्षितकी शाखामें उत्पन्न) राजावत्स अथवा उदयन, अवन्तीका चण्डप्रद्योत, मगधका शिशुनागवंशी राजा बिम्बिसार और तत्पुत्र अजातशत्रु ये सब राजा लोग समकालीन हैं।

पुराणोक्त इतिहासोंका भली भांति आलोचन करनेसे उक्त बातें प्रकट होती हैं। यह केवल दिक्दर्शनमात्र है जो राजवंशके मिलान करनेकी रीति बतलाता है। विशेष खोजसे प्रचुर ऐतिहासिक सत्य बातोंका पता लगानेवाले भारतका उपकार कर सकते हैं। ऐसी कल्पना न की जाय कि उक्त उदाहरणोंके अतिरिक्त भिन्न भिन्न वंशके राजाओंका समकाल सिद्ध करनेकेलिये पुराणोंमें और कुछ है ही नहीं। अभी बहुत सी बातें छूट गयी हैं और उनका विस्तारपूर्वक वर्णन करना किसी योग्य व्यक्तिहीसे सम्भव है।

यहांपर श्रीमद्भागवत पुराणमें दी हुई सूर्य तथा चन्द्रवंशके राजाओंकी सूची उद्धृत करके दिखला दी जाती है। समकालीन राजाओंका मिलान करनेसे स्पष्ट प्रकट हो जायगा कि कई स्थानोंके समकालीन राजवंशोंको पूर्व पश्चात्के क्रमसे लिखनेमें गोलमाल हो गया है।

सूर्यवंशके राजाओंकी सूची

(श्रीमद्भागवतानुसार)

अयोध्या वा साकेतके राजा लोग

(१) मनु
(२) इक्ष्वाकु
(३) विकुक्षि
(४) पुरञ्जय
(५) अनेनाः
(६) पृथु
(७) विश्वरान्धि
(८) चन्द्र
(९) युवनाश्व (१)
(१०) शाव
(११) दृढाश्व
(१२) हर्यश्व (१)
(१३) निकुम्भ
(१४) बर्हणाश्व
(१५) कृशाश्व
(१६) सेनजित्
(१७) युवनाश्व (२)
(१८) मान्धाता
(१९) पुरुकुत्स
(२०) त्रसद्दस्यु
(२१) अनरण्य
(२२) हर्यश्व (२)
(२३) अरुण
(२४) त्रिबन्धन
(२५) त्रिशङ्कु
(२६) हरिश्चन्द्र
(२७) रोहित
(२८) हरित
(२९) चम्प
(३०) विजय
(३१) भरुक
(३२) वृक
(३३) बाहुक
(३४) सगर
(३५) असमंजस
(३६) अंशुमान्
(३७) दिलीप
(३८) भगीरथ
(३९) श्रुत
(४०) नाभ
(४१) सिन्धुद्वीप
(४२) अयुतायु
(४३) ऋतुपर्ण
(४४) सर्वकाम
(४५) सुदास
(४६) अश्मक

(४७) मूलक
(४८) दशरथ (१)
(४९) एलाबिल
(५०) विश्वसह
(५१) खट्वाङ्ग
(५२) दीर्घबाहु
(५३) रघु
(५४) पृथुश्रवा
(५५) अज
(५६) दशरथ (२)
(५७) श्रीराम
(१) श्रीराम
(२) कुश
(३) अतिथि
(४) निषध
(५) नल
(६) नभ
(७) पुण्डरीक
(८) क्षेमधन्वा
(९) देवानीक
(१०) अहीनगु
(११) पारियात्र
(१२) बल
(१३) स्थल
(१४) वज्रनाभ
(१५) स्वगण
(१६) विधृति
(१७) हिरण्यनाभ
(१८) कौशल्य
(१९) पुष्य
(२०) ध्रुवसन्धि
(२१) सुदर्शन
(२२) अग्निवर्ण
(२३) मरु
(२४) प्रसुश्रुत
(२५) सन्धि
(२६) अमर्षण
(२७) महस्वान्
(२८) विश्वबाहु
(२९) प्रसेनजित्
(३०) तक्षक
(३१) बृहद्बल
(३२) बृहद्रण
(३३) उरुक्रिय
(३४) वत्सवृद्ध
(३५) प्रतिव्योम
(३६) भानु
(३७) दिवाक
(३८) सहदेव
(३९) बृहदश्व
(४०) भानुमान्
(४१) प्रतीकाश्व
(४२) सुप्रतीक
(४३) मरुदेव

(४४) सुनक्षत्र
(४५) पुष्कर
(४६) अन्तरिक्ष
(४७) सुतपा
(४८) अमित्रजित्
(४९) बृहद्राज
(५०) बर्हि
(५१) कृतञ्जय
(५२) रणञ्जय
(५३) सञ्जय
(५४) शाक्य
(५५) शुद्धोद
(५६) लाङ्गल
(५७) प्रसेनजित् (२)
(५८) क्षुद्रक
(५९) रणक
(६०) सुरथ
(६१) सुमित्र

मिथिलाका राजवंश

(३) निमि
(४) मिथिल
(५) उदावसु
(६) नन्दिवर्द्धन
(७) सुकेतु
(८) देवरात
(९) बृहद्रथ
(१०) महावीर्य
(११) सुधृत
(१२) धृष्टकेतु
(१३) हर्यश्व
(१४) मरुत्
(१५) प्रतीपक
(१६) कृतरथ
(१७) देवमीढ
(१८) विश्रुत
(१९) महाधृति
(२०) कृतिरात
(२१) महारोमा
(२२) स्वर्णरोमा
(२३) ह्रस्वरोमा
(२४) सीरध्वज
(२५) कुशध्वज
(२६) धर्मध्वज
(२७) कृतध्वज
(२८) केशिध्वज
(२९) भानुमान्
(३०) शतद्युम्न
(३१) शुचि
(३२) सनद्वाज
(३३) ऊर्ध्वकेतु
(३४) अज

(३५) पुरुजित्
(३६) अरिष्टनेमि
(३७) श्रुतायु
(३८) सुपार्श्वक
(३९) चित्ररथ
(४०) क्षेमधि
(४१) हेमरथ
(४२) सत्यरथ
(४३) उपगुरु
(४४) उपगुप्त
(४५) श्वसन
(४६) सुवर्चा
(४७) सुभाषर्ण
(४८) श्रुत
(४९) जय
(५०) विजय
(५१) धृत
(५२) शुनक
(५३) वीतहव्य
(५४) धृति
(५५) बहुलाश्व
(५६) कृति
(५७) महावशी ।

वैशालिका राजवंश

(१) मनु
(२) दिष्ट
(३) नाभाग
(४) भलन्दन
(५) वत्सप्रीति
(६) प्रांशु
(७) प्रमति
(८) खनित्र
(९) चाक्षुप
(१०) विविंशति
(११) रम्भ
(१२) खनिनेत्र
(१३) करन्धम
(१४) वीक्षित
(१५) मरुत्त
(१६) दम
(१७) राज्यवर्द्धन
(१८) सुधृति
(१९) नर
(२०) कवल
(२१) बिन्दुमान्
(२२) वेगवान्
(२३) बन्धु
(२४) तृणबिन्दु
(२५) विशाल
(२६) हेमचन्द्र

(२७) धूम्राक्ष	(१) मनु	(१) मनु	(१) मनु
(२८) संयम	(२) नृग	(२) नरिष्यन्त	(२) नभग
(२९) सहदेव	(३) सुमति	(३) चित्रसेन	(३) नाभाग
(३०) कृशाश्व	(४) भूतज्योति	(४) दक्ष	(४) अम्बरीष
(३१) सोमदत्त	(५) वसु	(५) मीढ्वान्	(५) विरूप
(३२) सुमति	(६) प्रतीक	(६) कूर्च	(६) पृषदश्व
(३३) जनमेजय	(७) ओघवान्	(७) इन्द्रसेन	(७) रथीतर
		(८) वीतिहोत्र	
		(९) सत्यश्रवा	
		(१०) उरुश्रवा	
		(११) देवदत्त	
		(१२) अग्निवेश्य	

चन्द्रवंश

(१) बुध	(११) नेत्र
(२) पुरूरवा	(१२) कुन्ति
(३) आयु	(१३) महिष्मान्
(४) नहुष	(१४) भद्रसेन
(५) ययाति	(१५) धनक
(६) यदु	(१६) कृतवीर्य
(७) सहस्रजित्	(१७) सहस्रार्जुन
(८) शतजित्	(१८) जयध्वज
(९) हैहय	(१९) तालजङ्घ
(१०) धर्म	(२०) वीतहोत्र

चन्द्रवंश ।

(१) बुध
(२) पुरूरवा
(३) आयु
(४) नहुष
(५) ययाति
(६) यदु
(७) क्रोष्टु
(८) वृजिनीवान्
(९) स्वाहि
(१०) रुषेकु
(११) चित्ररथ
(१२) शशबिन्दु
(१३) पृथुश्रवा
(१४) धर्म

(१५) उशना
(१६) ज्यामघ
(१७) विदर्भ

(१८) क्रथ	रोमपाद
(१९) कुन्ति	बभ्रु
(२०) वृष्णि	कृति
(२१) निर्वृति	कुशिक
(२२) दशार्ह	चेदि
(२३) व्योम	चैद्य
(२४) जीमूत	
(२५) विकृति	
(२६) भीमरथ	
(२७) नवरथ	
(२८) दशरथ	

(२९) शकुनि
(३०) करम्भि
(३१) देवरात
(३२) देवक्षत्र
(३३) मधु
(३४) कुरुवश
(३५) अनु
(३६) पुरुहोत्र
(३७) आयु
(३८) सात्वत

(३९) वृष्णि	(३९) अन्धक

(४०) अनमित्र
(४०) कुकुर
निघ्न
शिनि
(४१) वृष्णि
(४१) वह्नि
प्रसेन
सत्राजित
सत्यक
युयुधान
जय
कुणि
युगन्धर
(४२) चित्ररथ
(४३) विदूरथ
(४४) भजमान
(४५) शिनि
(४६) स्वयम्भोज
(४७) हृदीक
(४८) देवमीढ़
(४९) वसुदेव
श्वफल्क
अक्रूर
(४२) विलोमा
(४३) कपोतरोमा
(४४) अनु
(४५) अन्धक
(३६) दुन्दुभि
(४७) दरिद्योत
(४८) पुनर्वसु
(४९) आहुक
बलराम
(५०) श्रीकृष्ण
(५१) प्रद्युम्न
(५२) अनिरुद्ध
(५३) वज्र
देवक
(५०) उग्रसेन
(५१) कंस

चन्द्रवंश

(१) बुध
(२) पुरूरवा
(३) आयु
(४) नहुष
(५) ययाति

(१) बुध
(२) पुरूरवा
(३) आयु
(४) नहुष
(५) ययाति

(६) अनु	(६) तुर्वसु	(६) द्रुह्यु
(७) सभानर	(७) वह्नि	(७) बभ्रु
(८) कालनर	(८) भौम	(८) सेतु
(९) सृञ्जय	(९) भानुमान्	(९) आरब्ध
(१०) जनमेजय	(१०) त्रिभानु	(१०) गान्धार
(११) महाशाल	(११) करन्धम	(११) धर्मसुत
(१२) महामना	(१२) मरुत्त	(१२) प्रचेता

(१२) महामना →
(१३) तितिक्षु
(१४) वृषद्रथ
(१५) हेम
(१६) सुतपा
(१७) बलि →
(१८) अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग
(१९) स्वनपाल
(२०) दिविरथ
(२१) धर्मरथ
(२२) रोमपाद
(२३) चतुरङ्ग
(२४) पृथुलाक्ष

(१२) महामना →
उशीनर
शिवि →
मद्र, केकय

(१) बुध
(२) पुरूरवा →
(३) आयु → नहुष, (४) क्षत्रवृद्ध
(५) सुहोत्र → (६) काश्य, गृत्समद, कुश
(६) काश्य → (७) काशि
गृत्समद → शुनक
कुश → सञ्जय

(३) विजय
(४) काञ्चन
(५) होत्रक
(६) जह्नु
(७) पूरु
(८) बलाक

(२५) बृहद्रथ	(८) राष्ट्र, शौनक	जय	(९) अजक
(२६) बृहन्मना	(९) दीर्घतमा	कृत	(१०) कुश
(२७) जयद्रथ	(१०) धन्वन्तरि	हर्यश्व	(११) कुशाम्ब
(२८) विजय	(११) केतुमान्	सहदेव	(१२) गाधि
(२९) धृति	(१२) भीमरथ	भीम	(१३) विश्वामित्र
(३०) धृतव्रत	(१३) दिवोदास	जयसेन	
(३१) सत्कर्मा	(१४) प्रतर्दन	संकृति	
(३२) अधिरथ	(१५) अलर्क	जय	
(३३) कर्ण	(१६) सुनीथ		
(३४) वृषसेन	(१७) सुकेतन	क्षत्रधर्मा	
	(१८) धर्मकेतु		
	(१९) सत्यकेतु		
	(२०) धृष्टकेतु		
	(२१) सुकुमार		
	(२२) वीतिहोत्र		
	(२३) भर्ग		
	(२४) भार्गभूमि		

चन्द्रवंश

(१) बुध
(२) पुरूरवा
(३) आयु
(४) नहुष
(५) ययाति
(६) पुरु
(७) जनमेजय
(८) प्रचिन्वान्
(९) प्रवीर
(१०) नमस्यु
(११) चारुपद
(१२) सुद्यु
(१३) बहुगव
(१४) संयाति
(१५) अहंयाति
(१६) रौद्राश्व
(१७) ऋतेयु
(१८) रन्तिभार
(१९) सुमति
(२०) रैभ्य
(२१) दुष्यन्त
(२२) भरत
(२३) वितथ
(२४) मन्यु
(२५) बृहत्क्षत्र
(२६) हस्ती
(२७) अजमीढ़
(२८) ऋक्ष
(२९) संवरण
(३०) कुरु

(३१) जन्हु	(३१) सुधनु
(३२) सुरथ	(३२) सुहोत्र
(३३) विदूरथ	(३३) च्यवन
(३४) सार्वभौम	(३४) कृती
(३५) जयसेन	(३५) वसु
(३६) राधिक	(३६) बृहद्रथ
(३७) द्युमान्	(३७) जरासन्ध
(३८) क्रोधन	(३८) सहदेव
(३९) देवातिथि	(३९) सोमापि
(४०) ऋक्ष	(४०) श्रुतश्रवा
(४१) दिलीप	(४१) अयुतायु
(४२) प्रतीप	(४२) निरमित्र
(४३) शान्तनु	(४३) सुनक्षत्र

(४४) विचित्रवीर्य — (४४) बृहत्सेन

(४५) धृतराष्ट्र — (४६) दुर्योधनादिक सौ पुत्र

(४५) पाण्डु — (४६) युधिष्ठिर भीम अर्जुन नकुल सहदेव

अर्जुन — (४७) अभिमन्यु — (४८) परीक्षित

(४५) कर्माजित
(४६) श्रुतञ्जय
(४७) शुचि
(४८) क्षेम
(४९) सुव्रत
(५०) धर्मनेत्र
(५१) श्रुत
(५२) द्युमत्सेन
(५३) सुमति
(५४) सुबल
(५५) सुनीथ
(५६) सत्यजित्
(५७) विश्वजित्
(५८) रिपुञ्जय

चन्द्रवंश (शाखाभेद)

(४८) परीक्षित — (४९) जनमेजय — (५०) शतानीक

(२६) हस्ती — (२७) अजमीढ़, (२७) द्विमीढ़

(२७) अजमीढ़ — (२८) ऋक्ष (२८) बृहदिषु (२८) नील (२८) यवीनर

(५१) सहस्रानीक	(२९) बृहद्धनु	(२९) शान्ति	(२९) द्युतिमान
(५२) अश्वमेधज	(३०) बृहत्काय	(३०) सुशान्ति	(३०) सत्यधृति
(५३) असीमकृष्ण	(३१) जयद्रथ	(३१) पुरुज	(३१) दृढनेमि
(५४) नेमिचक्र	(३२) विश्वद	(३२) अर्क	(३२) सुपार्श्व
(५५) चित्ररथ	(३३) सेनजित्	(३३) भर्म्याश्व	(३३) सुमति
(५६) काविरथ	(३४) रुचिराश्व	(३४) मुद्गल	(३४) सन्नतिमान
(५७) वृष्टिमान्	(३५) प्राज्ञ	(३५) दिवोदास	(३५) कृति
(५८) सुषेण	(३६) पृथुसेन	(३६) मित्रायु	(३६) नीप
(५९) सुनीथ	(३७) पार	(३७) च्यवन	(३७) उग्रायुध
(६०) नृचक्षु	(३८) नीप	(३८) मित्रायु	(३८) क्षेम्य
(६१) सुखीनल	(३९) ब्रह्मदत्त	(३९) सोमक	(३९) सुवीर
(६२) पारिप्लव	(४०) विष्वक्सेन	(४०) जन्तु	(४०) रिपुञ्जय
(६३) सुनय	(४१) उदक्स्वन	(४१) पृषत	(४१) बहुरथ
(६४) मेधावी	(४२) भल्लाद	(४२) द्रुपद	
(६५) नृपञ्जय		(४३) धृष्टद्युम्न	
(६६) दूर्व		(४४) धृष्टकेतु	
(६७) तिमि			
(६८) बृहद्रथ			
(६९) सुदास			
(७०) शतानीक			
(७१) दुर्दमन			
(७२) महीनर			
(७३) दण्डपाणि			
(७४) निमि			
(७५) क्षेमक			

समकालीन प्रसिद्ध राजाओंका निर्देश

इक्ष्वाकु		पुरूरवा	
ककुत्स्थ		याति (नहुषका पुत्र)	
युवनाश्व (१)		मारब्ध (द्रुह्युका वंशज)	
युवनाश्व (२)		जह्नु (अमावसुवंशी) और मतिनार (पूरुवंशी)	
मान्धाता		शशबिन्दु (क्रोष्टुवंशी)	
त्रसदस्यु		भुमन्यु (पूरुवंशी)	
अनरण्य		विश्वामित्र (अमावसुवंशी), सहस्रार्जुन (यदुवंशी)	रावण (लङ्का में)
त्रिशङ्कु		”	
हरिश्चन्द्र		”	”
दशरथ	सीरध्वज	”	”
श्रीराम	”	”	”
हिरण्यनाभ			”
वृहद्बल	बहुलाश्व	युधिष्ठिरादि पाण्डव, श्रीकृष्ण यादव इत्यादि	
दिवाकर		सेनाजित्, अधिसीमकृष्ण आदि	
शुद्धोदन		विम्बिसार, अजातशत्रु (मगधमें), उदयन कौशाम्बीमें, आदि	
सेनजित्		”	”

सूर्य तथा चन्द्रवंश का परस्पर सम्बन्ध ।

रघुवंश
रघु
अज + इन्दुमती
कौसल्या + दशरथ + कैकेयी + सुमित्रा
सीरध्वज
सीता
+ श्रीराम
भरत
लक्ष्मण
शत्रुघ्न
कुश
अतिथि
लव
तक्ष
पुष्कल
अङ्गद
चन्द्रकेतु
सुबाहु
शूरसेन
अयोध्या में
शरावती में
तक्षशिला में
पुष्कलावती में
अङ्गदीया में
मल्लिदेश में
विदिशा में
मथुरा में

पाण्डवों और यादवोंका परस्पर सम्बन्ध
प्रतीप
सत्यवती + शान्तनु + भागीरथी
विचित्रवीर्य
भीष्म
शूरसेन
देवकी + वसुदेव + रोहिणी
कुन्ती + पाण्डु
गान्धारी + धृतराष्ट्र
रुक्मिणी + श्रीकृष्ण
बलराम
सुभद्रा + अर्जुन
भीम
युधिष्ठिर
कर्ण
दुर्योधनादि सौ कौरव
प्रद्युम्न
अभिमन्यु + उत्तरा
अनिरुद्ध + उषा
परीक्षित
वज्र
जनमेजय
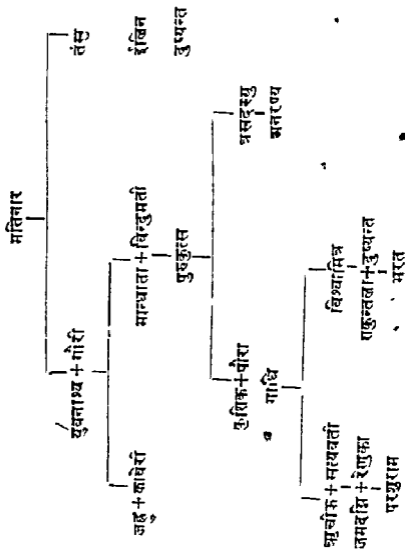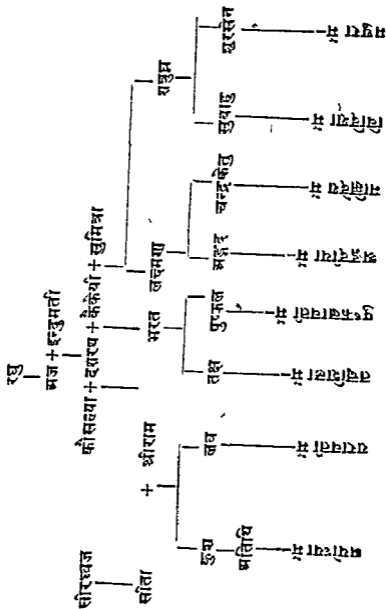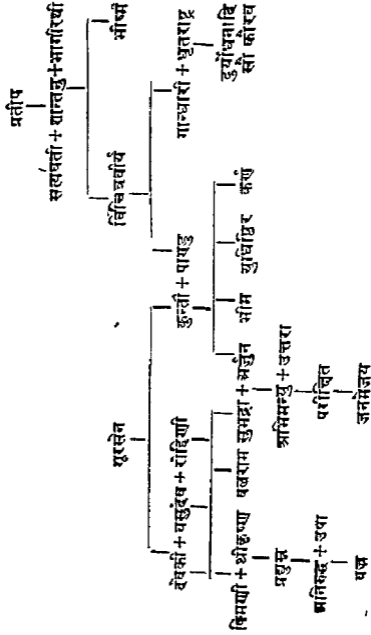
ऊपर लिखी वंशावलियों तथा सम्बन्धचक्र आदिके देखनेसे स्पष्ट हो जायगा कि पुराणोंके द्वारा बहुत कुछ ऐतिहासिक तत्त्वोंका परिश्रमी लोग उद्घाटन करके यथार्थ इतिहासके मार्गको सरल करनेमें समर्थ होंगे।

पुराणोंमें उल्लिखित अनेक ऐसे उपाख्यान भी होंगे कि जो यदि अक्षरशः सत्य माने जायँ तो उनके द्वारा ऐतिहासिक बातोंका ठीक ठीक पता लगना दुर्घट हो जाय। वस्तुतः पुराणोंको भी काव्यादि पुस्तकोंकी नाईं अत्युक्ति, रूपक आदि अलङ्कारोंसे परिपूर्ण ही समझना चाहिये उनमेंसे ऐतिहासिक तत्त्वोंके सारभागको निचोड़ना पड़ेगा। यही बात वाल्मीकीय रामायण और महाभारत आदि इतिहास-ग्रन्थोंके सम्बन्धमें भी पुराणों हीकी नाईं ठीक उतरती है। उदाहरणरूपसे कुछ बातें यहांपर दर्सायी जाती हैं।

दशरथके पुत्र श्रीरामने ग्यारह सहस्र वर्षलों अयोध्यामें राज्य किया।

सहस्रार्जुनके सहस्र भुजाएं थीं और उसने पचासी सहस्र वर्ष राज्य किया।

सगरके एक रानीसे साठ सहस्र पुत्र उत्पन्न हुए। इत्यादि।

ऐसे स्थानोंमें साधारणतः चिरकालतक राज्य करने और बहुसंख्यक पुत्रोंका प्रसव-निर्देश अर्थ कल्पना करना पड़ता है।

धुन्धु राक्षसकी मुखाग्निसे राजा कुवलयाश्वके सौ बेटे जल गये इसका तात्पर्य यह समझना चाहिये कि धुन्धु नाम किसी दुष्ट व्यक्तिके राज्यमें जब राजा कुवलयाश्वके बहुतसे पुत्र युद्धार्थ उपस्थित हुए तो धुन्धुके देशमें कोई ज्वालामुखी पर्वत भभक उठा होगा जिसमें कि सभी राजकुमार जल मरे होंगे।

श्रीरामचन्द्रजीकी सेनामें वानर और भालुओंके सम्मिलित होनेसे उन असभ्य जातियोंका भरती होना तात्पर्य होगा कि जो वानर और भालुओंकी नाईं वनमें वृक्षकी डालियों और पहाड़की गुफाओंमें निवास करते थे।

वसिष्ठजी परशुराम, नारद आदि एक ही व्यक्तिका उल्लेख भिन्न भिन्न कालकी घटनाओंमें पाके और उनका सभी समयमें उपस्थित रहना असम्भव समझके कल्पना करनी पड़ती है कि उन ऋषियोंकी सन्तानपरम्परा या शिष्यपरम्परा चल गयी होगी और नामोंका भेद लोगोंने स्मरण न करके सभीको एकही 'पुरखे या मूलगुरुके नाममे पुकारा हो जैसे स्वामी शङ्कराचार्यजीकी गद्दीपर जितने जन बैठे सभी जगद्गुरु शङ्कराचार्य कहलाये।

मिथिलाके सभी राजाओंका नाम जनक लिखा मिलता है यद्यपि प्रत्येक राजाका व्यक्तिगत नाम भिन्न भिन्न था। श्रीरामचन्द्रजीके श्वशुर महाराज जनकका व्यक्तिगत नाम सीरध्वज और श्रीकृष्णचन्द्रजीके समयके जनकका व्यक्तिगत नाम बहुलाश्व था। इसी भांति रामचन्द्रजीके कुलगुरु वसिष्ठजीका नाम वामदेव रहा होगा।

दक्षिण दिशामें दिखाई देनेवाले अगस्त्य नामके तारेका उदय शरदृऋतुमें होता है। उसके निकलते ही पृथ्वीका अधिकांश जल सूख जाता है। अगस्त्य नाम ऋषिने जिस तारेको पहचाना उसका नाम अगस्त्य पड़ा और तारेके उदय होतेही प्रचुर परिमाण जलराशिके लुप्त होनेसे लोगोंने अगस्त्य ऋषिको समुद्रशोषक कह दिया होगा।

गङ्गाजीका नाम भागीरथी पड़नेका कारण कदाचित् यही होगा कि महाराजा भगीरथने हिमालयके गोमुख नामक

हिमस्रोतसे अलकनन्दा या बूढ़ीगङ्गाकी धाराको मिला दिया होगा यदि महाराज हरिश्चन्द्र भगीरथके पूर्वज ही हों जैसा कि पुराणोंमें लिखा है, तो भी उक्त नामवाली भागीरथीकी धारा निकलनेके भी पूर्व अलकनन्दाकी धारासे गङ्गाकी स्थिति सिद्ध होती है और काशीमें गङ्गातीरपर हरिश्चन्द्रका निवास भी सम्भव होता है। यह भी सम्भव है कि इन्हीं राजा भगीरथकी कन्याका नाम भागीरथी प्रसिद्ध हुआ हो और चन्द्रवंशी राजा जह्नुने उसे अपनी पोष्यपुत्री बनाया हो अतएव भागीरथीका नाम जाह्नवी भी प्रसिद्ध हुआ हो। हस्तिनापुरके पुरुवंशी राजा शान्तनुका विवाह भी राजा भगीरथहीकी कन्या भागीरथीसे हुआ होगा और प्रसिद्ध धर्मव्रतधारी, पाण्डवों और कौरवोंके पितामह श्रीभीष्मजी महाराज भगीरथहीके नाती होनेसे गङ्गा (भागीरथी) के पुत्र कहलाये हों। ऐसी अवस्थामें महाराज भगीरथ और महाराज शान्तनुको प्रायः समानकालीन मानना पड़ेगा। राजा भगीरथजीकी लायी गङ्गा नदीकी धारा और उनकी कन्या भागीरथी इन दोनोंका एकही नाम होनेसे पौराणिक लेखोंमें दोनोंमें अभेद करके गोलमाल मचा दिया होगा। ऐसेही महाराज जह्नुकी स्त्री कावेरी, सूर्यवंशी राजा पुरुकुत्सकी स्त्री नर्मदा और वैवस्वत यमकी भगिनी यमुना आदि स्त्री व्यक्तियोंके साथ नदियोंके नाम मिलाये गये होंगे।

हिमालय पर्वतपर जो प्रदेश हैं वहांके निवासियोंका राजा भी हिमालय ही नामसे प्रख्यात होगया होगा। कुमारसम्भव काव्यमें कालिदासने इस बातका सङ्केत किया है कि पार्वती-का पिता हिमालय अपने शरीरको जङ्गम और अधिकृत प्रदेशको स्थावर कल्पना करता है। उस हिमालय नामक

राजाकी राजधानी ओषधिप्रस्थ नाम नगर हिमालय पर्वतहीपर थी। पर्वतराजकी कन्याका नाम पार्वती प्रसिद्ध हुआ।

जान पड़ता है कि प्राचीन भारतवर्षमें अनेक ज्वालामुखी पर्वत भी थे जो जाग्रत दशामें रहनेके कारण कभी कभी भभक उठते थे और निकटके नगरोंका सत्यानाश करते थे। इसी बातको वाल्मीकिजीने वर्णन करते समय लिखा है कि पर्वतोंके पङ्ख होते थे और वे पक्षियोंकी नाईं आकाशमें उड़ा करते थे और जिस नगरपर उतरते उसे नष्ट कर देते थे। मेघवर्षाके द्वारा इन्द्र ज्वालामुखी पर्वतोंकी अग्निको बुझाते और बिजली अर्थात् वज्रके प्रहारसे इस कार्यमें समर्थ होते थे अतएव इन्द्रने वज्रसे पर्वतोंके पंख काट दिये ऐसा प्रवाद भूतलपर प्रचलित हुआ। ज्वालामुखी पर्वत समुद्रोंके भीतर थे तथा अब भी हैं। धुन्धु राक्षसके देशमें भी ऐसाही कोई ज्वालामुखी रहा होगा। वर्त्तमान कालमें भी भारतके दक्षिण पूर्वकी ओर ज्वालामुखीकी श्रेणी ब्रह्मा देशसे लेकर पूर्वीय द्वीप समूहोंतक फैली पायी जाती है यद्यपि ब्रह्माके सभी ज्वालामुखी अब शान्त हो गये हैं। कदाचित् दक्षिण पूर्वकी ओर ज्वालामुखी पर्वतोंकी श्रेणीहीं होनेके कारण प्राचीन पण्डितोंने उस दिशाका नाम आग्नेय रक्खा हो।

समुद्रके भीतरकी ज्वाला ज्वालामुखी छिद्रसे निकलके कुछ ऊपर उठके तिरछी होके फिर नीचे गिरते समय प्राचीन कालवालोंको वड़वा अर्थात् घोड़ीके मुखके आकारकी देख पड़ी होगी अतएव आग्नेय दिशामें निरन्तर जलनेवाले समुद्र-जलशोषक अग्निका वाड़वाग्नि नाम पड़ा होगा।

कुछ विद्वानोंका मत है कि इन्द्रके सहस्राक्ष कहे जानेका वास्तविक तात्पर्य यह है कि उनके एक सहस्र मन्त्री थे। क्या इसी प्रकारसे रावणके दशमुख कहे जानेका भी यह

तात्पर्य नहीं लगाया जा सकता कि उसके भी दस प्रधान मन्त्री, गुरु अथवा सहायकादि रहे हों? इतना सङ्केत तो वाल्मीकीय रामायण सुन्दरकाण्डके एक स्थानपर अवश्य ही उपलब्ध होता है कि रावणके केवल एक सिर और दो भुजाएँ थीं। रावणने सभी लोकपालोंको विजय किया था इसका यह तात्पर्य है कि प्रायः सभी दिशाओंके अधिकारी राजा लोग उसका लोहा मान गये थे। कुम्भकर्णके छः मासलों सोने और एक दिन जागनेसे भी यह तात्पर्य निकल सकता है कि शूर बलिष्ठ आदि होते हुए भी वह आलसी था।

चन्द्रमाको दक्ष प्रजापतिकी २७ कन्याएँ रोहिणीसमेत व्याही थीं और रोहिणीपर अधिक प्रीति रखनेके कारण दक्षने शाप देके उसे क्षयी बना दिया और प्रभास-तीर्थमें स्नान करके चन्द्रमाने रोगसे मुक्ति पायी इत्यादि कथाका यह तात्पर्य जान पड़ता है कि प्राचीन कालमें चान्द्रवर्षारम्भ रोहिणीमें चन्द्रमाके पूर्ण होनेके समयसे माना जाने लगा होगा, इसीके पीछे अग्रहायण या मार्गशीर्ष मासके आरम्भ होनेसे वही मास सबका आदिम और सबमें जेठा भी समझा जाता है। रोहिणीमें पूर्ण होनेके पीछे चन्द्रमाकी कलामें प्रतिदिन ह्रास होता चला यहांतक कि अमावस्याको चन्द्रमण्डल देखही न पड़ा और शुक्लपक्षकी द्वितीयाको फिर पश्चिमकी ओरसे देख पड़ने और क्रमशः बढ़नेका यही अर्थ हुआ कि प्रभास-तीर्थमें जो कि पश्चिममें है स्नान करके उसने रोगसे मुक्ति पायी।

ग्रहणके समयमें राहु चन्द्रमाको ग्रसता है यहां यद्यपि राहु शिरःशेष राक्षसके रूपमें कहा गया है तथापि वास्तवमें उसका तात्पर्य पृथ्वीकी काली छायामात्रसे है। गोल देख पड़नेके कारण सिर, होनेकी कल्पना और काले रङ्गकी देख

पढ़नेके कारण राहुसत्वकी भी कल्पना की गयी। ग्रहणके समय चन्द्रमापर पृथ्वीकी परछाईं छाया गोल पड़ती है।

मुनिवर वसिष्ठ और विश्वामित्रजीके परस्पर कलह और युद्धका तात्पर्य विद्वान् लोग यह लगाते हैं कि ब्राह्मणों और क्षत्रियोंमें परस्पर जातिमें उच्च गिने जानेका झगड़ा हुआ तथा विश्वामित्रको वसिष्ठकी शक्ति अपनेसे अधिक देख पड़ी इसका अर्थ यों लगाया गया है कि क्षत्रियोंने ब्राह्मणोंको अपनेसे श्रेष्ठ समझा। यह कलह तो था विद्या और आचरणके बारेमें। क्षत्रियोंने शस्त्रविद्यामें अपनेको ब्राह्मणोंसे जब बड़ा दिखलाना चाहा तो ब्राह्मणोंमें शस्त्रविद्याका नैपुण्य भी जमदग्निपुत्र परशुरामके द्वारा दिखलाया गया। दोनों दशाओंमें क्षत्रियोंको ब्राह्मणोंसे परास्त होना पड़ा और ब्राह्मणोंहीका महत्त्व संसारमें सर्वोपरि माना गया।

इसी प्रकारसे और भी अनेक पौराणिक उपाख्यानोंका यथार्थ ऐतिहासिक तात्पर्य निकाल लिया जा सकता है। ऊपरके उदाहरण केवल मार्ग दिखलानेके लिये हैं। जिस समयमें पुराणादि ग्रन्थ लिखे गये होंगे उस समय यही रीति प्रचलित रही होगी कि रूखे ऐतिहासिक तत्त्वोंको उपाख्यानरूपसे यदि सुनायें तो सब उसपर रुचि न रखते रहे होंगे अतएव पुराणोंमें ऐसे वर्णन पाये जाते हैं जिनका यथार्थ तत्त्व खोजने और विचारनेसे मिल सकता है पर अक्षरार्थ लेनेसे निरी झूठी और अविश्वास्य कहानियां निकलती हैं। ऊपर कही हुई रीतिसे अनुसन्धानके द्वारा बहुत कुछ पता लगाया जा सकता है।

पुराणोंके वर्णनोंमें स्थान स्थान पर भेद पाये जाते हैं उनका कारण यह अनुमित होता है कि प्राचीन कालके बने हुए ... ग्रन्थ बौद्धादि नास्तिकोंके प्राबल्यके कारण प्रायः लुप्त

होगये होंगे। पीछे कुछ स्मृतिद्वारा और कुछ अपनी कल्पनाद्वारा भी पूर्ति करके पण्डितोंने ये ग्रन्थ प्रस्तुत किये और उस दशामें रक्खे जिसमें वे अब पाये जाते हैं। प्रत्येक पुराणमें क्षेपकोंकी संख्या इतनी अधिक है कि प्राचीन और नवीन रचनाओंका पृथक् करना असम्भव हो जाता है। इसीलिये बड़ी सावधानतासे पुराणोंका अर्थ ग्रहण हमारी इष्टसिद्धिमें सफलता प्राप्त करता है।

पुराणादिके द्वारा राजवंशों और उनके अधिकृत देशादिकोंका बहुत कुछ पता लग जाता है परन्तु ये राजवंश किस समयमें उस देशके अधिकारी हुए जिसपर उनका आधिपत्य पुराणोंमें उपवर्णित है इसका पता लगाना विशेष कठिन है। इस विषयमें भी लोगोंने अनेक प्रकारकी कल्पनाएं की हैं परन्तु इनमेंसे कौन सी ठीक मानी जाय यह विषम समस्या है। पं० बाल गङ्गाधर तिलकका सिद्धान्त है कि आर्य लोग विक्रमसे प्रायः आठ सहस्र वर्ष पूर्व उत्तरीय ध्रुवके समीप एशियाके उस उत्तरीय भागमें बसते थे जिसे अब सैबीरिया कहते हैं। इस बातका प्रमाण ऋग्वेदके मन्त्रों और पारसियोंके धर्मग्रन्थ छन्दावस्थासे निकालते हैं। विद्वद्वर श्रीयुत हरप्रसादजी शास्त्री लिखते हैं कि अद्यतन स्वीकृत सिद्धान्तसे वैदिक सभ्यताका समय ईसामसीहसे साढ़े चार सहस्र वर्ष पूर्वसे लेकर ढाई सहस्र पूर्वतक स्थिर होता है यद्यपि कुछ लोग सन् ईसवीसे २७८० वर्ष पूर्वसे लेके १५२० वर्ष पूर्वतक वैदिक सभ्यताका समय अनुमान करते हैं। कुछ युरोपियनोंका सिद्धान्त है कि पञ्जाब देशकी नदियोंके बीच आर्योंका निवास और ऋग्वेदके मन्त्रोंका निर्माण सन् ईसवीसे प्रायः २४०० वर्ष पूर्व हुआ होगा और कुछ दूसरे युरोपियन

लोग ऐसी कल्पना करते हैं कि वेदका समय इससे भी अधिक अर्वाचीन अर्थात् विक्रमाब्दसे केवल १९४३ वर्ष पूर्व है।

ध्यान रखना चाहिये कि उक्त सभी सिद्धान्त कल्पित हैं और कदाचित् भ्रान्त भी होंगे अतएव इनमेंसे कोई भी विश्वसनीय नहीं। कलियुग संवत्का आरम्भ विक्रमसे लगभग ३०४५ वर्ष पूर्व पड़ता है अर्थात् कलियुग संवत् १ की चैत्र शुक्ल १ को शुक्रवार सौर तिथि ६ कुंभ विक्रम संवत्से ३०४५ वर्ष पूर्व अथवा तारीख १८ फर्वरी ईसा से ३१०२ वर्ष पूर्व निश्चित होती है। इसीको गतकलि कहते हैं। कल्हण-पण्डितकृत राजतरङ्गिणीके अनुसार गतकलि ६५३में महाराज युधिष्ठिरका समय बतलाया गया है। परन्तु यह दोनों बातें भी जनश्रुतिमात्र हैं विशेष प्रामाणिक नहीं जँचतीं। श्रीमद्विष्णुपुराणमें एक स्थानपर लिखा है कि हस्तिनापुरके महाराज परीक्षितके जन्मसे लेकर पटनाके शिशुनागवंशी राजा नन्दके राज्याभिषेकतक १०१५ वर्ष बीत चुके थे। इसी बातको श्रीमद्भागवतमें ११५० वर्ष और मत्स्यपुराण तथा वायुपुराण में १०५० वर्ष लिखा है।

टुक ध्यान देके विचारनेसे विष्णुपुराण और मत्स्य-पुराण तथा वायुपुराणका प्रकट विभेद मिट जाता है सो इस प्रकार है कि १०१५ सौर वर्ष प्रायः १०५० चान्द्रवर्षोंके बराबर होते हैं। प्रत्येक चान्द्रवर्षमें केवल ३५४ और प्रत्येक सौर वर्षमें ३६६ के लगभग दिन होते हैं अतएव चान्द्रवर्ष सौर वर्षसे लगभग १२ दिन छोटा होता है। १०१५ सौर वर्षमें लगभग १०१५×३६६ अर्थात् ३७१४९० दिन होते हैं और १०५० चान्द्र वर्षमें लगभग १०५०×३५४ अर्थात् ३७१७००

दिन होते हैं। स्थूल गणनासे इन दिनोंकी संख्याके भेदका ध्यान न करनेसे निर्वाह हो जाता है।

निदान यह कल्पना कि विष्णुपुराणमें सौर गणनानुसार वर्षोंकी संख्या और मत्स्य तथा वायुपुराणमें चान्द्रगणनानुसार वर्षोंकी दी गयी संख्या विरोधभञ्जक होनेके कारण सर्वथा मान्य है। श्रीमद्भागवतकी गणनामें प्रायः १०० वर्षकी भूल प्रतीत होती है। पुराणोंके अनुसार यह भी विदित होता है कि नन्दोंके राज्यारम्भसे १०० वर्ष पीछे चन्द्रगुप्त मौर्य पाटलिपुत्र-नगरमें राजसिंहासनपर आरूढ़ हुआ। पं० हरप्रसाद शास्त्रीके लेखानुसार चन्द्रगुप्त मौर्यका राज्यारम्भ सन् ईसवीसे ३१२ वर्ष पूर्व निर्णीत होता है। विनसेण्ट स्मिथकी कल्पना है कि चन्द्रगुप्त मौर्य विक्रमाब्दसे २६४ वर्ष पूर्व पटनेमें गद्दीपर बैठा पर इसका कुछ प्रमाण न होनेसे यह बात माननीय नहीं है। जब चन्द्रगुप्त मौर्यका राज्याभिषेक विक्रमाब्दसे २५५वर्ष पूर्व स्थिर हुआ और नन्द राजाका राज्याभिषेक उससे भी १०० वर्ष पूर्व पुराणोंमें लिखा मिलता है तो नन्दका अभिषेक विक्रमाब्दसे ३५५ वर्ष पूर्वमें स्थिर हुआ। ३५५ में १०१५ वर्ष योग करनेसे परीक्षितका जन्मकाल तथा कुरुक्षेत्रमें कौरवों और पाण्डवोंका युद्ध भी गतकलि १६७५ वा विक्रमसे १३७० वर्ष पहले अर्थात् सन् ईसवीसे १४२७ वर्षके लगभग पूर्वमें अनुमित होता है। इस रीतिसे विक्रमसे लगभग १३७० वर्ष पूर्व महाराज युधिष्ठिरका राज्यकाल स्थिर होता है और गतकलिके ३०४५ वर्ष तथा राजतरङ्गिणीके २३८२ वर्ष पुराणोंसे भिन्न होनेके कारण एक ओर अशुद्ध प्रतीत होते हैं, दूसरे जरासन्ध मगधराजसे अथवा परीक्षितसे २९ पीढ़ी नीचेके राजाओंका समय २७०० वा २५४० वर्ष पड़ता है अर्थात् मोटे हिसाबसे

प्रत्येक पीढ़ीके राज्यकी औसत ११२½ वा १०१ वर्ष पड़ती है। हिन्दुस्तान सदृश उष्णदेशोंमें प्रायः २४ पीढ़ीतक सौ सौ वर्षतक राज्य करनेवाले राजाओंका होना नितान्त असम्भव है। प्रत्युत कमसे कम २० अथवा अधिकसे अधिक ३५ वर्ष औसतमें राज्यकाल एक एक पीढ़ीको दिया जा सकता है। गौतमबुद्धके समकालीन मगध और कौशाम्बीके राजा लोग महाभारतके समयसे प्रायः एक सहस्र अथवा नव सौ वर्ष पीछे २४वीं पीढ़ीमें होवें ऐसा असम्भव नहीं और पुराणोंके वर्णनोंसे यह बात स्पष्टतया सिद्ध है। अतएव विक्रमाब्दसे १३७१ वर्ष पूर्व महाभारतका युद्ध और विक्रम संवत् अर्थात् विक्रमसे प्रायः १३३४ वर्ष पूर्व यदुवंशी श्रीकृष्णजीके देहान्तका समय स्थिर होता है। श्रीमद्भागवत ११ स्कंध ६ अ० २५ श्लोकके अनुसार श्रीकृष्ण प्रायः १२५ वर्ष संसारमें स्थित थे अतएव उनका जन्मकाल १३३४+१२५ अर्थात् १४५९ वा १४६० वर्ष पूर्व होता है। विक्रमाब्दसे १४५७ वर्ष पूर्व विश्वावसु संवत्सर था और उज्जयिनीके एक प्रसिद्ध ज्योतिषीने श्रीकृष्णजीका जन्म विश्वावसु संवत्सरमें बतलाया भी है अतः पुराणों और ज्योतिषियोंकी बातोंके मेल खानेसे श्रीकृष्णजीके जन्मका भी समय स्थिर होता है अथवा गतकलि १५८८ और विक्रम संवत्से १४५७ वर्ष पूर्व भाद्रपद कृष्ण अष्टमी बुधवार रोहिणी नक्षत्रमें मध्यरात्रिके समय श्रीकृष्णजीका जन्म यदुवंशी महाराज वसुदेवकी धर्मपत्नी देवकीजीकी कोखसे हुआ यह बात भली भांति निश्चित हो गयी।

कुरुक्षेत्रके युद्धकालसे लेकर सिकन्दर यूनानीकी भारतवर्षपर चढ़ाई करनेसे कुछ पूर्वकालतक तीन राजवंशोंकी पीढ़ियाँ पुराणोंमें उल्लिखित देख पड़ती हैं। मगधमें जरास-

न्धके वंशज राजा लोग थे जिनमेंसे मन्तिम पुरञ्जय जरासन्ध-से २०वीं पीढ़ीमें था। मगधमें पुरञ्जयके पीछे प्रद्योत और शिशुनागवंशका अधिकार हुआ। अयोध्यामें बृहद्बल के वंशज महाराज शुद्धोदन और उनके पुत्र गौतमबुद्ध कोसलके उत्तरीय भागके राजा थे यद्यपि राजधानी अयोध्या नहीं किन्तु कपिलवस्तु थी। बृहद्बलवंशी राजा प्रसेनजित श्रावस्तीमें कोसलदेशका एक और राजा था। शुद्धोदनको लोग शाक्य-वंशी भी कहते हैं क्योंकि पुराणोंमें उसके पूर्वजका नाम शाक्य लिखा देख पड़ता है। लोगोंने गौतमबुद्धको भी शाक्यसिंह लिखा है। हस्तिनापुरके राजा परीक्षितके वंशज वत्सराज उदयन कौशाम्बीमें राज्य करते थे, यह शिशुनाग-वंशी राजा बिम्बिसार उज्जयिनीके चण्डप्रद्योत और गौतम-बुद्धके समकालीन थे। इन प्रत्येकवंशके राजाओंमें महा भारतके समयसे लेखा लगाके गौतमबुद्धके समकालीन राजाओंमें लगभग २४ पीढ़ियां बीतती हैं और इतने कालके लिये पुराणादिके अनुसार ६०० वर्ष व्यतीत होते हैं।

पुराणोंमें ऐसा भी लिखा है कि सप्तर्षि एक एक नक्षत्रपर सौ सौ वर्षतक ठहरते हैं और महाभारतके युद्ध वा परीक्षित-के समयमें वह मघापर थे। नन्दके राज्याभिषेकके समयमें वह पूर्वाषाढ़ापर होंगे। लेखा लगानेसे यह बात ठीक उतरती है क्योंकि मघासे १० नक्षत्र पीछे पूर्वाषाढ़ाका नक्षत्र होता है और मघासे पूर्वाषाढ़ातक पहुंचनेमें सप्त-र्षियोंको एक सहस्र वर्ष लगता है। इन सप्तर्षियोंके नाम यह हैं—मरीचि, वसिष्ठ, अङ्गिरा, अत्रि, पुलस्त्य, पुलह और क्रतु। लोग इनमेंसे पुलह और क्रतु नामक दो ऋषियों अथवा उनके नामवाले सितारोंको सूचक कहते हैं। इनकी पहचान यह है कि शेष पांच ऋषियों वा उनके नामके

सितारोंसे पहिले ये आकाशमें उदय होते देख पड़ते हैं। इन दोनों सितारों—पुलह और क्रतुकी दूरीकी पंचगुनी दूरीपर नीचेकी ओर आकाशस्थ उत्तर दिशामें एक अटल सितारा देख पड़ता है जिसका कि नाम ध्रुव है। ध्रुवके समीप उस ममेत सात और छोटे छोटे सितारे हैं जिन्हें लोग लघुसप्तर्षि कहते हैं और इनमें किनारेके दो सितारे उत्तानपाद और प्रियव्रत कहलाते हैं जिन्हें ध्रुवका संरक्षक कहना उचित बोध होता है। सप्तर्षियोंसे जिस दिशामें ध्रुव पड़ते हैं उसकी विपरीत दिशामें अर्थात् आकाशस्थ दक्षिण दिशाकी ओर आकाशमें जो एक सीधी रेखा खींची जाय वह नक्षत्रराशिमेंसे जिसको काटे उसी नक्षत्रमें सप्तर्षि स्थित हैं, ऐसा कुछ ज्योतिषी कहते हैं। श्रीमद्भागवतके द्वादशस्कन्धकी टीकामें श्रीयुत श्रीधर स्वामीजी भी ऐसाही लिखते हैं अर्थात् इन्होंने भी सप्तर्षियोंकी स्थिति सूचकों अर्थात् पुलह और क्रतुसे खींची जानेवाली रेखापर स्थित नक्षत्रोंमें ही सप्तर्षि स्थित समझे जाते हैं, ऐसा लिखा है। प्रयागप्रान्तके प्रसिद्ध ज्योतिषी पण्डित इन्द्रनारायणजी द्विवेदी इसी रीत्यनुसार बतलाते हैं कि उक्तरीतिसे आजकल सप्तर्षि उत्तराफाल्गुनी नक्षत्रमें स्थित हैं। परीक्षितके समयसे अबतक सप्तर्षि दो बार सभी नक्षत्रोंमें घूम आये और तीसरी बार पूर्वाफाल्गुनीको पार करके उत्तराफाल्गुनीमें पहुंच गये हैं अर्थात् महाभारतके समयसे अबलों ५५०० वर्षसे ऊपर बीत जाना चाहिये परन्तु अयन-गतिके कारण इसमें लगभग ४०० वर्षका भेद पड़ गया है अतएव प्राय. ५००० वर्ष पूर्व महाभारत युद्ध वा परीक्षितका जन्मकाल रहा होगा।

यदि इस अवसरपर सप्तर्षियोंके सभी नक्षत्रोंपर घूम

आनेकी संख्या दो बार न गिनके एकही बार गिनी जाय और अयनगतिके कारण पड़नेवाले भेदका भी ध्यान रक्खा जाय तो फिर महाभारत वा परीक्षितका समय ५४०० वर्षके आधेसे कुछ अधिक अर्थात् अबसे प्रायः ३३०० वर्ष पूर्व पड़ता है इस प्रकार ऊपरके विष्णुपुराणके उल्लेखसे यह गणना विपरीत न होके मेल खा जाती है। अतएव बहुत सम्भव है और प्रायः निश्चित है कि सप्तर्षियोंकी गतिके लेखेसे भी महाभारतयुद्धका समय विक्रमसे प्रायः १३७०वर्ष पूर्व ठहरता है। कलियुग संवत् वा उससे ६५३ वर्ष पीछे युधिष्ठिरका राज्यारम्भ यहां भी सिद्ध होना कठिन है।

कुछ और ज्योतिषियोंका कथन है कि पुलह और क्रतु नाम सितारोंके मध्यगत विन्दुसे समकोण बनाती हुई एक रेखा खींची जाय उसपर जो नक्षत्र पड़े उसमें सप्तर्षि स्थित हैं ऐसी कल्पना करनी चाहिये। इस रीतिसे पण्डित बदरीनारायण मिश्रजीने पण्डित हरिनन्दनमिश्र नाम ज्योतिषीका मत दिखाके सिद्ध करना चाहा है कि संवत् १९७०में सप्तर्षि १४ वर्षलों पुनर्वसु नक्षत्रपर रह चुके हैं और महाभारतका युद्धकाल अबसे प्रायः ५००० वर्ष पूर्वका है। यह सिद्धान्त भी पुराणोंकी बातसे मेल न खानेके कारण कहांतक मान्य है सो सोच लिया जा सकता है।

यदि पुलह और क्रतुको छोड़के मरीचि और वसिष्ठ नामके सितारोंको जो शेषसे पूर्व वा आगे पड़ते हैं पूर्वमें उदय होनेवाला मान लें तो उनसे समान रेखामें स्थित आजकल स्वाती नक्षत्र देख पड़ता है और सप्तर्षि स्वाती नक्षत्रमें स्थित हैं ऐसी कल्पना करनी पड़ती है। इस लेखेसे मघासे प्रारम्भ करके २७ नक्षत्रोंपर एक बार चक्कर लगा कर दूसरी बार सप्तर्षि स्वातीपर पहुंच गये और २७००+५००=

३२०० वर्षका समय तबसे अबतक बीता यह बात स्थिर होती है जो पुराणोंसे मेल खाती है। परन्तु यह लेखा भी नितान्त अभ्रान्त नहीं कहा जा सकता क्योंकि एक परमावश्यक बात जो अयनगतिके निर्णयके लेखेकी है इसमें छूट ही जाती है। अयनगतिका लेखा लगानेसे इसमें भेद पड जायगा और किसी प्राचीन वा नवीन ज्योतिषीने सप्तर्षियोंकी आकाशमें स्थितिका निर्देश मरीचि और वसिष्ठके द्वारा किया भी नहीं है।

कनिङ्घम साहब लिखते हैं कि कोलब्रुक साहबने कमलाकर नाम पण्डितके लेखानुसार सप्तर्षियोंकी गतिको गुप्त और गूढ़ लिखा है। वास्तवमें सप्तर्षि सुदूर नभमण्डलमें स्थित हैं और उनकी गतिका कुछ भी ठीक पता हम लोगोंको नहीं। केवल अतीन्द्रियदर्शी ऋषि, मुनि और योगियोंको ही इसका यथार्थ पता चल सकता है।

सप्तर्षियोंकी भिन्न भिन्न नक्षत्रोंमें स्थितिका उल्लेख तो कई स्थानोंमें मिलता है परन्तु सप्तर्षियोंकी गतिके लेखेसे उन सबका सामञ्जस्य नहीं बैठता इस कारण सप्तर्षियोंके द्वारा महाभारत युद्धका कालनिर्णय करनेमें बड़ी कठिनाई है।

नक्षत्रोंमें सप्तर्षियोंकी स्थितिके उल्लेख इस प्रकार हैं—

(१) श्रीकृष्णजीके जन्मकालमें सप्तर्षि आश्लेषापर थे।

(२) महाभारतके युद्धकालमें सप्तर्षि मघापर थे।

(३) नन्दके राज्याभिषेकके समय सप्तर्षि पूर्वापाढ़ापर होंगे।

(४) अन्ध्रोंके राज्यकालमें सप्तर्षि कृत्तिकामें पहुंचेंगे।

(५) अलबीरूनीको काश्मीरके किसी पञ्चाङ्गद्वारा ज्ञात हुआ कि शकाब्द ८५२ में सप्तर्षि ७ वर्षसे अनुराधापर रह चुके हैं।

(६) सप्तर्षि आजकल संवत् १९७२ विक्रमीमें पुनर्वसुपर हैं

(७) सप्तर्षि आजकल उत्तराफाल्गुनी में हैं।

(८) सप्तर्षियोंका किसी नक्षत्र विशेषपर होना असम्भव है।

(९) सप्तर्षियोंकी गूढ़ गतिका यथार्थज्ञान हम सरीखे दिव्यदृष्टिरहित चर्मचक्षु जनोंको होना असम्भव है।

उक्त मतोंका प्रदर्शन करके यह भार पाठकोंहीपर छोड़ दिया जाता है कि सप्तर्षियोंकी गतिसे महाभारतके युद्धका काल ठीक ठीक निर्णय करें क्योंकि विना ज्योतिषकी विशेष निपुणताके हम सरीखे अल्पज्ञ जन इसका ठीक ठीक निर्णय करनेमें असमर्थ हैं।

निदान पुराणोंके द्वारा परीक्षितका जन्म, महाभारतका युद्धकाल तथा श्रीकृष्णके देहान्तका जो समय निर्णय हुआ और सप्तर्षियोंकी गतिसे मिलान करनेका कार्य ज्योतिषियोंपर छोड़ हम पौराणिक प्रमाणहीको सिद्ध मान लेते हैं। कल्हणकृत् राजतरङ्गिणी और वराहमिहिरद्वारा निर्दिष्ट युधिष्ठिरका राज्यकाल शकाब्द प्रारम्भ से २५२६ वर्ष पूर्व वा विक्रमसे २३९१ वर्ष पूर्व जो बतलाया गया है सो वास्तवमें पुराणोंसे भिन्न होनेके कारण स्वीकार्य नहीं है। एक बात हो सकती है कि यदि श्रीकृष्णजीका देहान्त विक्रमसे १३३२ वर्ष पूर्व पुराणानुसार स्वीकार करके उससे १२०० वर्ष पूर्व कलियुगका आरम्भ मानें अर्थात् कलियुगके १२०० वर्ष बीतनेपर श्रीकृष्णजीका देहान्त हुआ ऐसा समझ लें और यह भी कल्पना करें कि इन १२०० वर्षोंकी सौर रीतिसे वार्षिक गणना न करके नाक्षत्र वर्षोंमें गणनाकी है तो १२०० नाक्षत्र वर्ष$=\frac{१२००\times ४२}{३५४}$ अर्थात् १४२... के लगभग सौर वर्षसे कम होते हैं अर्थात्

१२०० वर्ष १०५८ वर्षके बराबर होते हैं। श्रीकृष्णजीके देहान्तकाल वा विक्रमसे पूर्व १३३३ वर्षमें १०५८का योग करनेसे कलियुग-संवत्का आरम्भ इस प्रकार विक्रमसे २३६१ वर्ष पूर्व पड़ता है। इस समयको वराहमिहिर अथवा कल्हणने भूलसे महाराज युधिष्ठिरका राज्य काल बतलाया है। वास्तवमें यह समय वृद्धगर्गके निर्देशानुसार कलियुग संवत्के आरम्भका है। फलतः सिद्ध हुआ कि युधिष्ठिरका राज्यकालनिर्देश जो पुराणानुकूल विक्रमसे १३७० वर्ष पूर्व पड़ता है वही ठीक है। नाक्षत्र वर्ष गणनासे निर्दिष्ट विक्रमसे २३६१ वर्ष पूर्वके समयको वृद्धगर्गका प्राचीन मत कलियुगका आरम्भ बतलाता है यही स्वीकार्य है उसे युधिष्ठिरका काल मानना भूल है।

आर्यभट्टने २३ वर्षकी अवस्थामें विक्रमाब्द ५५६ में कलियुग संवत्का आरम्भ अपनेसे ३६०० वर्ष पूर्व माना। श्रीकृष्णके देहान्तका उससे १२०० वर्ष पीछे अर्थात् अपने समयसे २४०० वर्ष पूर्व माना होगा परन्तु श्रीकृष्णजीका देहान्त आर्यभट्टसे ५५६+१३३३ वा १८८६ वर्ष पूर्व था उसी १८८९में वार्हस्पत्य गणनानुसार १२०० वर्ष अर्थात् ११८६ वर्ष जोड़ देनेसे कलियुग संवत्का आरम्भ १८८६+११८६=३०७५ विक्रमसे पूर्व जा पड़ा।

वार्हस्पत्य गणनामें १७० सौरवर्ष १७२ वृहस्पति वर्ष के तुल्य होते हैं अथवा प्रत्येक ८६ वर्ष केवल ८५ वर्षके बराबर होते हैं इस प्रकार १२०० सौर वर्ष ११८६ वृहस्पति वर्षके बराबर होते हैं। अतएव ऐसी कल्पना करना कि अपने समयसे सौर गणनानुसार श्रीकृष्णजीके देहान्त कालका लेखा लगाके वार्हस्पत्य गणनानुसार उसमें १२०० सौर वर्ष और जोड़के आर्यभट्टने कलियुग संवत्का आरम्भ

माना नितान्त युक्तिशून्य नहीं है। ऐसी कल्पनाद्वारा पुराणोंके साथ कलियुगारम्भके निर्देशोंमें सामञ्जस्य भी हो जाता है अतएव यह मत सर्वथा ग्राह्य है। उक्त रीतिसे महाभारतके युद्ध और श्रीकृष्णजीके देहान्तका निश्चित समय मिल जाता है और कलियुगका आरम्भ उससे १२००-वर्ष पूर्व स्थिर होता है।

महाभारतमें मगधका राजा सहदेव जो जरासन्धका पुत्र था मारा गया और उसकी वंश-परम्परामें जिन राजाओंने जितने समयतक मगधमें राज्य किया उसका भी यथावत् निर्देश मत्स्यपुराण तथा वायुपुराणमें किया गया है। इन राज्यकालोंका लेखा मगधराज चन्द्रगुप्तमौर्य और उससे भी पीछेतकका दिया हुआ मिलता है। यद्यपि इस वर्णनमें कतिपय स्थानोंमें भेद और गड़बड़ी आदि भी पायी जाती है तथापि सावधानतापूर्वक इसको भी देखनेसे विक्रम १३७० वर्ष पूर्व महाभारतके युद्धकालका लेखा ठीक उतरता है। विभेद और गड़बड़ीका कारण यहांपर भी ध्यान देनेसे प्रकट हो जाता है कि समकालीन राज्य करनेवाली वंशपरम्पराको एक दूसरेका उत्तराधिकारी करके वर्णन कर रक्खा है इसी प्रकरणमें सावधानता और चतुराईकी बहुत आवश्यकता है। पुराणोंकी प्रामाणिकता बिना इन बातोंको भलीभांति विचारपूर्वक स्थिर किये परम कठिनाईसेही सिद्ध हो सकती है।

जरासन्धके पीछे मगधकी राजवंशपरम्पराका मत्स्य तथा वायुपुराणानुसार मिलान करके भेदोंको यथाशक्ति निवारण करके राज्यकाल-समेत राजवंश-तालिका आगे लिखी जाती है—

मगध राजवंश		समकालीन राजवंश	
जरासन्ध	१३८१ वि०पू०	अयोध्याका सूर्यवंश	युधिष्ठिरकी वंशपरम्परा
सहदेव	१३७० "		
सोमापि	१३१२		अर्जुन
श्रुतश्रवा	१२४८	बृहद्‌बल	अभिमन्यु
अयुतायु	१२२२	बृहद्रण	परीक्षित
निरमित्र	११८२	उरुक्रिय	जनमेजय
सुक्षत्र	११२६	वत्सवृद्ध	शतानीक
बृहत्कर्मा	११०३	प्रतिव्योम	अश्वमेध
सेनाजित्	१०८०	भानु	सहस्रानीक
श्रुतञ्जय	१०२०	दिवाकर	अधिसीम कृष्ण
नृप	१०१२	सहदेव	नेमिचक्र
शुचि	९५४	वीर	उक्त
क्षेम	९२६	बृहदश्व	चित्ररथ
सुव्रत	८९२	भानुमान्	शुचिरथ
धर्मनेत्र	८५७	प्रतीकाश्व	वृष्णिमान्
नृपति	७९९	सुप्रतीक	सुषेण
सुव्रत	७६१	मरुदेव	सुचक्षु
दृढसेन	७२३	सुनक्षत्र	सुखीनर
सुमति	६९०	पुष्कर	परिप्लव
सुचल	६६८	अन्तरिक्ष	सुनय
सुनेत्र	६२८	सुतपा	मेधावी
सत्यजित्	५४५	अमित्रजित्	नृपञ्जय
वीरजित्	५१०	बृहद्राज	दूर्व
अरिञ्जय	४९०	बर्हि	तिमि
		कृतञ्जय	बृहद्रथ
		रणञ्जय	सुदास

प्रद्योत	४६० वि. पू. में राज्य करता था	शाक्य शुद्धोदन बुध	शतानीक उदयन

अवन्तीका चण्डप्रद्योत, कपिलवस्तुका शुद्धोदन और कौशाम्बीका उदयन ये सब राजा राजगृहके राजा बिम्बिसारके समकालीन हैं।

प्रद्योत और उसके पूर्वजोंके था मगधम जरासन्धकी सन्तानोंके राज्यकालहीमें मगधके किसी और भागमें शिशुनागवंशवालों का अधिकार प्रचलित हो गया था और उस वंशके चार राजाओंके १२६ वर्ष राज्य कर चुकने पीछे पांचवां राजा बिम्बिसार ४६७ वि०पू०में राजसिंहासनपर बैठा होगा। इस रीतिसे शिशुनागवंशकी नामावली और राज्यकाल नीचे लिखी रीतिसे कल्पित होते हैं—

शिशुनागवंश।

शिशुनाग	६०३-५६३	वि० पू०
काकवर्ण	५६३-५२७	,,
क्षेमधर्मा	५२७-४६१	,,
क्षत्रौजा	४६१-४६७	,,
बिम्बिसार	४६७-४३६	,,
अजातशत्रु	४३६-४१२	,,
दर्शक	४१२-३६८	,,
उदय	३८८-३५५	
महानन्द	३५५-२६७	
सुमाली (आदि)	२६७-२५५	
चन्द्रगुप्त मौर्य	२५५-२३१	

चन्द्रगुप्त मौर्यका राज्यकाल विक्रमसे २५५ वर्ष पूर्व

श्रीयुत हरप्रसाद शास्त्री द्वारा निर्णीत और ऊपर उल्लिखित हो चुका है। राजा महानन्दके शासनकालके ही अन्तिम भागमें विक्रमाब्दसे २७० वर्ष पूर्व मकदुनियाके राजा सिकन्दरने पश्चिमी भारतवर्षपर चढ़ाई करके पञ्जाबराज पोरस वा पुरुषसेन राजाको झेलम नदीके किनारे पराजित किया परन्तु उसकी शूरतासे प्रसन्न होके फिर उसका राज्य फिर दिया था। इसी समय मौर्यवंशी चन्द्रगुप्त सिकन्दरसे जा मिला था और यूनानियोंको मगधपर चढ़ दौड़नेके लिये भड़काता था परन्तु यूनानियोंने सतलज नदीको पार करनेका साहस नहीं किया।

महाभारतका युद्धकाल और श्रीकृष्णचन्द्रजीके देहान्तका समय निर्णय करनेके अनन्तर आगे पुराणोंसे श्रीरामचन्द्रजीका समय निश्चित करनेके लिये किसी प्रकारकी सहायता नहीं मिलती अतएव अँधेरेमें टटोलनेपर अनिश्चित और कल्पित समयका ही आश्रय लेना पड़ता है। भारतवर्ष सदृश देशमें मोटे लेखेसे यदि एक एक पीढ़ीके लिये २२½ वर्षका औसत रक्खा जाय तो असम्भव न होगा। इस प्रकार अयोध्याके राजा बृहद्बलका समय विक्रमसे १३७० वर्ष पूर्व मानके, उनसे ३० पीढ़ी ऊपरके राजाओंमेंसे प्रत्येकका समय यदि २२½ वर्ष कल्पना कर लेवें तो श्रीरामचन्द्रजीका समय विक्रमाब्दसे प्रायः २२½×३०= ६७५+१३७०=२०४५ पूर्व स्थिर होता है और उनके भी पूर्व और भी २४ पीढ़ी ऊपर चढ़के उन श्रीरामचन्द्रजीसे २२½×२४=५४० वर्ष पूर्व अयोध्याके राजा इक्ष्वाकु और प्रतिष्ठानके राजा पुरूरवाका राज्यकाल कल्पित होता है। इस रीतेसे यदि महाराज मनुका इक्ष्वाकुके भी पूर्व ५८ वर्षतक राज्य करनेवाला कल्पित कर लें तो स्थूलगणना-

से निम्न लिखित समयक्रम भारतवर्षमें आर्योंके विस्तारका निश्चित होता है—

प्रायः विक्रमाब्द २६४३ वर्ष पूर्व महाराज मनुने अयोध्या वसायी
" " २५८५ " " इक्ष्वाकुने राज्य पाया
" " २०८३ " " मान्धाता चक्रवर्त्ती राजा हुए
" " २०४५ " " श्रीरामचन्द्रजीका राज्यकाल
" " १४५७ " " श्रीकृष्णचन्द्रजीका जन्म हुआ
" " १३८६ " " अर्जुनके पुत्र अभिमन्युका जन्म
" " १३८३ " " युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ
" " १३७० " " कुरुक्षेत्रमें महाभारत युद्ध
" " १३३२ " " श्रीकृष्णजीका देहान्त
" " ५१० " " गौतमबुद्धका जन्म
" " ४७० " " वर्द्धमान महावीरकी मृत्यु
" " ४३० " " गौतमबुद्धकी मृत्यु
" " ३५५ " " मगधमें महानन्दका राज्य
" " २७० " सिकन्दर यूनानीकी भारतपर चढ़ाई
" " २५५ " " चन्द्रगुप्त मौर्य मगधका राजा हुआ

वर्द्धमान महावीर और गौतम बुद्धके समयसे भारतीय इतिहासका पता जैन और बौद्ध ग्रन्थोंसे बहुत कुछ मिलने लगता है और पुराणोंका वर्णन अत्यन्त संक्षिप्त तथा जटिल होनेसे उसमें विशेष अनुसन्धान करके ऐतिहासिक तत्वोंको खोज निकालना निष्प्रयोजन होता है। इसके पीछे यूनान और चीन इत्यादिक देशोंसे सम्बन्ध हो जानेके कारण तथा अनेक शिलालेखों, ताम्रपत्रों, खम्भों, दीवारों आदि-पर खुदे लेखों और भांति भांतिके सिक्कोंसे भी भारतवर्षके प्राचीन इतिहास जाननेमें बहुत अधिक स मिलती है। युरोपीय विद्वानोंने इस विषयमें बड़ा

किया है और भरसक सत्य बातोंको खोजके निकालने की चेष्टा की है। निदान विक्रमाब्दसे ४४३ वर्ष पूर्वसे लेके प्रायः विक्रमाब्द १२५७ तकका इतिहास इस पुस्तकमें भी विशेष कर युरोपीय इतिहास लेखकोंके आधारपर लिखा गया है। स्वतन्त्र जाँच करनेका अवसर और सुभीता न रहनेके कारण और युरोपियन विद्वानोंकी जाँचसे प्रायः सहमत होनेके कारण आगेकी जाँचकेलिये पराश्रय ग्रहणही समीचीन बोध हुआ। यहांपर यह भी प्रकट कर देना उचित है कि युरोपियनोंके भारतीय इतिहासके सिद्धान्तोंमें किन किन बातोंको हम नितान्त मिथ्या समझके स्वीकार नहीं करते हैं।

(१) ऋग्वेदके मन्त्र विक्रमाब्दसे केवल १४४३ वर्ष पूर्व बने होंगे।

(२) रामायणका समय महाभारतके समयके पश्चात् है।

(३) उज्जयिनीमें विक्रम नाम कोई राजा मसीहसे ५७ वर्ष पूर्व नहीं था।

(४) मसीहसे ७८ वर्ष पीछेका चला शाका राजा शालिवाहनका नहीं है।

(५) राजपूत लोग प्रायः सभी शक वा सीथियन हैं।

इत्यादि इत्यादि

इन सब बातोंका यथास्थान निर्णय इस पुस्तकमें मिलेगा इतना मतभेद रहते हुए भी हम निश्छल चित्तसे युरोपियन इतिहास लेखकोंके प्रयासकी सराहना करते और उनको आदरकी दृष्टिसे देखते हैं और उन्हें पुराणोंका प्रमाण स्वीकार न करते देख उनके परिश्रममें न्यूनता देखके उनके अपूर्ण और भ्रान्त इतिहासपर हमें बड़ा खेद भी होता है।

भारतवर्षके प्राचीन इतिहासका बहुत कुछ सम्बन्ध संस्कृतभाषासे है क्योंकि देशके इतिहासका बहुत कुछ

पता उसकी भाषासे लगता है। आधुनिक विद्वानोंने सिद्ध किया है कि आज कल जितनी आर्यभाषाएं संसारमें प्रचलित हैं सबका सम्बन्ध संस्कृतसे है और भारतवर्षीय आर्योंकी मातृभाषा संस्कृत ही थी। प्रान्तीय प्राकृत भाषाएँ जैसे बँगला, हिन्दी, मरहठी, पंजाबी, सिन्धी, उड़िया, गुजराती, आसामी, उर्दू आदि भारतकी सभी भाषाओंकी माता संस्कृत है अतएव इस देशके इतिहासमें संस्कृतका इतिहास भी भली भांति मिश्रित है इसी कारणसे राजवंशादि तथा राज्यप्रबन्ध और प्रजादिकी अवस्थाके वर्णनके पीछे मैंने संस्कृतभाषाका भी एक संक्षिप्त इतिहास इस ग्रन्थमें पाठकोंके उपयोग और मनोरञ्जनके लिये जोड़ दिया है और आशा है कि पुस्तकका, यह भाग पाठकोंकी रुचिके प्रतिकूल न होगा।

संस्कृत भाषाका इतिहास लिखनेमें मैंने प्रधान दो भाग धार्मिक और काव्यग्रन्थोंके स्वेच्छासे किये हैं। इनमेंसे प्रथम धार्मिक भागमें तो मधुसूदनसरस्वतीकृत प्रस्थान-भेदका सहारा लिया गया है और इसका मुख्य कारण यही है कि इन पुस्तकों तथा इनके रचयिता लोगोंके समयका ठीक ठीक पता नहीं है। निदान प्रचलित दन्तकथाओंके अनुसार विषयविभाग किया गया है। दूसरे भागमें विशेषतः युरोपियन आदिके इतिहास लिखनेकी रीतिका इस कारण अवलम्बन किया गया है कि ग्रन्थों और कवियोंके समय निर्णय करनेके कुछ उपयोगी सूत्र और प्रमाणादिक मिल जाते है।

यहां उन पुस्तकों और सामग्रियोंकी सूची देना आवश्यक बोध होता है जिनके द्वारा हमें प्राचीन भारतके इतिहासकी थोड़ी बहुत बातें विदित होती हैं—

चारोंवेद—अर्थात् ऋक्, यजु, साम, अथर्व तथा उनके भाष्य, ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद आदि ग्रन्थ भाष्यादि समेत

ऐतिहासिक काव्य—रामायण वाल्मीकरचित, महाभारत वेदव्यास-विरचित तथा उनकी टीकाएं और भाषान्तर-में अनुवादादि

पुराण—अठारहों पुराण जिनमेंसे मुख्य करके श्रीमद्भागवत विष्णु, वायु, मत्स्य और ब्रह्माण्ड उपयोगी हैं। १८ उप-पुराण भी जैसे शिवपुराण देवीभागवत इत्यादि।

काव्यग्रन्थ—प्राचीन कवि कालिदासादिके रचे काव्य, नाटक और आख्यायिका इत्यादि तथा उनकी टीकाएं और भाषान्तरमें अनुवाद भी।

अशोकके लेख—बौद्ध राजा अशोकके पत्थरों, दीवारों और खम्भों आदिपर खुदाये हुए लेख और उनपर विचारालोचना आदि।

बौद्धग्रन्थ—बौद्धाचार्यों वा पण्डितोंके लिखे ग्रन्थ और उनके अनुवाद, उनपर आलोचना आदि।

चीनीयात्री—विशेष कर फाहियान और ह्वान्त्साङ्गकी भारत-यात्राका वर्णन, उनके अनुवादादि।

यवनोंके लेख—सिकन्दर आदिके साथियों वा यवन (ग्रीक) राजाओंके भेजे राजदूतादिकोंके लेख (विशेषतः मेगास्थनीज़के लेख)।

शिलालेखादि—भिन्न भिन्न राजाओंके समय समयपर खुदाये हुए शिला, ताम्रपत्र वा धातुके सिक्कोंपरके लेख।

जैनग्रन्थ—राजपूतों वा देशके और अधिकारी लोगों वा निज धर्मके विषयमें लिखी पुस्तकें।

हर्षचरित—बाणभट्ट विरचित- जिसमें विशेषतः कन्नौजके राजा हर्षवर्द्धनका वर्णन है।
राजतरङ्गिणी—कल्हणपण्डित रचित काश्मीरका इतिहास।
पृथ्वीराजरायसा—चन्दवरदाईरचित पृथ्वीराज चौहानका काव्यरूप इतिहास।
युरोपियन ग्रन्थ—प्राचीन भारतके विषयमें लिखे युरोपियनों-के ग्रन्थ इत्यादि।

भारतवर्षके प्राचीन इतिहाससरीखे ग्रन्थमें हाथ लगाना हमसे अल्पज्ञोंकी धृष्टतामात्र है परन्तु परम प्रिय मित्र बाबू पुरुषोत्तमदासजी टण्डन एम. ए. एलएल. बी. के बारंबार उत्साह दिलानेसे मुझे यह कार्य स्वीकार करना पड़ा है। मुझे भली भांति विदित है कि यह विषय परम गहन है और मुझसे अपने कर्त्तव्यपालनमें अनेक प्रकारकी त्रुटियां रह गयी हैं तथापि महानुभाव पाठकगण-से आशा की जाती है कि वे मेरे सद्भाव और सत्यान्वेषण-की ओर दृष्टि रखके छोटी मोटी भूलोंको क्षमा करेंगे और आवश्यकतानुसार भूलोंको सुधारके मुझे भी सचेत कर देंगे।

यह कहना निष्प्रयोजन है कि मैंने पुराणादि ग्रन्थोंकी बातें जैसीकी तैसी इतिहासरूपसे ग्रहण नहीं कर ली हैं परन्तु अनेक उपाख्यानोंको अपनीही बुद्धि और रुचिके अनुसार तोड़ मरोड़के वर्णन किया है सो केवल सत्यकी खोजके लिये दिग्दर्शनमात्र है। यद्यपि हमारी बुद्धि और रुचिके अनुकूल अनेक सिद्धान्त पीछेसे अपूर्ण अस्पष्ट वा अशुद्ध ही प्रतीत हों तथापि हम एक बातकी आशा करते हैं कि इस रीतिका अवलम्बन करनेसे आगे बहुत कुछ तथ्या-विष्कारका मार्ग सुगम होगा। ग्रन्थविस्तारके भयसे मैंने

स्थान स्थानपर पुराणों या अन्य ग्रन्थोंका यद्यपि नामोल्लेख नहीं किया है तथापि वे वर्णन इतने स्पष्ट प्रतीत होंगे कि प्रामाण्यके लिये कोई भी पुराण उठा लिया जाय तो मुख्य बातोंका पता लगानेमें कठिनाई नहीं पड़ेगी।

यदि इस पुस्तकको देखके किसी भी महानुभाव पाठकके चित्तमें यह भाव उदय हो जाय कि प्राचीन भारतवर्षके इतिहासको हमें युरोपियनोंके नेत्रोंद्वारा न देखके स्वयं प्राचीन संस्कृत ग्रन्थादिकी आलोचनादिद्वारा प्रवृत्त होना सत्य बातोंकी जांचके लिए परमावश्यक है तो मैं अपने इस क्षुद्र ग्रन्थके लिखनेके प्रयासको सफल समझूंगा।

बादशाहीमण्डी, प्रयाग
शुभ सं० १९७२ भाद्रशुक्ल १४ } हरिमङ्गल मिश्र

पहला अध्याय

भारतवर्षका भूगोल

जम्बू (एशिया) महाद्वीपकी दक्षिण ओर तीन बड़े बड़े प्रायद्वीप भारत महासागरमें फैले हुए देख पड़ते हैं। इनमेंसे बीचवाला प्रायद्वीप भारतवर्ष नामसे प्रसिद्ध है। प्राचीन कालमें यहां भरत नामक एक प्रसिद्ध राजा हो गये उन्हींके नामसे देशका नाम भी भरतखण्ड वा भारतवर्ष पड़ गया। इसी देशमें हिमालय नाम पर्वत है जिसकी सबसे ऊंची चोटी गौरीशङ्कर समुद्रके धरातलसे लगभग २९००२ फुट ऊपर उठी है। संसार भरमें इतना ऊँचा स्थान और कहीं भी नहीं है। यह हिमालय पर्वत उत्तरकी ओरसे भारतवर्षको घेरे है और इसी पर्वतकी श्रेणियां उत्तर-पूर्व तथा उत्तर-पश्चिमकी ओर फैलकर भारतकी प्राकृतिक सीमा बनती और बाहरके शत्रुओंको अनायास इस देशमें आनेसे रोकती हैं। इन पहाड़ी श्रेणियोंके बीचमें कई एक घाटियाँ हैं जिनमें से होकर अन्य देशोंके लोग प्राचीन कालमें यहां आये। अब इस देशके निवासियोंमें हिन्दू धर्म माननेवालोंकी संख्या अधिक होनेसे लोग इसे हिन्द, हिन्दुस्तान या इण्डिया भी कहते हैं। हिमालय पहाड़से दक्षिणकी ओर प्रायः दो सहस्र मीलतक यह देश फैला हुआ है। दक्षिणके प्रायद्वीपको उत्तरकी ओर छोड़ शेष तीनों ओरसे समुद्र घेरे हुए है। आजकल पश्चिमके समुद्रको अरब-सागर और पूर्वके समुद्रको बंगालकी खाड़ी कहते हैं।

देशके बीचोबीच विन्ध्याचल पर्वतकी श्रेणी भी दीवारकी नाईं पश्चिमसे पूर्वकी ओर चली गयी है और दक्षिणकी ऊँची भूमिको जो पश्चिमसे पूर्वकी ओर ढालू होती गयी है दोनों ओरसे पश्चिमीघाट और पूर्वीघाट नामक पर्वत श्रेणियां घेरे हुए हैं। इन पर्वत श्रेणियोंमेंसे अनेक नदियां निकलके भारतवर्षको सींचती और वहांकी भूमिको उपजाऊ बनाती हैं जिनमें हिमालयसे निकलनेवाली प्रसिद्ध नदियाँ गङ्गा, यमुना, घाघरा (सरयू), गोमती, ब्रह्मपुत्र, सिन्धु, झेलम (वितस्ता), चनाव (चन्द्रभागा), रावी, इरावती, व्यास (विपाशा) और सतलज (शतद्रु) हैं। विन्ध्याचलसे निकलनेवाली प्रसिद्ध नदी नर्मदा है। पूर्वी घाटसे निकलनेवाली प्रसिद्ध नदियाँ गोदावरी, कृष्णा और कावेरी हैं। इन नदियोंके किनारोंपर अनेक प्राचीन नगर और राजधानियां स्थापित हुई जिनमेंसे कई अबतक बड़ी बड़ी बस्तियोंके रूपमें वर्तमान हैं।

प्राकृतिक दशाके अनुसार भारतवर्षके तीन भाग किये जाते हैं। एक तो हिमालयपरका ऊँचा प्रदेश दूसरे हिमालय और विन्ध्याचलके बीचका मैदान और तीसरे दक्षिणका प्रायद्वीप। देशकी भूमि उपजाऊ होनेसे यहांकी बस्ती बहुत घनी है। लोगोंकी जीविका मुख्य करके खेती है। यहांके निवासी वाणिज्य कारीगरी आदि उद्यमोंको भी सर्वथा छोड़ नहीं बैठे हैं। अवस्था अनुकूल न होनेपर भी इनमें भी कुछ न कुछ परिश्रम करते रहते हैं। विद्या और धनकी उन्नति भी प्राचीन हिन्दुओंने बहुत कर ली थी। पर्वतोंपरका जलवायु शीतल, मैदानोंका शीतोष्ण और मरुस्थलोंका कुछ अधिक उष्ण है।

इस देशमें सभ्य और असभ्य दोनों प्रकारके निवासी पाये जाते हैं जिनके रहनसहन आचारव्यवहार आदिमें बड़ा भेद है। प्रान्तभेदसे बोली भी भिन्न भिन्न है। प्रायः सर्वत्र हिन्दूलोग संख्यामें और और धर्म माननेवालोंकी अपेक्षा अधिक हैं। मुसलमान जो इस देशमें पीछेसे आये हिन्दुओंकी अपेक्षा बहुत कम हैं। कुछ पारसी, जैन और ईसाई मतवाले भी यहां हैं।

आजकल भारतवर्षके बहुतसे भागमें आंग्लदेशका राज्य है। उनके अधीन कर देनेवाले देशी राजाओंका राज्य भी कई एक स्थानोंमें है। कुछ पहाड़ी भाग स्वतन्त्र भी हैं तथा कहीं कहीं यूरोपकी और और जातियोंका राज्य भी है। पूर्वमें ब्रह्मा देशसे ले कर पश्चिममें बलूचिस्तानतक सब देश आंग्ल-भारतमें गिना जाता है। संप्रति भारतवर्षके सम्राट महाराज पञ्चम जार्ज हैं। वे अपने *प्रतिनिधि अर्थात् वाइसरायके द्वारा* जिन्हें गवर्नर जनरल भी कहते हैं भारतवर्षका राज्यशासन करते हैं। इनके अधीन भारतवर्ष आजकल पन्द्रह सूबोंमें बाँटा गया है। प्रत्येक सूबा एक शास्ताके अधिकारमें रक्खा गया है जो उस सूबेका राज्यकार्य चलाता है। और जिन्हें छोटे बड़े प्रान्तानुसार गवर्नर, लेफ्टिनेंट गवर्नर या चीफ कमिश्नर कहते हैं। कर देनेवाले देशी राज्योंका भी प्रबन्ध देखनेके लिये अंगरेजी अफ़सर नियत किये गये हैं। बड़े बड़े राज्योंमें एकही अफ़सर नियत है जिसे रेज़ीडेण्ट कहते हैं और छोटे छोटे कई एक राज्योंकी इकट्ठा देख-रेख करनेवाला एक पोलिटिकल एजेण्ट रहता है।

भारतके पन्द्रहों सूबे निम्नलिखित अधिकारियोंके हाथमें सौंपे गये हैं—

सूबोंके नाम	अधिकारी
(१) मद्रास	गवर्नर
(२) बम्बई	
(३) बंगाल	
(४) बिहार-छोटा नागपुर-उड़ीसा	लेफ्टिनेण्ट गवर्नर
(५) संयुक्त प्रदेश आगरा व अवध	
(६) पंजाब	
(७) ब्रह्मदेश	
(८) मध्यप्रदेश और बरार	चीफ़ कमिश्नर
(९) सीमान्त पश्चिमोत्तर देश	
(१० ब्रिटिश बलूचिस्तान	
(११) आसाम	
(१२) अजमेर	
(१३) कुर्ग	
(१४) अण्डमन द्वीप समूह	
(१५) दिल्ली	

देशी राज्योंका विभाग इस रीतिसे है

कश्मीर	रेज़ीडण्ट
बड़ोदा	
हैदराबाद	
मैसूर	
राजपुताना एजेन्सी—जयपुर, जोधपुर आदि	पोलिटिकल एजेण्ट
सेण्ट्रल इण्डिया एजेन्सी—भूपाल ग्वालियर आदि	

भावलपुर, पटियाला, रामपुर, बनारस, गढ़वाल, त्रावङ्कोर आदि छोटी छोटी रियासतोंमेंसे जो जो आंग्ल राज्यके जिस सूबेमें पड़ती हैं उसी सूबेका सबसे बड़ा अफसर उनकी देखरेख करता है।

इनके अतिरिक्त नयपाल और भूटानकी देशी रियासतें स्वतन्त्र हैं। गोवा, डामन और ड्यू पुर्तगाल देशवालोंके अधिकारमें हैं। ऐसे ही फ़रासीसियोंका अधिकार भी भारतवर्षमें चन्द्रनगर, पाण्डिचरी, माही, यनावां और कारीकल नामक स्थानोंमें है।

भारतवर्ष बहुतसे छोटे छोटे राज्यों और देशोंमें बहुत पुराने समयसे बँटा चला आता है। कभी कभी कोई प्रबल चक्रवर्ती राजा सर्वत्र राज्य करता, नहीं तो प्रायः छोटे छोटे राजा स्वतन्त्र अपने अपने देशमें शासन करते और बहुधा एक दूसरेसे लड़ा झगड़ा करते थे। जिस क्रमसे भारतके भिन्न भिन्न देश और राज्य नियत हुए पुराणोंके आधारपर संक्षेपमें दिखलाये जाते हैं।

अति प्राचीनकालमें महाराज मनुने कोसलदेशमें अपना राज्य स्थापित करके अयोध्याको राजधानी बनाया।

(१) प्रायः इन्हींके समान समयमें बुधके पुत्र पुरूरवाने ब्रह्मावर्त्त देशमें राज्य स्थापित करके *प्रतिष्ठान अर्थात् प्रयागस्थ झूसीको अपनी राजधानी बनाया।

मनुके पुत्र सुधन्वाके तीन पुत्रोंने उत्कल (उड़ीसा), गया (गया और आस पासके देश अर्थात् छोटा नागपुर) और विनत नामका पश्चिममें गोमतीके तटपर कोई नगर बसाया।

---

*ब्रह्मावर्त्त प्राचीन कालमें उस प्रदेशका नाम था जो सरस्वती और दृषद्वती नामक दो नदियोंके बीचमें स्थित था। दृषद्वती नदीका आधुनिक नाम "घग्घर" है।

मनुके दूसरे पुत्र करूपने कारूप नाम देश बनाया जो मगधके पश्चिम और गङ्गा नदीके उत्तर-दक्षिण ओर था।

(२) मनुके पुत्र शर्यातिके पुत्रने दक्षिण-पश्चिमकी ओर आनर्त्त वा सौराष्ट्र देशका राज्य स्थापित किया और कुशस्थलीको अपनी राजधानी बनाया।

नेदिष्टके पुत्र (मनुके पौत्र) नाभागका राज्य उत्तरपूर्वकी ओर हुआ और इस वंशवालोंमेंसे विशाल नाम राजकुमारने पीछेसे वैशालिको जो आजकल बिहारमें बेसारके नामसे प्रसिद्ध है अपनी राजधानी बनाया।

मनुका राज्य उनके जेठ बेटे इक्ष्वाकुको मिला और वह कोसलके राजा हुए। इक्ष्वाकुके तीन पुत्रोंमेंसे जेठा विकुक्षि अयोध्याका राजा हुआ। द्वितीय पुत्र निमिने वैशालिके उत्तर मिथिलामें अपना राज्य स्थापित किया जिसकी राजधानीका नाम पीछे जनकपुर पड़ा। विदेह और तीरभुक्ति वा तिरहुत भी मिथिला देशहीके नामान्तर हैं। इक्ष्वाकुके तीसरे पुत्र दण्डकने दक्षिणकी ओर जाकर विन्ध्यपर्वतपर अपनी राजधानी बसायी और उधर दूरतक राज्य किया।

पुरूरवाके पुत्र आयु हुए। आयुके एक पुत्र क्षत्रवृद्ध नामक हुए इनकी सन्तानोंने पूर्वकी ओर बढ़के काशीमें अपना राज्य स्थापित किया। यह काशी या वाराणसी भारतवर्षके परम प्राचीन नगरोंमेंसे है और अबतक तीर्थ और व्यापार तथा संस्कृतविद्याका केन्द्रस्थल बना है। आयुके छोटे भाई अमावसुकी सन्तानोंमेंसे एक कुशाम्ब हुए जिनने प्रतिष्ठानके पश्चिम कौशाम्बीको अपनी राजधानी बनाया। पीछे यही राज्य कान्यकुब्ज देश कहलाया॥

आयुके पुत्र नहुषको अपने पितामह पुरूरवाका राज्य मिला और प्रतिष्ठान ही उसकी राजधानी रही होगी।

नहुषका पुत्र ययाति उसका उत्तराधिकारी हुआ। ययातिके पांच पुत्र हुए जिनमेंसे सबसे छोटे पुरुने प्रतिष्ठानमें अपने पिताका राज्य पाया और शेष पुत्रोंके वंशज भारतके भिन्न भिन्न भागोंमें फैल गये। ययातिके ज्येष्ठ पुत्र यदुकी सन्तानोंमेंसे सहस्रजित् नाम राजकुमारके वंशज हयहय क्षत्रियोंने मध्य भारतवर्षमें नर्मदाके तीरपर माहिष्मती नाम नगर बसाके उसे अपनी राजधानी बनाया। यदुके पुत्र क्रोष्टुकी सन्तानोंने विदर्भ, चेदि और शूरसेन आदि स्थानोंमें अपना राज्य फैलाया। चेदिकी राजधानी चँदेरी, विदर्भकी कुण्डिनपुर और शूरसेनकी मथुरा थी॥

मथुरा इसके पूर्व ही रामके छोटे भाई शत्रुघ्नके द्वारा बसायी जा चुकी थी। शत्रुघ्नने उसे अपने पुत्र शूरसेन* को सौंप दिया था इसी कारण कदाचित देशहीका नाम शूरसेन पड़ गया हो। पर पीछेसे किसी प्रकार यह राज्य शत्रुघ्नके वंशजोंके हाथसे निकलके क्रोष्टुकी सन्तानोंके हाथ आ गया होगा।

ययातिके द्वितीय पुत्र तुर्वसुकी सन्तानोंने भारतके उत्तर-पूर्वकी ओर अपना राज्य स्थापित किया पर उनकी विशेष वृद्धि नहीं होने पायी। ययातिके तृतीय पुत्र द्रुह्युकी सन्तान पश्चिमकी ओर गयी उनमेंसे एकने जिसका नाम गान्धार था गान्धार या कन्दहारको अपनी राजधानी बनाके अपना राज्य स्थापित किया। ययातिके चतुर्थ पुत्र अनुकी सन्तान भारतवर्षके भिन्न भिन्न भागोंमें बहुत दूर फैल गयी इस वंशमें उशीनर और तितिक्षु दो राजकुमार हुए जिनमेंसे उशीनरके पुत्र शिबिने पश्चिमी काशीको अर्थात् अटक बनारस-

---

* शत्रुघ्नके पुत्रोंका नाम रघुवंशमें–'सुबाहु' और 'शत्रुघाती' लिखा है, उनमेंसे सुबाहुकी राजधानी मथुरा थी। सम्पादक।

को अपनी राजधानी बनाया। शिविके पुत्रोंमेंसे सुवारने सिन्धुदेशके निकट सौवीरको, केकयने कश्मीरमें ककयको और मद्रने मद्रदेशको बसाके पश्चिमी भारतके भिन्न भिन्न भागोंमें राज किया। तितिक्षुकी सन्तानोंमेंसे अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सुह्न और पौण्ड्र आदिने पूर्व और दक्षिणको ओर हटके अपने अपने नये राज्य नियत किये। अगदेश वैशालिके दक्षिणपूर्व था और इसकी राजधानी चम्पा (भागलपुर) थी। बंगदेश वही है जिसे अब बगाल कहते हैं पर आजकल सुह्न और पौण्ड्र भी बंगालही में गिने जाते हैं। पौण्ड्रकी राजधानी गौड़ (वर्तमान पूर्व बङ्गाल) और सुह्नकी ताम्रलिप्ति (तमलूक) थी। कलिङ्गदेश उड़ीसा के भी दक्षिणकी ओर था और गोदावरीतीरपर राजमहेन्द्री उसकी राजधानी थी।

पुरुकी सन्तान परम्पराका राज्य बहुत दिनोंतक प्रतिष्ठानहीमें रहा पर पीछेसे इस वंशकी शाखाएं भी भारतवर्ष के भिन्न भिन्न स्थानोंमें फैल गयीं। पुरुवंशी दुष्यन्त के पुत्र भरतने तो * प्रतिष्ठानका राज्य पाया पर उसके पौत्रों अर्थात् कुरुनामके पुत्रोंने भारतके भिन्न भिन्न भागोंमें अपना राज्य स्थापित किया। कोलने तो कदाचित् कोल (अलीगढ़) में अपना राज्य स्थापित किया। पाण्ड्य चोल और केरल नाम राजकुमारोंने कलिङ्गदेशसे भी अधिक दक्षिणमें जाके अपने अपने नामसे नये नये देश बसाये और वहां राज्य किया। पाण्ड्यकी राजधानी मदुरा, चोलकी काञ्ची, और केरलकी

* महाभारत आदिपर्व अध्याय ४० में तथा अभिज्ञान शाकुन्तल ५वें अङ्क में दुष्यन्तकी राजधानी हस्तिनापुर लिखी है। भरतकी राजधानी भी हस्तिनापुर होना चाहिए। सम्पादक।

वाञ्ची थी। ये राज्य मुसलमानोंके भारतवर्षमें जम जानेके समयतक बने रहे थे।

दुष्यन्तके वंशजोंमें हस्ति नामक एक राजा हुआ जिसने प्रतिष्ठानको छोड़के उत्तर पश्चिमकी ओर गङ्गातीरपर हस्तिनापुरको जो वर्त्तमान मेरठके जिलेमें है अपनी राजधानी बनाया। हस्तिके पुत्र अजमीढ़के वंशजोंमेंसे एक सेनजित हुआ जिसने अवन्ती देशका राज्य स्थापित किया। इसी सेनजित्के वंशज समर नाम राजकुमारने काम्पिल्यको* जो आजकल आगरेके जिलेमें है अपनी राजधानी बनाया। अजमीढ़की दूसरी सन्तान परम्परामें हर्यश्व नाम जो राजकुमार हुआ उसने अपने पांच पुत्रोंके नामसे पाञ्चाल देशके दो भाग उत्तर पाञ्चाल और दक्षिण पाञ्चाल किये। उत्तर पाञ्चालकी राजधानी अहिच्छत्र और दक्षिणकी वही 'काम्पिल्य' हुई, जिसे समरने बसाया था। अजमीढ़के एक पुत्रका नाम ऋक्ष था। ऋक्षके पोते कुरुके नामसे कुरुक्षेत्र नामक स्थान प्रसिद्ध हुआ। कुरुके दो पुत्र हुए। एकका वंश हस्तिनापुरमें राज्य करता था और इसीके कुलमें कौरव पाण्डव आदि हुए जिनमेंसे पाण्डवोंने इन्द्रप्रस्थ बसाया जो आजकलकी दिल्लीके अंतर्गत है। कुरुके दूसरे पुत्रकी शाखामें राजा उपरिचर वसु हुए जिनकी सन्तानोंने चेदि नगरकोट वा चेदिमें मत्स्य वा बरारमें प्राग्ज्योतिष वा आसाम और मगध वा बिहार आदि भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें राज्य स्थापित किये इस रीतिसे चन्द्रवंशकी सन्तान धीरे धीरे समस्त भारतवर्षके अनेकों प्रदेशोंमें फैल गयी। जिससे अनेक अलग

---

* पाञ्चालोंकी राजधानी काम्पिल्यके विषयमें बहुतोंकी सम्मति है कि वह फर्रुखाबादके समीप थी अबतक वहा उसके खंडहर हैं जो कपिलाके नामसे प्रसिद्ध हैं। सम्पादक।

अलग राज्य हो गये। मगधराज जरासन्धके उपद्रवोंसे व्याकुल होके यदुवंशियोंने मथुरापुरीका परित्याग किया और आनर्त्त देशकी राजधानी कुशस्थलीमें चले गये और उसका नाम द्वारका रखके वहीं रहने लगे।

पुराणोंमें चन्द्रवंशके राजकुमारोंका जैसा विस्तार भारतवर्षके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें देखनेमें आता है वैसा सूर्यवंशका विस्तार नहीं मिलता। यद्यपि इस वंशके राजकुमारोंने भी कई एक नगर अवश्य बसाये और कहीं कहींपर नवीन राज्य भी स्थापित किये।

इक्ष्वाकुवंशी राजा श्रावस्तने श्रावस्ती नगरी बसायी जो पीछेसे बौद्धोंके समयमें कोसल देशकी राजधानी हो गयी थी। राजा मान्धाता एक परम प्रतापी और चक्रवर्त्ती राजा हुए उन्होंने मध्य भारतवर्षको विजय करके ओङ्कारमान्धाता नाम नगर बसाया। हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहिताश्वने रोहनक नाम नगर बसाया। रामचन्द्रके समयमें उनके पुत्रों और भतीजोंने भी नये नये नगर बसाये। † कुशने विन्ध्य पर्वतपर कुशावती बसायी और लवने उत्तरकी ओर शरावती बसायी जिसका राज्य पीछेसे कपिलवस्तुमें मिलगया। भरतके पुत्रोंने पश्चिम केकय और सिन्धु आदि देशोंको विजय किया। जेठे तक्षने तक्षशिला नामकी नगरी आधुनिक रावलपिण्डीके जिलेमें और छोटे पुष्कलने पुष्कलावती नामकी नगरी उसीके निकट बसायी। लक्ष्मणके पुत्र † अङ्गदने अङ्गदीय और चन्द्रकेतुने मल्लभूमि नाम पुरी बसायी। इन दोनों नगरोंका

† लव और कुशकी राजधानीके विषयमें किंवदन्ती है कि वर्तमान लाहौर और कसूर है। रघुवंशमें लक्ष्मणके पुत्रोंको कारापथका राजा लिखा है।

सम्पादक

ठीक ठीक पता तो नहीं लगता पर बौद्धोंके समयमें जो उत्तर पूर्वकी ओरके राजवंश चेदि और मल्ल नामके सुननेमें आते हैं, वे हों न हों येही हैं। शत्रुघ्नके पुत्रोंमेंसे शत्रुघातीने जिसका नामान्तर वायुपुराणमें शूरसेन लिखा है मथुरा बसायी जो पीछेसे यदुवंशियोंके हाथ चली गयी। दूसरे पुत्र सुबाहुने विदिशाको अपनी राजधानी बनाया। यह विदिशा मध्य भारतका वर्तमान भेलसा हैं जो वेत्रवती वेतवा नदीके तीरपर है और जो बौद्धोंके समयमें एक प्रसिद्ध और समृद्ध नगर था। यह विदिशा दशार्ण वा धसान देशकी राजधानी समझी जाती थी।

इक्ष्वाकुके पुत्र निमिकी सन्तानोंका राज्य तो सदा मिथिलापुरीहीमें रहता आया पर जब सीरध्वज जनक राजसिंहासनपर विराजमान थे साङ्काश्य पुरीके राजा सुधन्वाने बारंबार मिथिलापर चढ़ाई करके उन्हें व्याकुल किया। अन्तमें सीरध्वजने खिन्न होके एक गहरी लड़ाई लड़ी। राजा सुधन्वा मारा गया और जनकने अपने छोटे भाई कुशध्वजको सांकाश्यका राजा बना दिया।

इक्ष्वाकुके तृतीय पुत्र दण्डकने मध्य और दक्षिण भारतमें अपना राज्य स्थापित किया था पर वह कुचाली था अतएव निःसन्तान ही मरा। उसका राज्य उजड़ गया और बहुत दिनोंतक उस स्थानपर दण्डक वन बना रहा।

दूसरा अध्याय

भारतवर्षकी अनार्य जातियाँ

युरोपीय विद्वानोंका कथन है कि हिन्दुस्थानके सबसे प्राचीन निवासी अनार्य जातिके लोग हैं। सम्भव है कि अनार्य लोग पहले किसी दूसरे देशमें रहते रहे हों और पीछेसे यहां आये हों पर जहांतक पता लगता है ऐसा जान पड़ता है कि ये लोग बहुत पुराने समयमें भारतवर्षमें आके बस गये हैं।

युरोपीयोंका अनुमान है कि इन अनार्य जातियोंमेंसे कोल जातिके लोग सबसे अधिक पुराने हैं। ये लोग पहले उत्तरी और मध्य भारतके पहाड़ी भागोंमें निवास करते थे। पेड़ोंकी खोढ़रों या पहाड़ोंकी गुफाओंमें ही उनका घर था। ये लोग जङ्गलके फल मूल या अहेर के पशुओंका मांस खाके अपना जीवन बिताते थे। खेती करना नहीं जानते थे। अहेरके लिये पत्थर या हड्डीके आयुध बनाते थे। कोल जातिके लोगोंका स्वभाव सीधा सादा होता था, धीर, चतुर और प्रसन्नचित्त होते थे पर आलसी और सन्तोषी थे और भविष्यकी ओरसे निश्चित रहा करते थे। ये अबतक भारतवर्षमें पाये जाते हैं और इनकी मुख्य शाखा भील और संथाल हैं जो राजमहलकी पहाड़ियोंमें और छोटा नागपुर और उड़ीसामें बसते हैं। इन लोगोंकी संख्या प्रायः तीस लाख है और ये मुण्डा भाषा बोलते हैं जो बड़ी पुरानी भाषा समझी जाती है।

कुछ काल बीतनेपर एक दूसरी जातिके लोग भारतवर्षमें आये। ये भी अनार्य थे। यद्यपि कुछ लोगोंकी राय है कि ये उत्तर पश्चिमकी ओरसे भारतवर्षमें प्रविष्ट हुए तथापि अधिक सम्भव तो यही जान पड़ता है कि इस जातिके लोग दक्षिणकी ओरसे भारतवर्षमें आये। लोग इन्हें द्राविड़ कहते हैं। द्राविड़ लोगोंने लड़ाईमें कोलोंको हराकर पहाड़ों और जङ्गलोंमें भगा दिया और मैदानमें रहने लगे। ये लोग खेती और व्यापार करते तथा नगरों और गावोंमें बसते थे, सूती कपड़ा पहिनते, सोनेके गहनेसे शरीर सँवारते और तांबेके आयुध बनाके व्यवहार करते थे। भूमि, वृक्ष, सर्प आदिकी पूजा करते और अपने देवताओंसे डरते थे। आजकल भारतमें लगभग पांच करोड़ सत्तर लाख द्राविड़ बसते हैं। इनकी मुख्य शाखा खांड और गोंड है। ये लोग कमसे कम चौदह प्रकारकी भाषा बोलते हैं जिनमेंसे तामील, तेलंगी, कर्णाटकी, मलयाली और गोंडी सबसे अधिक प्रसिद्ध हैं।

कोल और द्राविड़ोंको छोड़के और भी एक अनार्य जाति मंगोल वा मुगल नामकी थी जो पिछले समयमें भारतवर्षमें आ घुसी थी, इस जातिके लोग चीनी तातार और मङ्गोलियाके आदिम निवासी हैं। भारतके उत्तर पूर्वकी ओर ब्रह्मपुत्र नदीकी घाटीसे होते हुए ये लोग इस देशमें आये और आसाम, बङ्गाल आदि सूबोंमें बस गये। इनके और भी भाई बन्धु इनके साथ चले थे पर वे तिब्बत और ब्रह्मदेशकी ओर चले गये। मङ्गोल जातिके लोग डील डौलमें पुष्ट और नाटे होते हैं। सिर चौड़ा, नाक चपटी, आंखें छोटी और तिरछी होती हैं। चमड़ेका रङ्ग पीला होता है।

मङ्गोल जाति कोल और द्राविड़की अपेक्षा अधिक बलवती और भयानक थी। इन अनार्य जातियोंमें अर्थात् कोल द्राविड़ और मङ्गोल लोगोंमें कुछ दिन तो परस्पर युद्ध हुआ किये पर पीछेसे सब आपसमें मिल जुलके इकट्ठा रहने लगे। मङ्गोल जातिके लोग आसाम, बङ्गाल और उड़ीसाको छोड़के भारतवर्षके शेष भागोंमें प्रायः नहीं बसे। आसाममें जो मङ्गोल रहते हैं वे आहम कहलाते हैं और उन्हीं लोगोंके कारण सूबेका नाम ही आसाम पड़ गया। ये लोग परिश्रमी और सत्यवादी थे। आजकल धीरे धीरे सबके साथ ये भी अपनी उन्नति करनेमें लगे हैं।

तीसरा अध्याय

आर्य जातिके लोग

युरोपीय विद्वान् कहते हैं कि आर्य जातिके लोग पहिले एशियाके उत्तर पश्चिम काकेशिया या काफ नाम देशमें और युरोपकी दक्षिण पूर्व ओर वालगा नदीके किनारे बसते थे। उस समय इस देशमें सिंचाई अच्छी होती थी और भूमि उपजाऊ थी। आर्य लोग वहां मांस तथा गेहूं और जौ खाते नगरोंमें बसते भेड़, बकरी, गाय, बैल आदि पालते थे। जीविकाका मुख्य अवलम्ब कृषि थी। सूत कातना, कपड़े बुनना, कांसेके हथियार आदि बनाना जानते थे। रङ्ग गोरा, सिर ऊंचा, शरीर सुन्दर और बलिष्ठ था। जब इनकी सन्तान बढ़ चली और अपने आदिम स्थानमें इनका निर्वाह न हो सका तो ये लोग दो भागोंमें बँटके पश्चिम और दक्षिणपूर्वकी ओर चल दिये। जो लोग पश्चिमकी ओर गये वे आजकलके युरोपियन लोगोंके अर्थात् अंगरेज, फरासीसी, यूनानी आदि जातियोंके पुरखा थे। जो लोग दक्षिणपूर्वकी ओर आये उनकी सन्तानमें ईरानी और हिन्दुस्तानी लोग हैं।

युरोपियन लोगोंकी ऊपर कही हुई रायको सब लोग स्वीकार नहीं करते और न हिन्दुओंके प्राचीन ग्रन्थोंमें अर्थात् वेदों, पुराणों आदिमें इस मतका पोषक कोई प्रमाण मिलता है। महाराष्ट्र देशके निवासी परम प्रसिद्ध विद्वान् पंडित बाल-गङ्गाधर तिलक महोदयकी कल्पना है कि आर्यलोग पहिले

उत्तरी समुद्रके तटपर उस देशमें रहते थे जिसे अब साइबीरिया कहते हैं और वहांसे दक्षिणकी ओर भारतवर्षमें आये, पर तिलक महोदयकी यह कल्पना भी सर्ववादिसम्मत नहीं है।

जो कुछ हो, इसका भी ठीक ठीक पता नहीं लगता कि आर्यजातिके लोग कबसे आके भारतवर्षमें बसे*। हिन्दुओंके परम प्राचीन ग्रन्थों अर्थात् वेदोंसे विदित होता है कि भारतमें अति प्राचीन कालसे आर्य लोग बसे हैं। बड़े बड़े विद्वानोंका सिद्धान्त है कि वेदोंमें कही हुई आर्योंकी सभ्यताका समय विक्रमसे लगभग २५०० वर्ष पूर्वसे ४५०० वर्ष पूर्वतकका है अथवा इससे भी अधिक प्राचीन होना सम्भव है। आर्योंके निवाससे भारतवर्षका भाग्य जाग उठा। आर्योंने जङ्गलोंको काटकर गांव और नगर बसाये। खेती, कारीगरी, व्यापार और विद्यामें बड़ी उन्नति की। अनार्य जातिवालोंसे लड़ना भिड़ना भी पड़ा। वीर आर्योंके सामने अनार्य जातिके लोग ठहर न सके। धीरे धीरे उत्तरी भारतमें सर्वत्र आर्योंका राज्य स्थापित हुआ। आर्योंने नर्मदा पार करके दक्षिणी भारतवर्षमें भी अपना राज्य स्थापित किया। जिन अनार्योंने अधीनता मान ली आर्योंके मित्र हो गये। शेष अनार्योंको मैदान छोड़ जङ्गलों और पहाड़ोंपर भाग जाना पड़ा।

आर्योंके विषयमें यह बात प्रसिद्ध है कि वे अनार्य जातिके लोगोंको समाजमें अपनी बराबरीका स्वीकार नहीं

---

* सुप्रसिद्ध वैदिक विद्वान् स्वामी दयानन्द सरस्वतीका मत है कि आर्यलोग कहीं बाहरसे आकर यहां नहीं बसे, वे यहांके सनातन निवासी हैं। और भी अनेक विद्वान् इस मतके पोषक हैं —सम्पादक।

करते थे। प्राचीन आर्योंने मनुष्य समाजको और तदर्थ भारतवर्षके निवासियोंको क्रमभेदसे चार भागोंमें वा वर्णोंमें बाँट दिया। जिन्होंने शास्त्र पढ़ा और धर्मके कार्योंमें मन लगाके सच्चरित्र हो अपना जीवन बिताया वे ब्राह्मण कहलाये। जिन लोगोंने अनार्य जातिके शत्रुओंको हराके देश-की रक्षा की और राज्य किया वे क्षत्रिय हुए। खेती, व्यापार, आदि करनेवाले वैश्यके नामसे प्रसिद्ध हुए और अनार्य जातिके लोग इनके अधीन हो गये और इनकी सेवा करने लगे उनकी गिनती शूद्रोंमें की गयी*। इस प्रकार चार वर्ण नियत हुए। इनमेंसे पहले तीनकी द्विजाति संज्ञा हुई और शूद्रोंसे ऊँचे माने गये। शूद्रोंको वेदोंके पढ़नेका अधिकार नहीं दिया गया।

द्विजाति अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य जातिके लोग आश्रमभेदसे चार भागोंमें बांटे गये थे। ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ, और संन्यास ये चार आश्रम हुए। बाल्यावस्था-में ब्रह्मचर्यव्रत धारण करके गुरुगृहमें बसके जो लोग वेदाध्ययन करते थे ब्रह्मचारी कहाये। विद्याध्ययनानन्तर विवाह करके स्त्री सहित जो घरमें रहता था गृहस्थ कहलाया। वानप्रस्थ वे कहलाते थे जो पुत्रोंके हाथमें घरका भार छोड़ स्त्री समेत वनमें रहते थे। संन्यासी वे थे जो सांसारिक प्रपञ्च छोड़ वैरागी हो जाते, भिक्षा मांगके जीविका निर्वाह करते और एकान्तमें रहके भगव-द्भजनमें जीवन बिताते थे।

---

* भारतके शूद्रोंकी गणना अनार्यजातिमें करना ऐतिहासिक अन्याय है, शूद्र आर्य जातिकी चतुर्थ श्रेणिके लोग हैं। वेदोंमें ब्राह्मण आदिके साथ ही शूद्रोंकी उत्पत्ति लिखी है, मनुने भी आर्योंके चातुर्वर्ण्यमें इनकी स्थापना की है। सम्पादक।

चारों जातियोंमें ब्राह्मण सबसे ऊंचे समझे गये क्योंकि वे यथोचित रीतिसे धर्मके सब नियमोंका पालन करते थे। उन्हें धन या सुखभोगकी इच्छा न थी, वे वेदोंके नियमानुसार धर्मकार्योंको निबाहते और पारलौकिक आनन्द प्राप्तिके यत्नमें लगे रहते थे। विद्या भी बड़े परिश्रमसे सीखते थे। उनके सदाचारसे प्रसन्न होकर और और जातिके लोग उनकी बड़ी प्रतिष्ठा करने लगे। ब्राह्मणलोग पृथ्वीके देवता कहलाये। कुछ क्षत्रिय राजाओंने भी ब्राह्मणोंकी नाईं विद्या प्राप्त की और अपनी सुचालके प्रभावसे ब्राह्मणोंकी नाईं आदरके पात्र बने।

चौथा अध्याय

आर्योंका राज्यप्रबन्ध और भारतके निवासी

प्राचीन आर्योंका धर्म वही था जो अबतक किसी न किसी रूपमें भारतवर्षके लोग मानते चले आ रहे हैं। आर्योंकी भाषा पहले संस्कृत और पीछे प्राकृत थी। घरमें पिता ही स्वामी माना जाता था। जैसे जैसे वंश बढ़े घर भी बढ़ चले। इस प्रकार गांवों और नगरोंके रूपमें आबादीकी जड़ जमी, विभक्त होकर एकही वंशवाले एक गोत्रके नामसे पुकारे जाने लगे। प्रत्येक गोत्रमें समय पाकर अनेक शाखाएँ उत्पन्न हुईं जिनमें परस्पर रीति व्यवहारका भेद भी आवश्यकतानुसार देख पड़ने लगा। जैसे घरभरका स्वामी और प्रबन्धकर्ता पिता था वैसे गांव नगर और देशके लिये भी एक स्वामी बनानेकी आवश्यकता प्रतीत हुई। इस स्वामीका कर्त्तव्य था कि सबके प्राण और धनकी रक्षा करे और लोगोंके परस्परके झगड़े मिटावे, देशके इस मुखियाके स्थानकी पूर्त्ति एक नियत वंशसे होने लगी अर्थात् देशके स्वामीका स्थान पितृपरम्परासे नियत होने लगा और इस प्रकार राजवंशकी जड़ पड़ी। राजा और उनके सम्बन्धी, क्षत्रिय जातिके बलिष्ठ लोगोंमेंसे चुने जाने लगे। राजा अपने क्षत्रिय सम्बन्धियोंके द्वारा गांव और नगरके निवासियोंकी रखवाली करता और परस्परके झगड़ोंको मिटा दिया करता था। राजाको उसके कार्यमें सहायता और सम्मति देनेवाले मन्त्री क्षत्रियोंके अतिरिक्त ब्राह्मण और वैश्य भी हुआ करते थे। ब्राह्मणोंको उनके

सदाचरण और विद्वत्ताद्वारा बड़ा आदर और सम्मान प्राप्त था। इस प्रकार ब्राह्मणोंका काम राजाको राज्य करनेकी रीति सिखाना और क्षत्रियोंका काम प्रजाकी रक्षाके लिये युद्धादि करना स्थिर हो गया।

इस रीतिसे जब लोग उन्नति करने लगे और जातिका विस्तार हो चला तो लोग राजाको महाराजा या महाराजाधिराज पुकारने लगे। प्रजापालन-व्यापारके काठिन्य और परोपकार-भावके गौरवको समझकर लोगोंने ब्राह्मणोंकी तरह उनकी भी प्रतिष्ठा की और उन्हें ईश्वरका एक अंश समझने लगे। लोगोंके मनमें यह विचार यहांतक दृढ़ हुआ कि वे राजाको मनुष्यरूपमें ईश्वर समझने लगे। राजाके कर्तव्य कर्मोंके नियम बने, और नीति तथा अर्थशास्त्र लिखे गये। प्रजापर विपत्ति पड़ना राजाके पापका परिणाम माना गया। राजाका धर्म था कि डाकू आदि आततायियोंके उपद्रवसे प्रजाको बचावे।

कृषि और व्यापारादिकी उन्नतिमें प्रजाका सहायक हो। अन्धे, लँगड़े, लूले, अनाथ आदिको भोजन दे। ताल, नहर आदिको खुदवाके प्रजाको जल मिलनेका उचित प्रबन्ध करे, इत्यादि। यदि अपराधीको दण्ड न दे या निरपराधीको दण्ड दे तो राजाको पाप लगता था। इस रीतिसे सिद्धान्त यह ठहरा कि—

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी। सो नृप अवसि नरक अधिकारी।

प्रजाका धर्म था कि अपनी आयका छठा भाग राजाको अपनी रक्षाके अर्थ अर्पण करे, यह धन कर या लगान कहलाया। करका उगाहना भी राजाका एक काम था।

भारतके निवासी

युरोपियनोंकी कल्पना है कि आधुनिक भारतवासियोंमें केवल काश्मीर, पञ्जाब और राजपूतानेमें आर्यजातिके लोग हैं। इनके अतिरिक्त अनार्य द्राविड़ जातिके लोग प्रायः समस्त भारतवर्षमें फैले हुए हैं। गङ्गा यमुनाकी घाटियोंमें और विहारादिमें आर्य तथा द्राविड़ जातिके लोगोंके मेलसे उत्पन्न आर्य-द्राविड़ जाति है। पश्चिमकी ओरसे आकर जो सीथियन लोग गुजरात, सिन्ध, बम्बई आदिमें बसे उनके और द्राविड़ोंके मेलसे उत्पन्न उस देशके वासी सभी सीथियन-द्राविड़ हैं। उत्तरपूर्वकी ओरसे मङ्गोल नाम अनार्य जातिने भारतमें प्रवेश किया अतएव नैपाल, भूटान और आसाम आदिमें उस जातिके लोग मिलते हैं। मङ्गोल और द्राविड़ोंके मेलसे बंगाल छोटानागपुर और उड़ीसाके निवासी मङ्गोल-द्राविड़ जातिके हैं। इसी प्रकार पञ्जाबके पश्चिम-प्रान्तके निवासी 'तुरुष्क' हैं और वे ईरानियोंके मेलसे उत्पन्न तुर्की-ईरानी जातिके हैं। इस प्रकार आर्यों, अनार्यों और और उन दोनोंके मेलसे आधुनिक भारतवासियोंकी शाखा सात प्रकारमें पायी जाती है। यह कल्पना मनुष्योंके आकार, रङ्ग डीलडौल आदिके आधारपर कही जाती है और प्रायः सभी युरोपियनोंने इस कल्पित सिद्धान्तको स्वीकार कर लिया है। इसके कहनेकी कुछ आवश्यकता नहीं जान पड़ती कि भारतवासी लोग इस सिद्धान्तसे किसी प्रकार सहमत नहीं हैं और अनेक विद्वानोंने दृढ़ युक्तियोंसे इसका खण्डन किया है। प्राचीन ग्रन्थोंमें इसका प्रमाण न मिलनेके कारण यह युरोपियनोंकी कल्पनामात्र है, विशुद्ध आर्यजातिपर सङ्करताका एक मिथ्या कलङ्क है।

ब्रह्माजीसे भृगु आदि महर्षि और नारद आदि देवर्षि उत्पन्न हुए। उनमेंसे मरीचि और अत्रिऋषि राजवंशके प्रवर्तक हुए। मरीचिके पुत्र कश्यप, कश्यपके पुत्र सूर्य और सूर्यके पुत्र मनु हुए। मनुने सरयू नदीके तटपर अयोध्यापुरी बसाके अपनी राजधानी बनायी। महाराज मनु पृथ्वीभरके राजाओंमें सबसे पहले शासक थे। इनके समयका ठीकठीक पता लगना दुर्घट दीखता है क्योंकि पुराणोंकी कालगणना ऐतिहासिक समयोंसे नितान्त भिन्न जान पड़ती है। पर कई विद्वानोंका अनुमान है कि भारतवर्षमें आर्योंकी सभ्यताका प्रारम्भ प्रायः विक्रमाब्दसे ४५०० वर्ष पूर्व हुआ होगा। अतएव यही समय महाराज मनुका मान लिया जा सकता है, पर ध्यान रहे कि यह अर्वाचीन लोगोंके मतके अनुकूल है और इसकी अपेक्षा और भी पुराना समय मनुका रहा हो तो बहुत सम्भव है। पुराणोंमें मनुकी बड़ी प्रशंसा लिखी है। यह आदर्श राजा थे, इन्होंने संसारमें सबसे पहले राजनीतिके नियम निर्माण किये, प्रजापालनकी रीति बतलायी। महाराज मनु बड़े विद्वान्, दयालु, शूर, धीर और दानी थे। लिखा है कि इनके समयमें भारतवर्षमें जलकी एक बड़ी बाढ़ आयी थी। इन्होंने एक मछलीको बड़े क्लेशसे बचाकर पाला था। उसी मछलीकी सहायतासे जलप्रलयकी दशामें नावपर बैठ हिमालयकी ऊंची शिखरपर पहुँचकर बचे थे। जलके घट जानेपर मनुने फिरसे राज्यको बसाया और प्रजापालन किया। मनुने आर्यजातिके व्यवहारके लिये मानव धर्मशास्त्रका भी निर्माण किया जिसके आधारपर संकलित मनुस्मृतिकी आजतक हिन्दुओंके बीचमें बड़ी प्रतिष्ठा है।

मनुके इक्ष्वाकु, नृग, धृष्ट, शर्याति, नरिष्यन्त, प्रांशु, नाभाग, नेदिष्ट, करूष, पृषध्र, और सुधन्वा आदि कई पुत्र हुए। जिनमेंसे मनुने अपने जेठे बेटे इक्ष्वाकुको अयोध्याका राजसिंहासन सौंपा। मनुके शेष पुत्रोंमेंसे कई एकने भारतके भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें राज्य स्थापित करके वहांपर अपना अपना राजवंश चलाया, पर इक्ष्वाकुका राजवंशही अयोध्यामें सबसे अधिक-प्रबल और प्रसिद्ध हुआ। पृषध्रने भूलसे अपने गुरुकी गौको मारडाला अतएव वह भारतवर्षसे निकाल दिया गया और उसकी सब सन्तान म्लेच्छ हो गयी। सुद्युम्नके उत्कल, गय और विनत नामक तीनों पुत्रोंने उड़ीसा, गया और विनतमें अपने अपने राज्य स्थापित किये। करूषकी सन्तानमें कारूष नामक प्रबल क्षत्रियोंकी जाति प्रसिद्ध है। नेदिष्टका पुत्र "नाभाग" वैश्य हो गया। उसकी सन्तानपरम्पराने वैशालि नाम नगर बसाकर निवास किया। यही वैशाली पीछेसे लिच्छवी वंशकी राजधानी रही और यहां बौद्धमतका बड़ा प्रचार हुआ। यही वैशालि आजकल "बेसाढ़" के नामसे प्रसिद्ध है, बिहार प्रान्तमें गण्डक नदीके बायें किनारेपर हाजीपुरसे १८ मील उत्तरकी ओर मुज़फ्फरपुरके जिलेमें वर्त्तमान है। शर्यातिके पुत्र आनर्त्तने उस स्थानपर अपना राज्य स्थापित किया जहां आजकल काठियावारका प्रायद्वीप है। इस देशका नाम भी आनर्त्त पड़ा, और कुशस्थली या द्वारका इसकी राजधानी हुई। धृष्टसे धार्ष्टक नाम क्षत्रियोंकी जाति संसारमें फैली। नाभागके पुत्र अम्बरीष एक परम प्रतापी, धर्मात्मा और भगवान् विष्णुके अनन्यभक्त राजा हुए। अत्रिके पुत्र दुर्वासा जो बड़े क्रोधी थे थोड़ीसी बातपर इनसे रुष्ट हो पड़े थे पर अन्तमें विष्णुभक्त राजाहीकी जीत हुई और दुर्वासाको उनसे

क्षमा माँगनी पड़ी। इन पुत्रोंको छोड़ मनुके और पुत्रोंके वंशके विषयमें कोई विशेष बात प्रसिद्ध नहीं।

महाराज मनुके इला नाम की एक कन्या भी थी। यही कन्या संसारमें चन्द्रवंशके क्षत्रियोंके वंशकी जननी हुई। महर्षि मरीचिके भाई अत्रिके पुत्रका नाम चन्द्र था। चन्द्रके पुत्र बुधका विवाह मनुकी बेटी इलासे हुआ। बुध और इलाके पुत्रका नाम पुरूरवा था। मनुने गङ्गा यमुनाके सङ्गमपर प्रयागके निकट प्रतिष्ठान नामक नगर बसाकर इलाके हाथ सौंप दिया। इलाने यह नगर अपने पुत्र पुरूरवाको दिया। पुरूरवाने प्रतिष्ठानको अपनी राजधानी बनाकर चन्द्रवंशी क्षत्रियोंका राज्य प्रतिष्ठित किया। इस वंशके राजालोग कई पीढ़ीतक इसी प्रतिष्ठानपुरमें राज्य करते रहे। प्रयागके समीप वर्त्तमान झूसी ही प्राचीन प्रतिष्ठान था।

मनुके ज्येष्ठ पुत्र इक्ष्वाकुने अयोध्यामें उत्तराधिकारी रूपसे राज्य किया। इक्ष्वाकुके अनेक पुत्र हुए जिनमेंसे तीन जेठोंके नाम विकुक्षि, निमि और दण्डक थे। विकुक्षिने इक्ष्वाकुके पीछे अयोध्याका राजसिंहासन प्राप्त किया। निमिने मिथिलापुरीमें अपना राज्य स्थापन किया। दण्डकने विन्ध्याचलकी दक्षिण ओर उस स्थानपर अपना राज्य स्थापित किया जहाँ पीछेसे ऋषियोंकी तपोभूमि दण्डकारण्य बन गयी। शकुनि इत्यादि और भी ९८ पुत्र इक्ष्वाकुके हुए थे जिनमेंसे ५० पुत्रोंने भारतके उत्तरी भागमें और ४८ पुत्रोंने दक्षिणदेशमें राज्य स्थापित करके प्रजाओंका पालन किया।

एक बार अष्टका श्राद्धके अवसरपर इक्ष्वाकुने अपने

ज्येष्ठ पुत्र विकुक्षिको आज्ञा दी कि श्राद्धमें अर्पण करनेके लिये जङ्गली पशुओंका मांस ले आओ। विकुक्षिने पिताकी आज्ञासे वनमें जाकर अनेक पशुओंका वध किया। आखेट करते करते थक गया। भूखसे व्याकुल राजकुमारने बिना विचारेही उन पशुओंमेंसे एक खरहेका मांस खा लिया। शेष पशुओंका मांस लाकर श्राद्धार्थ पिताको दिया। इक्ष्वाकुने पुरोहितको बुलाकर श्राद्धमें मांस चढ़ानेकी आज्ञा दी। पुरोहितको किसी प्रकार यह बात विदित हो गयी कि यह मांस राजकुमारका जूठा है अतएव उसने क्रोधपूर्वक राजासे कहा कि यह मांस श्राद्धमें अर्पण करनेके योग्य नहीं है क्योंकि दुष्ट राजकुमार इसे जूठा करके लाया है। खरहेका मांस खा जानेसे पुरोहितने राजकुमारका नाम 'शशाद' रख दिया। जब इक्ष्वाकुने देखा कि विकुक्षिने ऐसा दुराचरण किया कि जूठा मांस श्राद्धमें अर्पण करनेके लिये दिया तो अप्रसन्न होके राजकुमारको अपने देशसे निकाल दिया।

ऊपरके इतिहाससे विदित होता है कि हिन्दुओंमें श्राद्ध करनेकी विधि बहुत प्राचीन है। राजा लोग श्राद्धमें मांस भी अर्पण करते थे और श्राद्धादिमें जूठे पदार्थोंका अर्पण करना निषिद्ध था।

इक्ष्वाकुने बहुत दिनतक अयोध्यामें राज्य किया। उनके मरनेपर विकुक्षि वनसे लौट आया और राजा हुआ। विकुक्षिने धर्म और नीतिसे प्रजाका पालन किया और कई अश्वमेध यज्ञ किये।

विकुक्षिके परञ्जय नामक एक प्रबल प्रतापी वीर पुत्र उत्पन्न हुआ जिसने विकुक्षिके पीछे अयोध्याका राजसिंहासन पाया। उनदिनों भारतकी उत्तर ओर देव नामकी एक

जाति बसती थी। दक्षिण दिशाके रहनेवाले कृष्णकाय राक्षस जातिके लोग सदा उनपर चढ़ाई करके सताया करते थे। परंजयके राज्यकालमें भी एक बार राक्षसोंने देवोंपर चढ़ाई की। देवोंने जब राजा परंजयकी वीरताका समाचार सुना तो अयोध्यामें आये और राजासे प्रार्थना की कि हमलोगोंके सहायक बनकर आप राक्षसोंको हराइये राजा परंजय देवोंकी प्रार्थना मानकर सहायतार्थ पहुँचे। युद्धस्थलमें देवोंके राजाने आदरपूर्वक इन्हें अपने कन्धेपर बिठा लिया। लड़ाईमें राक्षसोंको हराकर परंजयने देवोंको सन्तुष्ट किया। विजयभूमिमें देवराजने सादर उन्हें अपने साथ हाथीपर बिठाया और बड़ा सत्कार किया। तबसे अयोध्याके राजाओं और देव जातिके लोगोंमें परस्पर बड़ा मेल हो गया।

परञ्जयसे छठी पीढ़ीमें श्रावस्त नाम राजा अयोध्यामें हुआ। इसने श्रावस्ती नामकी एक नयी नगरी बसायी। यही श्रावस्ती पीछेसे बौद्धोंके समयमें कोसल देशभरकी राजधानी हो गयी। यह नगर अब अयोध्यासे ५८ मील उत्तरकी ओर राप्ती नदीपर आधुनिक सहेत महेत के नामसे प्रसिद्ध है। गौतम बुद्ध बहुत दिनोंतक यहांपर रहे थे और अपने समकालीन राजा प्रसेनजित्‌को उन्होंने बौद्ध धर्ममें दीक्षित किया था।

श्रावस्तका पौत्र कुवलयाश्व भी एक पराक्रमी राजा हुआ। इसने उत्तङ्क ऋषिको पीड़ा पहुंचानेवाले धुन्धुनामक राक्षसको युद्धमें मारा था। तबसे लोग इन्हें 'धुन्धुमार' कहने लगे। कुवलयाश्वसे सातवीं पीढ़ीमें युवनाश्व नाम एक राजा हुआ। युवनाश्व चन्द्रवंशी राजा पूरुके वंशज मति-

नारका समसामयिक था। मह्लिनारने अपनी कन्या गौरीको अयोध्याके राजा युवनाश्वके हाथमें अर्पण किया। इन्हीं युवनाश्व और गौरीके पुत्र, मान्धाता अयोध्याके इक्ष्वाकु वंशी राजाओंमें एक बहुत बड़े प्रतापी और प्रसिद्ध राजा हो गये हैं।

पांचवां अध्याय

महाराज मान्धाता

सूर्यवंशमें अयोध्यापुरीके राजा मान्धाता चक्रवर्ती माने जाते थे। इनके प्रतापकी महिमा श्रवण करके दूर देशोंके दस्युगण भी कांप उठते थे। कोसल देशसे बाहर निकलके नर्मदा और यमुना आदि नदियोंके तटपरकी भूमि भी इन्होंने विजय करली थी। चन्द्रवंशी राजा ययातिके पुत्र द्रुह्युकी सन्तान इस समय पश्चिमी भारतमें प्रबल हो रही थी। उनके मुखिया अरुद्ध नाम राजाको मान्धाताने मारकर पश्चिम देश वासियोंको अपने बलका परिचय दिया। इसी अरुद्धके पुत्र गान्धारने पीछेसे गान्धार देश बसाकर अपना राज्य स्थापित किया। दस्युगणोंको कंपाते रहनेके कारण इनका नाम त्रसद्दस्यु भी हुआ था। अयोध्यापुरी इनके समयमें बड़ी समृद्धिशालिनी हो गयी थी।

महाराजा मान्धाताने ययातिके पुत्र यदुके वंशज, क्रोष्टु-की वंश परम्परामें उत्पन्न शशविन्दु नामक पराक्रमी राजाकी कन्या चैत्ररथीका पाणिग्रहण किया। कदाचित् शशविन्दु-हीकी सहायतासे मान्धाता मध्यभारतमें नर्मदा आदि नदियोंके तटपर अपना अधिकार जमा सके। राजपुतानामें 'हिन्ता' और 'ढुंढिया' नाम स्थानोंमें अबतक लोग त्रेतायु-गके राजा मान्धाताका नाम आदरसे स्मरण करते हैं। प्रसि-द्ध है कि ढुंढिया नामक स्थानपर महाराज मान्धाताने अश्वमेध यज्ञ किया और जब पुरोहितोंने भूमिदान लेना

अङ्गीकार न किया तब महाराजने विदाईके पानके बीड़ेमें भूमिदानका पत्र लिखकर उन्हें अर्पण कर दिया। इससे जाना जाता है कि लिखनेकी रीति हिन्दुओंमें बहुत प्राचीनकालसे प्रचलित है। ओङ्कार मान्धाता नाम नर्मदातीरका स्थान जो मध्यभारतमें है मान्धाताहीका बसाया हुआ प्रसिद्ध है। प्रतापगढ़के जिलेमें अबतक मान्धाता नाम एक छोटासा गांव विद्यमान है, जिसे सम्भवतः इन्हीं मान्धाताने बसाया होगा। मान्धाताका नाम ऋग्वेदसंहितामें भी देख पड़ता है।

मान्धाताने देवजातिको विजय करनेकी प्रवृत्ति भी प्रकट की थी, पर देवराजने उन्हें सम्मति दी की पहले यमुनानदीके तीरपर बसनेवाले राक्षसोंको तो अपने वशमें करलो, तब देवोंके विजयका उत्साह करना। देवराजके इस चक्रमेंमें आकर मान्धाताने यमुनातीरके मधुवन राक्षसोंपर चढ़ाई कर दी थी। राक्षस लोग बहुत प्रबल थे और शत्रुओंपर लोहेके त्रिशूलसे प्रहार किया करते थे। तत्कालीन राक्षसोंके राजाने त्रिशूलके प्रहारसे महाराज मान्धाताको आहत कर दिया और वह रणभूमिमें वीरगतिको प्राप्त हुए।

मान्धाताके तीन पुत्र पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचकुन्द हुए। पुरुकुत्स पिताके उत्तराधिकारी हुए। मान्धाताकी अनेक कन्याएं थीं जिन्हें महाराजने सौभरि नामके एक तपस्वी ऋषिको अर्पण कर दिया था। उन दिनों ब्राह्मणोंमें क्षत्रिय कन्याओंके पाणिग्रहणकी रीति प्रचलित थी।

पुरुकुत्स भी पिताके समान पराक्रमशाली राजा हुआ। इस समय भारतके उत्तरपश्चिम ओर रहनेवाली गन्धर्व

जातिने मध्यभारतके नागवंशियोंपर विजय करके अपने अधीन कर लिया था। नागवंशियोंने महाराज पुरुकुत्सकी शरण ली। पुरुकुत्सने युद्धमें जाकर बहुतसे गन्धर्वोंको मार डाला और नागवंशवालोंका राज्य फेर दिया। नागवंशवालोंने प्रसन्न होकर अपनी पुत्री नर्मदाका विवाह पुरुकुत्समे कर दिया। पुरुकुत्स और नर्मदासे एक कन्याका जन्म हुआ जिसका नाम पौरा था। इस समय कान्यकुब्ज देशकी राजधानी 'महोदय' में चन्द्रवंशी अमावसुकी सन्तानपरम्परामें उत्पन्न गाधि नामक राजा राज्य करते थे। पुरुकुत्सने अपनी कन्याका विवाह गाधिसे कर दिया। प्रसिद्ध राजर्षि विश्वामित्र इन्हीं महाराज गाधि और महारानी पौराकी सन्तान हैं।

नर्मदा रानीसे पुरुकुत्सके त्रसदस्यु नामका एक पुत्र भी उत्पन्न हुआ जो पुरुकुत्सके पीछे उनके राज्यका उत्तराधिकारी हुआ। त्रसदस्युका नाम ऋग्वेदसंहितामें भी मिलता है यह चन्द्रवंशी महाराज भरतके पुत्र अश्वमेधके समकालीन बतलाये जाते हैं।

त्रसदस्युके पौत्र महाराज अनरण्यको राक्षसोंके राजाने युद्धस्थलमें मार डाला।

अनरण्यके पोते महाराज 'हर्यश्व' जब अयोध्याके राजसिंहासनपर विराजमान थे विश्वामित्रके शिष्य गालव नाम ऋषि गुरुदक्षिणार्थ दोसौ श्यामकर्ण घोड़े मांगनेकेलिये आये। गालव ऋषिके पास एक युवती राजकन्या थी जो महाराज हर्यश्वको दी और बदलेमें २५० श्यामकर्ण घोड़े लिये। हर्यश्वको इस रानीसे वसुमना नामक एक पुत्र उत्पन्न हुआ। वसुमनाके पोतेका नाम त्रय्यारुण था। यह महाराज परम धर्मात्मा और सुपंडित थे।

गुरु तथा पुरोहितकी गौको वध करनेके कारण उसका नाम "त्रिशङ्कु" अर्थात् तीन दोषविशिष्ट रख दिया। जब विश्वामित्र यात्रासे लौट आये और अपनी पत्नी तथा पुत्रोंको अकालके समयमें भी सुखसे निर्वाह करते देखा और अपनी धर्मपत्नीसे राजकुमार सत्यव्रतके उदार आचरणका समाचार सुना तो वे उसपर अत्यन्त प्रसन्न हुए और उसे अनेक आशीर्वाद दिये।

राजा त्रय्यारुणके और कोई पुत्र न था। जब वे बूढ़े हुए तो राजकुमार सत्यव्रतके अपराधोंको क्षमा कर उन्होंने उसे वनसे बुला भेजा। सत्यव्रत अयोध्यामें लौट आया। त्रय्यारुणने उसका राज्याभिषेक बड़ी धूमधामसे किया और राज्यभार सौंपकर आप तपस्यार्थ किसी तपोवनमें चले गये। राजा बनकर भी सत्यव्रत अयोध्यामें भी त्रिशङ्कुहीके नामसे प्रसिद्ध हुए। महामुनि विश्वामित्र इनके उपकारका स्मरण करके सदैव इनके परम हितैषी सुहृद् बने रहे।

छठा अध्याय

हरिश्चन्द्र

महाराज त्रिशङ्कुके अनन्तर उनके पुत्र महाराज हरिश्चन्द्र अयोध्याके राजसिंहासनपर विराजमान हुए। इनकी पटरानीका नाम शैव्या था। जब महाराजको राज्य करते बहुत दिन बीत गये और एक भी पुत्र उत्पन्न न हुआ तो महाराजने अपने कुलपुरोहित वसिष्ठजीकी संमतिसे वरुणदेवकी पूजाकी और वर मांगा कि मेरे पुत्र हो। राजाने यह भी सङ्कल्प किया था कि मैं प्रथम पुत्रको वरुणहीके अर्पण कर दूँगा। हरिश्चन्द्रके एक पुत्र हुआ जिसका नाम रोहिताश्व रक्खा गया। पुत्रको कुछ सयाना हुआ देखकर एक दिन राजाने विचारा कि अब मैं वरुणको अपना पुत्र अर्पण करदूं। इधर जब रोहिताश्वको पता लगा कि पिता मुझे वरुणदेवको अर्पण किया चाहता है तो वह वनमें भाग गया। दैवात् राजाके पेटमें जलोदर रोगसे बड़ी पीड़ा उठी। ब्राह्मणोंकी संमतिसे किसी ब्राह्मणपुत्रको यज्ञमें वरुणके अर्पण करना निश्चित हुआ।

इस कामके लिये अजीगर्त नाम नृशंस ऋषिने शुनःशेप नामक अपने मध्यम पुत्रको महाराज हरिश्चन्द्रके हाथ बेच दिया। निदान हरिश्चन्द्रने यज्ञ किया और बलिदानार्थ शुनःशेपको (यूपखम्भेमें) बांध दिया। शुनःशेप मरणके भयसे आर्त्तनाद करके चिल्लाने लगा। इस यज्ञभूमिमें विश्वामित्र भी उपस्थित थे। उन्हें शुनःशेपपर करुणा आयी अतएव विश्वामित्रने शुनःशेपको वरुणकी प्रार्थना और स्तुति करनेका उपदेश दिया। इस स्तुति प्रार्थनासे वरुणका कठोर

हृदय पिघला, जिससे राजाके पेटकी पीड़ा भी शान्त हो गयी और शुनःशेपके प्राण भी बच गये। यज्ञक्रिया समाप्त की गयी। राजकुमार रोहिताश्व भी वनसे लौट आया और सुखपूर्वक पिताके साथ राजधानीमें रहने लगा।

महाराज हरिश्चन्द्र बड़े दानी थे। उन्होंने अपने पुरोहित वसिष्ठजीको धनधान्य आदिके दानसे परम सन्तुष्ट किया। एक दिन विश्वामित्रने वसिष्ठकी अत्यन्त श्रीसमृद्धि देखकर उनसे पूँछा कि इतनी सम्पत्ति तुम्हें कहांसे मिली। उत्तरमें वसिष्ठजीने महाराज हरिश्चन्द्रके दानकी बड़ी प्रशंसा की। यह सुनके विश्वामित्रके चित्तमें ईर्ष्या डाह उत्पन्न हुई। विचारा कि चलें हम भी राजा हरिश्चन्द्रसे कुछ दान मांगें और जब वह देनेपर उतारू हो तो उसका राजपाट सब सङ्कल्प करा लें। एक दिन आखेट खेलते हुए राजा किसी दुर्गम वनमें जा भटके। वहां महाराजकी विश्वामित्रसे भेंट हो गयी। विश्वामित्रने राजासे कुछ दान मांगा। राजाने कहा जो मांगो सो दें। विश्वामित्रने सब राजपाट सङ्कल्पमें और दक्षिणा ऊपरसे चाही। राजाने भी राजपाट और दक्षिणा देनेकी प्रतिज्ञाकी और अपनी राजधानीको लौट आये। कुछ दिन बीतनेपर विश्वामित्र अपनी दक्षिणा और दान किये राज्यको लेनेके लिये आ उपस्थित हुए। राजाने अपनी प्रतिज्ञानुसार सब राजपाट उन्हें सौंप दिया। ऋषिने अपनी दक्षिणा भी मांगी। राजाके पास और कुछ न था! पर बातके धनी थे। अपनी प्रतिज्ञा पूर्ण करनेके अर्थ महाराजने काशीपुरीमें जाके अपनी रानी शैव्या, राजकुमार रोहिताश्व और अपनेको भी बेंचके विश्वामित्रको यथेष्ट दक्षिणा दे दी। शैव्या तो काशीनिवासी किसी ब्राह्मणकी दासी हुई और राजा एक चाण्डालके हाथ बिके।

चाण्डालकी ओरसे राजाको यह आज्ञा मिली कि श्मशानपर रहके पहरा दो, जो मुर्दा जलाने आवे उससे कर वसूल करके तब मुर्देको जलाने दो। महाराज दासकी तरह धर्मपूर्वक अपना कार्य निवाहने लगे। इधर राजकुमार रोहिताश्व अपने स्वामीके लिये वनमें फूल बीनने जाया करता था कि एक दिन उसे साँपने काट खाया। रानी शैव्या (जो अब दासी हो गयी थी) अपने पुत्रके शवको लेके रोती कलपती श्मशानपर आयी और चाहती थी कि पुत्रकी अन्त्येष्टि क्रिया करे कि इतनेमें चाण्डालके दास बने हुए हरिश्चन्द्र महाराजने आकर उस स्थानपर शवकी, अन्त्येष्टि क्रियाका कर माँगा। रानीने बहुत विलख विलखकर अपनी दुर्दशाका इतिहास सुनाया और यह भी निवेदन किया कि शरीर ढकनेवाले वस्त्रखण्डको छोड़ और कुछ भी देने योग्य कर उसके पास नहीं। राजाने कहा जो कुछ हो, मुझे तो अपने स्वामीकी आज्ञा पूर्ण करनी है, उसका उल्लङ्घन करके मैं अधर्म न करूँगा। रानी शैव्या यह सब बात सुनकर परम व्याकुल हुई; पर धर्मका कार्य अनिवार्य समझ वस्त्रको फाड़नेपर उद्यत हुई, कि राजकुमारके शवमें फिर प्राण आ गये। राजारानीके धीरज और धर्मको देख देख लोग दंग रह गये। राजारानी दासत्वसे मुक्त किये गये। विश्वामित्रने हरिश्चन्द्रके पुत्र रोहिताश्वको अयोध्याका राज्य सौंप दिया और राजा हरिश्चन्द्र तथा रानी शैव्याको ज्ञानका उपदेश देकर सन्तुष्ट किया। रोहिताश्वहीका बनाया रोहतासगढ़ नामक दुर्ग प्रसिद्ध है।

रोहिताश्वसे छठी पीढ़ीमें बाहु नाम राजा हुए। जब ये बूढ़े हो गये तो इनके राज्यपर हैहय और तालजङ्घ नामक चन्द्रवंशी क्षत्रिय चढ़ आये। राजा बाहुसे कुछ करते न

एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह बालक बचपनमें बड़ा क्रूर था यहाँतक कि राजधानीके निवासियोंके पुत्रोंको सरयू नदीमें डुबा देता था। राजा सगर पुत्रके इस आचरणसे परम रुष्ट और खिन्न हुए। प्रजा लोगों और मन्त्रियोंकी संमतिसे राजाने असमञ्जसको राजधानीसे निकाल बाहर किया। असमञ्जसके पुत्रका नाम अंशुमान् था।

बन पड़ा। वह अपनी गर्भिणी पत्नी समेत वनमें भाग गये। बाहुके शत्रुओंने गर्भिणी राजपत्नीको विष खिला दिया। वनमें राजा जहाँ जाकर ठहरे थे वहाँपर और्व ऋषिका आश्रम था। वनका क्लेश न सह सकनेके कारण राजाका तो बुढ़ापेमें शरीरान्त हो गया पर और्व ऋषिने उनकी रानीको जो यदुवंशकी राजकुमारी थी सती होनेसे बरजा। यथासमय रानीने एक पुत्र प्रसव किया। और्व ऋषिने उसका नाम 'सगर' रक्खा क्योंकि गर्भावस्थामें उसे विष-गर-दिया गया था और माता समेत उसका पालन पोषण किया।

और्व ऋषिने स्वयं राजकुमार सगरके क्षत्रियोचित संस्कार किये और उपनयन होनेपर उन्हें वेद, शास्त्र और शस्त्रविद्या आदि सिखाकर परम शूर वीर और पराक्रमी बनाया। जब सगर सयाने और सामर्थ्यशाली हुए तो उन्होंने युद्धमें अपने पिताके शत्रु हैहय तालजङ्घ जातिके क्षत्रियों और उनके सहायक शक, यवन, काम्बोज, पारद, पल्हव आदि म्लेच्छ जातिके लोगोंको भी परास्त किया। सगरने प्रायः सभी हैहयोंको मार डाला, पर कुलपुरोहित वसिष्ठके द्वारा म्लेच्छोंने प्राणभिक्षा माँगी इसलिये वे प्राणदण्डसे तो बच गये पर उन्हें वेषविकारका दण्ड भोगनाही पड़ा। यवनोंके सिर मुँड़वा दिये। शकोंके बाल रखा दिये। पारद, पल्हव आदि जातियोंको मुछल्ले बने रहनेकी प्रतिज्ञा कराकर छोड़ा। इस प्रकारसे शत्रुओंको पराजित करके सगरने अपने पुरखोंका राजसिंहासन फिरसे पाया और चक्रवर्ती राजा बनके दूर दूरके देशोंतक अपना अधिकार फैलाया।

राजा सगरकी दो रानियाँ केशिनी और सुमति थीं। केशिनी विदर्भ देशके राजाकी पुत्री थी जिससे असमञ्जस नाम

एक पुत्र उत्पन्न हुआ। यह बालक बचपनमें बड़ा क्रूर था यहाँतक कि राजधानीके निवासियोंके पुत्रोंको सरयू नदीमें डुबा देता था। राजा सगर पुत्रके इस आचरणसे परम रुष्ट और खिन्न हुए। प्रजा लोगों और मन्त्रियोंकी संमतिसे राजाने असमञ्जसको राजधानीसे निकाल बाहर किया। असमञ्जसके पुत्रका नाम अंशुमान् था।

राजा सगरकी दूसरी रानी सुमतिके कई एक पुत्र हुए। सगरने अश्वमेध यज्ञ किया। देवोंके राजाने डाहसे इस यज्ञके घोड़ेको चुरा लिया और उत्तर दिशामें कपिल ऋषिके आश्रमके पास छिपकर किसी वृक्षमें बांध दिया। सुमतिके पुत्रोंने घोड़ेको जहां तहां ढूँढ़ा। भूमि खोद खोदकर समुद्रका पाट भी बढ़ा दिया। अन्तमें उत्तर दिशामें जब कपिलके आश्रमपर गये तो घोड़ा देख पड़ा। कपिलको ऋषिके वेषमें चोर समझ राजकुमारोंने बहुत कटुवचन सुनाये यहांतक कि ऋषिकी क्रोधाग्नि धधक उठी जिसमें पड़कर सब राजकुमार भस्म हो गये। सगरका एक भी राजकुमार राजधानीको लौट न सका।

अन्तमें सगरने अंशुमानूको घोड़ेकी खोजमें भेजा। यह भी ढूंढ़ने भालते कपिलके आश्रमपर पहुँचे जहां यज्ञका घोड़ा भी मिला, पर अपने सब पितृव्योंको वहीं मृत पड़े हुए देख अंशुमानूको बड़ा शोक हुआ, घोड़ेको ले पितामहके पास उपस्थित हुए और पितृव्योंकी दशा कह सुनायी। सगरने जैसे तैसे यज्ञ समाप्त किया।

सगरके पीछे अंशुमान् अपने पितामहके राजसिंहासनपर बैठे और अपने चित्तमें यह सङ्कल्प किया कि कुछ प्रयत्न ऐसा करना चाहिये जिससे पितृव्योंकी सद्गति हो। इस लिये गङ्गाकी पवित्र जलधाराको मैदानमें यहां लानेकी

सातवां अध्याय

राजा नल

चन्द्रवंशी राजा, ययातिके कनिष्ठ पुत्र पुरुकी शाखामें निषध नाम एक राजकुमार उत्पन्न हुए। इन्होंने निषध देश बसाकर वहाँपर अपना राज्य स्थापित किया। कुछ लोगोंकी संमति है कि यह निषध देश आधुनिक नरवर (कदाचित् नलपुरका अपभ्रंश) है जो सिन्ध नदी (यमुनाकी सहायक) के किनारेपर ग्वालियरसे ४० मील नैर्ऋत्य-कोणकी ओर है। दूसरे कहते हैं कि अफग़ानिस्तानमें हिन्दूकुशके पश्चिम जो परोपामिससकी श्रेणी है वही 'पर्वतोपनिषध' का अपभ्रंश है और वहाँपर प्राचीन निषध देश रहा होगा।

निषध देशके राजा वीरसेनके दो पुत्र नल और पुष्कर नामक थे। इनमें नल जेठे थे, यह परम पराक्रमी, धर्मात्मा, भगवद्भक्त, विद्वान्, बुद्धिमान् और आदर्श सुन्दर थे। विदर्भ देशके राजा भीमकी कन्या दमयन्ती परम सुन्दरी थी। राजाभीमने दमयन्तीका स्वयंवर किया। राजानल दमयन्तीके रूप लावण्यका समाचार पहिलेसे सुन चुके थे अतएव विवाहकी अभिलाषासे वे विदर्भ देशमें गये। दमयन्ती भी नलके गुणोंका वर्णन सुनकर उनपर अनुरक्त हो गयी थी। स्वयंवरमें दमयन्तीने नलहीको अपना वर चुना। राजाभीमने विधिपूर्वक विवाह करके नलके हाथमें दमयन्तीको अर्पण कर दिया। राजानल विवाह करके सपत्नीक अपने घर लौट आये। बारह वर्षतक दम्पतीने बड़े सुखसे अपने दिन बिताये। नलको दमयन्तीसे एक पुत्र और एक कन्या हुई।

चेष्टामें लगे। अपने पुत्र दिलीपको अयोध्याका राजसिंहासन सौंप अंशुमान् वनमें चले गये। दिलीपका चित्त भी राज्यमें न लगा। यह तथा इनके पुत्र भगीरथ दोनों गङ्गाकी जलधाराको मैदानमें बहा लानेकी चेष्टा करने लगे। अन्तमें भगीरथ सफल हुए। गङ्गाकी पवित्र धारा मैदानमें बह निकली और सगरके पुत्रोंका उद्धार करती हुई समुद्रमें जा मिली। हिन्दुओंका विश्वास है कि गङ्गाजलके स्पर्शसे सगरके पुत्रोंकी परलोकमें सद्गति हुई।

भगीरथसे छठी पीढ़ीमें ऋतुपर्ण नाम राजा अयोध्याके राज्यासनपर बैठे। ये जुआ खेलनेमें बड़ेही निपुण थे। विदर्भ देशके राजा भीम और निषध देशके राजा नल इनके समकालीन थे। यह ऋतुपर्ण राजा नलके परम मित्र थे। यहाँपर राजानलका इतिहास संक्षेपमें लिखा जाता है।

सातवाँ अध्याय

राजा नल

चन्द्रवंशी राजा, ययातिके कनिष्ठ पुत्र पुरुकी शाखामें निषध नाम एक राजकुमार उत्पन्न हुए। इन्होंने निषध देश बसाकर वहींपर अपना राज्य स्थापित किया। कुछ लोगोंकी संमति है कि यह निषध देश आधुनिक नरवर (कदाचित् नलपुरका अपभ्रंश) है जो सिन्ध नदी (यमुनाकी सहायक) के किनारेपर ग्वालियरसे ४० मील नैर्ऋत्य-कोणकी ओर है। दूसरे कहते हैं कि अफ़ग़ानिस्तानमें हिन्दूकुशके पश्चिम जो पैरोपामिसस्की श्रेणी है वही 'पर्वतोपनिषध'का अपभ्रंश है और वहींपर प्राचीन निषध देश रहा होगा।

निषध देशके राजा वीरसेनके दो पुत्र नल और पुष्कर, नामक थे। इनमें नल जेठे थे, यह परम पराक्रमी, धर्मात्मा, भगवद्भक्त, विद्वान्, बुद्धिमान् और आदर्श सुन्दर थे। विदर्भ देशके राजा भीमकी कन्या दमयन्ती परम सुन्दरी थी। राजाभीमने दमयन्तीका स्वयंवर किया। राजानल दमयन्तीके रूप लावण्यका समाचार पहिलेसे सुन चुके थे अतएव विवाहकी अभिलाषासे वे विदर्भ देशमें गये। दमयन्ती भी नलके गुणोंका वर्णन सुनकर उनपर अनुरक्त हो गयी थी। स्वयंवरमें दमयन्तीने नलहीको अपना वर चुना। राजाभीमने विधिपूर्वक विवाह करके नलके हाथमें दमयन्तीको अर्पण कर दिया। राजानल विवाह करके सपत्नीक अपने घर लौट आये। बारह वर्षतक दम्पतीने बड़े सुखसे अपने दिन बिताये। नलको दमयन्तीसे एक पुत्र और एक कन्या हुई।

एक दिन राजानलके छोटे भाई पुष्करने महाराज नलको अपने साथ जुआ खेलनेके लिये ललकारा। नलने भी उस समय की राजनीतिके विचारसे नहीं न किया। पुष्करके साथ जुवा खेलने लगे। अभाग्यवश नल वारंवार पुष्करसे द्यूतमें हारने और अपनी संपत्ति खोने लगे। दमयन्तीने बहुत चाहा कि नल अब और जुआ न खेलें पर वहाँ कौन सुनता था। अन्तमें नल अपना सर्वस्व खो बैठे। राज, पाट, धन, धाम कुछ भी न बचा। दमयन्तीने निराश हो अपनी सन्तानको विदर्भ देशमें अपने पिता भीमके यहाँ भेज दिया और आप नलके साथ सब दुःख सहनेको तत्पर हुई। पुष्करने बहुत चाहा कि नल जुवेके दाँवमें दमयन्तीको भी हार जाते तो अच्छा होता। पर नलने दमयन्तीको दाँवपर न रक्खा। पुष्करने राजानलको दमयन्ती समेत अपने राज्यसे निकाल दिया और नगरमें डुग्गी पिटवादी कि कोई नलको अपने यहाँ शरण न दे। राजानलको तीन दिन विना खाये पीये बीत गये। चौथे दिन महाराजने वनमें पहुंच दमयन्ती समेत कन्द मूल फल खाकर समय बिताया। राजानलने दमयन्तीको बहुत समझाया कि तू अपने पिताके घर जा रह, पर दमयन्तीको यह न रुचा कि पतिको अकेले वनमें छोड दे। निदान एक दिन दमयन्तीको अकेली सोती छोड़ चलनेका मनमें विचारकर (कि इस दशामें यह अपने पिताके यहाँ जा रहेगी) नल चुपकेसे अयोध्यापुरीकी ओर चले आये और अपना वेष और नाम बदलकर बाहुक नामसे राजा ऋतुपर्णके सारथि बनकर दिन काटने लगे। नलका नाम तो राजा ऋतुपर्ण आदि सभी अयोध्यानिवासी जानते थे पर इस नये नाम और रूपमें उन्हें किसीने न पहचाना।

उधर जब दमयन्तीकी नींद खुली और उसने राजानलको

न पाया तो रोती कलपती उन्हें ढूँढ़ती पागल सरीखी वनमें घूमने लगी। एक अजगर दमयन्तीको निगलना चाहता था कि उसके चिल्लानेकी आहट पाय कोई व्याधा वहांपर आ पहुंचा जिसने अजगरको मारके दमयन्तीको बचा लिया। दुष्ट व्याध दमयन्तीपर अपना जाल डालनाही चाहता था कि दैववशात् वह तत्क्षण मर गया। सती दमयन्ती बच गयी।

वनमें घूमते घूमते दमयन्तीको यात्रियोंका एक झुंड मिला उनके साथ दमयन्ती चेदि देशकी ओर जा रही थी कि रात्रिमें जङ्गली हाथियोंके झुण्डने अकस्मात् सोते हुए यात्रियोंको रौंदना और चीरना फाड़ना आरम्भ कर दिया। इस आपत्तिसे भी किसी प्रकार दमयन्ती वहांसे भी बच निकली और वह भूलती भटकती किसी तरह चेदिराजके नगरमें जा पहुंची। राजमन्दिरसे चेदिराजकी माताने दमयन्तीको देख पाया और दयाकर अपने यहां बुलाकर उसे सत्कारपूर्वक रक्खा। जब राजा भीमको यह समाचार मिला कि राजा नल दमयन्ती समेत अपने राज्यसे निकाल दिये गये हैं और वनमें कहीं भटकते फिरते हैं तो उसने अपने विश्वसनीय पुरुष नल और दमयन्तीका पता लगानेके लिये भेजे। सुदेव नामक एक ब्राह्मण जो दमयन्तीको पहचानता था चेदि नगरमें पहुँचा उसने राजमहलमें दमयन्तीको देखा और पहिचान लिया। चेदिराजकी माता दमयन्तीकी मौसी लगती थी। उसका पिता सुदामा दशार्ण देशका राजा था। सुदामाकी दो कन्याएं थीं एक विदर्भ देशके राजा भीमको और दूसरी चेदिराज वीरबाहुको बिवाही थी। जब सुदेव ब्राह्मणके द्वारा इन सब बातोंका पता लगा तो चेदिराजकी माताने बड़े आदर

सत्कारके साथ दमयन्तीको उसके नैहरमें भेज दिया। दमयन्ती अपने पिताके घर रहने लगी। दमयन्तीने अपने माता पितासे कह फिर कई एक विश्वस्त ब्राह्मणोंको नलकी खोजमें भेजा। कुछ दिन बीतनेपर पर्णाद नाम ब्राह्मण यह सन्देश लाया कि अयोध्यापुरीके राजा ऋतुपर्णका सारथि बाहुक नामक मनुष्य है यह दमयन्तीका इतिहास सुनकर रो पड़ा। इस समाचारको सुन दमयन्तीको निश्चय हो गया कि हो न हो यही बाहुक नल हो।

नलको बुला भेजनेके लिये दमयन्तीकी सम्मतिसे भीमने यह चतुराईकी कि सुदेव ब्राह्मणके द्वारा ऋतुपर्णको अतिशीघ्र विदर्भ देशमें बुला भेजा और यह सन्देशा भेजा कि दमयन्तीका दूसरा स्वयंवर होने वाला है अतएव शीघ्र शीघ्र आइये। ऋतुपर्णको बड़ाही कौतूहल और आश्चर्य हुआ, उसे शीघ्र विदर्भ पहुँचनेकी व्याकुलताने घेरा। बाहुकने उन्हें धीरज दिलाया और अतिशीघ्र अयोध्यासे रथपर बैठाकर विदर्भ देशको ले आया। सारथिविद्यामें नल अद्वितीय थे, ऋतुपर्णने देखा कि दमयन्तीके स्वयंवरका कुछ भी सामान नहीं है सो उसे और भी अधिक अचरज हुआ, इधर दमयन्तीने अपनी दासी केशिनीको और उसके साथ अपने बेटा बेटीको भेजकर गुप्त रीतिसे इस बातकी जांचकी कि वह नल ही है वा और कोई। बाहुक, अपने बेटा बेटीको देख आंसू न रोक सका। दमयन्तीको पूरी प्रतीति हो गयी कि यही नल है। दमयन्तीने उनसे भेंट करके यह बात प्रकटकी कि दूसरे स्वयंवरकी बात मिथ्या थी यह केवल नलके बुलानेका बहाना था। ऋतुपर्ण और भीम राजा नलको पाकर परम प्रसन्न हुए। ऋतुपर्णने नलको जुआ खेलनेकी कला सिखला दी।

कुछ दिन विदर्भमें रहकर नल फिर निषध देशमें पुष्करके पास गये और दमयन्तीको भी दांवपर रखकर जुवा खेलनेकी बात चलायी। पुष्कर तुरन्त जुवा खेलनेके लिये प्रस्तुत हो गया। इस बार नलकी जीत हुई। नलने फिरसे अपना राज पाट धन धाम सब कुछ पाया। अपने भाई पुष्करके साथ निष्ठुरताका बर्त्ताव नहीं किया। उसे बहुत कुछ समझा बुझाके और किसी स्थानका राजा बनाकर अपने यहांसे बिदा किया। नलने अपना राज्य फिरसे पाकर विदर्भ देशसे अपनी रानी दमयन्ती और बेटे बेटियोंको फिर अपनी राजधानीमें बुला लिया और बहुत वर्षोंतक सुखपूर्वक राज्य करते रहे।

महाराज ऋतुपर्णने राजा नलसे अतिशीघ्र रथ चलानेकी विद्या सीखली थी। ऋतुपर्ण और नलकी मित्रता संसारमें सदाके लिये प्रसिद्ध हो गयी।

ऋतुपर्णको परपोता मित्रसह भी अपने समयमें अयोध्याका एक प्रसिद्ध और प्रतापी राजा हुआ। इसकी रानीका नाम मदयन्ती था। राजा मित्रसह एक बार आखेट करते वनमें चले गये जहाँ इनसे दक्षिण देशकी रहनेवाली काले चमड़ेकी राक्षस नामकी जातिके किसी शत्रुसे मुकाबला हुआ। राजाने उसपर प्रहार किया। राक्षस घायल हो बच निकला। उसने राजासे वैर बांधा। एक दिन यज्ञके अवसरपर ब्राह्मणोंको भोजन कराती बेर वह राक्षस रसोइयाके भेषमें राजाके रसोई घरमें पैठ गया और उसने भोज्य पदार्थोंमें मनुष्यका मांस मिला दिया। राजाके पुरोहित वसिष्ठजीको जब यह बात विदित हुई तो उन्होंने राजासे अप्रसन्न हो बहुत धिक्कारा, कहा कि राक्षस सरीखा आचरण करनेसे तुम भी राक्षस हो। जबतक तुम अयो-

ध्यामें रहोगे मैं तुम्हें किसी प्रकारकी सहायता न दूंगा। राजा मित्रसह उदास होकर नगरसे बाहर निकल गय और राक्षसोंके बीच जा बसे।

मित्रसहका पोता मूलक बड़ा दुर्बल राजा था। इस समय परशुराम क्षत्रियोंसे लड़कर उनका विनाश कर रहे थे। मूलकका समाचार सुन वे अयोध्यापर चढ़ आये। मूलकको लड़नेकी कौन कहे भागनेकी सूझी बेचारा रनिवासमें भागके जा छिपा। नङ्गी स्त्रियोंने उसे चारों ओरसे घेर लिया। परशुरामने नङ्गी स्त्रियोंके मध्य घुसना अधर्म समझ उसके प्राण छोड़ दिये।

मूलककी चौथी पीढ़ीमें खट्वाङ्ग नामक राजा हुए। यह परम पराक्रमी थे। इनके समयमें फिर देवताओं और राक्षसोंमें परस्पर युद्ध छिड़ गया और देवराजने इनसे सहायता मांगी। महाराज खट्वाङ्गकी सहायतासे राक्षसोंकी हार हुई और उन्हें देवताओंसे दबना पड़ा।

खट्वाङ्गके पुत्र द्वितीय महाराज दिलीप भी बड़े प्रतापी और धर्मात्मा थे। बहुत दिन राज्य करनेके पीछे जब पुत्र न हुआ तो कुलगुरुवसिष्ठकी संमतिसे धर्मपत्नी समेत वनमें रहकर गोसेवाकी। दिलीपकी पटरानी सुदक्षिणा मगधदेशके राजाकी कन्या थी। जगदीश्वरकी कृपासे राजाके एक पुत्र हुआ जिसका नाम रघु रक्खा गया। जब रघु सयाने हुए तो राजा दिलीपने उन्हें युवराज बना दिया। अपने पुत्रको घोड़ेकी रक्षार्थ नियुक्त करके राजा दिलीपने ९९ अश्वमेध यज्ञ बिना विघ्नके कर डाले। एक बार फिर दिलीपने यज्ञका घोड़ा छोड़ा उसे इस बार देवराजने पकड़ लिया। राजकुमार रघु देवराजसे भी लड़ पड़े। इनकी वीरता देख देवराज बहुत प्रसन्न हुए।

घरमें उन्हें अपना पति स्वीकार कर उनके गलेमें जयमाला डाल दी। रघुके पीछे महाराज अजने अनेक वर्षतक अयोध्यामें राज्य किया। रानी इन्दुमतीके देहान्तानन्तर महाराज अजने अपने मन्त्रियों तथा राजकुमार दशरथके हाथ राज्यभार सौंप तीर्थ स्थानमें जा निवास किया। रानीके मरनेके ८ वर्ष पीछे राजा भी परलोक सिधारे।

दशरथ

महाराज दशरथने राजसिंहासनपर बैठकर (दक्षिण) कोसल देशके राजा भानुमान्‌की कन्या कौसल्याका पाणिग्रहण किया और उसको अपनी पटरानी बनाया। मगध देशके राजाकी कन्या सुमित्रासे भी राजा दशरथने विवाह किया। राजा दशरथके राज्यकालमें केकय देशमें चन्द्रवंशी राजा अश्वपति राज्य करते थे। अश्वपतिके पुत्रका नाम युधाजित था। अश्वपतिके एक परम सुन्दरी और गुणवती कन्या थी। इस कन्याके रूप और गुणका समाचार महाराज दशरथके कानोंतक पहुंचा और उनके चित्तमें इस कन्याके पाणिग्रहणकी अभिलाषा उत्पन्न हुई। जब राजा अश्वपतिने देखा कि अयोध्याके महाराज उनकी कन्याका पाणिग्रहण करना चाहते हैं तो उन्होंने इस सम्बन्धसे अपनेको धन्य समझा और आदरपूर्वक कन्याको दशरथके हाथ समर्पण कर दिया। इसका नाम केकयी था। राजा दशरथ विवाह करके अयोध्या ले आये। केकयीके साथ उसके पिताकी एक पुरानी दासी मन्थरा भी जो कुबड़ी थी आयी और रानी केकयीकी सेवामें नियुक्त रही। रानी केकयी राजादशरथकी परम प्यारी रानी हुई यहांतक कि युद्धस्थलमें भी राजा अपने साथ ले आया करते थे। एक बार राक्षस

जातिसे युद्ध करते समय जब महाराज दशरथके रथका पहिया टूट गया था तो केकयीहीने अपनी सावधानतासे महाराजको उस विषमावस्थामें सँभाला। इस बातसे प्रसन्न हो महाराजने केकयीको दो वरदान देनेकी प्रतिज्ञा की।

राजा दशरथहीके समयमें श्रवण नामका एक योग्य और परम तपस्वी, माता और पिताकी सेवा करनेवाला पुत्र हो गया है। एक रात्रि जब वह आश्रमसे प्यासे मातापिताके लिये नदीमें जल लेने गया राजा दशरथ भी आखेट खेलते हुए नदीतीर उसी वनमें आ पहुंचे। जब श्रवण जल भरने लगा और शब्द हुआ तो महाराजने समझा कि नदीके तीर कोई बनैला हाथी आया है। अंधेरेमें शब्दका अनुमान करके राजाने एक बाण चलाया श्रवण घायल होके भूमिपर गिर पड़ा और कराहने लगा। उसके शब्दको सुन राजा झट निकट जा पहुंचे और उसकी दशा और इतिहासको सुनकर राजा अपने अविवेकपूर्ण साहसपर बहुत पछताये।

श्रीरामचन्द्र

राजा दशरथ बूढ़े हो चले पर कोई लड़का नहीं हुआ। राजाने अपने पुरोहितकी संमतिसे एक पुत्रेष्टि यज्ञ किया। ईश्वरकी कृपासे राजाकी तीनों रानियां गर्भवती हुईं और उनसे चार पुत्र हुए, पटरानी कौसल्याके बेटेका नाम राम रक्खा गया। ये सबमें जेठे थे। केकयीके पुत्र भरत राजाके द्वितीय पुत्र थे। सुमित्राके दो पुत्र हुए जिनके नाम लक्ष्मण और शत्रुघ्न रक्खे गये। यद्यपि चारो भाइयोंमें परस्पर बड़ाही प्रेम था तथापि रामके साथ प्रायः लक्ष्मण और भरतके साथ प्रायः शत्रुघ्न रहा करते थे। चारो भाइयोंने यथासमय गुरुके पास जाके विद्याध्ययन किया। क्षत्रियोंकी

रीतिके अनुसार चारों राजकुमारोंने शस्त्रविद्यामें अच्छी शिक्षा प्राप्त कर ली। उन दिनों मिथिला देशके राजा निमिवंशी महाराज सीरध्वज जनक थे। उनकी दो बेटियां सीता और उर्मिला थीं। राजाके छोटे भाई कुशध्वजके भी दो बेटियां माण्डवी और श्रुतिकीर्ति नामकी थीं। राजा जनकने अपनी बेटी सीताका स्वयंवर रचा और यह प्रण किया कि जो राजकुमार महादेवजीके बड़े धनुपको तोड़ देगा उसीके साथ सीताका विवाह किया जायगा। इस स्वयंवरमें भारतवर्षके प्रायः सभी प्रान्तके राजकुमार आये थे पर धनुप कोई भी नहीं तोड़ सका। अन्तमें अयोध्याके राजकुमार रामचन्द्रने उठ कर धनुपके तीन टुकड़े कर दिये। जनकने बड़ी प्रसन्नतासे अपनी सुन्दरी कन्या सीताको रामसे व्याह दिया। इसी अवसरपर लक्ष्मणका विवाह उर्मिलासे, भरतका माण्डवीसे और शत्रुघ्नका श्रुतिकीर्त्तिसे हो गया। राजा जनकने विवाहके दहेजमें बहुत कुछ दिया। राजा दशरथ अपने बेटों और पतोहुओं समेत मिथिलासे अयोध्याको आ रहे थे कि मार्गमें परशुरामसे भेंट हुई। परशुराम बड़े वीर ब्राह्मण और क्षत्रिय जातिके प्रसिद्ध वैरी भी थे। किसी राजकुमारने मिथिलामें महादेवजीका धनुप तोड़ा है ऐसा समाचार सुनकर उन्हें बड़ा क्रोध आया क्योंकि वे महादेवजीको अपना गुरु मानते थे। परशुराम उस धनुप तोड़नेवाले धृष्ट राजकुमारको दण्ड देनेके विचारसे मिथिला जा रहे थे। जब उन्हें यह ज्ञात हुआ कि धनुपका तोड़नेवाला दशरथका बेटा रामही है तो उसके बलकी परीक्षा लेने लगे।

विष्णुजीका एक बड़ा धनुप परशुरामजीके पास था वह समझते थे कि इसे कोई उठा और चढ़ा न सकेगा, पर जब

रामने उस धनुषको न केवल उठाही लिया वरन् खींचके उसमें बाण भी लगा लिया तो परशुराम दङ्ग हो गये और कुछ न बोले। रामसे विदा मांग वनमें तपस्या करने चले गये। महाराज दशरथ अपने चारों बेटों और पतोहुओं समेत अयोध्या पुरीको लौट आये। रानियां पतोहुओंको देख परम प्रसन्न हुई।

राजा दशरथने अपना बुढ़ापा आया जान कौसल्याके पुत्र रामको युवराज बनाना चाहा और पुरोहितकी संमतिसे रामके राज्याभिषेककी सामग्रियां जुटायी जाने लगीं। दासी मन्थराने इस समय केकयी रानीके कान भरने आरम्भ किये। दासीने कहा कि देखो रानी कौसल्याका पुत्र राम राज्यसिंहासनपर बैठ रहा है अब तुमको अपने पुत्र समेत सपत्नीका दासत्व करना पड़ेगा। केकयी इस बातको सुनकर बहुत विकल हुई। अन्तमें मन्थराकी संमतिसे उसने यही समय अपने पिछले वरदानके लेनेका स्थिर किया। एक वरसे तो भरतका राज्याभिषेक और दूसरेसे रामका चौदह वर्ष वनवास मांगा। सत्यप्रतिज्ञ राजा दशरथ केकयीकी बातें सुन यद्यपि परम व्याकुल हुए तथापि अपनी प्रतिज्ञासे टले नहीं। राम अपनी प्यारी पत्नी सीता और छोटे भाई लक्ष्मणके साथ वनको चल दिये। राजाने पुत्रवियोगसे अपने प्राण छोड़ दिये। इस समय दैवात् भरत और शत्रुघ्न अपने ननिहाल गये हुए थे। पुरोहितने भरतको ननिहालसे बुला भेजा। भरतने शत्रुघ्न समेत अयोध्यामें आके पिताकी मृत्यु और रामके वनगमनका समाचार सुना। उनको अपनी माताका यह आचरण न रुचा। यद्यपि पुरोहित मन्त्रियों और कौसल्या आदि माताओंने भरतको अयोध्याका राज्य ग्रहण करनेका अनुरोध किया पर किसी भांति भी भ्रातृभक्त भरतने

स्वीकार न किया। भरतने चाहा कि राम वनसे लौट आवें और अयोध्यामें राज्य करें इसलिये मनाकर लौटानेके लिये वनको गये। चित्रकूटमें रामसे भरतकी भेंट हुई। भरतने पिताकी मृत्यु आदि सब समाचार कह सुनाये। और अयोध्यामें लौटकर राज्य ग्रहण करनेके निमित्त प्रार्थना की। रामने पिताकी आज्ञाका उल्लंघन न चाहा और चौदह वर्षसे पहिले अयोध्यामें लौटना अस्वीकार किया। भरत रामकी खड़ाउओंहीको लेकर अयोध्या लौट आये और उन्हें राजगद्दीपर रख आप राजप्रतिनिधिकी नाईं अयोध्याका राज करने लगे।

रामचन्द्रजी सीता और लक्ष्मणके साथ चित्रकूटसे आगे दक्षिणके वनोंमें चले गये और गोदावरीके किनारे पञ्चवटीमें पहुंचकर निवास करने लगे। मार्गमें रामने अनेक सन्तों और साधुओंके दर्शन किये और वहभी इनसे भेंट करके बहुत प्रसन्न हुए। जब राम पञ्चवटीमें थे तो लङ्काके राजा रावणको यह समाचार मिला कि अयोध्याके दो युवक राजकुमार एक सुन्दरी स्त्रीको साथ लिये पञ्चवटीमें टिके हैं। रावणके मनमें आया कि मैं किसी प्रकार उस सुन्दरीको पा जाऊं तो अपनी रानी बनाऊं। निदान एक दिन अवसर ढूंढ़के वह पञ्चवटीमें चला आया। दैवात् राम वनमें आखेट खेलने गये थे और लक्ष्मण जी भी उनके पीछे उन्हें ढूंढ़ने निकल गयेथे। इधर सूनेमें भिखारीका वेष धरके रावण सीताके पास पहुंचा और धोखा देकर उसे अपने साथ पकड़ ले गया। रावणने लङ्कामें आकर अनेक प्रकारसे सीताको निज वशमें लानेका प्रयत्न किया पर उस आदर्शसती पतिव्रताने रावणकी एक भी न मानी। निरन्तर अपने पतिहीका स्मरण करती और उनके लङ्कामें आनेकी बाट जोहती रही। जब दोनों

भाइयोंने पञ्चवटीमें लौटके सीताको न देखा तो बहुत व्याकुल हुए और उसे ढूंढ़ते हुए और भी दक्षिणमें किष्किन्धापुरीको ओर गये। ऋष्यमूक पहाड़पर रामसे सुग्रीवकी भेंट हुई। राम और सुग्रीवमें परस्पर बहुत शीघ्र मित्रता हो गयी। रामने सुग्रीवके कहनेसे उसके बलवान भाई बालिको मारकर पम्पाका राज्य सुग्रीवके लिये जीत लिया। सुग्रीवके दूत हनूमान्ने रामकी बड़ी सहायता की और लङ्कामें जाकर सीताका पता लगाया। सीता रावणके यहां है ऐसा समाचार पाकर रामने सुग्रीव और उसके मित्र जाम्बवान्की सहायतासे एक बड़ी सेना लेकर लङ्कापर धावा किया। रावणका छोटा भाई विभीषण राममे आ मिला। राम और रावणमे लड़ाई हुई। रावणकी सेनाके जितने प्रबल मुखिया थे वे सब—रावणका भाई कुम्भकर्ण और मेघनाद आदि रावणके अनेक बेटे—इस लड़ाईमें खेत रहे। अन्तमें रावण भी मारा गया और लङ्का जीत ली गयी। रामने विभीषणको लङ्काका राजा बनाया और सीताको ले चौदह वर्ष बीतनपर फिर लक्ष्मण समेत अयोध्यापुरीको लौट आये। भरतने बापका राज्य रामको सौंप दिया। बड़े उत्सवके साथ अयोध्यामें रामका राज्याभिषेक हुआ।

रामके राज्यमें प्रजा परम प्रसन्न थी। प्रजाको प्रसन्न रखनेकी ओर रामका ध्यान सदा रहता था। एक दिन कोई भेदिया यह समाचार लाया कि अयोध्यावासियोंके बीच यह चर्चा होने लगी है कि चिरकालतक परगृहमें अकेले वास करनेवाली सीताको फिरसे ग्रहण कर लेना राजाको उचित नहीं था। बुरे दृष्टान्तसे प्रजाकी रक्षाके लिये तथा प्रजारंजनके विचारसे रामने निरपराध सीता सतीको गर्भवती अवस्थामें भी वनमें छुड़वा दिया। वाल्मीकि

आपने सीताको अपने यहाँ शरण दी। वाल्मीकिके आश्रमहीमें सीताके दो पुत्र हुए। आपने उनके नाम कुश और लव रक्खे। उन बच्चोंके लालनपालनमें सीताके दुखके कुछ दिन कटे। कुश और लवके तनिक सयाने होनेपर वाल्मीकिके अनुरोधसे प्रजाको समझा बुझाके राम पुन सीताके ग्रहणमें उद्यत हुए पर अब सीताने जीना उचित न समझा और अपनी जीवनलीला समाप्त करके धरतीमें समा गयीं। रामने कुश और लवको अपने औरस पुत्र जानके ग्रहण किया और बहुत दिनोंतक अयोध्या में राज्य करते रहे।

रामके शेष तीनों भाइयोंके भी दो दो बेटे हुए। रामने अपने जीवन कालहीमें अपने दोनों बेटों और छहों भतीजों को भिन्न भिन्न देशोंका राजा बना दिया। अपने जेठे बेटे कुशको कुशावती नगरीका जो विन्ध्याचलकी दक्षिण ओर है राज्य दिया। अपने छोटे पुत्र लवको महाराजने शरावतीका राज्य दिया। शाक्य लोग जिनके बीचमें बौद्ध मतके प्रचार कर्त्ता गौतम बुद्धका जन्म हुआ था संभवतः लवहीके वंशज हैं जिन्होंने पीछेसे कपिलवस्तुमें अपनी राजधानी बनायी। रामने भरतके बड़े बेटे तक्षको तक्ष-शिलाका जो अब पंजाबमें रावलपिण्डीके जिलेके अन्तर्गत है और उसके छोटे भाई पुष्करको पुष्कलावतीका जो सिन्ध-नदीके तीरपर है राज्य सौंपा। शत्रुघ्नके दो बेटोंमें से जेठे शत्रुघातीको मथुरापुरीका और छोटे सुबाहुको विदिशा-का जो आधुनिक भेलसाके नामसे मालवामें बेतवा नदीके किनारे प्रसिद्ध है राज्य मिला। रामकी आज्ञा पाके लक्ष्मणने भी अपने बड़े बेटे अङ्गदको मल्ल देशका और छोटे बेटे चन्द्रकेतुको चन्द्रकान्ता नाम पुरीका राज्य दे दिया।

इस प्रकार महाराज दशरथके पोतोंके द्वारा सूर्यवंश आठ शाखाओंमें विभक्त होकर देशोंमें राज्य करने लगा।

श्रीरामचन्द्रके उत्तराधिकारी

रामके अनन्तर कुशने ब्राह्मणों और मन्त्रियोंकी संमतिसे कुशावतीपुरी छोड़ दी और अयोध्यामें आकर अपने पुरखोंकी राजगद्दीपर बैठके राज्य करने लगे। महाराज कुशने नागराज कुमुदसे मित्रता की और उसकी छोटी बहिनका जिसका नाम कुमुद्वती था पाणिग्रहण किया। कुमुद्वती कुशकी पटरानी हुई, इससे अतिथि नाम एक पुत्र हुआ। जब महाराज कुश देवताओंकी सहायताके लिये असुरोंसे लड़ रहे थे तो दुर्जय नाम असुरको विनाश करते समय वह आप भी वीरगतिको प्राप्त हुए। कुशके पुत्र अतिथिने अयोध्याकी राजगद्दी ली और निषध देशके राजाकी कन्याका पाणिग्रहण किया। अतिथिके पीछे उनकी सन्तान-परम्परा अयोध्याका राज्य चिरकालतक संभाले रही। अतिथिकी चौदहवीं पीढ़ीमें व्युषिताश्व नाम राजा परम धर्मात्मा हुए जिन्होंने बहुत दिन तक काशीपुरीमें निवास करके विश्वेश्वरजीकी सेवाकी। व्युषिताश्वके पुत्र हिरण्यनाभ भी परम धर्मात्मा और प्रतापी राजा हुए। इन्होंने जैमिनिसे योगविद्या सीखी और अजमीढ़के वंशज सन्नतिमान्के पुत्र, कृत और याज्ञवल्क्य मुनिको योगविद्या सिखलायी। हिरण्य नामके पुत्र पुष्यको भी जैमिनिने योगविद्या सिखायी। पुष्यके पुत्र ध्रुवसन्धिको आखेटका व्यसन था। जब इनका पुत्र सुदर्शन निरा दुधमुहा बालकही था तभी महाराज ध्रुवसन्धिको वनमें किसी सिंहने मार डाला। मन्त्रियोंने बालक सुदर्शनहीको राज्यपर

बिठाकर उसकी ओरसे प्रजाशासन किया। जब सुदर्शन सयाने हुए तो शास्त्राध्ययन किया शस्त्रविद्या सीखी और शत्रुओंको परास्त करके अपना राज्य निष्कण्टक करने लगे। इनके अग्निवर्ण नामक पुत्र हुआ। सुदर्शनने अपनी वृद्धावस्थामें अग्निवर्णको युवराज बनाया और उसके सिर प्रजाशासनभार रख आप (नीमखार) नैमषारण्यमें तपस्याके हेतु चले गये। अग्निवर्ण युवावस्थामें राज्यभार मन्त्रियोंको सौंप आप स्त्रियोंके साथ विषयविलासमें ऐसा मग्न हुआ कि अन्तमें क्षयरोगसे पीड़ित होकर मर गया। अग्निवर्णकी पटरानी गर्भवती थी राजाके देहान्तानन्तर उसके पुत्र हुआ जिसका नाम शीघ्र रक्खा गया। जब वह सयाना हुआ अयोध्याके राजसिंहासनपर बैठा, यही सूर्यवंशका विस्तार करनेवाला हुआ।

शीघ्रसे दसवीं पीढ़ीमें बृहद्बल नाम अयोध्याका प्रसिद्ध राजा हुआ। धृतराष्ट्रके पुत्र हस्तिनापुरके राजा दुर्योधन और पाण्डुके पुत्र महाराज युधिष्ठिर जो इन्द्रप्रस्थमें राज्य करते थे इस बृहद्बलके समकालीन थे। जब महाराज युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ ठाना और अपने छोटे भाई भीमसेनको पूर्व दिशा विजय करनेके अर्थ भेजा तब भीमसेन और बृहद्बलसे युद्ध हुआ। बृहद्बल पराजित हुआ और भेट लेकर इन्द्रप्रस्थमें महाराज युधिष्ठिरकी राजसभामें उसे उपस्थित होना पड़ा। जब कौरवों और पाण्डवोंमें पीछेसे हस्तिनापुरके राज्यके लिये कुरुक्षेत्रमें घोर युद्ध हुआ तो दुर्योधनकी ओरसे बृहद्बल भी लड़ने गया था और युद्धस्थलमें अर्जुनके पुत्र अभिमन्युके हाथसे वीरगति पायी।

बृहद्बलके परपोतेके परपोते महाराज दिवाकर परम प्रतापी अयोध्याके राजा हुए। परीक्षितके वंशज अधिसीम

कृष्ण जो हस्तिनापुरके राजा थे और जरासन्धके वंशज महाराज सेनजित जो मगध देशके राजा थे इन्हीं महाराज दिवाकरके समकालीन हैं।

कुछ दिन पीछे इस राजवंशने अयोध्यापुरीको छोड़ दिया और ५८ मील उत्तरकी ओर श्रावस्ती नगरीमें (जो राप्ती नदीके किनारे प्राचीन कालमें राजा श्रावस्तद्वारा बसायी गयी थी) चला गया। यहां प्रसेनजित् नामक प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजा प्रायः गौतम बुद्धका समकालीन था। प्रसेनजित्की बहिन मगध देशके शिशुनागवंशी राजा बिम्बिसारको व्याही थी। बिम्बिसारका पुत्र अजातशत्रु जो वैशालिकी लिच्छवी राजकन्यासे उत्पन्न हुआ था अपने पिताका द्रोही निकला। जब उसने अपने पिताको बन्दीगृहमें भूखों मार डाला और स्वयं राजसिंहासन दबा लिया तो प्रसेनजित अपनी बहिनके पक्षपर अजातशत्रुसे कई बार लड़ा। अन्तमें अजातशत्रु और प्रसेनजित्में परस्पर मेल हो गया। प्रसेनजित्ने बुद्धकी शिक्षा सुनके बौद्धमत स्वीकार कर लिया था। पुराणोंमें उल्लिखित सूर्यवंशका अन्तिम राजा सुमित्र इसी प्रसेनजित्के पोतेका पोता था।

मिथिलाका राजवंश

इक्ष्वाकुके द्वितीय पुत्र महाराज निमिने मिथिलापुरीमें अपना राज्य स्थापित किया और गौतम मुनिको अपना पुरोहित बनाया। निमिकी सन्तानोंने बहुत दिनोंतक मिथिलामें राज्य किया। इस वंशके राजाओंकी उपाधि विदेह और जनक भी थी। याज्ञवल्क्य ऋषिने इस वंशके राजाओंको ब्रह्मविद्या सिखलायी अतएव यह वंश ब्रह्मज्ञानी होनेके लिये भी विशेषरूपसे प्रसिद्ध है। निमिसे चौबीसवीं पीढ़ीमें

सीरध्वज नाम राजा हुए जो अयोध्याके महाराज दशरथके समकालीन थे। इन्हीं महाराज सीरध्वजके छोटे भाई कुशध्वज थे। सीरध्वजने साङ्काश्यपुरीके दुष्ट राजा सुधन्वाको मारकर उस पुरीका राज्य अपने छोटे भाई कुशध्वजको दिया। सीरध्वजहीकी कन्या सीताजी थीं जिनके स्वयंवरमें प्रायः भारतवर्षके सभी प्रान्तोंके राजकुमार उपस्थित हुए थे। अयोध्याके राजकुमार रामचन्द्रजी भी इस स्वयंवरमें उपस्थित थे। जनकने जो ऐसा प्रण किया था कि महादेवजीके धनुष तोड़नेवालेको ही सीता ब्याही जायगी उसकी पूर्ति धनुष तोड़कर रामचन्द्रजीने की और सीताका पाणिग्रहण किया था। राम और सीताका इतिहास ऊपर इक्ष्वाकुके पुत्र विकुक्षिकी वंशपरम्पराके वर्णनमें लिखा जा चुका है।

सीरध्वज जनककी सन्तानपरम्पराने मिथिलापुरीमें चिरकालतक राज्यशासन किया। सीरध्वजसे ३०वीं पीढ़ीमें बहुलाश्व नाम राजा हुए जो कौरवों और पाण्डवोंके समकालीन और भगवान् विष्णुके परम भक्त थे। श्रीकृष्ण जब स्यमन्तक मणिकी खोजमें निकले थे तो यादव शतधन्वा मिथिलापुरीमें भाग आया था। श्रीकृष्णने शतधन्वाका वध करके जब मिथिलापुरीमें प्रवेश किया तो राजा बहुलाश्वने बड़ी भक्तिसे उनका सत्कार किया था। किसी दूसरे अवसरपर भी जब श्रीकृष्णजी मिथिलापुरीमें पधारे थे तब राजा बहुलाश्व और श्रुतदेव नाम मिथिलाके एक ब्राह्मणने भी महाराजका बड़ा आदर किया था। श्रीकृष्णजीने दोनोंके घरको पधारकर समादृत किया और दोनोंको अधिकारी जान ज्ञानोपदेश भी किया।

नवां अध्याय

चन्द्रवंश

ब्रह्माके पुत्र मरीचि और अत्रि हुए इनमेंसे मरीचिके द्वारा जो सूर्यवंशका विस्तार हुआ उसका वर्णन ऊपर हो चुका। ब्रह्माके पुत्र अत्रिही चन्द्रके पिता हैं। चन्द्रको प्रजापति ब्रह्माने सब ओषधियों और ब्राह्मणोंका स्वामी बनाया। चन्द्रने एक राजसूय यज्ञ करके अपनी महिमा बढ़ायी। यौवनकी उमङ्गमें उसने देवजातिके आचार्य बृहस्पतिकी सुन्दरी पत्नी ताराको छीन लिया और यद्यपि बृहस्पतिने बहुत आग्रहपूर्वक मांगा पर चन्द्रने न दिया। देवगणके राजा भी जब चन्द्रको समझाकर थक गये और उसने ताराको न छोड़ा तो देवराज सेना लेकर चन्द्रसे लड़नेको उतारू हुए। उधर असुरोंके गुरु शुक्राचार्यने बृहस्पतिसे वैर रहनेके कारण चन्द्रको सहायता दी। निदान ताराके लिये देवों और असुरोंमें परस्पर घोर संग्राम छिड़ गया। अन्तमें ब्रह्माने समझाबुझाकर दोनों दलोंके बीच मेल करा दिया और तारा बृहस्पतिको दिलवा दी। इसी तारासे चन्द्रके बुध नामक एक परम सुन्दर और प्रतापी पुत्र हुआ जिसने मनुकी कन्या इलासे विवाह किया। यही इला और बुध संसारमें चन्द्रवंशी क्षत्रियोंके आदि पुरुष है। इला और बुधके पुत्र पुरूरवा परम प्रतापी धर्मात्मा दानी और शूरवीर राजा विख्यात हुए। महाराज मनुने अपनी कन्या इलाको प्रतिष्ठान नामक नगर अर्पण किया था। इलाने अपने पुत्र पुरूरवाको इसी प्रतिष्ठानपुरका राजा बनाया। यही प्रतिष्ठानपुर प्रयागक्षेत्रमें गङ्गातीरपर एक प्राचीन नगरी थी

जहाँ बहुत समयतक चन्द्रवंशी राजाओंका राज्य रहा। उर्वशी नाम एक देवाप्सराको कोई असुर चुराये लिये जाता था कि यह समाचार राजा पुरूरवाको मिला। उसने असुरको परास्त करके उर्वशीका उद्धार किया। राजाके इस पराक्रमपर उर्वशी और उर्वशीके सौन्दर्यपर राजा मोहित हो गये। उर्वशी और पुरूरवामें परस्पर प्रगाढ़ प्रेम हो गया।*

एक बार अपनी प्रियतमा उर्वशीके लिये पुरूरवाको देवभूमिमें जानेका संयोग पड़ा। इसी अवसरमें राजाने अरणी लकड़ीको मथके आग निकालनेकी युक्ति वहाँ सीखी और उस रीतिका प्रचार महाराजने भारतमें अपने राज्यमें किया। पुरूरवाके छः पुत्र हुए जिनके नाम आयु, धीमान, अमावसु, विश्वावसु, शतायु और श्रुतायु थे। इनमेंसे आयु सबमें श्रेष्ठ थे। आयुके वंशका राज्य चिरकालतक प्रतिष्ठानपुरमें बना रहा। अमावसुकी वंश परम्परामें राजा कुशाम्ब हुए जिसने कौशाम्बी नाम नगरी बसायी इन्हीं कुशाम्बके वंशमें गाधि और विश्वामित्र आदि हुए। आयु और अमावसुको छोड़ पुरूरवाके किसी और पुत्रके वंशने संसारमें विशेष प्रसिद्धि नहीं पायी।

महाराज आयुने राहुकी कन्या प्रभासे विवाह किया। आयुके पांच परम पराक्रमी पुत्र हुए जिनके नाम नहुष क्षत्रवृद्ध, रम्भ, रजि और अनेनस् हैं। इनमेंसे जेठे नहुषने तो अपने पिताका राज्य पाया। क्षत्रवृद्धकी सन्तानोंने काशी अर्थात् बनारसमें अपना राज्य स्थापित किया। रम्भके

* इसी उर्वशी और पुरूरवाके परस्पर प्रेमका वर्णन कालिदास कविने विक्रमोर्वशीय नाम नाटकमें लिखा है। प्रयागके समीप वर्तमान 'झूसीही' प्राचीन 'प्रतिष्ठान' है।

कोई सन्तानही नहीं हुई। रजिने युद्धमें सहायक होके देवगणोंकी ओरसे असुरोंको हराया और देवताओंके राजाने रजिके चरण छूके उन्हें पिता कहकर सम्बोधन किया, निःस्पृह रजिने देवगणके राजा होनेकी चेष्टा न की। रजिके अनेक पुत्र हुए जिन्होंने अपने प्रवल पराक्रमसे देवतागणसे उनका राज्य छीन लिया। पर आचारभ्रष्ट होनेके कारण ये लोग अधिक दिनोंतक देवोंकी निवास-भूमिमें राज्य न कर सके। अन्तमें बृहस्पतिकी सहायतासे षड्यन्त्र रचकर देवताओंने रजिकी सन्तानोंसे अपना राज्य छीन लिया।

आयुके ज्येष्ठ पुत्र नहुष एक परम प्रतापी और पुण्यात्मा राजा हुए। इनके राज्यकालमें त्रिवेणीतटपर गङ्गामें च्यवन ऋषि तपस्या करते थे। दैवात् इसी स्थानपर मछुवे मछली पकड़ने आये उनके जाल जलनिमग्न ऋषिके शरीरमें गड़ गये। समाचार सुनके स्वयं राजा नहुष वहां आ पहुँचे। ऋषिका बड़ा आदर किया मछुवोंके अपराधकी क्षमा चाही और उनसे गोमहिमाका उपदेश भी सुना।

महाराज नहुषमें राज्यप्रबन्ध करनेकी शक्ति इतनी अच्छी थी कि जब वृत्रकी हत्या करनेसे देवराजको पाप लगा और प्रायश्चित्तके लिये उन्हें अपना राज्य छोड़ अनेक तीर्थस्थानोंमें भ्रमण करना पड़ा तो देवतालोगोंने उनकी अनुपस्थितिमें महाराज नहुषहीको प्रयागसे लेजाके अपनी निवासभूमिमें अपना राष्ट्रपति बनाया। नहुषने वहां निवास और अधिकार करते समय कभी देवराजकी परम सुन्दरी पटरानी शचीका रूप देख पाया और उसपर मोहित हो गये देव लोगोंने बहुत चाहा कि नहुष देवराजकी पत्नीको न चाहे पर नहुष अपने मनको न रोक सका। अन्तमें शची और

बृहस्पतिकी गुप्त मन्त्रणाके चक्करमें पड़कर ब्राह्मणोंसे पालकी ढुलाके नहुषने देवराजकी पत्नीके समीप पहुँचना चाहा। ब्राह्मण लोग भी अपनी स्वाभाविक उदारतासे बिना आपत्तिके नहुषकी आज्ञा पालनेमें तत्पर हुए। ब्राह्मण बिचारे पालकी ढोना क्या जानें? धीरे धीरे राजाको लिये जा रहे थे कि राजाने अधीर होकर उन्हें शीघ्र चलनेके लिये डांटा। यहांतक तो ब्राह्मणोंने राजाको क्षमा किया पर जब कामोन्मत्त राजा नहुषने क्रोधमें आ उनमेंसे एक ब्राह्मणपर जिनका नाम अगस्त्य था पादप्रहार किया तो फिर ब्राह्मणोंने और क्षमा न की। ब्राह्मणोंने पालकी भूमिपर पटक दी और नहुषको उस परसे उतारके नीचे ढकेल दिया। ब्राह्मणोंके गौरव और नहुषके अपराधका ध्यान कर देवलोगोंने नहुषको देवलोकसे बहिष्कृत और पतित कर दिया। इस अधःपतनसे नहुषकी बड़ी दुर्गति हुई। नहुषकी रानीका नाम विरजा था। जिससे उनके छ बेटे हुए, जिनके नाम यति, ययाति, संयाति, अयाति, वियति और कृत थे। जेठे बेटे यतिने इक्ष्वाकु-वंशी राजा ककुत्स्थकी 'गो' नामक कन्यासे विवाह किया। यति परम धार्मिक और सच्चरित्र थे। इनके चित्तमें दृढ़ वैराग्य उत्पन्न हुआ सो राज्य छोड़के वनमें तपस्या करने चले गये। द्वितीय पुत्र ययातिने नहुषके पीछे अपने पिताका राजसिंहासन प्राप्त किया और बहुत दिनोंतक राज्य करते रहे। नहुषके और पुत्रोंकी वंशपरम्परा वा उनके राज्य आदिका वर्णन कहीं देखनेमें नहीं आया।

नवाँ अध्याय

महाराज ययाति

नहुषके पीछे ययाति चन्द्रवंशी राजाओंके राजसिंहासनपर विराजमान हुए। यह एक दिन आखेट खेलते खेलते वनमें प्यासे होकर एक कुएंपर गये। वहां उन्होंने देखा कि एक युवति कन्या उस कुएंमें पड़ी है और जीवित है। राजाने अपने हाथका सहारा देके उसे बाहर निकाला और पूछा कि तुम कौन हो? उस कन्याने बतलाया कि मैं दैत्योंके राजा वृषपर्वाके कुलगुरु शुक्राचार्यकी कन्या देवयानी हूं। मैं वनमें अपनी सखियों समेत क्रीडा करने आयी थी। वृषपर्वाकी बेटी शर्मिष्ठाने मुझे वैरवश कुएमें ढकेल दिया है। हे राजन् आपने मेरी बाह पकड़के मेरा उद्धार किया है, मैं आपका आत्मसमर्पण करती हूं आप मुझे पत्नीभावसे अङ्गीकार कीजिए। देवयानीको ब्राह्मणकी कन्या समझके पहिले तो ययातिको उसे इस प्रकार अपनानेमें असमञ्जस हुआ पर पीछेसे वृषपर्वाके कुलगुरु देवयानीके पिताकी भी सम्मति पाके राजाने उसका पाणिग्रहण किया। देवयानीके हठसे विवश हो उसके पिताने वृषपर्वासे उसकी कन्या शर्मिष्ठाको दासी बनाके देवयानीके साथ कर दिया। जब देवयानी राजा ययातिके महलमें आयी तो अपनी दासी शर्मिष्ठाको भी अपने साथ सेवार्थ लेती आयी। देवयानीसे राजा ययातिके दो पुत्र हुए जिनके नाम यदु और तुर्वसु थे। वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठा परम सुंदरी और चतुर थी उसने अपने गुणोंसे राजा ययातिको आसक्त करके गुप्त

रीतिसे गान्धर्व विवाह कर लिया। शर्मिष्ठासे ययातिके तीन पुत्र उत्पन्न हुए जिनके नाम द्रुह्यु, मनु और पुरु थे। देवयानीको जब शर्मिष्ठाकी इस चालका पता लगा तो वह परम क्रुद्ध हुई और अपने पिताके पास जाकर सब समाचार कह सुनाया। देवयानीके पिता राजा ययातिके इस आचरणसे परम कुपित हुए।

राजा ययातिने किसी समय अपने पांचों पुत्रोंके आचरणकी परीक्षा करनी चाही। उसने अपने प्रत्येक पुत्रको एक कठिन कार्य करनेकी आज्ञा दी, पर सबसे छोटे पुरुको छोड़ और किसी पुत्रने पिताकी आज्ञापालन करनेका उत्साह न दिखलाया, निदान शेष पुत्रोंसे अप्रसन्न हो राजा ययातिने पुरुहीको अपना राजसिंहासन दिया।

राजा ययातिने अपने पीछे पुरुको तो चक्रवर्ती राजा बनाके अपना राज्य सौंप दिया पर और और बेटोंके हाथ भी देशका कुछ राज्य सौंप गये। यदुको दक्षिणका देश, तुर्वसुका दक्षिण-पूर्वका, द्रुह्युको पश्चिमका और अनुको उत्तर देशका शासक बनाया।

राजा ययातिका स्मारक "जाजपुर" नाम स्थान संसार में अबतक विद्यमान है। यह कानपुरसे लगभग ३ मील दूर है और लोग वहांपर एक दुर्गका भग्नावशेष दिखलाके उसे राजा ययातिके कोटके नामसे पुकारते हैं। राजपुतानेमें सांभर झीलके पास देवदानी नामके कुएंके विषयमें यह प्रसिद्ध है कि यहांपर देवयानीको शर्मिष्ठाने ढकेल दिया था, जहांसे राजा ययातिने उसका उद्धार किया था।

महाराज ययातिके ज्येष्ठ पुत्र यदुने दक्षिण ओरका राज्य पाया और उनकी सन्तान परम्परा मध्यभारतके भिन्न भिन्न

भागोंमें बहुत दूरतक फैल गयीं। यदुके सहस्रजित, क्रोष्टु, नल और रघु नामक चार पुत्र हुए जिनमेंसे प्रथम सहस्रजित् और द्वितीय क्रोष्टुकी सन्तानोंमें परम प्रतापी अनेक राजा मध्य और दक्षिण भारतवर्षमें हो गये हैं। सहस्रजित्का पोता हैहय नामक था। यही हैहय नाम प्रसिद्ध क्षत्रिय वंशका प्रवर्त्तक हुआ। हैहयके परपोतेका नाम साहञ्ज था। इस राजाने साहञ्जनी नाम एक नयी पुरी बसायी। साहञ्जका पुत्र महिष्मान् भी एक पराक्रमी राजा हुआ और उसने नर्मदाके दहिने किनारेपर माहिष्मती नाम एक पुरी बसायी जो बहुत दिनोंतक उसके वंशजोंकी राजधानी रही। यह बस्ती महेश्वरके नामसे अबतक प्रसिद्ध है। महिष्मान्का पुत्र भद्रश्रेण्य पूर्वके देशोंको विजय करता हुआ काशीमें जा पहुंचा और वहीं अपने पुत्रों समेत निवास करना चाहता था पर आयुके पुत्र क्षत्रवृद्धके वंशमें उत्पन्न राजा दिवोदासने लड़ झगड़के उसे वहाँसे निकाल दिया और उसके अनेक पुत्रोंको मार डाला। दिवोदासने भद्रश्रेण्यके सबसे कनिष्ठ पुत्र दुर्दमको बालक समझके जीता छोड़ दिया था। दुर्दम जब सयाना हुआ तो उसने काशीपर चढ़ाई करके दिवोदासको जीत लिया। पर दिवोदासके पुत्र प्रतर्दनने फिर दुर्दमको काशीसे निकाल दिया।

दुर्दमका पुत्र कृतवीर्य अपने सब भाइयोंमें ज्येष्ठ और परम प्रतापी माहिष्मतीमें राजा हुआ। कदाचित् यह पुरुवंशी राजा संयाति और अहंयातिका समकालीन था। अहंयातिकी पटरानी भानुमती कदाचित् इसी कृतवीर्यकी कन्या थी। कृतवीर्यका पुत्र अर्जुन था जो बहुधा कार्त्तवीर्य, सहस्रार्जुन वा सहस्रबाहु नामसे भी प्रसिद्ध है।

दसवाँ अध्याय

कार्त्तवीर्य्यार्जुन

यह राजा बहुत शक्तिमान, उत्साही, धीर, गम्भीर और प्रतापी था। इसकी राजधानी माहिष्मती ही थी, पर अपने राज्यकी सीमाको इसने बहुत दूरतक फैलाया और संसारमें अपने पितासे बढ़के नाम कमाया। उसने अनगिनत यज्ञ किये और अपनी प्रजाका पुत्रवत् पालन कर उसके धन और प्राणोंकी रक्षा बड़ी योग्यतासे की। प्रायः सभी देशके और और क्षत्रिय राजा उसका लोहा मान गये थे। मुनि-श्रेष्ठ अत्रिके कुलमें उत्पन्न महाराज दत्तात्रेयसे इस राजाने योगविद्या सीखी। सब शत्रुओंको धर्मयुद्धमें निज परा-क्रमसे पराजित करके उसने अखण्ड-मण्डलेश्वर हो के चिरकालतक पृथ्वीका शासन किया। दिग्विजयार्थ आये हुए अति बलिष्ठ योद्धा लङ्काके राक्षस राजाको युद्धमें परास्त करके अर्जुनने उसे अपने धनुषकी डोरीमें बांध लिया और कुछ दिनोंतक बन्दी रखके फिर छोड़ दिया। यह प्रसिद्ध है कि यज्ञ, दान, तपस्या, योग, वीरता, प्रताप इत्यादि गुणोंमें कार्त्तवीर्य्यार्जुनके समान सुयोग्य राजा कोई नहीं हुआ। चिरकालतक बड़े दबदबेसे राज्य करनेके पीछे उसके चित्तमें इतना गर्व बढ़ा कि वह ब्राह्मणों और साधुओंका भी अनादर करने लगा और अन्तमें ब्राह्मणोंसे विरोध ठानके उन्हींके हाथसे मारा गया।

इक्ष्वाकुवंशमें रेणु नाम एक राजा थे उनकी कन्या रेणुका जमदग्नि नाम ऋषिको बियाही थी। यह रेणुका

आ पहुचे। महर्षिने उपस्थित सामग्रियोंद्वारा राजाका भली भांति सत्कार कर उसे सन्तुष्ट किया। राजाने देखा कि जमदग्निके पास एक अत्युत्तम अद्भुत गौ है। उसने चाहा कि यह गौ किसी प्रकार मुझे मिल जाय, इस उद्देश्यसे महर्षिसे गाय माँगी। जब जमदग्निने अस्वीकार किया तो राजा हठात् उसे छीनके अपनी राजधानीको ले आया। जमदग्निके सबसे कनिष्ठ पुत्र परशुराम बड़े वीर पराक्रमी तथा क्रोधी थे। जिस समय यह घटना हुई उस समय वह कहीं बाहर गये थे। जब वह आश्रममें लौटे तो देखा कि गौ नहीं है, अपने पितासे पूँछा कि महाराज गौ कहाँ गयी। जमदग्निने अपने पुत्रसे सब हाल कह सुनाया। परशुरामको राजाके इस अन्याय्य आचरणपर बड़ा क्रोध आया। उनसे रहा न गया, राजाको इस अन्याय-का दण्ड देनेके लिये झट अपने अस्त्र शस्त्रोंको ले माहिष्मती पुरीपर चढ़ दौड़े और राजाको युद्धार्थ ललकारा। घोर युद्ध हुआ, युद्धमें प्रबल पराक्रमी परशुरामने सहस्रार्जुनका वध कर डाला। इस प्रकार चिरकाल राज्य करनेके पीछे परम प्रतापी और बलवान् राजा सहस्रार्जुनकी जीवनलीला समाप्त हुई। उसके पुत्रोंमेंसे जयध्वज, मधु, वृषण, शूर, शूरसेन ये पांच परम प्रबल और प्रतापी राजा हुए। जय-ध्वजका पुत्र तालजंघ भी एक अत्यन्त बलिष्ठ राजा हुआ। इसके वंशधर तालजंघ नाम क्षत्रिय संसारमें प्रसिद्ध हुए। जिनमें प्रथमका नाम वीतिहोत्र तथा द्वितीयका भरत था। भरतके पुत्र मधु हुए। इन तालजंघ वंशवालोंने राजा बाहुको मारके उसकी पत्नीको भी विष दे दिया था। यही रानी सूर्यवंशी राजा सगरकी माता थी। सगरने समय पाकर अपने पिताके शत्रुओंसे बैर चुकाया, तालजंघके

वंशके लोगोंको परास्त किया। मधुसे माधववंशी और उसके पुत्र वृष्णिसे वृष्णिवंशी क्षत्रिय संसारके भिन्न भिन्न भागोंमें फैल गये।

सहस्रार्जुनकी सन्तान संसारमें हैहय वा तालजंघवंशके नामसे प्रसिद्ध हुई। इन लोगोंका राज्य बहुत दिनोंतक माहिष्मतीमें बना रहा। महाभारतके युद्धमें माहिष्मतीका राजा नील कौरवोंकी ओरसे लड़ता हुआ युद्धमें मारा गया, यह राजा नील सहस्रार्जुनहीके वंशजोंमें था। पीछेसे यही हैहयवंशी क्षत्रियलोग अधिक पूर्वकी ओर बढ़के चेदिके कलचुरि नामसे मध्यभारतवर्षमें बहुत दिनतक राज्य करते रहे और इन लोगोंने विक्रमी संवत् ३०६ में चेदि वा कलचुरि नामका एक नया संवत् चलाया।

यदुके द्वितीय पुत्र क्रोष्टु हुए। इनकी सन्तानपरम्पराने मध्यभारतवर्षमें फैलकर नये नये नगर बसाये और अपनी राजधानियोंके नामसे उस उस देशका नाम भी प्रसिद्ध किया जिनमेंसे चेदि, मथुरा, द्वारका, विदर्भ, भोजकूट, आदि बहुतही प्रसिद्ध हैं।

क्रोष्टुसे छठी पीढ़ीमें महाराज शशबिंदु चक्रवर्त्ती और परम प्रतापी राजा हुए। यह महाशय इक्ष्वाकुवंशी राजा मान्धाताके समकालीन थे, इनकी कन्या बिन्दुमती महाराज मान्धाताको विवाही थी। बिन्दुमतीके पुत्र महाराज पुरुकुत्स, अम्बरीष और मुचकुन्द थे जिनका उल्लेख ऊपर सूर्यवंशके वर्णनमें हो चुका है।

शशबिन्दुके पोते शिनेयुके पौत्र रुक्मकवच भी मध्यभारतमें एक परम प्रतापी राजा हो गये हैं जिनकी वीरताके कारण अनेकों कवचधारी वीर उनके सामने न ठहर सकते

चँदेरि पड़ा। चिदिका पुत्र चैद्य या दमघोष परम प्रतापी और प्रसिद्ध राजा हुआ। दमघोषका पुत्र शिशुपाल बड़ा पराक्रमी, बलिष्ठ और इतिहासप्रसिद्ध एक क्रूर राजा हुआ। जब महाराज युधिष्ठिरके राजसूययज्ञमें शिशुपालने वृष्णिवंशी महाराज कृष्णसे घोर निन्दा और अपमानका व्यवहार किया अपने अयोग्य भाषण और आचरणके कारण,वहीं श्रीकृष्णके हाथों मारा गया।

क्रथकी सन्तानोंका राज्य विदर्भ देशमें रहा। इन्हींके वंशमें महाराज 'भीम' थे जिनकी सुप्रसिद्ध सुन्दरी कन्या दमयन्ती, निषध देशके राजा वीरसेनके सर्वगुणसम्पन्न पुत्र महाराज नलको व्याही गयी थी। दमयन्तीके भाईका नाम दम था। यह राजा भीम अयोध्याके राजा ऋतुपर्णके समकालीन थे। क्रथहीके वंशमें अयोध्याके विख्यात राजा रघुके समकालीन कुण्डिनपुरके राजा भोज थे, जिनकी छोटी बहिन इन्दुमतीने स्वयंवरमें रघुके पुत्र अजको अपना पति वरण किया। यही इन्दुमती श्रीरामचन्द्रजीके पिता महाराजा दशरथकी माता थीं। इसी क्रथके वंशमें विदर्भ नगर वा कुण्डिनपुरके राजा भीष्मक हुए हैं जिनकी कन्या रुक्मिणीका हरण करके श्रीकृष्णने द्वारकापुरीमें लाकर पाणिग्रहण किया। रुक्मिणीके भाई रुक्मीने भोजकट नाम एक नया नगर बसाके उसे अपनी राजधानी बनाया था।

क्रथसे बाईसवीं पीढ़ीमें सत्वान् नामराजा हुए जिनके पुत्र राजकुमार सात्वत चिदिकी तरह दक्षिण देशको छोड़के उत्तर पश्चिमकी ओर चले आये। सात्वतने उस मथुरा पुरीको अपनी राजधानी बनाया जिसे पहले अयोध्याके

महाराज दशरथके कनिष्ठ पुत्र शत्रुघ्नने बसाया था। पीछे इस देशका नाम शूरसेन पड़ गया और यह सात्वतवंशी यादवोंकी राजधानी हो गयी।' सात्वतवंश कई शाखाओंमें विभक्त होकर फैल गया।

सात्वतके पुत्र अन्धककी सन्तानोंमें महाराज आहुक हुए जिनके पुत्र देवक और उग्रसेन मथुराके प्रसिद्ध यदुवंशी राजा हो गये हैं। देवककी सबसे छोटी कन्या देवकी श्रीकृष्णजीकी माता थीं। देवकके स्वर्गवासी होनेपर महाराज उग्रसेन मथुराके राजसिंहासनपर विराजमान हुए। उग्रसेनका बेटा कंस परम दुश्चरित्र और क्रूर था। उसने असुरोंसे मेल मिलाप किया और सदा उन्हींके सङ्ग रहा करता था। बड़ा होनेपर कंसका अन्याय यहाँतक बढ़ा कि उसने अपने साथी असुरोंकी सहायतासे मथुरापुरीपर अपना अधिकार कर लिया और बूढ़े पिताको राजसिंहासनसे उतार कर स्वयं राजा बन बैठा। कंसके साथी असुरोंने यदुवंशियोंको पीड़ा देना प्रारम्भ किया जिससे दुःखी होके यादव लोग भिन्न भिन्न देशोंको भाग गये। कंसका उपद्रव और अनर्थ यहाँतक बढ़गया कि अन्तमें मथुरा पुरीके निवासी उसे सह न सके। वसुदेवके पुत्र बलराम और श्रीकृष्णने यदुवंशियोंकी पीड़ा दूर करनेके लिये असुरों समेत कंसके उच्छेदका दृढ़ सङ्कल्प किया। बलराम तथा श्रीकृष्णने कंसके साथी अनेक असुरोंको मारके कंसको परम दुर्बल कर डाला, पर जब कंसका अत्याचार किसी प्रकार शान्त न हुआ तो श्रीकृष्णने कंसको मार कर बूढ़े राजा उग्रसेनको फिर मथुराके राजसिंहासनपर आसीन कर दिया।

सात्वतको वृष्णि नामक एक और पुत्र हुआ जिनके पोतेका नाम अनमित्र था। अनमित्रके पुत्र निघ्न और वृष्णि हुए।

निघ्नके बेटे प्रसेन और सत्राजित हुए। सत्राजित् और उसकी पुत्री सत्यभामाका वर्णन आगे श्रीकृष्णके इतिहासमें आवेगा। अनमित्रके द्वितीय पुत्र 'वृष्णि' उस राजकुमार 'श्वफल्क' के पिता हैं जिनकी रानीका नाम गान्दिनी और पुत्रका नाम अक्रूर था। अक्रूरका वर्णन भी आगे किया जायगा। वृष्णिके दूसरे पुत्रका नाम चित्ररथ था, चित्ररथके पुत्र विदूरथ हुए। विदूरथहीके वंशमें उनके परपोतेका परपोता हृदीक था।

हृदीकके तीन पुत्र, देवमीढ़ (शूरसेन) शतधन्वा और कृतवर्मा थे। इनमेंसे प्रत्येकका उल्लेख आगे श्रीकृष्णजी और महाभारतके इतिहासमें आवेगा।

अनमित्रको सत्यक नाम एक और पुत्र था। इसी सत्यकका पुत्र सात्यकि था जो युयुधानके नामसे भी प्रसिद्ध है, यही अर्जुनका परम मित्र और अन्तरङ्ग शिष्य था। महाभारतके युद्धमें पाण्डवोंकी ओरसे वीरतापूर्वक लड़ा और जीवित रहा। महाभारतके युद्धमें कृतवर्मा कौरवोंका सहायक था। यह भी युद्धान्ततक जीवित रहा।

हृदीकके ज्येष्ठ पुत्र देवमीढ़ या शूरसेनके पुत्रोंमेंसे वसुदेव परम प्रसिद्ध हैं। इन्हींके पुत्र बलराम और श्री कृष्णजी थे। शूरसेनजीकी पांच कन्यायें पांच प्रसिद्ध राजवंशोंमें ब्याही गयी थीं। इन कन्याओंके पुत्र भी परम प्रतापी और प्रसिद्ध योद्धा हो गये हैं। इन कन्याओंमेंसे कुन्ती सबसे जेठी थी, जो वसुदेवने अपने परम मित्र राजा कुन्तिभोजको उनके मांगनेपर पोष्य कन्याके रूपमें अर्पण कर दी थी। कुन्तीका विवाह हस्तिनापुरके राजकुमार पुरुवंशी महाराज पाण्डुसे हुआ, जिनके पुत्र पाण्डवोंके नामसे संसार भरमें प्रसिद्ध हैं।

महाराज शूरसेनकी दूसरी कन्या 'श्रुतदेवी' करूष देशके राजा वृद्धशर्माको व्याही थी, इसका पुत्र 'दन्तवक्त्र' शिशुपालका बड़ा मित्र था।

शूरसेनकी तीसरी कन्या 'श्रुतकीर्त्ति' केकय देशके राजाको व्याही गयी और उसके नामी पुत्र सन्तर्दनादि महाभारतके युद्धक्षेत्रमें उपस्थित थे।

शूरसेनकी चौथी कन्या 'राजाधिदेवी' अवन्ति देशके राजाको विवाही गयी जिनके पुत्र विन्द और अनुविन्द नामसे प्रसिद्ध हैं। ये राजकुमार भी महाभारतकी रणभूमिमें उपस्थित थे।

शूरसेनकी पांचवीं कन्या 'श्रुतश्रवा,' चेदिदेशके राजा दमघोषको विवाही थी और इन्हींका पुत्र शिशुपाल था, जिसे युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें श्रीकृष्णजीने मार डाला था।

श्रीवसुदेवजीके कई एक रानियाँ थीं जिनसे उनके अनेक पुत्र हुए। इनमेंसे रोहिणीके पुत्र बलराम सबसे जेठे थे। बलरामकी भगिनी सुभद्राको कुन्तीके कनिष्ट पुत्र पाण्डव अर्जुनने राक्षस विवाहकी रीतिसे हर लिया था। सुभद्रा तथा अर्जुनके पुत्र अभिमन्यु थे जो महाभारतके युद्धमें खेत रहे। अभिमन्युके पुत्र परीक्षित् पीछेसे हस्तिनापुरके राजसिंहासनपर विराजमान् हुए और यही पुरुवंशके प्रवर्त्तक हुए। वसुदेवकी दूसरी रानी देवकीके पुत्र जगद्विख्यात श्रीकृष्णचन्द्रजी हैं जिनकी जीवनीका विस्तृत इतिहास श्रीमद्भागवत, विष्णुपुराण, हरिवंश, पद्मपुराण आदि प्राचीन ग्रन्थोंमें लिखा है।

श्रीकृष्णचन्द्रजीकी जीवनीका संक्षिप्त इतिहास आगे लिखा जाता है।

ग्यारहवां अध्याय

श्रीकृष्ण

देवककी कन्या देवकीका विवाह जब वसुदेवके साथ हुआ तो बरातकी विदाईके समय कंस परम प्रेमपूर्वक अपनी बहिन देवकीको रथपर बिठाके वसुदेवके घर पहुँचाने चला, पर उसने इसी समय कहींसे सुन लिया कि देवकीका पुत्रही कंसका घातक होगा। पापी कंसके चित्तमें खटक उत्पन्न हो गयी। वह इस आशंकाकी जड़ काटनेपर [उ]तारू हो गया। यदि वसुदेव उसे अनेक भांति समझा [बु]झाकर शान्त न करले तो उसने तत्त्क्षण देवकीको मारही [डा]ला होता। देवकीके प्राण बचानेको वसुदेवको यह कठिन [प्र]तिज्ञा करनी पड़ी कि देवकीके गर्भसे जितने पुत्र उत्पन्न होंगे [वे] सभी कंसको अर्पण किये जायंगे। कंसने वसुदेवकी बात [मा]नकर देवकीके प्राण तो छोड़ दिये पर यथासमय उसके [स]ब पुत्रोंको मार डालनेका संकल्प किया। जब जब देव-कीके पुत्र उत्पन्न हुआ तब तब वसुदेवजीने अपनी प्रतिज्ञा-नुसार कंसको अर्पण कर दिया और कंस निर्दयतापूर्वक उन सबको मरवाता गया, यहांतक कि जब इस प्रकारसे वसुदेव और देवकी एक एक करके छः पुत्रोंको खोचुके. तो उन्हें अपनी इस दशापर बड़ी ग्लानि हुई। गोकुलके निवा-सी अहीरोंके मुखिया नन्दसे वसुदेवजीकी मित्रता थी। एक दिन किसी पर्वके अवसरपर जब देवकी यमुना स्नानको गयी थी तो नन्दकी पत्नी यशोदासे उसकी भेंट हो गयी। देवकीने उनसे अपना सब दुखड़ा कह सुनाया। यशोदाने

करुणामें भरकर कहा कि बहिन! यदि तुम अपने आठवें पुत्रको किसी प्रकार मेरे पास पहुंचा सको तो मैं भरसक सयाना होनेतक उसका पालन पोषण और संरक्षण करूंगी। इस प्रतिज्ञाको सुनके देवकीका मन परम प्रफुल्लित हुआ। उन्होंने वसुदेवजीको यह समाचार सुनाया। वसुदेव और देवकीके मनमें अपने एक पुत्रके बचनेकी आशा बंधी। उन्होंने अष्टम पुत्रको गुप्त रीतिसे यशोदाके यहां पहुंचानेका दृढ़ सङ्कल्प कर लिया।

इस बीचमें कंसकी क्रूरता बहुत बढ़ गयी थी। उसने मगधके परम प्रतापी और बलिष्ठ राजा जरासन्धकी दो कन्याओंसे विवाह किया, इस सम्बन्धसे कंसका दौरात्म्य और भी बढ़ गया और असुरोंसे मेल मिलाप करके अपने राज्यमें बुलाके उन्हें ऊंची ऊंची पदवियाँ दीं और उनकी सहायता और संमतिसे यदुवंशियोंपर अनेक प्रकारके अत्याचार करने लगा। कंसकी राजधानी मथुरापुरी थी, उसका राज्य समस्त व्रजमण्डल वा शूरसेन देश भरमें फैला था। मथुराके निवासी कंसके अत्याचारसे भयभीत हो नगर छोड़ छोड़ कर भागने लगे, जो लोग वहाँ बसे रह गये उन्हें बड़ी पीड़ा मिलने लगी। कंसने वसुदेव और देवकीको बन्दीगृहमें डाल दिया।

इसी कारागृहमें भाद्रपद कृष्ण अष्टमीको अर्द्धरात्रिके समय देवकीकी कोखसे एक अलौकिक बालक जन्मा। वसुदेवजी परम चतुराई, क्लेश और परिश्रमसे उस नवप्रसूत बालकको रातोंरात गोकुलमें लेजाके नन्दकी पत्नी यशोदाको सौंप आये। यशोदाने उस पुत्रका पालन पोषण अपना निज पुत्र मानकर किया। किसी प्रकारसे

कंसको भी यह समाचार मिल गया कि देवकीका एक पुत्र जीवित है और गोकुलमें यशोदा उसका पालन कर रही है। कंसको इस बातपर बड़ा आश्चर्य और भय हुआ। उसने अनेक उपाय किये कि किसी प्रकारसे देवकीका पुत्र मार डाला जाय पर सफलता न हुई।

पूतना नामक एक क्रूरा राक्षसी रात्रिमें छिपके देवकीके पुत्रको यशोदाके यहांसे ले भागी थी पर अचानक मार्गहीमें उसकी मृत्यु हो गयी। प्रातःकाल गोकुलनिवासियोंने मृत पूतनाके पास छोटे बालकको खेलते देखा और उसे यशोदाके यहां पहुंचा दिया। कंसका भेजा कोई असुर आके यशोदाके घरमें उस स्थानमें छिप रहा जहां पलना पर देवकीका पुत्र पड़ा सोता था। पालनेके पीछे एक बड़ा भारी छकड़ा खड़ा था। दैवात् वह उलट गया और वह असुर जो बालकको मारने आया था, आपही दबकर मर गया। छकड़ेके गिरनेका शब्द सुनके यशोदा दौड़ी पालनेके समीप आयीं। बालकको जीवित और अक्षत शरीर पाकर परम प्रसन्न हुईं, पर देखती क्या हैं कि गिरे छकड़ेके नीचे एक असुर दबके मरा पड़ा है। यशोदा उसे देख परम भयभीत और विस्मित हुईं। जब वह बालक कुछ सयाना हो गया तो तृणावर्त्त नाम किसी असुरने कंसकी प्रेरणासे उसे मार डालना चाहा पर दैवात् एक ऐसी आंधी उसी अवसरमें आयी कि धूल और बवण्डरके चक्करमें पड़के वह असुर किसी गड्ढमें जा गिरा और मर गया।

वसुदेवजीने अपनी दूसरी स्त्री रोहिणीको भी गोकुलमें यशोदाहीके पास भेज दिया था क्योंकि उन्हें कंसके अत्याचारके कारण यह भी भय था कि कहीं कंस रोहिणीके

पुत्रको भी न मरवा डाले। नन्द और यशोदाके, यहां निवास करते वसुदेवके दोनों पुत्र सयाने होने लगे। जब उनके नामकरणका समय आया तो यदुवंशके कुलगुरु महाराज गर्ग गुप्त रीतिसे गोकुलमें आये। उन्होंने शुभ मुहूर्तमें रोहिणीके पुत्रका नाम बलराम और देवकीके पुत्रका नाम " कृष्ण " रक्खा।

बचपनमें बलराम और श्रीकृष्ण गोपकुमारोंके साथ खूब खेलते कूदते और प्रसन्न रहते थे। कभी बचपनकी उमङ्गमें श्रीकृष्ण मिट्टी खा लेते थे और जब यशोदाको यह समाचार मिलता तो वे उन्हें बहुत डांटतीं। बालचापल्य के कारण कभी कभी श्रीकृष्ण ऊधम भी मचाते। किसी गोपके घरमें घुसके उसके दूध दहीके बर्त्तन तोड़ फोड़ डालते, दूध पी जाते और दही खा लेते। यद्यपि इनके कारण यशोदाको अनेक उलाहने सुनने पड़ते थे तथापि यशोदा इससे खिन्न नहीं होतीं थीं गोप ग्वालियोंको समझा बुझाके कृष्णको डांट दिया करतीं। पर कृष्ण ऊधमसे बाज आने वाले न थे, इनका ऊधम बढ़ताही जाता था यहां तक कि उलाहना सुनते सुनते यशोदा तंग आ गयीं उन्होंने श्रीकृष्णको पकड़कर रस्सीसे बांध दिया और उस रस्सीको किसी पेड़में कस दिया कि अब न यह स्वच्छन्द घूम सकेगा और न ऊधम मचावेगा। कृष्णको वृक्षमें बांधके यशोदा तो उधर किसी गृह कार्यमें लगीं इधर कृष्णने जो बलपूर्वक रस्सीको खींचा तो पेड़ जड़से उखड़कर धमसे गिर पड़ा, उसका शब्द सुनके यशोदा हड़बड़ाकर दौड़ी आयीं और बच्चेको अक्षत शरीर और वृक्षको जड़से उखड़ा देख परम विस्मित और प्रसन्न हुईं।

जब नन्दने देखा कि गोकुलमें अनेक प्रकारके विघ्न होने लगे तो सब ग्वालवालोंकी संमति लेकर गोकुलका निवास छोड़ वृन्दावनमें जाना स्थिर किया और एक दिन सबको साथ ले, गृहस्थीकी सामग्रियोंको छकड़ोंपर लाद गोकुलको चल दिये और यमुनाकिनारे वृन्दावनमें जा टिके। जब बलराम और श्रीकृष्ण सात वर्षकी वयके हुए तो अहीरोंके बालकों समेत गौ चराते हुए वृन्दावनमें कभी यमुना किनारे और कभी इधर उधर खेतोंमें भी घूमा करते थे। एक दिन उन सूधी गौओंके बीचमें कोई हिंस्र स्वभाव दुष्ट बैल भी आ मिला, जिसने कृष्णपर हमला किया, कृष्णने पहिचान लिया कि यह कोई अन्य पशु यावत् गायगोरूमें आन मिला है। उसकी दुष्टता और नटखटीके कारण कृष्णने उसे मार डाला। फिर किसी दिन यमुनाकिनारे घूमते समय श्रीकृष्णको किसी प्रबल बकुलेने पकड़ लिया श्रीकृष्णने बलपूर्वक अपने हाथोंसे उसकी दोनों चोंच खींचके चीर डाला और वह दुष्ट बकुला मर गया। ऐसेही एक दिन मार्गमें कोई बड़ा अजगर श्रीकृष्णको लेटा हुआ देख पड़ा। श्रीकृष्णको देखतेही उस अजगरने उन्हें तथा और भी अनेक ग्वाल बालोंको निगलना चाहा पर श्रीकृष्णने फुर्तीसे उसे मार डाला, और निजका तथा गोपालबालकोंका प्राण सङ्कटसे बचाया। यह सब विपत्तियां कृष्णके ऊपर कंसके भेजे असुरोंकी दुरभिसन्धिसे आन पड़ी थी पर दैव-संयोगसे श्रीकृष्ण सभीसे बचते रहे।

किसी दिन श्रीकृष्ण बलराम समेत गोपालबालकोंके साथ खेलते कूदते किसी खजूरके बनमें जा पहुंचे और प्रसन्नतापूर्वक खजूरोंको बीन बीन खाने लगे। उस बनमें

एक परम भयङ्कर पशु रहता था उसने देखतेही दूरसे गोपालोंके बालकोंको खदेड़ा। जब वह पशु दौड़ता कूदता दुलत्ती फेंकता वहांतक चला आया जहां बलराम और श्रीकृष्ण ये दोनों भाइयोंने मिलके उसके पिछले पैर पकड़ उसे पृथ्वीपर दे मारा। पशु मर गया और अहीरोंके बालक बलराम और कृष्णकी शक्ति देख चकित हो गये। वृन्दावनके निकट यमुनाजलमें एक बड़ा विषधर नाग रहा करता था, जिसके विषसे यमुनाका जल दूरतक विषैला बन गया। एक दिन श्रीकृष्णजीने यमुनामें धँसके उस साँपको पकड़ लिया और फुर्त्तीसे भूमिपर लाकर पटक दिया, इससे वह सर्प ऐसा डरा कि तुरन्त यमुनाजीको छोड़ किसी और स्थानको भाग गया। एक दिन बलराम और कृष्ण जब वनमें अहीरके लड़कोंके साथ खेल कूदमें लगे थे तो प्रलम्ब नामक कंसका प्रेषित एक असुर आया और अहीरके बालकों-कासा वेष बनाके उनके साथ खेलने लगा। अवसर पाके प्रलम्ब बलरामजीको अपनी पीठपर उठाके ले भगा पर वह अधिक दूर न गया होगा कि बलरामजीने पहिचान लिया कि यह अहीर भेषधारी कोई हमारा शत्रु है। बलरामने दो चार घूंसे उसे ऐसे कसके लगाये कि प्रलम्ब चकराकर गिर पड़ा और बेसुध हो गया। बलरामजीने समझ लिया कि यह कोई दुष्ट असुर है और घूंसों मुक्कोंहीसे उस असुरको परलोक पठा दिया।

श्रीकृष्ण जब तनिक और सयाने हुए तो उन्होंने बांसुरी बजाना सीख लिया और पीताम्बर ओढ़े गौ चराते ग्वाल-बालों समेत बंशी बजाते परम सुहावने लगते थे। उनकी बंशीकी ध्वनिसे चकित हो वृन्दावनकी गोपकुमारियाँ भी

उन्हें देखने और उनके मुरलीकी तान सुननेको चारों ओरसे आ घेरती थीं।

श्रीकृष्णने देखा कि गोपियां वंशीका गान सुन बहुत सुखी होती हैं अतएव उनके मनोविनोदार्थ बहुधा शरद ऋतुकी चांदनी रातमें यमुना नदीके पुलिनमें जाके बांसुरी बजाते और गीत गाया करते थे। गोपियां इस समयमें आके श्रीकृष्णको घेर लेतीं थीं और मारे प्रेमके परवश सी हो जातीं थीं। कृष्ण कई बार उनमेंसे प्रत्येकके हाथ पकड़ उनके साथ नाचते गाते और अनेक भांतिके लड़कपनके खेल करते थे। यह नाचकूद रासलीलाके नामसे प्रसिद्ध है।

वृन्दावनमें निवास करते समय श्रीकृष्णने एक बार किसी बलिष्ट और दुष्ट सांडको और दूसरी बार किसी भयानक और नटखट घोड़ेको जो वृन्दावनके लोगोंको अपने प्रबल ऊधमके कारण व्याकुल किया करते थे मार डाला कि कंसहीके पक्षके दुष्ट असुर लोग ऐसे बलिष्ट और हानिकारक पशुओंको वृन्दावनमें छोड़ते थे कि जिसमें इनमेंसे कोई भी यदि अवसर पाकर वसुदेवके पुत्रोंका विनाश करडाले तो फिर कंसका भय मिट जाय। पर कंसका भय मिटना ईश्वरको इष्ट न था। इन उपायोंसे काम बनता न देख कंसने और चाल चली। अक्रूर नामक एक सज्जन यादवको वृन्दावनमें इसलिये भेजा कि दंगलका तमाशा दिखानेके बहाने वसुदेवके पुत्रोंको मथुरामें ले आवे और कंस अपने यहां रहनेवाले वीर पहलवानोंसे लड़ाकर उनका वध करा डाले। कंसकी आज्ञा पाकर अक्रूर वृन्दावनमें गया और नन्द और यशोदासे सब हाल कहा, उनकी अनुमतिसे अक्रूर दोनों वीरोंको रथपर बिठाकर मथुरापुरीमें ले आये।

राजदरबारमें आते समय कृष्ण और बलरामने कंसके अत्याचारोंकी अनेक बातें सुनीं और दोनों भाइयोंने इस दुष्टको मारनेका विचार किया। मार्गमें कंसका एक धोबी मिला, बलराम और कृष्णने उससे राजदर्बारमें जाने योग्य वस्त्र मांगे। धोबी भी आखिर कंसका धोबी था उसने जब वस्त्र न दिये और धृष्टता दिखायी तो दोनों भाइयोंने उसे मार डाला और गठरीमेंसे अपने योग्य वस्त्र निकालके पहिन लिये। इस घटनासे देखनेवालोंपर आतङ्क छा गया। कंसके मालीने दोनों कुमारोंको सुगन्ध पुष्पोंकी माला पहिना दी और कंसकी एक दासीने सुगन्ध द्रव्यभी दोनों भाइयोंके शरीरमें लगाये। राजभवनमें पहुँचनेके पूर्व ही कृष्णने उस नगरके एक बड़े धनुषको तोड़कर मानो उसके शब्द-द्वारा कंसको सूचना दी कि हम लोग मथुरामें आ पहुँचे खबरदार हो जाओ। राजद्वारपर मतवाला कुवलयापीड़ नामक खूनी हाथी मार्ग रोके खड़ा था। कंसके इशारेसे वह इनपर छोड़ा गया पर बलराम और कृष्णने अपने शारीरिक बल तथा चतुराईसे उसे मार डाला। कंसके यहां पले हुए दो पहलवानोंने जिनके नाम मुष्टिक और चाणूर थे इन राजकुमारोंको मल्लयुद्धके लिये ललकारा। बलराम तो मुष्टिकसे और कृष्ण चाणूरसे भिड़ पड़े और दोनों कुमारोंने दोनों पहलवानोंको पछाड़ दिया। अब तो कंस मारे भयके कांपने और अण्डबण्ड बकने लगा। कृष्ण इसी अवसरमें उछलकर उस मंचपर जा पहुंचे जिसपर कंस बैठा था और सबके देखते देखते उसे भी मारकर मंचसे नीचे गिरा दिया। कंस मरगया, भूभार उतर गया।

कंसके मरते ही चारों ओरसे जयजयकारकी ध्वनि होने लगी। अपने भाईको मरा देख कंसके शेष आठ भाई

भी वहां आ उपस्थित हुए। उन्होंने चाहा कि इन कुमारोंसे अपने भाईका बदला लें और इन्हें मार डालें पर बलरामजीने एक एक करके इन आठोंको भी कंसकी गतिको पहुँचा दिया। कृष्णने मृत कंसके केशोंको पकड़कर शवको भूमि-पर घसीटते हुए यमुनाके मर्घटपर पहुँचा दिया वहां महा-राज उग्रसेनकी रानी और कंसकी पटरानियोंको सान्त्वना देकर कंसकी अन्त्येष्टि क्रिया करवायी। इस प्रकार मथुराके यदुवंशियोंको कंसके अत्याचारसे छुड़ाकर कृष्णने महाराज उग्रसेनको यादवोंका राजा बनाया। उन्हेंही मथुरामें राज-सिंहासनपर फिर बिठाया।

यहांसे निपटकर दोनों भाई बलराम और कृष्ण अव-न्तीमें सान्दीपनि नाम गुरुके पास गये। सान्दीपनिका जन्मस्थान काशीथा, यह शस्त्र और शास्त्र विद्यामें परम निपुण थे। इन्होंने दोनों कुमारोंको शस्त्र और शास्त्रविद्या तथा चौसठ कलाएं बहुत शीघ्र सिखा दीं। सान्दीपनिके पुत्रको शङ्ख नाम एक दुष्ट राक्षस जो पश्चिम समुद्रके तीरपर रहता था चुरा ले गया था। कृष्ण और बलराम गुरुकी आज्ञा पाकर समुद्रके तीर गये। शङ्खको युद्धार्थ ललकारा और अन्तमें उसे मार डाला। जिस देशमें यह राक्षस रहता था उसका नाम पञ्चजन था वहांपर एक बड़ा शङ्ख भी था, जो इस यात्रामें कृष्णके हाथ पड़ा यही शङ्ख पाञ्चजन्यके नामसे प्रसिद्ध है। जब शङ्ख राक्षसके यहां कृष्णने सान्दीपनि गुरुके पुत्रको न पाया तो उसकी यमपु-रीमें खोज की और अन्तमें पता लगाके उसे ढूंढ़ लिया और वहांसे गुरुपुत्रको लेकर गुरुके सामने उपस्थित हुए। गुरुने परम प्रसन्न होकर अपने दोनों शिष्योंको अनेक आशीर्वाद दिये।

मगध देशके राजा जरासन्धने जब अपने जामाता कंसके बधका समाचार सुना तो बड़ी सेना लेकर उसने कई बार मथुरापर चढ़ाई की, पर बलराम और कृष्णके भुजबलके आगे उसकी एक न चली। उसे प्रत्येक बार पराजित होके पीछे हटना पड़ा। इसी समय जरासन्धका मित्र कालयवन पश्चिम देशका राजा था। जरासन्धके उभाड़नेसे वह भी मथुरापर चढ़ आया। बलराम और कृष्णके रहते वह भी मथुरापर अपना अधिकार न जमा सका पर यदुवंशी लोग जरासन्ध और कालयवनकी चढ़ाइयोंसे भयभीत हो स्थान परित्यागका विचार करने लगे।

इस समयमें कुशस्थली अर्थात् द्वारकामें इक्ष्वाकुके पुत्र शर्यातिके वंशज रैवतनाम राजाका राज्य था और यह प्रदेश शर्यातिके पुत्र आनर्त्तके नामसे पुकारा जाता था। रैवतके कोई पुत्र न था केवल रेवती नाम एक कन्या थी। रैवतने उसका विवाह वसुदेवके पुत्र बलरामसे कर दिया और अपना राजपाट कन्या तथा जामाताको सौंप दिया और स्वयं वनवासी बनकर तपस्या करने लगा। बलराम और श्रीकृष्णने विचारा कि मथुरामें यदुवंशी जरासन्ध और कालयवनकी निरन्तर चढ़ाइयोंसे भयभीत हो रहे हैं। अतएव इन्हें द्वारकामें टिकाना अच्छा होगा। दोनों भाइयोंकी संमतिसे सभी यादवगण मथुराको छोड़ द्वारकाको चले आये और यहीं बस गये। यह पुरी पश्चिम समुद्रमें एक द्वीपपर स्थित है। शत्रुकी सेनाका यहां सहजमें पहुँचना असम्भव था अतएव यदुवंशीलोग यहां सुखचैनसे निवास करने लगे। इधर पीछे शूरसेन देश या मथुरापर जरासन्धने अपना अधिकार कर लिया।

उन दिनों विदर्भ देशके राजा भीष्मककी कन्या रुक्मिणी भारतवर्ष भरमें परम सुन्दरी गिनी जाती थी। यद्यपि भीष्मक और उसके जेठे पुत्र रुक्मकी इच्छा थी कि रुक्मिणी-का विवाह चेदि देशके राजा शिशुपालसे किया जाय पर निरन्तर श्रीकृष्णके बल पराक्रम और गुणगरिमाका समाचार सुनके रुक्मिणीने चाहा कि मेरा विवाह श्रीकृष्णसे हो। रुक्मने शिशुपालसे रुक्मिणीका विवाह करना स्थिर किया, पराक्रमी चेदिराज शिशुपाल एक बड़ी सेनाके साथ अपने मित्र जरासन्ध आदिको लेकर विदर्भ नगरमें आन पहुँचा। रुक्मिणी, यह समाचार सुनके बहुत घबरायी उसने तुरन्त एक ब्राह्मणद्वारा द्वारकामें श्रीकृष्णके पास यह संदेशा भेजा कि महाराज मैं आपसे विवाह करना चाहती हूं और मेरे बन्धुजन मुझे चेदिराज शिशुपालके हाथ सौंपना चाहते हैं। आप कृपाकर शीघ्र आइये और मेरा उद्धार कीजिये। राक्षस रीतिसे मुझे हर ले चलिये और मेरा पाणिग्रहण कीजिये। ब्राह्मणसे यह संदेसा सुनकर कृष्ण तुरन्त विदर्भ देशको पधारे और उनकी सहायतार्थ बलरामजी भी यदुवंशियोंकी एक सेना लेके पीछे पीछे चल दिये। जब रुक्मिणी कुल-रीतिके अनुसार विवाहसे एक दिन पहले नगरसे बाहर ग्रामदेवीके पूजनार्थ गयी थी तभी अवसर पाके श्रीकृष्णने उसे अपने रथपर बैठाकर द्वारकापुरीकी ओर चल पड़े। समाचार पाके शिशुपाल आदिने कृष्णका पीछा करना चाहा पर बलराम और यदुवंशियोंकी सेनाने उन्हें मार भगाया। हां, रुक्मिणीका भाई रुक्म आगे बढ़के कृष्णसे लड़नेको उद्यत हुआ। कृष्णने उसे पराजित करके चाहा कि मार डालें पर रुक्मिणीके आग्रहसे केवल उसको विकृतवेश बनाके

छोड़ दिया। द्वारकामें आके श्रीकृष्णने क्षत्रियोंकी रीत्यनुसार रुक्मिणीका पाणिग्रहण किया।

द्वारकामें सत्राजित नामका एक यादव रहता था, जिसके पास एक बहुमूल्य मणि स्यमन्तक नामकी थी। एक बार श्रीकृष्णने उससे कहा था कि तुम इस मणिको महाराज उग्रसेनको दे दो, पर सत्राजितने यह बात स्वीकार न की। एक दिन सत्राजितका भाई प्रसेन उस मणिको लेके वनमें आखेट खेलने गया, किसी सिंहने प्रसेनको मार डाला और उस चमकीली मणिको लिये जा रहा था कि वस प्रदेशके किसी राजाने जिसका नाम जाम्बवान् था उसे देखा। जाम्बवान्ने तुरन्त सिंहको मार डाला और मणिलेजाके अपनी कन्या जाम्बवतीको सौंप दी। इधर द्वारकामें यह किंवदन्ती फैली कि प्रसेनको मारके कृष्णने सत्राजितकी मणि ले ली है। कृष्णसे यह कलङ्क न सहा गया वे तुरन्त वनमें प्रसेनको खोजने निकले। प्रसेन और सिंहको वनमें मरा पाया और पता लगाते लगाते जाम्बवान्के निवास स्थानतक पहुँचे उन्हें विदित हो गया कि बहुमूल्य मणि जाम्बवान्ने ली है। निदान जब युद्धके लिये ललकारकर जाम्बवान्को कृष्णने परास्त किया तो उसने अपनी कन्या जाम्बवती समेत स्यमन्तक मणि कृष्णको अर्पण कर दी। कृष्ण उन्हें ले द्वारकामें आये और सत्राजित्को उसकी मणि देके सब हाल कह सुनाया। सत्राजितको स्यमन्तकके फिर पानेका हर्ष तो अवश्य हुआ पर अपने भाईकी मृत्यु और श्रीकृष्णपर मिथ्या दोषारोपणका अपराध उसे व्याकुल करने लगा। अन्तमें सत्राजितने अपने अपराधका प्रायश्चित्त करनेके लिए अपनी कन्या "सत्यभामा" कृष्णको विवाह दी और यौतुकमें वह स्यमन्तक मणि भी उन्हें दे दी। पर श्रीकृष्णने उस मणिको नहीं लिया और सत्राजितके पास फेर दिया।

बारहवां अध्याय

पाण्डव और कौरव

वसुदेवकी बहिन कुन्ती, हस्तिनापुरके राजकुमार पाण्डुको ब्याही थी और पाण्डुके युधिष्ठिर आदि पांच पुत्र थे। पाण्डुका देहान्त युवावस्थामेंही हो गया था अतएव हस्तिनापुरका राज्य उनके बड़े भाई जन्मांध धृतराष्ट्रने जो राजसिंहासनपर पहले नहीं बैठने पाया था अपने चाचा भीष्म और ब्राह्मण मंत्री द्रोणकी सहायतासे सँभाल रक्खा था।

धृतराष्ट्रके दुर्योधनादि अनेक बेटे थे जो स्वभावसे ही दुष्ट और स्वार्थ-परायण थे। वे पाण्डवोंसे बैर रखते थे और धृतराष्ट्र अपने पुत्रोंकी ममताके कारण पाण्डवोंकी कुछ सहायता न करता था। होते होते दुर्योधनकी दुष्टतासे पाण्डवोंको हस्तिनापुर छोड़ना पड़ा। धृतराष्ट्रने उनके-लिये वारणावतमें एक लाक्षागृह बनवाके उनके रहनेका स्थान नियत किया। पाण्डव अपनी माता समेत उसमें जा रहे। दुर्योधनकी सम्मतिसे उस लाक्षागृहमें आग लगा दी गयी। लोगोंने समझा कि पांचो पाण्डव अपनी माता समेत उसीमें जल मरे। पर पाण्डवोंको यह समाचार पहलेहीसे विदुरद्वारा मिल गया था कि लाक्षागृह जलाया जायगा इस लिए वे वहांसे किसी प्रकार बच निकले और ब्राह्मणोंके वेषमें अनेक स्थानोंमें घूमते फिरे। पाण्डव लोग अपनी माता समेत जीवित हैं यह समाचार किसीको विदित

नहीं था। जब यह समाचार द्वारकामें पहुँचा तो श्रीकृष्ण अपनी फुआ और फुफेरे भाइयोंका ठीक ठीक समाचार जाननेके अर्थ हस्तिनापुर आये। उधर द्वारकामें कृष्णकी इस अनुपस्थितिमें अक्रूर और कृतवर्मा नामक यादवोंने एक दूसरे यादव शतधन्वाको यह संमति दी कि तुम सत्राजित्-को मारके उससे स्यमन्तक मणि छीन लो। शतधन्वा साहसी पुरुष था उसने तुरन्त अक्रूर और कृतवर्माकी बात मान ली और सत्राजितको मारके उसकी मणि छीन ली। सत्यभामा अपने पिताकी मृत्युसे बहुत व्याकुल हुई और शीघ्र स्वयं हस्तिनापुरमें जाकर कृष्णको यह समाचार दिया कि शतधन्वाने मेरे पिताको मारके स्यमन्तक मणि छीन ली है। श्रीकृष्णको यह समाचार सुनके शीघ्रही द्वारकाको लौटना पड़ा। उनके आनेका समाचार सुन अक्रूर कृतवर्मा और शतधन्वा तीनों द्वारकासे निकल भागे। निदान कृष्णने शतधन्वाका पीछा किया। वह उत्तरपूर्वमें मिथिलापुरीकी ओर भागा जा रहा था पर जब देखा कि कृष्णसे बचना कठिन है तो उसने अक्रूरके हाथमें मणि सौंप दी। श्रीकृष्ण-जीने उसे पकड़ लिया और उसका सिर काटके सत्यभामाके पिताकी मृत्युका वैर चुकाया। पर जब शतधन्वाके पास स्यमन्तक मणि न मिली तो वे परम चकित होके द्वारकाको फिर आये। उधर अक्रूर गया आदि तीर्थोंमें यात्रा करते और पिण्डदान आदिकी क्रिया समाप्त करके कुछ दिन पीछे द्वारकामें लौटे। अक्रूरने स्यमन्तक मणि श्रीकृष्णको देदी और कृष्णने "तुमही इसे अपने पास रक्खो" ऐसा कहके फेर दिया।

एक बार घूमते घूमते श्रीकृष्णने कालिन्दी नाम एक कन्याको यमुना किनारे तपस्या करते देखा जब उन्हें यह वि-

दित हुआ कि यह हमहीसे विवाह किया चाहती है तो कृष्णने यथोचित रीतिसे कालिन्दीके साथ विवाह कर लिया। इसी प्रकार कृष्णने जब यह सुना कि हमारी फुआ राज्याधिदेवीकी कन्या मित्रविन्दा जो अवन्ति देशके राजाकी कन्या थी मुझपर अनुरक्त है और उसके भाई विन्द तथा अनुविन्द इसमें विरोध करते हैं तो महाराज कृष्ण स्वयं जाके उसे हर लाये और द्वारकामें लाके उसके साथ अपना विवाह किया। कोशलदेशके राजा नग्नजित्‌ने यह प्रतिज्ञा की थी कि जो बलवान राजकुमार हमारे यहां के सात दुदुन्ति बैलोंको एक साथ पकड़के बांध दे उसे मैं अपनी कन्या सत्या विवाह दूँ। यह समाचार सुनकर श्रीकृष्ण वहां गये और राजाकी अनुमतिसे उन्होंने सातों बैलोंको एक साथ पकड़कर एक रस्सीमें बांध दिया। राजा नग्नजित्‌ने अपनी प्रतिज्ञानुसार कृष्णका विवाह सत्याके साथ कर दिया। कृष्णकी फुआ श्रुतकीर्त्तिके भद्रा नामक एक कन्या थी। उसके सन्तर्दनादिक पांचों भाई परम प्रबलथे उन्होंने भद्राके लिये योग्य वर श्रीकृष्णहीको समझा अतएव उन्हें अपने यहां बुलाकर आदरपूर्वक कृष्णके हाथमें अपनी भगिनी भद्राको सौंप दिया। जब भद्र देशके राजाकी कन्या लक्ष्मणाका स्वयंवर हुआ तो श्रीकृष्ण वहां भी अकेले चले गये और उसे हरके द्वारकामें ले आये और विधिपूर्वक उसके साथ अपना विवाह किया। इस प्रकार रुक्मिणी, जाम्बवती, सत्यभामा, कालिन्दी, मित्रविन्दा, सत्यभद्रा, और लक्ष्मणा, ये आठों राजकन्यायें श्रीकृष्णकी पत्नियोंमें मुख्य थीं।

उनदिनों प्राग्ज्योतिषपुर आधुनिक आसाम देशमें जो "नरक" नामका राजा राज्य करता था वह परम

और क्रूर था वह अपने आसपासके देशवालोंको बुरी तरह सताया करता था। श्रीकृष्णके कानोंतक भी उसके अत्याचारकी शिकायत पहुँची कि पूर्वदेशके निवासी लोग नरकके अत्याचारसे व्याकुल हैं। श्रीकृष्णने पीड़ित प्रजाका दुःख दूर करना अपना कर्त्तव्य मान नरकको नरकमें भेजनेकी ठान ली। राजा नरकने भरपूर लड़ाई की पर अन्तमें युद्धस्थलमें मारा गया। उसने अनेकों स्त्रियों और कन्याओंको पकड़ कर बन्दीगृहमें डाल रक्खा था। कृष्णने उन सबका उद्धार किया।

वीरता और पराक्रमके अनेक कार्यके करनेसे उस समयके क्षत्रियोंके बीच श्रीकृष्णकी बड़ी प्रतिष्ठा हो चली थी। यह देखकर काशीके राजा पौण्ड्रकके चित्तमें बड़ी डाह उत्पन्न हुई। उसने कृष्णसे यह कहला भेजा कि मैं अपनेको भारतवर्षमें सबसे अधिक प्रबल समझता हूँ यदि तुम्हें विशेष शक्तिमान् होनेका अभिमान हो तो हमारे साथ आके युद्ध करो अन्यथा हमारी अधीनता स्वीकार करो। उग्रसेनकी आज्ञा पाके श्रीकृष्णने काशीपुरीमें जाके पौण्ड्रकसे युद्ध किया और उसे मारडाला।

श्रीकृष्णके रुक्मिणीसे अनेक पुत्र हुए जिनमेंसे प्रद्युम्न सबसे जेठे थे। प्रद्युम्नका विवाह भोजकटके राजा रुक्मिणीके भाई रुक्मकी कन्यासे हुआ। प्रद्युम्नके पुत्रका नाम अनिरुद्ध था। अनिरुद्धका विवाह इसी रुक्मकी पोतीसे हुआ। श्रीकृष्ण और बलराम आदि सभी यदुवंशी इस अवसरपर भोजकटमें पधारे थे। विवाह कार्यके निपट जानेके अनन्तर रुक्मने बलरामके साथ द्यूत खेलना प्रारम्भ किया और छलसे उनका बहुत सा धन ले लिया। कलिङ्ग

देशका राजा भी इस समय भोजकटमें उपस्थित था वह बलरामको हारते देख अपनी हँसी न रोक सका इसपर बलरामको यहांतक क्रोध आया कि रुक्मको तो मारही डाला और कलिङ्ग देशके राजाके दांत उखाड़ लिये।

इस समय भारतवर्षके दक्षिण* ओर शोणितपुर नाम स्थानमें जो आधुनिक कर्नाटकके पास है बाण नामका असुर राज्य करता था। यह शिवजीका बड़ा भक्त था। बाणकी कन्या उषा कृष्णके पौत्र अनिरुद्धके सौन्दर्यपर मुग्ध थी और उनके साथ विवाह करना चाहती थी। उसका संदेश पाके जब अनिरुद्ध उषासे भेंट करने गये तो बाणने उन्हें पकड़के बन्दीगृहमें डाल लिया। श्रीकृष्णजी यह समाचार सुनतेही शोणितपुर पहुँचे और युद्धमें बाणको परास्त करके अपने पौत्र अनिरुद्धको बन्दीगृहसे छुड़ा लाये।

पाञ्चाल देशके राजा द्रुपदने अपनी कन्या द्रौपदीका स्वयंवर रचा। द्रुपदने एक भ्रामक यन्त्रके ऊपर लक्ष्य टँगवाके उसके पास एक भारी धनुष रखवा दिया, स्वयंवरमें यह पण रक्खा कि जो इस दृढ़ धनुषको चढ़ाकर भ्रामक यन्त्रके भीतरसे बाण चलाकर लक्ष्यको भेदेगा उसीको द्रौपदी विवाही जायगी। कौतूहलवश श्रीकृष्णजी भी इस स्वयंवरमें जा पहुँचे। अनेक देशोंके राजकुमार इस स्वयंवरमें उपस्थित थे पर पणके पूर्ण करनेका साहस कोई न कर सका। अन्तमें एक युवा कुमार जो ब्राह्मणोंकी पंक्तिमें बैठा था लक्ष्य बेधनेके लिये उठा। लोगोंने समझा कि यह कोई वीर ब्राह्मण है। उस कुमारने दृढ़ धनुषको उठाके

---

* भरतपुरके राज्यमें 'बयाना' के प्रसिद्ध किलेको अनेक लोग युक्ति प्रमाण द्वारा बाणकी राजधानी प्रमाणित करते हैं, लोकमें प्रसिद्ध भी ऐसाही है। सम्पादक

शर सन्धानकर भ्रामक यन्त्रके बीचसे लक्ष्यको पहिलेही निशानेमें वेध दिया। किन्तु यह कुमार मध्यमपाण्डव अर्जुन था। लोगोंने जो समझ रक्खा था कि पाण्डवलोग अपनी माता समेत लाक्षागृहमें जल गये यह बात अब मिथ्या सिद्ध हुई।

पाण्डव लोग ब्राह्मणोंके वेषमें भिक्षासे निर्वाह करते देश विदेश घूमते फिरते राजा द्रुपदकी कन्याके स्वयंवरका समाचार सुनकर पाञ्चाल देशकी राजधानीमें आ उपस्थित हुए थे। मध्यम पाण्डव अर्जुनने लक्ष्यको वेध दिया और जेठे पाण्डव युधिष्ठिरकी संमति और व्यासजीकी आज्ञासे राजा द्रुपदने द्रौपदीका विवाह पांचो पाण्डवोंसे कर दिया। यहीं श्रीकृष्णकी पाण्डवोंसे भेंट हुई। उन्हें सकुशल पाके कृष्ण परम प्रसन्न हुए और श्रीकृष्ण अपनी फुआ कुन्तीके चरणोंपर सिर धर पाण्डवोंसे मिल भेंट कर घर लौट आये। कौरवोंने जब देखा कि पाण्डव जीवित हैं और अपने पराक्रमसे पाञ्चाल देशके दुर्जय वीर राजा द्रुपदके नातेदार हो गये और इस प्रकार अपना परम सहायक साथी मित्र बना लिया है तो दुर्योधनादिकने उन पाण्डवोंको हस्तिनापुरमें बुला आधा राजपाट सौंप, उनसे मेल कर लिया। युधिष्ठिर आदि पाण्डव इन्द्रप्रस्थपुरीको जो आधुनिक दिल्लीके पास है अपनी राजधानी बनाके सुखपूर्वक रहने लगे।

पाण्डवोंकी और श्रीकृष्णकी परस्परकी प्रीति दिन दिन बढ़ती ही गयी। कुछ दिन पीछे मध्यम पाण्डव अर्जुन घूमते घामते द्वारका जा पहुँचे। श्रीकृष्ण और बलरामने उनका बड़ा आदर सत्कार किया। वसुदेवकी कन्या सुभद्रा सर्वांग सुन्दरी थी अर्जुनकी दृष्टि उसपर पड़ी। अर्जुन सुभद्रा-

के रूपपर मोहित हो गये। श्रीकृष्णने यह बात ताड़ ली। उन्हें भी यह सम्बन्ध इष्ट था इस कारण उन्होंने अर्जुनको संमति दी कि तुम सुभद्राको बलपूर्वक हर ले जाओ। अर्जुनने श्रीकृष्णकी बात मान ली और अवसर पाकर रैवतक गिरिपर उत्सवविशेषमें गयी हुई सुभद्राको बरबस अपने रथपर बैठा इन्द्रप्रस्थकी ओर ले उड़े। जब यह समाचार द्वारकापुरीमें पहुँचा तो सभी यदुवंशी और विशेषकर बलराम अत्यन्त अप्रसन्न हुए और चाहा कि अर्जुनका पीछा करके उन्हें पकड़कर यथोचित दण्ड दें। पर जब कृष्णने इसके विपरीत सुभद्राके अर्जुनसे विवाह करनेकी संमति दी और इस विषयमें अपनी युक्तियां भी सुनायीं तो यदुवंशियोंने कृष्णका कहना स्वीकार कर लिया। यदुवंशी लोग अर्जुनको आदरपूर्वक द्वारकापुरीमें लौटा लाये और शास्त्रोक्त रीतिसे उनका विवाह सुभद्राके साथ करा दिया। एक वर्षतक सुखपूर्वक द्वारकापुरीमें निवास करके अर्जुन सुभद्रा समेत इन्द्रप्रस्थ चले गये। विदाईके समय अनेक प्रकारके बहुमूल्य वस्त्र, आभूषण, दासी, दास, पशु आदि पदार्थ यदुवंशियोंने अर्जुनको यौतुकमें दिये।

इस प्रकारसे पाण्डवों और कृष्णमें निकटका सम्बन्ध और घनी मित्रता और भी दृढ़ हो गयी। कृष्णकी संमतिसे अर्जुनने इन्द्रप्रस्थसे निकटस्थ यमुनातटके प्रदेशोंको जहां उन दिनों घना जङ्गल था और जो खाण्डववनके नामसे प्रसिद्ध था आग लगाके जला दिया और उस भूमिको मनुष्योंके निवास और खेती करनेके योग्य बना दिया। पाण्डवोंके राज्यकी सीमा इस रीतिसे और भी अधिक विस्तृत हो गयी। श्रीकृष्ण और सब यदुवंशी क्षत्रियोंकी सहायतासे पाण्डव उत्तरी हिन्दुस्तानमें परम प्रबल राजा हो गये। थोड़े

दिनों पीछे कृष्णाकी बहिन सुभद्राको अभिमन्यु नामक एक पुत्र हुआ जिसके जन्मोत्सवमें युधिष्ठिरने ब्राह्मणोंको बहुत कुछ दान दिया।

कृष्णकी सहायता पाके युधिष्ठिरने उत्तरी भारतवर्षमें अपनेको सबसे अधिक प्रबल और प्रतापी राजा समझके राजसूय यज्ञ करना चाहा। इस विषयमें कृष्णकी पूरी संमति थी पर विचारयोग्य बात केवल इतनीही थी कि उन दिनों मगध देशका राजा जरासन्ध परम प्रबल और क्षत्रियोंका मुखिया समझा जाता था। यदि वह किसी भांति पाण्डवोंके वशीभूत हो जाता तो फिर पाण्डवोंके राजसूय-यज्ञमें किसी प्रकारकी बाधा पड़नेका भय नहीं था। परन्तु जरासन्धको वशमें लाना कोई सहज कार्य न था। निदान पाण्डवों और श्रीकृष्णका यह विचार हुआ कि जरासन्धसे मल्लयुद्ध करके यदि उसे मार डाल सकें तो मगध देश सहज-ही पाण्डवोंके वशमें आ जाय। युधिष्ठिरको यह विचार भाया और श्रीकृष्ण द्वितीय पाण्डव भीमसेन और मध्यम पाण्डव अर्जुनको साथ लेके जरासन्धसे लड़नेको चले। जरासन्धने जब इन लोगोंका अभिप्राय सुना तो बड़ी वीरतासे भीम-सेनके साथ मल्लयुद्ध करनेको सन्नद्ध हो गया। मल्लयुद्धमें श्रीकृष्णकी सहायतासे भीमसेनने जरासन्धको पछाड़के भूमिपर गिरा दिया और पांव पकड़के उसके शरीरको चीर डाला। जरासन्धके मरनेपर उसके पुत्र सहदेवको जरा-सन्धकी गद्दीपर बिठाकर उसे पाण्डवोंने अपना वशवर्त्ती मित्र बना लिया।

इस रीतिसे सबसे प्रबल शत्रु जरासन्धको मारके पाण्ड-वोंने अपनेको चक्रवर्त्ती राजा प्रसिद्ध करके राजसूय यज्ञ करनेकी घोषणा की। भारतवर्षके सभी प्रान्तोंके राजा लोग

यथोचित भेंट लेके पाण्डवोंकी सभामें उपस्थित हुए। युधिष्ठिरने सबका बड़ा आदर सत्कार किया और उनके निवासयोग्य स्थानोंका प्रबन्ध कर दिया। राजसूय यज्ञमें अवभृथस्नानके अनन्तर जब उपस्थित राजाओंकी पूजाका समय आया तो युधिष्ठिरके पितामह भीष्मने सबसे पहिले श्रीकृष्णहीको पूजा देनेका प्रस्ताव उठाया। इसमें और तो किसी राजाने कोई आपत्ति न की, पर चेदि देशका राजा शिशुपाल न सह सका। वह उठ खड़ा हुआ और कहने लगा कि कृष्णको प्रथम पूजा देनेमें हम सब लोगोंका बड़ा अपमान हो रहा है। क्योंकि न तो अवस्था, न कुल और न योग्यतामें ही कृष्ण उपस्थित क्षत्रिय राजाओंमें सबसे श्रेष्ठ माने जा सकते हैं। भीष्म आदिको शिशुपालकी यह बातें भली न लगीं उन्होंने नाना प्रकारसे कृष्णकी श्रेष्ठता प्रतिपादित की, पर शिशुपालने एक न सुनी। वह कृष्णको गिन गिन कर गालियां देने लगा, और खुल्लमखुल्ला उनका अपमान करने लगा। श्रीकृष्णने जब उसकी दुष्टता हदसे बढ़ती देखी तो अपना सुदर्शनचक्र चलाकर उसका सिर काट दिया। फिर किसी राजाका साहस कृष्णसे भिड़नेका न हुआ। सब चुप रह गये। कृष्णको प्रथम पूजा दी गयी। राजसूयके सब कृत्य यथारीति सम्पादित हुए और पाण्डवोंने हर्षपूर्वक यज्ञ समाप्त किया।

द्वारकामें ही थे, उन्होंने युद्धक्षेत्रमें शाल्वका सामना किया। पहले तो शाल्वके शस्त्रप्रहारसे प्रद्युम्न निश्चेष्ट हो गये और सारथी उन्हें लेके रणभूमिसे भाग आया पर पीछेसे जब प्रद्युम्नकी मूर्च्छा दूर हुई तो सारथिको डांटडपटके फिर रणक्षेत्रमें पहुँचे, अबकी बार प्रद्युम्नके बाणोंसे शाल्व बहुतही घायल हो गया, वह यह कहता हुआ रणभूमिसे भाग निकला कि मेरे मित्र शिशुपालका घातक नराधम कृष्ण कहां है? यदि वह मेरे सामने आता तो मैं उसे बिना मारे न छोड़ता। जब राजसूययज्ञ समाप्त होनेपर कृष्ण द्वारका पुरीको लौटे तो उन्होंने शाल्वके किये अनर्थोंको देखा और जब यह सुना कि वह अनेक कठोर और अनुचित बातें कहता हुआ गया है तो कृष्ण उग्रसेन आदि वृद्धोंकी आज्ञा लेके शाल्वकी पुरीको गये और उसे युद्धार्थ ललकारा। शाल्वने अपनी पुरीसे बाहर निकलके कृष्णके साथ घोर संग्राम किया पर अन्तमें श्रीकृष्णने उसे यमसदनका अतिथि बनाकर ही छोड़ा।

शिशुपाल और शाल्वका मित्र दन्तवक्र भी जो करूष देशका राजा था कृष्णके द्वारा अपने मित्रोंका वध सुनके बड़ा क्रुद्ध हुआ। उसने भी श्रीकृष्णसे घोर युद्ध किया और अन्तमें कृष्णने उसे भी उसके मित्रोंके पास पहुँचा दिया। इस रीतिसे श्रीकृष्णने अनेक दुष्ट और प्रजा पीड़क अत्याचारी राजाओंका संहार किया।

शाल्वादिका वध करके जब कृष्ण द्वारकापुरीमें आये तो अपने चचेरे भाई सात्यकिसे सुना कि "इन्द्रप्रस्थके राजसूय यज्ञमें पाण्डवोंकी बढ़ती देख दुर्योधनके मनमें बड़ी डाह उत्पन्न हुई है और उसने अपने मामा शकुनि और प्रिय मित्र कर्णकी संमतिसे युधिष्ठिरको हस्तिनापुरमें द्यूत खेलनेके लिये बुलाया

और राजनीत्यनुसार युधिष्ठिरको द्यूत खेलना ही पड़ा। शकुनिने छलसे युधिष्ठिरका सब राजपाट, पांचों पाण्डवों और द्रौपदीको भी जीत लिया। दुर्योधनकी आज्ञासे दुःशासन द्रौपदीको कौरवकी भरी सभामें केश पकड़के खींच ले गया और चाहता था कि सबके सामने उसे नङ्गी कर डाले पर दुःशासन अपने कार्यमें सफल नहीं होने पाया। अन्धे राजा धृतराष्ट्रने उठके कौरवोंको बहुत डांटा डपटा और द्रौपदीके कथनानुसार उसने युधिष्ठिरका राज पाट आदि सब फेर दिया। परन्तु दुर्योधनादिसे रहा न गया उन लोगोंने पुनः एक बार युधिष्ठिरको द्यूत खेलनेके लिये बुलाया और यह पण रक्खा 'कि यदि युधिष्ठिर अबकी बार हारें तो पांचों भाइयों और द्रौपदी समेत बारह वर्ष वनमें रहें और फिर तेरहवें वर्ष ऐसा गुप्त वास करें कि किसीको उनका पता न लगने पावे। यदि तेरहवें वर्ष पता लग जाय तो फिर बारह वर्षतक पांचों पाण्डवोंको वनवास करना पड़ेगा। निदान इस बार भी छलसे युधिष्ठिरको शकुनिने जीत लिया और पणके अनुसार अब पांचों पाण्डव अपने परिवार समेत इन्द्रप्रस्थपुरीके राजपाटको छोड़ बड़े क्लेशके साथ वनवास कर रहे हैं।"

सात्यकिसे पाण्डवोंका यह इतिहास सुन कृष्णको बहुत आश्चर्य और दुःख हुआ। वे शीघ्र कुछ यदुवंशियोंको साथ ले वनमें पाण्डवोंके पास पहुंचे। युधिष्ठिरसे भेंट करके कृष्णने कहा कि मैं अभी दुर्योधन, दुःशासन, कर्ण, और शकुनि आदिको मारकर आपको हस्तिनापुरका राज्य दे देता हूँ कहिये क्या आज्ञा है? इसपर अर्जुनने श्रीकृष्णको अनेक प्रकारसे समझा बुझाके उनका क्रोध शान्त किया और कहा कि पणके अनुसार अब तेरह वर्ष बीत लेनेदीजिये फिर जो

कुछ करना होगा सो देखा जायगा। श्रीकृष्णके सामने द्रौपदी अपनी दुर्दशाकी कथा सुनाके बहुत रोयी। श्रीकृष्णने उसे अनेक प्रकारसे धीरज देके कहा कि थोड़े दिन पीछे कौरवोंकी भली भांति दुर्गति होगी। तुम अभी धीरज धरो और घबराओ मत। कृष्णने युधिष्ठिरसे यह भी कहा कि यदि मैं द्वारकामें होता और शाल्वको मारने न गया होता तो मैं अवश्य हस्तिनापुरमें आके राजा धृतराष्ट्रको द्यूतक्रीड़ाका बुरा परिणाम भली भांति समझाके ऐसा न होने देता और यदि दुष्ट दुर्योधनादिक समझानेसे न मानते तो मैं बलपूर्वक उन्हें परास्त करके द्यूतक्रीड़ा बन्द करवा देता। निदान पाण्डवोंको अनेक प्रकारका आश्वासन देके कृष्ण सुभद्रा और अभिमन्युको अपने साथ ले द्वारकापुरीको लौट आये। पाण्डवोंने जैसे तैसे बारह वर्षका बनवास और तेरहवें वर्षके गुप्तवासका समय बिताया। तेरहवें वर्षमें पाण्डवलोग द्रौपदी सहित भेष बदलके गुप्त रीतिसे मत्स्य देशके राजा विराटके यहां रहे।

तेरहवां अध्याय

महाभारत

वर्षभर गुप्त रहनेके पीछे जब पाण्डव, प्रकट हुए तो उनकी वीरताको देखके विराट परम प्रसन्न हुआ और उसने अपनी बेटी उत्तराका विवाह अर्जुनके पुत्र अभिमन्युके साथ करना स्थिर किया। श्रीकृष्णके पास यह संदेसा भेजा गया और अभिमन्युको लेकर श्रीकृष्ण विराटकी पुरीमें पहुँचे। शुभ मुहूर्त्तमें अभिमन्युने उत्तराका पाणिग्रहण किया। युधिष्ठिरने इस सुअवसरपर ब्राह्मणोंको बहुत कुछ दान दिया और अनेक प्रकारसे आनन्द मनाया। इस समय विराट्के देशमें न केवल यदुवंशी किन्तु और सब क्षत्रिय लोग भी जो पाण्डवोंके नातेदार थे विवाहोत्सवमें उपस्थित हुए।

विवाहोत्सवके अनन्तर युधिष्ठिरने कौरव-सभामें दूत भेजकर अपना आधा राजपाट मांगा, पर जब दुर्योधनने कोरा उत्तर दिया तो युधिष्ठिरादिके चित्तमें बड़ा क्षोभ उत्पन्न हुआ। अन्तमें युधिष्ठिरादिकी सम्मतिसे स्वयं श्रीकृष्णजी पाण्डवोंकी ओरसे एलची बनकर कौरवोंकी सभामें उपस्थित हुए। कृष्णने धृतराष्ट्रको अनेक भांतिसे समझाया और यह भी कहा कि पाण्डवलोग केवल अपने पांचो भाइयोंके निर्वाहार्थ पांच गांव मात्रपर सन्तोष कर सकते हैं इतना दे देनेमें कोई हानि नहीं है अन्यथा कौरवों और पाण्डवोंमें परस्पर घोर युद्ध होगा और व्यर्थ अनेक वीर योद्धाओंके प्राण जायँगे। कुल-क्षय हो जायगा। बूढ़े और अन्धे राजाने कृष्णकी बातें बहुत ध्यान देके सुनीं

अन्तमें उत्तर यही दिया कि मैंने भी अनेक भांति समझाया पर दुष्ट दुर्योधन मेरी एक नहीं सुनता। हे कृष्ण तुम्हीं उसे समझाके देख लो। श्रीकृष्णने दुर्योधनको बुलाके अनेक प्रकारसे समझाया कि दुर्योधन! मेरा कहा मान लो पांच गांव पाण्डवोंके निर्वाहार्थ देके उनसे सन्धि कर लो और युद्ध करके अनेक वीरोंका संहार मत कराओ। दुर्बुद्धि दुर्योधनने श्रीकृष्णकी एक बात भी न सुनी और यही उत्तर दिया कि बिना लड़ाई किये हम पाण्डवोंको सुईके नोकभर भी भूमिका भाग नहीं देंगे। श्रीकृष्णने लौटकर पाण्डवोंको सब समाचार सुनाया।

अब पाण्डवोंने अपने स्वत्वकी प्राप्तिके लिए युद्धार्थ उद्योग करना प्रारम्भ किया और अपने पक्षवाले राजाओंकी सेनाओंको बटोरनेमें तत्पर हुए। श्रीकृष्ण और उनके भाई सात्यकिने पाण्डवोंकी सहायताका सङ्कल्प किया। बलरामजीने दोनों बन्धुओंको एक सा समझ युद्धसे विलग रहनेके लिए इसी समयमें तीर्थयात्रार्थ प्रस्थान किया। उधर कौरव भी चुपचाप बैठ नहीं रहे उन्होंने भी अपने साथियोंको बटोरके युद्धका उद्योग किया। यदुवंशी कृतवर्माने दुर्योधनका पक्ष लिया। श्रीकृष्ण यद्यपि पाण्डवोंके पक्षमें थे तथापि स्वयं शस्त्रग्रहण करना अस्वीकार किया। मध्यम पाण्डव अर्जुनके सारथि बनकर संमतिमात्रसे पाण्डवोंको सहायता दी।

यथासमय कुरुक्षेत्रमें पाण्डवों और कौरवोंकी सेना युद्धके लिये उपस्थित हुई। अर्जुन रणभूमिको अपने नातेदारोंसे भरी देख मोहवश लड़नेसे हिचकिचाये, पर श्रीकृष्णने उन्हें भलीभांति समझाके क्षत्रियके कर्त्तव्यकर्म युद्धका उपदेश देकर ज्ञान तथा भक्ति आदिका भेद समझाते हुए युद्धके लिये

उद्यत किया। कृष्णने कहा कि क्षत्रियके लिये युद्धसे हटना पाप और धर्मयुद्धमें लगना ही पुण्य है। श्रीकृष्णके समझानेसे अर्जुनकी आंखें खुल गयीं और वह युद्धमें प्रवृत्त हो गये। इस प्रसङ्गपर कृष्णने अर्जुनको जो उपदेश दिये हैं, वह श्रीमद्भगवद्गीतामें वर्णित है।

अठारह दिन घमासान युद्ध हुआ। भीष्म, द्रोण, कर्ण, शल्य इत्यादि कौरवोंके अनेक वीर सेनापति मारे गये। भूरिश्रवाने सात्यकिको परास्त करके भूमिपर पटक दिया था और तलवार लेके सिरकाटनेको प्रस्तुत ही था कि श्रीकृष्णके इशारेपर अर्जुनने तुरन्त एक तीक्ष्ण बाणसे भूरिश्रवाकी भुजा काट डाली और अपने प्रिय शिष्य सात्यकिको बचा लिया। भूरिश्रवा निराश हो रणभूमिमें लम्बी सांसें खींच रहा था कि उसी दशामें सात्यकिने उसका सिर काट लिया। भीमसेनने दुर्योधनकी जांघ गदाके प्रहारसे तोड़ डाली और उसके सिरको अपने पैरसे कुचला। द्रोणके पुत्र अश्वत्थामाने अपने मामा कृपाचार्य और कृतवर्माको साथमें लेके रात्रिमें सोते समय पाण्डवोंके शिविरमें प्रवेश किया और द्रौपदीके पांचो पुत्रोंके सिर काट लिये। अर्जुनके पुत्र अभिमन्युको अनेक महारथियोंने घेरकर अधर्म युद्धसे मार डाला। युद्धकी समाप्तिके पीछे कौरवोंकी ओर केवल अश्वत्थामा कृप और कृतवर्मा ये तीन वीर बच रहे और पाण्डवोंकी ओर पांचों पाण्डव, सात्यकि और श्रीकृष्ण बचे बाकी सब युद्धाग्निमें भस्म हो गये। युधिष्ठिरको हस्तिनापुरका राज्य मिला। अभिमन्युकी पत्नी उत्तरा गर्भवती थी। युद्धसमाप्तिके कुछ दिन पीछे उसके गर्भसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ जो प्रायः मृतवत् था, श्रीकृष्णकी कृपासे वह स्वस्थ हुआ। उसका नाम परीक्षित ६

गया और यही पीछेसे युधिष्ठिरका उत्तराधिकारी और पाण्डववंशका प्रवर्तक हुआ।

राज्यपर बैठकर युधिष्ठिरने फिर एक अश्वमेध यज्ञ ठाना और अपने भाइयों तथा श्रीकृष्णकी सहायतासे उसे निर्विघ्न समाप्त किया। पाण्डवोंसे अनेक प्रकारके प्रेमोपहार प्राप्त करके श्रीकृष्ण द्वारका पुरीको लौट आये।

श्रीकृष्णके बचपनके सहपाठी सुदामा नाम एक ब्राह्मण अपनी दीनावस्थामें श्रीकृष्णसे भेंट करने द्वारकापुरीमें आये। यह ब्राह्मण जैसा परम सन्तोषी, विद्वान् और सुशील था वैसाही आदर्श दरिद्र था। श्रीकृष्णने बहुत दिनों पीछे अपने सहपाठीको इस दयनीय दशामें पाकर अपनी छातीसे लगा लिया और अनेक प्रकारके मधुर वार्तालाप किये और बहुत प्रकारके आदर सत्कारके पीछे यथेष्ट सम्पत्ति देकर घर जानेकी विदाई दी।

कुरुक्षेत्रके युद्धके ३६ वर्ष पीछे एक दिन सब यदुवंशी क्षत्रिय तीर्थयात्राके निमित्त द्वारकापुरीसे बाहर निकले वे प्रभास क्षेत्रमें मदिरा पीपीके बड़े उन्मत्त हुए और परस्पर कलह करने लगे। इस गोष्ठीमें बलराम, कृष्ण, सात्यकि, कृतवर्मा, प्रद्युम्न, अनिरुद्ध आदि प्रायः सभी यादव थे। पर श्रीकृष्ण तथा उद्धवने मदिरा पान नहीं किया। सात्यकिने बातही बातमें कृतवर्मापर यह दोष लगाया कि तुमने पाण्डवों के पुत्रोंका सोतेमें घात करके कितनी नीचताका काम किया है। प्रद्युम्नने भी सात्यकिकी बातका अनुमोदन किया। इसके उत्तरमें कृतवर्माने सात्यकिका भी दोषोद्घाटन किया कि तुमने सांस बन्द किये भूरिश्रवाका घात करके कौन वीरता दिखलायी। सात्यकिने इसके उत्तरमें फिर स्यमन्तकमणिकी चर्चा चलायी कि सोते समय सत्राजितका

बध कराके तुम्हींने शतधन्वासे मणि चुरवायी थी। कृष्णकी स्त्री सत्यभामा इस समय वहां उपस्थित थी और मणि तथा पिताका स्मरण आते ही वह रो पड़ी। सात्यकिके चित्तमें कुछ विशेष आवेश आ गया। वह अपना खड्ग खींचके खड़ा हो गया और यह कहके कि आज मैं द्रौपदीके पुत्रोंके वधका बदला लेता हूँ कृतवर्माका सिर काट लिया। कृतवर्माके साथियोंने मदिराके नशेमें सात्यकिपर धावा किया। प्रद्युम्न उसे बचाने चले पर इस घमासानमें श्रीकृष्णके देखते देखते सात्यकि और प्रद्युम्न दोनों वहीं मारे गये। सात्यकि और अपने पुत्रको मारा गया देखके श्रीकृष्णको भी बड़ा क्रोध शोक और दुःख हुआ। इस कलहमें यदुवंशियोंमें परस्पर ऐसी मार काट मची कि प्रायः ५ वा ६ मनुष्योंको छोड़ उन अनेक यदुवंशियोंमें और कोई भी जीता न बचा। श्रीकृष्णको इस प्रकार अपने बन्धुओंका विनाश देख बड़ा निर्वेद हुआ। अपने सारथिको आज्ञा दी कि जाओ हस्तिनापुरसे अर्जुनको बुला लाओ, वह आके हमलोगोंकी स्त्रियोंकी रखवाली करे। इस बीचमें बलरामजी एकान्तमें जाके योगद्वारा अपना प्राणत्याग कर चुके थे। श्रीकृष्ण भी सांझके समय एक तालावके किनारे वृक्षके नीचे बैठके विश्राम कर रहे थे कि किसी व्याधाने धोखेसे एक ऐसा प्राणघातक वाण मारा कि वह आकर श्रीकृष्णके पांवके तलुओंमें लगा। थोड़ी देर पीछे श्रीकृष्णने भी इस असार संसारका परित्याग किया।

अर्जुन हस्तिनापुरसे द्वारका आये, स्त्रियोंका विलाप सुन परम व्याकुल हुए। सब स्त्रियोंको साथ लेकर हस्तिनापुर जाने लगे कि मार्गमें दस्युओंने आकर अनेक स्त्रियोंको छीन लिया। अर्जुनने भरसक उनका सामना किया पर उनके

तूणीरमें जब बाण न रह गये तो बेचारे विवश होके रह गये। हस्तिनापुरमें पहुँचनेपर श्रीकृष्णकी मुख्य पटरानियां रुक्मिणी आदि सती हो गयीं।

महाराज युधिष्ठिरने जब यदुवंशियोंके ऐसे अकाल मृत्युका और श्रीकृष्णके परलोक सिधारनेका समाचार सुना तो उनके चित्तमें बड़ा वैराग्य उत्पन्न हुआ। उन्होंने झटपट अर्जुनके पोते परीक्षितको तो हस्तिनापुरका राज्य दिया और अनिरुद्धके पुत्र वज्रको इन्द्रप्रस्थपुरीमें राजसिंहासनपर बिठाया और आप अपने चारों भाइयों तथा रानी द्रौपदी सहित राज्यको छोड़ उत्तर दिशाकी ओर चल दिये।

इस प्रकार परम वीर योद्धा, विद्वान्, धर्मात्मा, सच्चरित्र और सुशील क्षत्रियकुलभूषण श्रीकृष्णके सांसारिक जीवनका अवसान हुआ। उनकी सन्तान परम्परा कुछ दिनतक इन्द्रप्रस्थमें राज करती रही फिर भाग्यके फेरसे बहुत दिनतक इधर उधर फिरके जैसलमीरमें आके स्थिर हुई। जैसलमीरके आधुनिक रावल महाराज श्रीकृष्णहीके वंशज हैं।

चौदहवां अध्याय

ययातिके और वंशज

ययातिने अपने द्वितीय पुत्र तुर्वसुको अपने राज्यके उत्तरपूर्वका देश सौंप दिया था। तुर्वसुकी सन्तान परम्पराने कुछ दिनतक अपने पैतृक राज्यको संभाला पर अन्तमें वे निःसन्तान होगये। तुर्वसुके अन्तिम वंशजके केवल एक कन्या थी जो उसने पुरुके वंशज कुरुपाञ्चाल देशके चक्रवर्ती राजाको विवाह दी। इस कन्याका पुत्र दुष्यन्त अपने नानाके राज्यकाभी उत्तराधिकारी हुआ।

ययातिने अपने तृतीय पुत्र द्रुह्युको पश्चिम देशका राज्य सौंपा था। उसकी सन्तान परम्परा पश्चिम और उत्तरकी ओरके भारत वर्षके भागपर शासन करती रही। द्रुह्युके वंशमें गन्धार नामक एक राजकुमार हुआ जिसने पश्चिमकी ओर बढ़के अपने नाम पर गान्धार देश बसाया। इसी गान्धारके पिता 'अरुद्धको' युद्धक्षेत्रमें सूर्यवंशी राजा मान्धाताने मार डाला था। इस कारण गन्धारको और अधिक पश्चिम हटके एक नया देश बसाना पड़ा। गन्धारहीके वंशज यह राजा सुवल थे जिनकी बेटी गान्धारी हस्तिनापुरके अन्धे राजकुमार धृतराष्ट्रको ब्याही थी। सुवलका पुत्र शकुनि गान्धारीके पुत्र दुर्योधनका बड़ा मित्र था, एक प्रकारसे महाभारत की लड़ाई की जड़ था। और इसीकी संमति और भरोसेपर दुर्योधनने पाण्डवोंसे लड़ाई ठानी थी। कुरुक्षेत्रके युद्धमें कनिष्ठ पाण्डव सहदेवने शकुनिको मार डाला था। द्रुह्युके वंशमें प्रचेता नामका एक और प्रसिद्ध राजा हुआ है।

ययातिके चतुर्थ पुत्र 'अनु'को उत्तर ओरका देश राज्य विभागमें मिला। इनकी वंशपरम्पराने पूर्व और दक्षिण पूर्वकी ओर बढ़के निज राज्यका विस्तार किया। अनुके परपोते "सृञ्जय" एक प्रसिद्ध और पराक्रमी क्षत्रिय वंशके प्रवर्त्तक हुँ। अनुके वंशज राजा महामनाके दो पुत्र उशीनर और तितिक्षु नामके हुए।

उशीनरने उत्तर और पश्चिमकी ओर अपना राज्य फैलाया और पश्चिम काशी या अटक-बनारसको अपनी राजधानी बनाया। उशीनरके पुत्र 'शिवि' भी इतिहास प्रसिद्ध एक कीर्त्तिमान् राजा हुए। पश्चिममें 'शिवि' नामका देशभी जो सिन्धमें सक्खरके पास है इन्हींका बसाया हुआ होगा। महाराज शिवि बड़े शरणागतवत्सल थे। शिविके तीन पुत्र सुवीर, केकय और मद्र नामके हुए। इनमें-से प्रत्येकने अपने नामोंपर नये नये देश बसाके वहां अपना राज्य स्थापित किया। सुवीरने तो दक्षिण और पश्चिमकी ओर सिन्धु देशमें अपना राज्य नियत किया।

केकयने कांगड़ाकी घाटी और कश्मीरके कुछ भागोंमें अपना राज्य स्थापित किया। इसी केकय वंशमें महाराज *अश्वपति* और *युधाजित्* हुए हैं जो इक्ष्वाकुवंशी महाराज दशरथके समकालीन थे। अश्वपतिकी कन्या कैकेयी अयोध्याके राजा दशरथको विवाही थी इसी रानीने रामके राज्याभिषेकमें विघ्न डालके अपने पुत्र भरतको अयोध्याका राजा बनाना चाहा था। जान पड़ता है कि युधाजित्ने अपना राज्य सिन्धुदेशतक फैला लिया था और जब गन्धर्व जातिके लोगोंने उन्हें मार डाला तो अयोध्याके राजा रामचन्द्रने भरतको भेजके सिन्धुसे गन्धर्वोंको बाहर निकाल दिया और भरतकी सन्तानपरम्पराको वहांका और उसके पासके

देशोंका अधिकारी नियत किया। इसी केकयवंशके किसी राजकुमारको श्रीकृष्णकी फुआ श्रुतकीर्ति विवाही गयी थी जिसके पुत्र सन्तर्दनादिक प्रसिद्ध हुए। श्रुतकीर्तिहीकी कन्या 'भद्रा' श्रीकृष्णकी आठ पटरानियोंमेंसे थी। सन्तर्दनादिक राजकुमार कुरुक्षेत्रके युद्धस्थलमें पाण्डवोंकी ओरसे लड़कर मारे गये थे। कहते हैं कि कश्मीर और सिन्धु नदीकी घाटीमें रहनेवाली "धकर" जाति वही है जो प्राचीन कालमें केकयके नामसे प्रसिद्ध थी।

शिबिके तृतीय पुत्र मद्रने इरावती (रावी) और चन्द्रभागा (चनाव) नाम नदियोंके बीचके भूभागपर अपना अधिकार करके उस देशका नाम मद्र रक्खा और वहां अपना राज्य स्थापित किया। हस्तिनापुरके राजकुमार पाण्डुकी दूसरी रानी माद्री इसी मद्रदेशकी राजकुमारी थी। माद्रीके भाईका नाम शल्य था, शल्य कुरुक्षेत्रके युद्धस्थलमें उपस्थित थे और कौरवोंकी ओरसे पाण्डवोंसे लड़े थे। महाराज युधिष्ठिरने युद्धक्षेत्रमें शल्यको मारा था।

तितिक्षुके पुत्र उपद्रथके परपोतेका नाम 'बलि' था जिसके छ पुत्र अङ्ग, वङ्ग, कलिङ्ग, सुह्म, पौण्ड और उड़ नामके हुए। इनमेंसे प्रत्येकने भारतवर्षके दक्षिण पूर्वकी ओर नये नये देश अपने अपने नामसे बसाके अपना राज्य स्थापित किया।

अङ्गने वह देश बसाया जो आधुनिक भागलपुरके आस पास मगधसे कुछ दक्खिन और पूर्वकी ओर था।

वङ्गने जो देश बसाया वह आजकल बंगालके नामसे प्रसिद्ध है। पौण्ड्रने वह देश बसाया जिसे अब बंगालका पश्चिमी भाग समझना चाहिये।

कलिङ्गने उड़ीसाके दक्षिण समुद्र किनारेकी भूमि चोल मण्डलतक अपने अधिकारमें कर ली और उसका नाम कलिङ्ग रक्खा। यह देश गोदावरी और कृष्णा नदियोंके कारण तीन भागोंमें बट गया था अतएव इसे त्रिकलिङ्ग भी कहते हैं। त्रिकलिङ्गका अपभ्रंश 'तिलिङ्गाना' है जो इस देशका नाम पीछेसे पड़ गया। वह राजा कलिङ्ग देशहीका था जो अनिरुद्धके विवाहमें उपस्थित होके रुक्मके साथ द्यूतमें बलरामको हारते देखके हँसता था और जिसके दांत बलरामजीने तोड़ डाले थे। कलिङ्ग देशकी प्राचीन राजधानी राजमहेन्द्री थी।

सुह्मने बंगालके दक्षिणी भागमें समुद्रतीरपर अपना राज्य स्थापित किया और ताम्रलिप्ति वा दामलिप्त वा आधुनिक तामलूकको अपनी राजधानी बनाया।

उड्रने प्राचीन उत्कल देशमें जिसे सुधन्वाके पुत्र उत्कलने अपनी राज्यभूमि बनाया था और जहां घना जङ्गल था अपना राज्य स्थापित किया। यही देश आजकल उड़ीसा के नामसे प्रसिद्ध है।

अङ्गके परपोतेका पोता 'रोमपाद' इक्ष्वाकुवंशी महाराज दशरथका समकालीन था। जब इनके राज्यमें बहुत दिनों तक वर्षा न होनेसे अकाल पड़ा तो राजा रोमपादने अयोध्याके महाराज दशरथसे उनकी कन्या शान्ताको निज पोष्यपुत्री करनेके अर्थ मांग लिया। रोमपादने शान्ताका विवाह विभाण्डक ऋषिके पुत्र ऋष्यशृंगसे कर दिया। यह बात प्रसिद्ध है कि जब ऋष्यशृङ्ग राजारोमपादकी पुरीमें आये तो वर्षा हुई और अकालका क्लेश दूर हो गया।

रोमपादके परपोतेका नाम चम्प था जिसने अपने नामसे चम्पा नामकी एक पुरी बसाके उसे अपनी राजधानी

बनाया। लोग बताते हैं कि यही चम्पापुरी अब भागल-पुरके नामसे प्रसिद्ध है।

चम्पके परपोतेका परपोता वह जयद्रथ था जिसने एक वैसी कन्यासे विवाह किया जो ब्राह्मणी माता और क्षत्रिय पितासे उत्पन्न हुई थी अतएव जयद्रथका पुत्र विजय और विजयकी सन्तानपरम्परा सूत या संकर जातिके क्षत्रिय नामसे प्रसिद्ध हुई।

जयद्रथके परपोतेका पोता वह राजा 'अधिरथ' था जिसने कुन्तीके कानीन पुत्र कर्णको अपने यहां पाला पोसा था।

कर्ण कुन्तीका पुत्र था पर उसकी अविवाहिता अवस्थामें उत्पन्न हुआ था। कुन्तीने लोगोंसे हाल गुप्त रखनेके लिए अपने नवप्रसूत बालक कर्णको एक मञ्जूषामें बन्द करके नदीमें बहा दिया था। वह मञ्जूषा बहते बहते अङ्गदेशमें पहुंची तो एक रथकारके हाथ पड़ी उसने जो खोलके नवप्रसूत बालकको देखा तो उसे लाके अपनी पत्नी राधाके हाथ सौंप दिया। राधाके द्वारा पोषित कर्ण जब बड़ा हुआ तो अंगदेशके राजा अधिरथने उसे अपना पोष्यपुत्र करके ग्रहण किया।

उसी समयमें परशुराम नामका एक तपस्वी ब्राह्मण अस्त्र विद्यामें परम निपुण थे। यह कदाचित् उन परशुरामजी की शिष्य परम्परामें रहे होंगे जिन्होंने कार्तवीर्यार्जुन नाम माहिष्मतीके राजाको युद्धमें मार डाला था जिसका उल्लेख पहले हो चुका है। कर्ण परशुरामके पास शिष्य रूपसे उपस्थित हुआ। और छलसे अपनी सच्ची जातिको छिपाकर ब्राह्मण बनकर उनसे सब विद्या सीख ली। कर्ण बड़ा पराक्रमी और शस्त्र विद्यामें निपुण हुआ। उन दिनों

पाण्डव अर्जुनको छोड़के और कोई भी वीर अस्त्रविद्यामें उसके टक्करका नहीं था।

कर्ण हस्तिनापुरमें कौरवों और पाण्डवोंके राजदर्बारमें गया। उस बलिष्ठके गुणों और स्वभावपर मुग्ध होकर और अर्जुनका जोड़ समझकर दुर्योधनने उससे मित्रता कर ली और उसे अङ्गदेशके राज्यका उत्तराधिकारी बनाया। दुर्योधनने जो पाण्डवोंसे जन्मभरके लिये बैर बांधा सो इसी कर्णके पराक्रमके भरोसे। शकुनि और कर्ण सदा से दुर्योधनके बड़े मित्र थे और उसकी इच्छानुकूल आचरण किया करते थे। कर्ण और शकुनिहीकी संमतिसे दुर्योधनने युधिष्ठिरके साथ द्यूतक्रीड़ा छेड़ी थी और उनका सर्वस्व छीन लिया था। कर्णहीके कहनेपर दुःशासन भरी सभामें द्रौपदीको नङ्गी करने लगा था। देखा जाय तो कर्ण और शकुनिही भरतवंशके विनाशका कारण हुए।

कुरुक्षेत्रके युद्धारम्भके पूर्व कुन्ती एक बार एकान्तमें कर्णसे मिलीं और उसे बताया कि तुम मेरेही पुत्र हो। पाण्डव सब तुम्हारे भाई हैं तुम उनसे मत लड़ो। पर पराक्रमी कर्णने यही उत्तर दिया कि मुझे यह बात पहिलेसे विदित न थी नहीं तो मैं काहेको दुर्योधनका मित्र बनता किन्तु अब दुर्योधनका नमक खाके और उसको भरोसा दिलाके पाण्डवोंसे मिल जाना लोगोंके बीचमें मेरी कातरता और कृतघ्नता सिद्ध करेगा। कुन्तीके कहनेसे कर्णने इतनी प्रतिज्ञा अवश्य कर दी कि युद्धक्षेत्रमें मैं मध्यम पाण्डव अर्जुनको छोड़के और किसी पाण्डवके प्राण न लूंगा। यदि कर्ण मारा गया तो कुन्तीके अर्जुन समेत पांच पुत्र संसारमें जीवित रहेंगे पक्षान्तरमें कर्ण समेत कुन्तीके पांच पुत्र रहजायँगे। कुन्ती उसका यह सिद्धान्त सुन निराश हो लौट आयी।

श्रीकृष्णने भी युद्धके पूर्व कर्णको बहुत समझाया कि देखो पाण्डवोंसे विरोधका फल तुम्हारे लिये भला नहीं है यदि तुम कौरवोंका पक्ष छोड़ दो तो बहुत अच्छा हो, पाण्डवोंमें ज्येष्ठ होनेके कारण तुम्हीं राजा होगे। पर कर्णने एक न सुनी और अपने सिद्धान्तपर अटल रहा।

भीष्म और द्रोणके पीछे दुर्योधनने कर्णको ही कौरवोंकी सेनाका सेनापति बनाया। वह वीर दो दिन तक बड़ी वीरताके साथ लड़ा और उसने अपने स्वाभाविक पराक्रमको भली भांति प्रकट किया। कर्णका पुत्र कुमार वृषसेन युद्ध-क्षेत्रमें मारा गया। कर्ण उसकी मृत्युपर और भी उत्तेजित होकर लड़ा। उसके पास एक ऐसी अमोघपातिनी शक्ति थी कि जिसका वार कभी खाली न जाता था कर्णने इसे अर्जुनपर प्रहार करनेको बचा रक्खा था परन्तु जब भीम-सेनके पुत्र घटोत्कचसे लड़ते लड़ते कर्ण थक गया और उसके वधका कोई उपायान्तर कर्णने न देखा तो उस शक्तिको घटोत्कचपर ही चलाकर नष्ट कर दिया।

मध्यम पाण्डव अर्जुनसे युद्ध करते समय कर्णके रथका पहिया कीचड़में फँस गया, जिस समय कर्ण उसे निकालनेमें लगा था श्रीकृष्णकी अनुमतिसे उसी समय अर्जुनने वाणप्रहारसे उसका सिर काट गिराया।

कुरुक्षेत्रमें कर्ण और उसके एकमात्र कुमार वृषसेनके मारे जानेपर अङ्ग देशका सिंहासन सूना हो गया।

पन्द्रहवां अध्याय

पुरुवंश और भरत

महाराज ययातिके सबसे कनिष्ठ और आज्ञाकारी पुत्र पुरु थे जो वृषपर्वाकी कन्या शर्मिष्ठासे उत्पन्न हुए थे। ययातिने पुरुहीको अपना उत्तराधिकारी बनाया अर्थात् कुरु पाञ्चाल देश सौंपके उन्हें चक्रवर्त्ती राजा बनाया। पुरु और उसकी सन्तानपरम्पराने संसारमें बड़ी प्रतिष्ठा पायी। पुरुका विवाह कोशल देशकी राजकन्या कौशल्यासे हुआ और उससे जो पुत्र हुआ उसका नाम जनमेजय था। जनमेजयने मधुवंशी राजाकी कन्या अनन्तासे विवाह किया और तीन अश्वमेध यज्ञ किये। जनमेजय और अनन्ताके पुत्रका नाम प्रचिन्वान् था जिसने पूर्व दिशाके देशोंको जीतके अपने राज्यमें मिला लिया। प्रचिन्वान्ने यदुवंशी राजकन्या अश्मकीसे विवाह किया और उसका पुत्र प्रवीर नामक उत्पन्न हुआ। प्रवीरके पुत्रका नाम मनस्यु था। मनस्युके बहुतेरे शूर पुत्र हुए जिनमेंसे ज्येष्ठ चारुपदने पैतृक राजसिंहासन पाया। चारुपदका परपोता संयाति हुआ जिसने दृषद्वतीकी बेटी वराङ्गीको ब्याहा। संयातिके पुत्रका नाम था अहंयाति। अहंयातिने कृतवीर्यकी कन्या भानुमतीसे विवाह किया। अहंयातिके पुत्र रौद्राश्व भी एक प्रतापी राजा हुए और उनके दस प्रसिद्ध पुत्र उत्पन्न हुए और कई एक कन्याएं भी हुईं। इनमेंसे ऋतेयु सबसे जेठा था और वही राजा हुआ। ऋतेयुका विवाह तक्षककी कन्या ज्वालासे हुआ और उसके पुत्रका नाम मतिनार वा रन्तिनार था।

रन्तिनारने सरस्वतीसे विवाह किया और उसके तंसु, ध्रुव और अप्रतिरथ नाम पुत्र उत्पन्न हुए। अप्रतिरथके पुत्र कण्व हुए और कण्वकी सन्तानहीं काण्वायन नामसे संसारमें प्रसिद्ध है। तंसुने कलिङ्ग देशकी राजकन्यासे विवाह किया और अनिल या ईलिन उसका पुत्र हुआ। ईलिनने रथन्तरी नाम कन्यासे विवाह किया और उसके चार पुत्रोंमें सबसे जेठा दुष्यन्त राजसिंहासनपर बैठके चक्रवर्ती राजा हुआ।

महाराज दुष्यन्त एक बार मृगया करते करते उत्तरकी ओर मालिनी नदीके किनारे कण्व ऋषिके *आश्रमपर पहुँचे। विश्वामित्रकी कन्या शकुन्तलाको कण्वने अपनी पोष्यपुत्री करके पाला था। जब महाराज दुष्यन्त कण्वके आश्रमपर पहुँचे तब महर्षि कण्व कहीं तीर्थयात्राके लिये गये हुए थे।

शकुन्तला इस समय आश्रममें उपस्थित थी उसने बड़े आदर और सत्कारके साथ राजाका आतिथ्य किया। दुष्यन्त शकुन्तलाके सौन्दर्यपर मोहित हो गये और उससे पूछा कि तुम किसकी कन्या हो? शकुन्तलाने अपना सब इतिहास कह सुनाया और राजाको सूचित किया कि मैं विश्वामित्रकी कन्या हूँ। जब राजाको यह विश्वास हो गया कि शकुन्तला विश्वामित्रकी ब्राह्मणत्वप्राप्तिके पहले उत्पन्न हुई थी तो उसे शुद्ध क्षत्रियकुलप्रसूता समझ उसके साथ विवाहकी चर्चा चलायी। शकुन्तलाने राजाका प्रस्ताव स्वीकार कर लिया और दुष्यन्त तथा शकुन्तलामें परस्पर गान्धर्व विवाह

* कण्वका आश्रम बिजनौर जिलेमें नजीबाबादकी तहसीलमें मालन नदीके किनारेपर था, वह स्थान कुन्दनपुरके नामसे अबतक प्रसिद्ध है।

हो गया। राजा कुछ दिन आश्रममें शकुन्तलाके सङ्ग निवास कर अपनी राजधानीको लौट आये और चलते समय शकुन्तलासे यह प्रतिज्ञा की कि आजसे तीसरे दिन हमारे यहांसे एक दूत तुम्हें राजधानीमें लेने आवेगा। शकुन्तला विचारी इसी भरोसे रह गयी। राजधानीमें जाके राजा कारणवश अपनी प्रतिज्ञा भूल गये, आश्रममें शकुन्तलाको लेने कोई भी राजपुरुष न आया। यथासमय शकुन्तलाने पुत्र प्रसव किया और महर्षि कण्वने जो उस समय तीर्थयात्रासे लौट आये थे, शकुन्तलाके नवप्रसूत बालकके जातिकर्म आदि किये। दुष्यन्तका पुत्र बचपनहीसे बड़ा पराक्रमी और साहसी था, यहांतक कि वनमें घूमते सिंह वा व्याघ्र आदिको देखके डरनेकी कौन कहे बलपूर्वक पकड़कर बांध लिया करता था। उसकी शूरताको देख कण्वने उसका नाम " सर्वदमन " रखा था। कुछ दिन पीछे महर्षिकी आज्ञा लेके स्वयं शकुन्तला अपने पुत्र समेत राजधानीको गयी। महाराज दुष्यन्तने पहले तो अपयशके भयसे शकुन्तला और उसके पुत्रको अपना स्वीकार न किया और टाल देना चाहा, पर पीछेसे एक निर्दोष देवीके साथ ऐसा अनर्थ करना उसे धर्मविरुद्ध जान पड़ा। निदान राजाने शकुन्तलाको पत्नीरूपसे स्वीकार किया और उसके पुत्रको जिसका नाम ' भरत ' रक्खा गया था अपना युवराज बनाया *।

दुष्यन्तके एक और पुत्र हुआ जिसका नाम "करुत्थाम" था। करुत्थाम कुरु पाञ्चाल देशको छोड़के दक्षिणकी ओर चलागया और उसकी सन्तान परम्परामें तीन प्रबल राज-

* कालिदासके प्रसिद्ध अभिज्ञान शाकुन्तल में इसी प्रसंगका वर्णन है।

कुमार चेर चोल और पाण्ड्य नामके हुए। इनमेंसे प्रत्येकने दक्षिण भारतमें अपने अपने नामसे एक नया देश बसाके अपना राज्य स्थापित किया।

दुष्यन्तके पीछे उनका पुत्र भरत एक परम प्रतापी और चक्रवर्त्ती राजा हुआ। उसीके कारण समग्र देशका नाम "भारतवर्ष" पड़ गया। भरतने गङ्गा और यमुनाके किनारे अनेक अश्वमेध यज्ञ किये, जी खोलके ब्राह्मणोंको दान दिया और प्रजाका पुत्रवत् पालन किया। राजा भरतकी प्रधान महिषी काशी देशके राजा सर्वसेनकी कन्या सुनन्दा नामकी थी। विदर्भके राजकुलमें उत्पन्न तीन और रानियां थीं। यद्यपि इन रानियोंसे राजा भरतके नव पुत्र हुए तथापि वे ऐसे अयोग्य निकले कि उनमेंसे किसीको भी राजाने अपना उत्तराधिकारी न बनाया। अन्तमें भरद्वाज गोत्रमें उत्पन्न 'वितथ' नामक एक पुत्रको गोद लेके राजा भरतने अपना उत्तराधिकारी बनाया।

वितथका पुत्र मन्यु हुआ। मन्युके पांच पुत्र हुए जिनके नाम बृहत्क्षत्र, जय, महावीर्य, नर, और गर्ग थे। इनमेंसे गर्गके पुत्र शिनिसे गर्गवंशी "ब्राह्मण" संसारमें प्रसिद्ध हुए। नरके पुत्र संकृति, धर्मात्मा रंतिदेवके पिता थे। रन्तिदेव महाराजकी कीर्त्ति उनके परोपकार और सहनशीलताके कारण संसारमें अच्युत हो गयी। एक बार जब ये ४८ दिनतक बिना खाये पीये 'अनशन' व्रत कर चुके थे और तदुपरान्त पारणाके अर्थ प्रस्तुत थे उसी समय कुछ भिक्षुकोंने आके उनसे भोजन मांगा। राजा स्वयं भूखेही रह गये और पारणार्थ प्रस्तुत अन्नजलदान द्वारा अतिथि सत्कार किया। महावीर्यके पुत्र अय्यारुणि हुए और अय्यारुणिके द्वारा ब्राह्मणोंका एक और वंश संसारमें प्रसिद्ध हुआ।

मन्युके स्थानपर उनका ज्येष्ठ पुत्र वृहत्क्षत्र कुरुपाञ्चाल देशका राजा हुआ। वृहत्क्षत्रके पुत्र 'हस्ती' एक परम बलिष्ठ और प्रसिद्ध राजा हुए। महाराज हस्तीने गङ्गातीर-पर हस्तिनापुर नामक नगर बसाके उसे चिरकालके लिये अपने वंशजोंकी राजधानी बना छोड़ा। यह नगर आजकल मेरठके जिलेमें मेरठ नगरसे २२ मील ईशानकोणमें गङ्गा नदीके दाहिने तटपर खंडहर रूपमें देख पड़ता है। पाण्डवोंके पौत्र महाराज जनमेजय और उनके पुत्र शता-नीकके समयतक यही हस्तिनापुर पुरुवंशियोंकी राजधानी रही। तदनन्तर जब यह नगर गंगानदीमें विलीन हो गया तबसे उजाड़ पड़ा है। आजकल वहां कई जैन मन्दिर हैं जो मुगलोंके शासन समयमें बने बतलाये जाते हैं।

महाराज हस्तीने त्रिगर्तदेशकी राजकन्या यशोभरासे विवाह किया जिससे विकुण्ठन उत्पन्न हुआ। इस विकुण्ठनने यदुवंशी राजा दशार्हके कुलकी सुदेवा नाम राजकन्यासे विवाह किया। विकुण्ठनके तीन पुत्र अजमीढ़, द्विमीढ़, और पुरुमीढ़ हुए। कनिष्ठ पुत्र पुरुमीढ़ तो निःसन्तान रहा। द्विमीढ़की सन्तान परम्परा उसके पुत्र यवीनरके द्वारा संसारमें फैली। इन्हींके वंशमें राजा सन्नतिमान्के पुत्र कृती हुए जो इक्ष्वाकुवंशी अयोध्याके राजा हिरण्यनाभके शिष्य थे। राजा हिरण्यनाभने कृतीको योगविद्या सिखायी थी।

महाराज हस्तीके पीछे राजसिंहासनपर हस्तिनापुरमें उनके ज्येष्ठ पौत्र अजमीढ़ विराजमान हुए। अजमीढ़के कई रानियां थीं जिनसे कई शाखायें भारतवर्षमें फैलीं।

अजमीढ़के एक रानीसे वृहदिषु हुआ। वृहदिषुके

परपोतेका पोता राजा सेनजित् था जिसने कि अवन्ती देशमें राज्य किया। संभवतः इसी सेनजित्के वंशमें कृष्णके फुफेरे भाई विन्द और अनुविन्द हुए होंगे जिनकी भगिनी मित्रविन्दाको श्रीकृष्ण हरण कर लाये और व्याहकर अपनी आठ प्रधान पत्नियोंमेंसे एक बनाया। विन्द और अनुविन्द कुरुक्षेत्रके युद्धमें मारे गये। सेनजित्के पुत्र रुचिराश्वका परपोता राजा नीप हुआ जिसके कारण वंशभरका नाम नीप ही पड़ गया। नीपके एक पुत्र समरने काम्पिल्य नगरी बसाकर उसको अपनी राजधानी बनाया। समरके पोते पृथुका परपोता वह राजा अनुह है जिसने कृष्ण द्वैपायनके पुत्र छायाशुककी कन्या क्त्वीसे विवाह किया था। अनुहका पुत्र ब्रह्मदत्त एक धर्मात्मा राजा हो गया है। ब्रह्मदत्तके पुत्रका नाम विष्वक्सेन था, विष्वक्सेनका पौत्र जिसका नाम भल्लाद था महाभारतके युद्धमें उपस्थित था। बलवान कर्णने लड़ाईमें भल्लादका बध किया। नीप वंशी क्षत्रियोंको अन्तमें उग्रायुधने विनष्ट कर दिया।

सोलहवाँ अध्याय

पाञ्चाल और मागध वंश

महाराज अजमीढ़की दूसरी रानी नलिनी या नीलिनी थी। इस रानीके पुत्रका नाम नील था। नीलकी छठी पीढ़ीमें हर्यश्व नाम एक राजा हुआ जिसके पांच पुत्र हुए उनके नाम मुद्गल, सञ्जय, बृहदिषु, प्रवीर और काम्पिल्य नामक हुए। राजा हर्यश्वने इन्हीं पांचो पुत्रोंको जो देश सौंपा उसीका नाम पीछेसे पाञ्चाल पड़ गया। मुद्गलसे मौद्गलायन नाम ब्राह्मणोंकी जाति उत्पन्न हुई, मुद्गलके एक पुत्रका नाम वध्र्यश्व था जो पाञ्चाल देशका राजा हुआ। वध्र्यश्वका पुत्र दिवोदास हुआ। वध्र्यश्वकी कन्या अहल्या परम सुन्दरी थी जिसका विवाह गौतम ऋषिके साथ हुआ। गौतम और अहल्याके पुत्र शतानन्द थे। शतानन्दके पुत्रका नाम सत्यधृति और सत्यधृतिके कृप नाम पुत्र तथा कृपी नामकी एक कन्या हुई। कृपीका विवाह भरद्वाज गोत्रोत्पन्न द्रोणसे हुआ। द्रोणका पुत्र अश्वत्थामा था।

वध्र्यश्वके पुत्र दिवोदासका परपोता सुदास नाम पाञ्चाल देशका राजा हुआ। सुदास नाम ऋग्वेदमें भी आया है। सुदासका पुत्र सहदेव और सहदेवका पुत्र सोमक हुआ। सोमकके अनेक पुत्रोंमेंसे जन्तु सबसे जेठा और पृषत सबसे छोटा था। पाञ्चाल देशका राजा अन्तमें पृषत हुआ। पृषतका पुत्र प्रसिद्ध राजा "द्रुपद" था जो द्रोणका सहपाठी था। द्रोणने पाण्डवोंको अस्त्रविद्या सिखलायी

थी इस कारण द्रोणकी आज्ञासे अर्जुनने द्रुपदको हराके उनका राज्य छीन लिया और द्रोणको अर्पण किया। द्रोणने उत्तर पांचाल देशको जिसकी राजधानी 'अहिच्छत्र' थी अपने अधिकारमें कर लिया और दक्षिण पाञ्चाल देश द्रुपदको दे दिया। द्रुपदकी राजधानी काम्पिल्य थी जो आजकल फर्रुखाबादके जिलेमें उजाड़ पड़ी है। द्रुपदके दो पुत्र शिखण्डी और धृष्टद्युम्न हुए और एक कन्या द्रौपदी हुई जिसका विवाह पाण्डवोंके साथ हुआ था। शिखण्डीका विवाह दशार्ण देशकी राजकन्यासे हुआ था। द्रोणने महाभारतके युद्धमें द्रुपदको मार डाला और उसी युद्धमें द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्नने द्रोणका सिर काट लिया। रात्रिको सोते समय धृष्टद्युम्नको द्रोणके पुत्र अश्वत्थामाने मार डाला। धृष्टद्युम्नका पुत्र धृष्टकेतु था।

अजमीढ़की तीसरी रानीसे ऋक्ष नामका पुत्र हुआ। और ऋक्षके पुत्रका नाम संवरण था। संवरणकी रानीका नाम तपती था जो राजकुमार कुरुकी माता थी। कुरुने अपने नामसे कुरुक्षेत्रको प्रसिद्ध किया, उन्होंने वहां बहुत दिन तपस्या की। इसी कुरुक्षेत्रमें पीछेसे कौरवों और पाण्डवोंमें परस्पर घोर सङ्ग्राम हुआ। कुरुने यदुवंशी राजा दशार्हके कुलमें उत्पन्न शुभाङ्गी नाम राजकन्यासे विवाह किया और उसके सुधनु, जह्नु, परीक्षित और निषध नामक चार पुत्र उत्पन्न हुए। जिनकी सन्तानोंने मगध आदि देशोंमें अपना राज्य स्थापित किया। परीक्षित् निःसन्तान रहे। जह्नुकी सन्तान परम्पराके हाथमें हस्तिनापुरका राज्य रहा। जह्नु गङ्गा किनारे जाके तपस्या करने लगे। निषधने अपने नामसे एक नया देश बसाया। इसी

वंशमें राजा वीरसेन उत्पन्न हुए जिनके पुत्र नलका नाम संसारमें प्रसिद्ध है। महाराज नल अयोध्याके इक्ष्वाकुवंशी राजा ऋतुपर्णके समकालीन थे। नलका विवाह विदर्भ देशके राजा भीमकी कन्या दमयन्तीसे हुआ। नल और दमयन्तीका इतिहास ऊपर महाराज ऋतुपर्णके साथ लिखा जा चुका है।

राजा उपरिचर वसुने चेदिको अपनी राजधानी बनाया। इसके अनेक पुत्रोंमेंसे एक बृहद्रथ था जिसने मगधमें निज राज्य स्थापित किया। दूसरे पुत्र मत्स्यने पश्चिमकी ओर बढ़कर मत्स्य देशको अपनी राज्यभूमि बनाया जिसकी सीमा आधुनिक ग्वालियरसे बरारतक फैली रही होगी। उपरिचर वसुहीके किसी पुत्रने मगधसे भी आगे पूर्वकी ओर बढ़के प्राग्ज्योतिषपुर आसाममें अपना राज्य स्थापित किया। उपरिचर वसुकी कन्या 'सत्यवती' थी जिनका विवाह हस्तिनापुरके राजा शान्तनुसे हुआ था। इसी सत्यवतीके पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यास हैं जो उसकी अविवाहिता अवस्थामेंही पराशरसे उत्पन्न हुए थे। इसी राजा उपरिचर वसुका वंशज वह राजा विराट था जिसके यहां पाण्डवोंने एक वर्षतक गुप्त रीतिसे निवास किया था। कुरुक्षेत्रके युद्धमें राजा विराट भी द्रोणके हाथसे मारा गया।

बृहद्रथहीके कुलमें जरासन्ध नाम मगध देशका प्रसिद्ध राजा हुआ। यह बड़ा पराक्रमी, प्रतापी और वेदद दवङ्ग था। इसकी राजधानी राजगृह थी। इसके दो मन्त्री डिम्भ और हंसक परम वीर और बुद्धिमान थे। उनकी सहायतासे जरासन्ध पूर्वी भारतमें एक चक्रवर्ती राजा हो गया। जरासन्धने अपनी दो कन्याओंका विवाह शूरसेन देशके

राजकुमार कंससे कर दिया। यह कंस उग्रसेन नामक यदुवंशी राजाका पुत्र था और इसने मथुराको अपनी राजधानी बनाया था। इसीके अत्याचारसे मथुरा निवासी यादव क्षत्रिय बहुत व्याकुल हो गये थे। अन्तमें बलरामजीकी सहायतासे श्रीकृष्णने कंसको मार डाला था और मथुराका राज्य पुनः महाराजउग्रसेनको सौंप दिया था।

कंसके मारे जानेपर जरासन्धकी कन्याओंने अपने पिताको मथुरापर चढ़ाई करके कंससे वधका बदला लेनेके लिये उभारा था, जरासन्धने १७ बार मथुरापर चढ़ाई की थी और बलराम तथा श्रीकृष्णने बार बार उसे वहांसे मार भगाया था। मल्लयुद्धमें बलरामके आघातसे जरासन्धका वीर मन्त्री हंस मूर्छित होके गिरा था और डिम्भक यह समझकर कि मेरा भाई हंस युद्धमें मारा गया, नैराश्यके मारे यमुना नदीमें डूब मरा। हंस जब होशमें आया और उसने सुना कि डिम्भकने मेरे लिये प्राण परित्याग किया तो वह भी यमुनामें जा डूबा। इन दोनों वीरोंके मर जानेसे जरासन्धका बल और दिल टूट गया और वह अपनी राजधानीको लौट गया। तदनन्तर जब मथुरापर कालयवनने भी चढ़ाई करना आरम्भ किया तो यदुवंशी मथुरापुरीको छोड़के समुद्रके बीच द्वारका पुरीमें भाग गये। जरासन्धने अवसर पाके शूरसेन देशपर अपना अधिकार जमा लिया, और मथुरामें कुछ दिनोंतक जीतका जशन मनाता रहा।

जब इन्द्रप्रस्थके अधिपति महाराज युधिष्ठिरने राजसूय यज्ञ करना चाहा था तो इसी जरासन्धसे उन्हें खटका था अन्तमें जब श्रीकृष्णजीकी सहायतासे भीमसेनने जरासन्धको मार डाला तब युधिष्ठिरका राजसूय यज्ञ प्रारम्भ हो सका था।

जरासन्ध चेदि देशके राजा शिशुपालका बड़ा मित्र था और वह शिशुपालके साथ रुक्मिणीके विवाहके अवसरमें विदर्भ देशको गया था। जब श्रीकृष्ण रुक्मिणीको हरके चल दिये थे तब जरासन्ध और शिशुपाल आदिने पीछा करके उनसे लड़ना चाहा था परन्तु उस समय बलरामजीकी प्रधानतामें यदुवंशियोंने इन्हें परास्त कर दिया था।

कंस, जरासन्ध, शिशुपाल, दन्तवक्र आदि कई एक क्षत्रिय राजाओंका परस्पर बड़ा मेल था। ये लोग यद्यपि बड़े वीर और साहसी थे तथापि इनकी क्रूरताके कारण भारतवर्षकी प्रजाको बड़ा क्लेश था। कंसके उपद्रवसे भयभीत हो बहुतसे यदुवंशी मथुरा छोड़ अन्यत्र भाग गये थे। शिशुपाल और दन्तवक्र असुरोंसे मेलकर सदा अपने क्रूर व्यवहारसे सज्जनोंको सताया करते थे। जरासन्धने अनगिनत धार्मिक राजाओंको युद्धमें जीतकर बन्दी कर रक्खा था और यदि यथासमय श्रीकृष्ण भीमसेन समेत न पहुँच जाते तो निश्चय था कि जरासन्ध उन सबको मार डालता।

जरासन्धके पीछे उसका पुत्र सहदेव मगध देशका राजा हुआ। यह महाभारतकी लड़ाईमें पाण्डवोंकी ओरसे लड़ा और मारा गया। सहदेवकी वंशपरम्पराने बहुत दिनोंतक मगध देशमें राज्य किया। सहदेवसे सातवीं पीढ़ीमें सेनाजित् नामका एक राजा हुआ जो हस्तिनापुरके राजा (परिक्षितके वंशज) अधिसीम कृष्ण और सूर्यवंशी राजा (बृहद्बलके वंशज) दिवाकरका समकालीन था। (सेनाजित्हीके समयमें वायुपुराण तथा मत्स्यपुराणके उल्लिखित संवाद हुए होंगे।)

जरासन्धके वंशके अन्तिम राजाका नाम जिसने मगध देशपर राज्य किया, पुरञ्जय था। यह पुरञ्जय परम दुर्बल था और उसके मन्त्री शुनकने उसे मारके अपने पुत्र प्रद्योतको अवन्ती तथा मगधका राजा बना दिया। पुरञ्जयके साथही जरासन्धके वंशकी समाप्ति गिनना चाहिये।

सतरहवां अध्याय

कुरुवंश

महाराज कुरुके पुत्र जह्नुसे बारहवीं पीढ़ीमें प्रतीप नामक एक विख्यात राजा हुए। ये परम यशस्वी और सच्चरित्र थे। इनके तीन पुत्र देवापि, शान्तनु, और वाल्हीक नामके हुए। देवापि तो राज्य छोड़ तपस्यार्थ वनमें चले गये और वाल्हीकने अपने नामसे पश्चिम उत्तरकी ओर एक नया देश बसाकर अपना राज्य स्थापित किया। वाल्हीकके पुत्र सोमदत्तके भूरि, भूरिश्रवा, और शल नामक तीन पुत्र उत्पन्न हुए। सोमदत्त और उसके तीनों बेटे कुरुक्षेत्रके युद्धस्थलमें कौरवोंकी ओरसे लड़नेको उपस्थित हुए थे और ये सब उसी लड़ाईमें वीरगतिको प्राप्त हुए।

शान्तनुने अपने पिताका राज्य पाया और हस्तिनापुरमें राज्य करना आरम्भ किया। इनकी प्रथम रानीका नाम गंगा था। शान्तनु और गंगाके जो पुत्र हुआ उसका नाम भीष्म था। शान्तनुने चाहा कि वह राजा उपरिचर वसुकी कन्या सत्यवतीसे जो दासवंशी शूद्रोंके राजाके घर पली थी विवाह करें। पर सत्यवतीका पोषक पिता शान्तनुसे यह प्रतिज्ञा करता था कि सत्यवतीके द्वारा महाराजको जो पुत्र हो वही हस्तिनापुरके राज्यका उत्तराधिकारी बनाया जाय। शान्तनुके एक पुत्र भीष्म वर्तमान थे उन्हें छोड़ दूसरे पुत्रको राज देना शान्तनुको अभीष्ट नहीं था अतएव यह विवाहकी चर्चा शिथिल पड़ा चाहती थी। दैवात्

यह समाचार भीष्मके कानोंतक पहुँच गया। पिताकी इच्छा अवश्य ही पूर्ण हो ऐसा विचार कर भीष्मने दृढ़ प्रतिज्ञा की कि हम सत्यवतीके पुत्रोंसे राज्यार्थ न लड़ेंगे और अपना विवाह भी न करेंगे ब्रह्मचर्यसे जीवन व्यतीत करेंगे, जिसमें सत्यवतीके पुत्रों और हमारे सन्तानोंमें परस्पर राज्यके लिये झगड़ेकी आशंका ही न उठे। भीष्मकी ऐसी प्रतिज्ञा सुन दासराजने राजा शान्तनुसे सत्यवतीका विवाह कर दिया। सत्यवतीके पुत्र चित्राङ्गद और विचित्रवीर्य हुए। शान्तनुके पीछे चित्राङ्गद कुमारावस्थामेंही युद्धमें गन्धर्वोंद्वारा मारे गये। विचित्रवीर्य हस्तिनापुरके राजसिंहासनपर विराजमान हुए। विचित्रवीर्यने पश्चिमी काशिराजकी कन्या *अम्बिका, अम्बालिका और कोशल देशकी राजकन्या कौशल्यासे विवाह किया।

अम्बिकाका पुत्र धृतराष्ट्र हुआ जो जन्मसे अन्धा था। अम्बालिकाके पुत्रका नाम पाण्डु था। विचित्र वीर्यकी एक दासीके पुत्रका नाम विदुर था। राजा विचित्रवीर्य अधिक दिनतक राज्य न कर पाये थे कि क्षयरोगसे पीड़ित होकर मर गये। †

जन्मान्ध होनेके कारण धृतराष्ट्रको राजसिंहासन नहीं मिला। उनके छोटे भाई पाण्डु राजा हुए। पांडु परम

* महाभारत आदिपर्व अध्याय १०२ में विचित्रवीर्यकी पत्नियां सिर्फ दो अम्बिका और अम्बालिका लिखी हैं। अम्बा, भीष्मकी अनुमति लेकर शाल्वके पास लौट गयी थी। अम्बिकासे धृतराष्ट्र और अम्बालिकासे पाण्डुका जन्म हुआ।

† महाभारत आदिपर्व अ. १०६ में लिखा है कि विचित्रवीर्य यक्ष्मारोगसे अनपत्यही मर गये उनकी मृत्युके पीछे सत्यवतीकी आज्ञासे विचित्रवीर्यकी दोनों रानियोंमें और एक दासीमें नियोगद्वारा व्यासजीसे धृतराष्ट्र, पाण्डु और विदुरकी उत्पत्ति हुई। (सम्पादक)।

सुन्दर और प्रतापी थे। उत्तर और पूर्वकी ओर बढ़कर इन्होंने मिथिलापुरीतक विजय कर लिया था और बड़े बड़े राजा लोग इनका लोहा मान गये थे। वसुदेवकी जेठी बहिन कुन्ती जो राजा कुन्तिभोजके यहां पोष्यपुत्रीके रूपमें थी पाण्डुको ब्याही गयी, स्वयंवरमें कुन्तीने इन्हें आप अपना पति स्वीकार किया था। भीष्मकी सम्मतिसे पाण्डुने मद्रदेशमें जाके वहांके राजा शल्यकी बहिन माद्रीसे भी विवाह किया। कुन्तीके तीन पुत्र हुए जिनके नाम क्रमसे युधिष्ठिर, भीमसेन और अर्जुन हैं। माद्रीके नकुल और सहदेव दो पुत्र हुए। महाराज पाण्डु भी अपने पिता विचित्रवीर्यकी नाईं अधिक दिन राज्य नहीं करने पाये थे कि पुत्रोंको बाल्यावस्थाहीमें छोड़ परलोक सिधारे।

धृतराष्ट्रने गान्धार देशके राजा सुबलकी पुत्री गान्धारीसे विवाह किया। धृतराष्ट्रके दुर्योधन आदिक सौ पुत्र हुए। पाण्डुके देहान्तानन्तर धृतराष्ट्रने भीष्मकी अनुमति और सहायतासे राज्यकार्य संभाला। धृतराष्ट्रके पुत्र कौरवोंके नामसे प्रसिद्ध हुए। पाण्डुके पुत्रोंका नाम पाण्डव प्रसिद्ध हुआ। कौरव और पाण्डव बड़े साहसी पराक्रमी और उत्साही निकले। सबसे जेठा कौरव दुर्योधन गदा-युद्धमें परम प्रवीण था पर बड़ा स्वार्थी और दुर्बुद्धिवाला था। इसने पाण्डवोंको राज्यका अंश न देना चाहा और इसी कारण कुरुक्षेत्रमें १८ दिन घोर संग्राम हुआ। राजपुत्रोंके परस्परके जिस कलहकी आशंकासे भीष्मने आजन्म ब्रह्मचर्य धारण किया और राज्यका स्वत्व त्यागा वही राजपुत्रोंका परस्पर कलह भीष्मने बुढ़ापेमें अपनी आंखों देखा और आप भी उसीके बलिदान हुए। दैवगति विचित्र है।

धृतराष्ट्रका पुत्र दुर्योधन पाण्डवोंसे अकारण ईर्षा रखता था और अपने पुत्रकी ममताके कारण धृतराष्ट्र दुर्योधनके दुर्व्यवहारकी उपेक्षा करते थे। इससे दुर्योधनकी दुष्टता और भी बढ़ती जाती थी। भीष्म सदा अपने सब पोतोंको समान दृष्टिसे देखते थे। कौरव तथा पाण्डव कुछ सयाने हुए थे उसी समय हस्तिनापुरमें जीविकाकी खोजमें घूमते फिरते परिवार समेत भरद्वाज गोत्रज महात्मा द्रोण आये। कौरवों और पाण्डवोंको धनुर्वेद सिखलानेके लिये वह आचार्य पद-पर नियुक्त हो गये। द्रोणने कौरवों, पाण्डवों और अपने पुत्र अश्वत्थामाको अस्त्र शस्त्र चलानेकी विधि (धनुर्विद्या) भली भांति सिखायी। द्रोणाचार्यके शिष्योंमें बाण विद्यामें अर्जुन सबकी अपेक्षा अधिक निपुण हुए। अर्जुन अपने गुणोंके कारण गुरुके विशेष कृपापात्र थे। गदायुद्धमें दुर्योधन और भीमसेनका बराबरका जोड़ था। इस बीचमें अधिरथ-का पुत्र कर्ण भी कौरवोंमें आ मिला। यह अस्त्र शस्त्र-की विद्यामें अर्जुनकी टक्करका था। दुर्योधनने शीघ्र इसे अपना परम मित्र बनाके अङ्ग देशके राज्यपर अभिषिक्त कर दिया। गान्धारीका भाई शकुनि भी अपने भानजे दुर्योधन-से विशेष प्रेम रखता और हस्तिनापुरमें ही रहा करता था। दुर्योधनने शकुनि तथा कर्णकी संमतिसे पाण्डवोंको वारणा-व्रत नामक स्थानमें रहनेके लिये भेज दिया, उनके लिये पहिलेही अपने गुप्तचर पुरोचनको आज्ञा देकर वहां एक लाक्षागृह तैयार करा रक्खा था और कह रक्खा था कि रात्रिमें सोते समय कुन्तीसमेत पांचो पाण्डवोंको उसमें जला दे। यह बात धृतराष्ट्रको विदित थी पर उसने पाण्डवोंके बचानेका कोई प्रयत्न नहीं किया। विदुरको इस गुप्त मन्त्रणाका पता चलगया और उसने सावधानीसे

पुरोचनके लाक्षागृहसे बचनेका उपाय बतला दिया। लाक्षागृह तो जल गया पर पाण्डवलोग अपनी माता समेत बच निकले, नावपर बैठ गङ्गापार कर गये और घोर जङ्गलोंमें कन्द मूल फल खाकर विचरने लगे। धृतराष्ट्र और कौरवादिकोंने समझा कि पाँचों पाण्डव मातासमेत लाक्षागृहमें जल मरे। जिस दिन लाक्षागृहमें आग लगी उस दिन दैवयोगसे कोई भिखारिन अपने पुत्रोंसहित आ टिकी थी वह सब जल मरे थे इससे पाण्डवोंके जलनेका लोगोंको और भी विश्वास हो गया। केवल विदुर वास्तविक रहस्यसे परिचित थे।

इसके पूर्व एक बार जब द्रोणने कौरवों और पाण्डवोंकी सहायतासे पाञ्चाल देशके राजा द्रुपदको परास्त करके उत्तर पाञ्चाल देशका राज्य छीन लिया था तब द्रुपदने अर्जुनकी वीरता देख बड़ा आश्चर्य माना था और उसने अपने चित्तमें यह स्थिर सङ्कल्प कर लिया था कि अपनी कन्या द्रौपदीका विवाह अर्जुनकेही साथ करूंगा।

द्रुपदको इतना तो किसी प्रकार विदित हो गया था कि लाक्षागृहमें पाण्डव जले नहीं हैं बच गये हैं पर कहां हैं इनका पता कुछ न था। अन्तमें अर्जुनके खोजनेको द्रुपदने एक युक्ति निकाल ही ली। उसने एक बड़ा धनुष बनवाया कि जिसे अर्जुन सरीखे वीरको छोड़ और कोई उठा न सकता था। राजाने आकाशमें एक चक्कर खानेवाले यन्त्रके ऊपर लक्ष्य टँगवा दिया और यह घोषणा की कि जो राजकुमार इस बड़े धनुषमें बाण सन्धान करके चक्कर खाते हुए यन्त्रके भीतरसे लक्ष्यको वेध देगा उसीको राजकुमारी द्रौपदी अर्पण की जायगी। द्रौपदीके स्वयंवरमें अनेक देश देशान्तरके राजा उपस्थित हुए। इसमें दुर्योधनादि, कौरव

कर्ण, मद्रदेशके राजा और यदुवंशी श्रीकृष्ण आदि भी थे। उधर पाण्डव ब्राह्मणोंका वेष धारण किये भीख मांगते जब दक्षिण पाञ्चालकी सीमापर पहुँचे तो उन्होंने द्रौपदीके स्वयंवरका समाचार सुना। पाण्डव लोग भी अपनी माता समेत काम्पिल्य नगरमें जा पहुँचे। कर्णने धनुष उठा लिया और लक्ष्य भेदनाही चाहता था कि द्रौपदी चिल्ला उठी कि मैं सूतपुत्रसे विवाह न करूंगी। कर्ण लज्जित हो धनुष फेंककर चला आया। इस स्वयंवरमें ब्राह्मण वेषधारी अर्जुनने नियत रीतिसे लक्ष्य वेधकर द्रौपदीको जीत लिया। कुन्तीकी आज्ञा और युधिष्ठिरके आग्रहसे और व्यासजीकी व्यवस्थापर राजा द्रुपदने अपनी कन्याका विवाह पांचों पाण्डवोंके साथ कर दिया। कुछ राजाओंने पाण्डवोंको दुर्बल ब्राह्मण जान द्रौपदीको उनसे छीननेका प्रयत्न किया पर अर्जुन और भीमसेनने उनके दांत खट्टे कर दिये। इस घटनासे सब लोगोंको यह बात विदित हो गयी कि पाण्डव जीवित हैं और द्रौपदीको विवाहकर उन्होंने पाञ्चाल देशके राजाको अपना मित्र और सहायक बना लिया है।

दुर्योधनादिने धृतराष्ट्रकी अनुमतिसे पाण्डवोंको हस्तिनापुरमें बुला भेजा और आधा राजपाट उन्हें बांट दिया। पाण्डव इन्द्रप्रस्थपुरी बसाकर रहने लगे। महाराज युधिष्ठिरने मय नाम कारीगरसे इन्द्रप्रस्थमें एक सुन्दर और विचित्र सभा भवन बनवाया, उधर तीर्थयात्रा करते समय अर्जुन द्वारकापुरीमें गये और श्रीकृष्णकी संमतिसे उनकी बहिन सुभद्राको ब्याह लाये। अर्जुन और कृष्णने यमुना किनारेके खाण्डव वनको जला दिया और निवास तथा खेतीके योग्य भूभाग निकाल लिया था। इसी खाण्डव

धनके जलते समय अग्निसे बचाये जानेके कारण मय अर्जुनका मित्र हो गया था और उसने प्राणदानके बदलेमें इन्द्रप्रस्थपुरीमें वह विचित्र सभागृह निर्माण किया था जिसमें, दुर्योधनको जलकी जगह स्थल और स्थलकी जगह जलका धोखा हुआ था, और इस पर जो द्रौपदी हँसी थी, इस हँसीसे ही दुर्योधनके हृदयपर बड़ा आघात पहुँचा, जो झगड़ोंका एक प्रधान कारण हुआ।

इस समय युधिष्ठिरने श्रीकृष्णकी संमतिसे मयनिर्मित दिव्य भवनमें राजसूय यज्ञ किया। पाण्डवोंकी ऐसी बढ़ती देख फिर दुर्योधनादिके चित्तमें डाह उत्पन्न हुई। शकुनि और कर्णकी संमतिसे दुर्योधनने युधिष्ठिरको हस्तिनापुरमें जुआ खेलनेके लिये बुला भेजा। युधिष्ठिरको उस समयकी राजनीतिके अनुसार इसे स्वीकार करना पड़ा। दुर्योधनने छल करके युधिष्ठिरका राजपाट, धनधाम, पांचो पाण्डवों और द्रौपदी तकको जुएमें जीत लिया। दुर्योधनकी आज्ञासे उसका छोटा भाई दुःशासन द्रौपदीके केश पकड़ भरी राजसभामें खींच लाया। द्रौपदी बेचारी इस समय रजस्वला थी और केवल एकही वस्त्र पहिने थी। कर्णकी संमतिसे दुःशासन द्रौपदीके उस एक वस्त्रको भी उसके शरीरसे उतारने लगा। द्रौपदीको इस संकटमें कुछ न सूझा कि क्या करें! व्याकुल हो उसने श्रीकृष्ण की दुहाई दी। श्रीकृष्ण इस समय विद्या, यश, साहस, धर्म आदिमें सांसारिक क्षत्रियोंमें सबसे बड़े समझे जाते थे और इसी कारण युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें उनकी प्रथम पूजा की गयी थी। श्रीकृष्णकी कृपासे द्रौपदीकी लाज बची। जब द्रौपदीका चीर खींचा जा रहा था द्वितीय पाण्डव भीमसेनने यह देख क्रोधसे दांत पीसकर प्रतिज्ञा की कि मैं इस

दुष्ट दुःशासनका रणभूमिमें रक्त पान करूंगा। भीमकी भयानक प्रतिज्ञा सुन धृतराष्ट्र भयभीत हो गया उसने कौरवोंको अनेक प्रकारसे डांट डपट कर और द्रौपदीको समझा बुझाकर पाण्डवोंको दासत्वसे मुक्तकर उनका राजपाट फेर दिया। पर दुष्ट दुर्योधनको चैन कहां? उसने फिर युधिष्ठिरको बुलाकर यह बदकर जुवा खेला कि यदि इस बार युधिष्ठिर हारें तो पांचो पाण्डवों और द्रौपदी समेत बारह वर्ष वनमें बसें और तेरहवें वर्ष गुप्तवास करें, और गुप्तवासमें उनका पता लग जाय तो फिर उन्हें बारह वर्ष वनवास करना पड़े। युधिष्ठिर पण स्वीकार करके जुवा खेलने लगे और शकुनिने छलसे फिर उन्हें जीत लिया। पाण्डवोंको द्रौपदी समेत बारह वर्ष वनवासके लिये जाना पड़ा।

पाण्डवोंका द्यूतमें पराजय और वनवासका समाचार सुन भोज, वृष्णि, अन्धक आदि यदुवंशी कृष्णसमेत वनमें उनके पास उपस्थित हुए। पाञ्चाल देशका राजकुमार धृष्टद्युम्न, चेदि देशका राजा धृष्टकेतु और केकय देशके पांचो राजकुमार भी वहां आये। सबने यही कहा कि यदि आप आज्ञा दें तो हम कौरवोंको मारके आपको राजसिंहासनपर बिठावें। परन्तु पाण्डव अपनी बातसे नहीं टले। इस कारण उनके सब सम्बन्धी अपने अपने घरको लौट गये। श्रीकृष्ण सुभद्रा तथा अभिमन्युको साथले द्वारका चले आये। धृष्टकेतु नकुलकी स्त्री करेणुमतीको साथले चेदिपुरीको चला गया और धृष्टद्युम्न द्रौपदीके पांचों पुत्रोंको जो पांचो पाण्डवोंसे उत्पन्न हुए थे साथ लेकर काम्पिल्य नगरको लौट आया।

पाण्डवोंने काम्यक वन, द्वैतवन, पहाड़ आदि अनेक स्थानोंपर भ्रमण किया। वर्षा गरमी और जाड़ेके दुःख झेले सर्प अजगर आदि घातक जन्तुओंसे पाला पड़ा। अनेक कठिनाइयां और विपत्तियां पड़ीं। इसी बीचमें कुछ दिनोंके लिये अर्जुन विशेष अस्त्रविद्या सीखने देशान्तर-में चले गये। द्रौपदी बारबार युधिष्ठिरको कौरवोंसे युद्ध करनेके लिये उभारती रही पर महाराज युधिष्ठिर अपनी स्वाभाविक धीरतासे सब बातें सुनते और अवसरकी प्रतीक्षा करते रहे। दुष्ट दुर्योधन वनमें भी उन्हें सताने मित्र मण्डली सहित पहुँचा, वहां गन्धर्वोंने उसकी दुष्टताका मजा चखानेके लिये पकड़ कर बांध लिया, और उसके साथियोंकी भी खूब गत बनायी। अन्तमें दयालु युधिष्ठिरकी आज्ञासे अर्जुनने दुर्योधनको छुड़ाया।

दुर्योधनका बहनोई जयद्रथ जो सिन्धुदेशका राजा था कहीं जाता हुआ उसी वनमें जा पहुंचा जहां पाण्डव थे, द्रौपदीको देख पाया और उसे अपने जालमें फंसाना चाहा। एक बेर जब सब पाण्डव वनमें आखेट करने गये थे अवसर पा जयद्रथ द्रौपदीके समीप आया और अनेक प्रकारसे लुभाने लगा। जब देखा कि द्रौपदी बातोंमें आनेवाली नहीं है तो बलपूर्वक उसे अपने रथपर बैठा चल दिया। द्रौपदी रोने चिल्लाने लगी। पुरोहित धौम्यसे इस दुर्घटनाकी सूचना पाकर अर्जुन और भीमसेन आ पहुँचे और दुष्टके पंजेसे द्रौपदीका उद्धार किया। भीमसेनने इस कामीका काम तमाम करना चाहा था पर युधिष्ठिरके कहनेसे उसके प्राण छोड़ दिये, जयद्रथ अपना सा मुंह लिये चला गया।

लोमश ऋषिकी संमतिसे वनवासके समयमें युधिष्ठिरने

अनेक तीर्थ स्थानोंका पर्यटन किया। इसी प्रसंगमें महाराज युधिष्ठिरने वृहदश्वसे नलदमयन्तीका इतिहास और मार्कण्डेय ऋषिसे अयोध्याके राजकुमार रामचन्द्रकी समग्र कथा सुनी। पतिव्रताके महात्म्य वर्णनमें सावित्री और सत्यवान्‌का भी पूरा पूरा इतिहास सुना।

बारह वर्ष वनवासके पूरे करके पाण्डवोंने तेरहवें वर्षमें गुप्तवासका विचार किया। पांचों पाण्डव और द्रौपदी अपना वेष और नाम बदल, प्रच्छन्न वेष बनाय मत्स्य देशमें जा पहुँचे, और वहाके राजा विराटकी सेवामें नियुक्त हुए, युधिष्ठिरने अपना नाम कङ्क रक्खा और राज सभामें द्यूतक्रीड़क बने। भीमसेनने अपना नाम बल्लव रक्खा और सूपकार बने। अर्जुनने नपुंसक वेषमें अपना नाम वृहन्नला रक्खा और राजकन्या उत्तराको नाचना गाना सिखानेपर नियुक्त हुए। वैसेही नकुल और सहदेव भी अपने अपने नाम बदलकर राजाविराटके घोड़ों और गौवोंकी रखवालीपर नियुक्त हुए। द्रौपदीने सैरन्ध्रीका वेष धारण किया और राजा विराट्की रानीकी मांगपट्टी बनानेपर तैनात हुई। इस समय राजा विराटका साला कीचक एक प्रबल सेनापति और शक्तिविशिष्ट दुष्ट था। राजा विराट तो नामको राजा था, सब प्रकारका अधिकार कीचककेही हाथमें था। कीचकके कई भाई भी थे वह भी कीचकही कहलाते थे। द्रौपदीके सौन्दर्यपर कीचक मोहित हो गया, उसने चाहा कि द्रौपदीसे बलात्कार करे, पर द्रौपदीसे समाचार पाकर भीमसेनने कीचकको और उसके सभी भाई बेटोंको गुप्त रीतिसे मार डाला। कीचक वधसे राजाविराट बहुत दुर्बल हो गया।

दुर्योधनादिकने अनेक दूतोंको भिन्न भिन्न देशोंमें भेज भेजकर बहुत कुछ खोज की पर पाण्डवोंका पता न पाया। किसी दूतने दुर्योधनको यह समाचार भी दिया कि मत्स्य देशके राजाविराटका मन्त्री और सेनापति मार डाला गया है और इस अवसरपर उसके देशपर चढ़ाई करके उसे जीतना सुगम है। त्रिगर्त्त देशका राजा सुशर्मा जो विराटका वैरी था दुर्योधनकी संमतिसे मत्स्य देशपर चढ़ दौड़ा और राजाकी गौवोंको ले भागा। विराटने एक सेना साथ लेके उसका पीछा किया, इस सेनामें अर्जुनको छोड़ शेष चारों पाण्डव उपस्थित थे। उनके पराक्रमके आगे सुशर्मा हार गया और विराट उससे अपनी गाय छीन लाया। उधर सुशर्माके पीछे दुर्योधन भी घातमें लगा था। विराटकी अनुपस्थितिमें दुर्योधन आदि कौरवोंने मत्स्य देशमें घुसके शेष गौवोंको भी छीन लिया और हस्तिनापुरकी ओर चले। विराटकी पुरीमें इससमय उसका पुत्र उत्तर था और अर्जुन भी अन्तःपुरमें उपस्थित थे। सब समाचार सुन अर्जुनने उत्तर समेत रथपर बैठ कौरवोंकी सेनाका पीछा किया। घोर संग्राम हुआ। अर्जुनके सामने भीष्म, द्रोण, कर्ण आदि कोई भी न ठहर सके। अर्जुन कौरवोंसे विराटकी गौवोंको छीन पुरीमें लौट आये। अब पाण्डव प्रकट हुए। विराट उनकी वीरतापर अतिशय प्रसन्न हुआ और उसने उत्तरा राजकुमारीका विवाह, अर्जुनसे कर देना चाहा। अर्जुनने उत्तराको निज कन्याकी दृष्टिसे देखा और पढ़ाया था अतएव उसके साथ स्वयं विवाह न करके अपने पुत्र अभिमन्युका विवाह उत्तरासे करनेका प्रस्ताव किया। विराटने इसे सहर्ष स्वीकार किया। द्वारकापुरीसे अभिमन्युको लेकर श्रीकृष्ण आये और देश देशके राजा इस विवाहोत्सवमें

उपस्थित हुए। बड़े आनन्द और उत्सवके साथ उत्तरा और अभिमन्युका विवाह हुआ। राजा विराटने बहुमूल्य वस्त्र आभूषण आदि दहेजमें दिया।

इस रीतिसे पाण्डवोंने बारह वर्षका वनवास और एक वर्षका गुप्तवास यथोचित रीतिसे बितादिया और अब अपने पैतृक राज्यका अंश कौरवोंसे लेनेको उद्यत हुए। अबकी बार पाण्डवोंने यह स्थिर सङ्कल्पकर लिया था कि यदि दुर्योधनादिक हमें राज्यका भाग न देंगे तो अवश्य अपने स्वत्वके लिये युद्ध करना पड़ेगा।

अर्जुन और दुर्योधन दोनों द्वारकापुरीमें कृष्णके पास इस आशयसे पहुँचे कि कृष्ण युद्धमें हमारा साथ दें। दुर्योधन श्रीकृष्णके यहां पहले पहुँचा और उनके सिरहाने जा बैठा अर्जुन पीछे पहुँचे और श्रीकृष्णके पैरोंकी ओर बैठ गये। श्रीकृष्ण जब जागे तो उनकी दृष्टि अर्जुनपर पहले पड़ी। दुर्योधनने कहा कि हे कृष्ण! हम आपकी सेवामें पहले उपस्थित हुए हैं अतएव आपको मेरी सहायता करनी चाहिये। श्रीकृष्णने कहा कि तुम हमारे यहां पहले आये हो और अर्जुनपर मेरी दृष्टि पहले पड़ी। इस कारण मैं सहायता तो दोनोंकी करूँगा पर इस रीतिसे कि एक ओर मैं अकेला बिना अस्त्र ग्रहण किये ही सहायक रहूँगा और दूसरी ओर गोपगणोंके सहस्राधिक वीर योद्धाओंकी सशस्त्र सेना सहायक रहेगी। अर्जुनने बिना अस्त्र ग्रहण किये ही श्रीकृष्णकी सहायता चाही। दुर्योधन गोपगणोंकी वीर सेनाको पाकर सन्तुष्ट हो गया। फिर दुर्योधन बलरामजीको मनाने गया पर उन्होंने कौरवों और पाण्डवोंको एकसा समझ युद्धमें किसीका भी सहायक

होना स्वीकार न किया। पाण्डव और कौरव दोनों युद्धके लिये सन्नद्ध होने लगे। पाण्डव लोग युद्ध करना नहीं चाहते थे उन्हें तो यहांतक भी सन्तोष था कि यदि पांचों भाइयोंके निर्वाहार्थ केवल पांच गांवही कौरव छोड़ दें तो युद्ध न हो। श्रीकृष्णजीको एलची बनाके सन्धिके लिये पाण्डवोंने कौरवसभामें भेजा। धृतराष्ट्र, भीष्म, बाह्लीक, विदुर, द्रोण इत्यादि सबकी यही संमति थी कि पाण्डवोंका कहना मान लिया जाय और युद्ध न हो, पर दुर्योधन, कर्ण, और शकुनिकी संमति युद्ध करनेहीकी थी। धृतराष्ट्रके कहने पर स्वयं श्रीकृष्णने दुर्योधनको अनेक प्रकार समझाया पर दुर्योधनने कृष्णसे स्पष्ट कह दिया कि बिना लड़ाई किये सूईभर भी भूमि पाण्डवोंको न दी जायगी। श्रीकृष्णने लौटकर पाण्डवोंको सब वृत्तान्त सुनाया। पाण्डवोंकी माता कुन्ती और पत्नी द्रौपदीकी भी यही संमति थी कि अपने स्वत्वके लिये युद्ध अवश्य ही करना चाहिये। दोनों ओरसे कुरुक्षेत्रमें युद्धार्थ अपनी सेना इकट्ठी हुई और दोनों दल इस परम भयानक युद्धके लिये सन्नद्ध हुए।

पाण्डवोंकी सहायताके लिये विशाल सेना सहित सात्यकि जरासन्धका पुत्र सहदेव, चेदि देशका राजा धृष्टकेतु, मत्स्य देशका राजा विराट, पाण्ड्य देशका राजा, पाञ्चालदेशका राजा द्रुपद और द्रुपदके पुत्र धृष्टद्युम्न आदि उपस्थित हुए। श्रीकृष्णने अर्जुनके रथका सारथी बनना स्वीकार किया।

कौरवोंकी ओरसे भगदत्त, चीन और किरातोंकी सेना समेत भूरिश्रवा, शल्य, कृतवर्मा भोज अन्धक और कुकुर क्षत्रियोंके साथ, सिन्धुराज जयद्रथ, काम्बोजदेशका राजा सुद-

छिए, माहष्मतीपुरीका राजा नील, अवन्तिदेशके राजकुमार विन्द अनुविन्द और केकय देशके राजकुमार सन्तर्दन आदिक युद्धक्षेत्रमें उपस्थित हुए।

निदान अपने पक्षवालोंको साथ लिये पाण्डव, द्रौपदीके पुत्र और अभिमन्यु तथा घटोत्कच समेत युद्ध क्षेत्रमें एक ओर खड़े हुए और स्वपक्षवालोंको लिये कौरव भीष्म, द्रोण, कर्ण, वाह्लीक आदिके साथ उनके सामने डट गये।

भीष्मपितामहने दस दिन तक घोर युद्ध किया और पाण्डवोंकी आधीसे अधिक सेनाका संहार कर डाला। अन्तमें जब श्रीकृष्णकी संमतिसे अर्जुनने शिखण्डीको आगे करके भीष्मको शस्त्र त्यागनेपर विवश कर दिया अर्जुनके बाणोंसे घायल हो दसवें दिन भीष्म बाणोंकी शय्यापर सो रहे।

तदनन्तर द्रोणाचार्यने पांच दिनतक युद्ध किया इस बीचमें पाञ्चालदेशके राजा द्रुपद, मत्स्यदेशके राजा विराट और अर्जुनके पुत्र अभिमन्यु आदि युद्धस्थलमें वीरगतिको प्राप्त हुए। द्रोणाचार्यको जीतना पाण्डवोंके लिये परम कठिन कार्य था पर श्रीकृष्णजीने उसकी भी एक युक्ति खोज निकाली। द्रोण अपने पुत्र अश्वत्थामाको बहुत प्यार करते थे उनका संकल्प था कि पुत्रकी मृत्युका समाचार सुनकर अस्त्र छोड़ देवें। भीमसेनने अश्वत्थामा नाम एक हाथी मार डाला था। द्रोणको युधिष्ठिरके सच बोलनेपर विश्वास था सो कृष्णके समझानेपर युधिष्ठिर द्रोणके सम्मुख यह कहनेको प्रस्तुत हो गये कि 'अश्वत्थामा मारा गया' जब द्रोणने युधिष्ठिरके मुखसे अश्वत्थामाकी मृत्युका समाचार सुना तो उसे सत्य समझ अस्त्र परित्याग कर दिया और योगद्वारा प्राणत्यागके लिये समाधिस्थ हो बैठे।

बीचमें नृशंस धृष्टद्युम्नने खड्गसे उनका सिर काटकर अपनी शूरताका परिचय दिया।

द्रोणके अनन्तर कर्ण कौरवसेनाका सेनापति बनाया गया। इसने भी दो दिनतक प्रबल युद्ध किया। इस बीचमें भीमसेनने कौरवोंको एक एक करके प्रायः सभीको मार डाला और अपनी प्रतिज्ञानुसार उन्होंने दुःशासनके रक्त पानका अभिनय भी कर दिखाया। कर्ण जब अर्जुनसे युद्ध करनेके लिये चला तो मद्रदेशका राजा शल्य उसका सारथि बना। कर्ण और शल्यमें परस्पर नाना प्रकारके वादविवाद हुए। कर्णको इसी समयमें अपने पुत्र कुमार वृषसेनके मारे जानेका संवाद मिला। इससे उत्तेजित हो वीरशिरोमणि कर्ण और भी पराक्रमसे लड़ा, कर्णके पास वह अमोघ शक्ति न रह गयी थी जो उसने अर्जुनकेलिये रख छोड़ी थी। क्योंकि उसने घटोत्कचपर चलाकर उसे नष्ट कर डाला था। इसलिये वह अर्जुनपर विशेष प्राबल्य न दिखा सका। उसके रथका पहिया कहीं कीचड़में फँस गया और जब वह उसके निकालनेमें व्यग्र था अर्जुनने बाणसे उसका सिर काट गिराया। कर्णके मरनेका दुर्योधनको बड़ा दु:ख और शोक हुआ।

कर्णके पीछे शल्य कौरव सेनाका सेनापति बनाया गया और महाराज युधिष्ठिरने अपने हाथों उसे मार डाला। कनिष्ठ पाण्डव सहदेवने युद्धक्षेत्रमें गान्धारीके भाई शकुनिका वध किया। इस प्रकार अठारह दिनकी लड़ाईके अन्तमें कौरवोंके बीच केवल दुर्योधन और उसके तीन साथी अश्वत्थामा, कृप, और कृतवर्मा बच रहे बाकी सब मर खप गये।

अपने बन्धुजनोंके विनाशके अनन्तर दुर्योधन एक तालावमें जा छिपा। भीमसेन पता पातेही वहां पहुँचे और उसे मल्लयुद्धके अर्थ ललकारा। अन्तमें मानी दुर्योधनसे न रहा गया। वह उस दशामें भी अपनी गदा ले भीमसे मल्लयुद्ध करनेको प्रस्तुत हो गया। इस समय तीर्थ यात्रा करते हुए बलरामजी भी कुरुक्षेत्रमें आ पहुंचे थे। दुर्योधन और भीमका गदायुद्ध होने लगा। दोनों गदा युद्धमें समान ही निपुण थे। कभी एक जीतता और कभी दूसरा उसे दबा देता। श्रीकृष्णने देखा कि इस प्रकारसे भीम दुर्योधनसे पार न पावेगा अतएव अर्जुनसे सङ्केत कराया कि भीम दुर्योधनकी वायीं जांघपर गदाका प्रहार करे। भीमने सङ्केत पाते ही वैसा किया। दुर्योधन जांघ टूटनेसे अशक्त हो पृथ्वीपर लोट गया। क्रोधान्ध भीमने अनादर-पूर्वक उसके सिरको अपने पैरोंसे ठुकराया। बलरामजी गदायुद्धमें दुर्योधन और भीमके गुरु थे। बलरामजीने देखा कि भीमने दुर्योधनकी जांघमें गदा प्रहार किया, जो गदा युद्धके नियमोंके सर्वथा प्रतिकूल और अधर्म था। उनसे वह अधर्म देखा न गया। बलरामजी आवेशमें अधीर हो चिल्ला उठे 'अरे अधर्मी भीम! यह तूने क्या किया धिक्कार है तुझे कि गदा युद्धके नियमके विपरीत आचरण किया' इतना कहते कहते बलरामजीका क्रोध भड़क उठा और वे अपना हल मूसल उठा बड़े वेगसे भीमसेनको मारने दौड़े। बीचहीमें श्रीकृष्णजीने विनयपूर्वक आगे बढ़ बलरामजीको रोक लिया और यह कह उनका क्रोध शान्त किया कि भैया दुर्योधनके अत्याचारसे खिन्न होकर भीमसेनने पहलेहीसे जब दुर्योधनने भरी सभामें अपनी-बायीं जांघ उघाड़कर द्रौपदीको उसपर बैठनेका इशारा किया था, प्रतिज्ञा कर

युधिष्ठिरने उनसे अनेक प्रकारके धर्मविषयक प्रश्न पूछे और भीष्मने विस्तारपूर्वक प्रत्येकका उत्तर देके युधिष्ठिरको धर्मनीति और राजनीति विषयक अनमोल उपदेश दिये। भीष्मकी मृत्युके अनन्तर पाण्डवोंने बड़े आदर और सत्कारके साथ उनकी अन्त्येष्टि क्रिया की।

कुरुक्षेत्रके युद्धकी समाप्तिमें पाण्डवोंकी ओर केवल सात्यकि श्रीकृष्ण और पांचो पाण्डव अक्षत शरीर बचे, शेष सभी मारे गये। इतनी मारकाटके बाद कहीं जाकर युधिष्ठिरको राजसिंहासनपर बैठना मिला।

युधिष्ठिरने राजसिंहासनपर बैठ कर एक अश्वमेधयज्ञ रचा। अर्जुन घोड़ेकी रखवाली करते साथ साथ चले, अनेक देशके बचेखुचे राजकुमारोंसे युद्ध हुआ अन्तमें सबको विजय करते हुए अर्जुन घोड़े समेत लौट आये और यज्ञकी समाप्ति विधिपूर्वक हुई। श्रीकृष्ण भी महाराज युधिष्ठिरसे विदा मांग उनकी दी हुई भेंटोंको सादर स्वीकारकर द्वारका पुरी लौट आये।

धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती हस्तिनापुरमें अपना बुढ़ापा काट रहे थे कि विदुरकी संमतिसे नगरको छोड़ वनमें जा बसे और तपस्या करने लगे। महाराज युधिष्ठिर उनके चले जानेपर परम दुःखी थे और उनके ढूंढ़नेको लिये दूत आदि भी भेजे पर यही समाचार मिला कि धृतराष्ट्र, गान्धारी और कुन्ती दावाग्निमें जलमरे। युधिष्ठिरने उन सबकी भी यथाविधि और्ध्वदैहिक क्रिया की।

कुरुक्षेत्रके युद्धके पीछे ३६ वर्ष तक महाराज युधिष्ठिरने हस्तिनापुरमें राज्य किया। अन्तमें जब उनको यादवोंके नाश-का समाचार मिला तो उनके चित्तमें संसारके सुखभोगकी

ओरसे बड़ा वैराग्य उत्पन्न हुआ। युधिष्ठिरने तुरन्त अर्जुनके पोते परीक्षितको जो इस समय ३५ वर्षकी अवस्थाका हो गया था और राजकाजके परिचालनमें भली भांति समर्थ था, हस्तिनापुरके राजसिंहासनपर बिठाया और आप अपने चारों भनुजों और द्रौपदीसमेत उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान किया।

इस प्रकार पाण्डवोंके सांसारिक जीवनका अवसान हुआ। राजतरङ्गिणीमें लिखा है कि महाराज युधिष्ठिरने राजसिंहासनपर बैठके एक संवत् प्रचलित किया था जो युधिष्ठिरसंवत्के नामसे प्रचलित है।

पाण्डवों और कौरवोंके इतिहाससे इतना तो अवश्य ही ज्ञात होता है कि अन्तमें धर्मकी जय और पापका क्षय होता है। और गृहकलहका परिणाम बड़ा ही भयङ्कर होता है। परमात्मा करे दुर्योधनसे कुलाङ्गार किसी देशमें पैदा न हों।

महाराज युधिष्ठिरके पीछे उनके स्थानपर हस्तिनापुरमें परीक्षित्ने राज्य किया। यह राजा परम धार्मिक, सत्यवादी, चतुर और प्रजापालनमें तत्पर रहा। इसने लगभग ६० वर्ष राज्य किया। इसकी रानी मत्स्य देशके राजा विराट्के पुत्र उत्तरकी कन्या अर्थात् मामाकी लड़की थी। एक वार राजा मृगया करते करते वनमें प्याससे व्याकुल हो पानीकी तलाशमें शमीक ऋषिके आश्रमपर पहुँचे। ऋषि उस समय ध्यानमग्न थे उन्होंने उठके राजाका यथोचित आदर सत्कार नहीं किया इसपर राजाको बड़ा क्रोध आया, और अपने धनुषकी कोरसे वहांपर पड़े हुए एक मृत सर्पको उठाके ऋषिके गलेमें डाल दिया और अपनी राजधानीको लौट आए। इन्हीं महाराज परीक्षित्को कृष्ण द्वैपायन

व्यासके पुत्र शुकदेवजीने भगवान् विष्णुकी प्रशंसा और उनकी लीला गाकर सुनायी।

ऐसा जान पड़ता है कि परीक्षित्से तक्षक जातिके योद्धा लोग वैर रखते थे और उन्हें मार डालनेका अवसर ढूंढा करते थे अन्तमें किसी तक्षकने महाराज परीक्षित्के वध करनेमें सफलता प्राप्त की।

परीक्षित्के पीछे उनके पुत्र जनमेजय हस्तिनापुरके राजसिंहासनपर विराजमान हुए। अपने पिताके वैरी तक्षक जातिके लोगोंके यह परम शत्रु थे। तक्षक जातिके अनेक जनोंको इन्होंने बन्दी किया और उन्हें जलती आगमें झोंककर अपने पिताके वधका बदला लिया। पर वह मनुष्य जिसने परीक्षित्का वध किया था जनमेजयके हाथ न पड़ा और किसी तरह आगमें झोंके जानेसे बच गया। आस्तीक नामके किसी ब्राह्मणने आके जनमेजयसे शेष तक्षक जाति वालोंके प्राणदानकी प्रार्थना की। राजाने उनके अनुरोधसे तक्षक जातिवालोंका वध करना बन्द करा दिया।

जनमेजयहीके राजदरबारमें व्यासके शिष्य वैशम्पायनने उपस्थित हो महाराजको महाभारतका समग्र इतिहास सुनाया था। (परीक्षित् जनमेजयका नाम शतपथ ब्राह्मण आदि वैदिक ग्रन्थोंमें पाया जाता है।)

जनमेजयके पीछे उसकी सन्तानने तीन पीढ़ीतक हस्तिनापुरमें राज्य किया। जनमेजयके परपोते महाराज "नेमिचक्र" नामका एक प्रसिद्ध राजा हुआ इसीका नाम वत्सराज भी था। इसने अवन्तीके राजा चण्डप्रद्योतकी कन्या वासवदत्तासे विवाह किया। यह राजा गौतमबुद्धका समकालीन था और अपने समयमें विद्या और आचरणकी योग्यता

के कारण इसने भारतवर्षमें बड़ा नाम पाया। मगधका शिशुनागवंशी राजा बिम्बिसार और श्रावस्तीका इक्ष्वाकुवंशी राजा प्रसेनजित् इसी उदयनके समकालीन थे।

प्राचीन भासकविने 'स्वप्न वासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायणम्' नाम ग्रन्थोंका नायक उदयनहीको बनाया है। हर्षवर्द्धन विरचित रत्नावली नाटिकाका नायक वत्सराज भी यही महाराज उदयन हैं। सुबन्धु कविने भी वासवदत्तामें इसका वर्णन किया है और कथासरित्सागरमें भी इस राजाके विषयमें अनेक कथायें हैं। महाकवि कालिदासने भी निज विरचित मेघदूत काव्यमें इसी राजा उदयनका उल्लेख किया है।

महाराज उदयनके पोतेका पोता क्षेमक था जो परम दुर्बल था। इसने अपने राज्यका सब भार अपने मंत्रीको सौंप दिया। क्षेमकको मारकर मन्त्री स्वयं राजसिंहासन पर बैठ गया। इस मन्त्रीका नाम "विसर्वे" था। उसकी वंश परम्परामें १४ पीढ़ीतक राज्य रहा। अन्तिम राजा मदनपालके मंत्री महाराजिने राजाको मारकर सिंहासन ले लिया। महाराजिके वंशने १५ पीढ़ीतक राज्य किया। उसकी वंशपरम्पराके समाप्त होनेपर एक दूसरे वंशने १० पीढ़ीतक राज्य किया। कुमाऊँके सुखवन्तने आकर इस वंशके अन्तिम राजा राजपालको मार डाला। और आप राज्य करने लगा। अन्तमें उज्जयिनीके महाराज विक्रमादित्यने सुखवन्तको मारकर इस राज्यको मालवा राज्यमें मिलाकर अपने अधीन कर लिया।

अठारहवाँ अध्याय

महावीर और बुद्ध

रामायण और महाभारतमें लिखी गयी घटनाएँ ऐतिहासिक तो हैं पर इतनी पुरानी हैं कि लोगोंको अब ठीक ठीक स्मरण नहीं है कि राम और युधिष्ठिरको हुए कितने दिन बीते। युरोपके लोगोंने इस विषयमें बहुत परिश्रमसे खोज की सही पर निश्चयात्मक परिणामतक कोई न पहुँचा। आजकल जिन ऐतिहासिक घटनाओंका निर्णीत समय हम लोगोंको मिला है, रामायण और महाभारतका समय अवश्य उनसे बहुत पहलेका है। रामायण और महाभारतके समयमें भारतवर्षके भिन्न भिन्न भागोंमें जो राजवंश राज्य करते थे, पीछेके समयमें भी वहीं उन्हीं स्थानोंमें राज्य करते सुननेमें आये हैं।

विक्रमसे पूर्व सातवीं शताब्दीके समाप्त होनेतक कोसलका राज्य उत्तरी भारतमें सबसे अधिक प्रबल था। इस राज्यकी सीमा दक्षिणमें काशी और उत्तर पूर्वकी ओर नेपाल थी। यह राज्य रामचन्द्रजीके वंशजोंहीका था पर इनमें दो शाखाएँ हो गयी थीं। एक शाखाका राज्य कपिलवस्तुमें और दूसरीका श्रावस्तीमें था, और अयोध्या राजधानी नहीं रही। इसी समय उत्तरी भारतमें चार और भी *प्रबल राज्य थे। प्रथम मगध, जिसकी राजधानी राजगृह* थी, दूसरे मालवा, जिसकी राजधानी उज्जैन, तीसरे वत्स, जिसकी राजधानी कौशाम्बी और चौथे गान्धार जिसकी

राजधानी तक्षशिला थी। इन्हें छोड़ और भी बारह छोटे छोटे राज्य उत्तरी भारतके भिन्न भिन्न भागोंमें सुननेमें आते हैं। नीचे उन राज्योंके नाम राजधानी समेत लिखे जाते हैं।

देश	राजधानी	देश	राजधानी
शूरसेन	मथुरा	पाञ्चाल	उत्तरी अहिच्छत्र दक्षिणी काम्पिल्य
मत्स्य	विराट	विदेह	मिथिला
चेदि	चंदेरी	लिच्छवी	वैशालि
काशी	बनारस	मल्ल	कुशीनगर
अङ्ग	चम्पा	अश्मक	बीकानेर
कुरु	इन्द्रप्रस्थ	काम्बोज	द्वारका

महाभारतके समय मगधमें जरासन्धका राज्य था। जब कृष्णचन्द्रकी सहायतासे भीमसेनने उसे मार डाला उसका बेटा सहदेव मगधका राजा हुआ। सहदेव महाभारतकी लड़ाईमें मारा गया और उसकी सन्तान पीछे बीस पीढ़ीतक मगध देशमें राज्य करती रही। विक्रमाब्द ५४३ वर्ष पहले मगधमें शिशुनागवंशवाले राज्य करते थे। इन्हींके समयमें मगधमें दो नये मत प्रकट हुए, जो जैन और बौद्धके नामसे प्रसिद्ध है। बौद्धोंके समयमें कुछ कालतक बौद्धधर्म भारतवर्षमें राजधर्म हो गया था। श्रीशंकराचार्य और कुमारिलके समय इसका पूर्ण ह्रास हुआ और पीछेसे मुसलमानोंकी चढ़ाईके साथ तो यह धर्म भारतसे बिलकुल विदा ही हो गया पर चीन, जापान, मङ्गोलिया, तिब्बत, चीन, हिन्दी प्रायद्वीप और लङ्काद्वीपमें यह पूरी तरह फैल गया और अबतक वहां बना है। जैन मतने कभी भारतमें अधिक बल नहीं पकड़ा पर कभी कभी किसी किसी राज्यके राजाओंने

इस मतको स्वीकार करके कुछ प्रचार किया। यह जैन मत बौद्ध मतकी तरह भारतसे सर्वथा लुप्त नहीं हुआ और न दूर देशोंमें फैल सका। आजकल भी इस देशमें जैनोंकी संख्या ५० लाखसे कम नहीं है।

जैन मतके प्रवर्त्तक वर्द्धमान "महावीर" वैशालिके लिच्छवी राजा कटककी बहिन त्रिशलाके बेटे थे। महावीरके बापका नाम सिद्धार्थ था। राजा कटककी बेटी मगधके शिशुनाग वंशी राजा बिम्बिसारको ब्याही थी इस प्रकारसे महावीर वैशालि और मगधके राजवंशके समीपी नातेदार थे। लोग बताते हैं कि वैशालि नगरमें विक्रमाब्दसे ५४२ वर्ष पहले इनका जन्म हुआ था। महावीरने तीस वर्षकी अवस्थामें अपना घरबार छोड़ा और विरक्त होके धर्मकी खोजमें बाहर निकले। कुछ दिनतक पारसनाथके दलमें मिले रहे पीछेसे अपना एक नया पन्थ चलाया और अपना नाम "जिन" रक्खा और अपने चेलोंका एक समाज बनाकर उन्हें धर्मशिक्षा दी। इस मतने वेदोंको प्रामाणिक नहीं माना, अहिंसाको परम धर्म समझना उस मतकी मुख्य बात थी। महावीरका देहान्त विक्रमाब्दसे ४७० वर्ष पहले जिला पटनाके पावा नाम स्थानपर हुआ। महावीरके पीछे जैनियोंके दो भेद हो गये एक 'दिगम्बर' जो कपड़ा भी न पहनते थे, और दूसरे श्वेताम्बर जो श्वेत वस्त्र धारण करते थे। जैन मतमें धर्मके तीन मुख्य नियम थे, ठीक देखना, ठीक ज्ञान और ठीक कर्म अर्थात् भला चालचलन। भले चालचलनके अन्तर्गत पांच बातें थीं। झूठ न बोलना, चोरी न करना, इच्छाको दबाना और मन वचन, तथा कर्मसे पवित्र बने रहना और किसीकी हिंसा न करना। इस पिछली बातको जैन लोग यहांतक निर्वाह

लेते हैं कि कीड़ों मकोड़ोंतकको भी पीड़ा नहीं देते। पानी छानकर पीते हैं पांवसे चींटी नहीं कुचलते दिनहींमें भोजन करते और पतंग आदिकी हिंसाके भयसे रातमें दिया भी नहीं जलाते। मुँहको कपड़ेसे ढके रहते हैं कि सांस लेनेमें कहीं कीड़ोंकी हिंसा न हो जाय। ये लोग पारसनाथ और महावीरकी मूर्त्ति बनाकर पूजते हैं। आत्माकी सत्तामें विश्वास रखते, पुनर्जन्मको मानते तथा कर्मको आत्माकी उन्नति वा अवनतिका मुख्य कारण समझते हैं। उपवास करना और शरीरको क्लेश देकर तपस्या करना हिन्दुओंकी तरह यह भी धर्म समझते है। जैनियोंके सुहावने तीर्थस्थान और मन्दिर प्रायः ऊँचे पहाड़ोंपर और सूनसान जङ्गलोंमें पाये जाते हैं।

बनारससे लगभग सौ मील उत्तरकी ओर हिमालय पर्वतकी तराईमें पुराने समयमें कपिलवस्तु नाम एक नगर था। यहां श्रीरामचन्द्रके वंशज क्षत्रिय लोग राज्य करते थे। जिस समय मगधमें बिम्बिसारका राज्य था उसी समय कपिलवस्तुमें शुद्धोदनका राज्य था। उसकी रानी महामायाकी कोखसे एक पुत्र उत्पन्न हुआ और उसका नाम "सिद्धार्थ" रक्खा गया। यही बालक पीछेसे संसारमें गौतमबुद्धके नामसे प्रसिद्ध हुआ। बचपनमें इस बालकका चित्त पढ़ने लिखनेमें बहुत लगता था। सिद्धार्थने भी उस समयके क्षत्रियोंकी रीतिके अनुसार बाण चलाने आदिमें अच्छा अभ्यास किया था और अठारह वर्षकी अवस्थामें विवाह भी हो गया था पर इस राजकुमारका चित्त सांसारिक विषयोंमें न लगता था। बापकी राजधानीमें बसते हुए उसने बूढ़े, रोगी और मृत मनुष्यको देख उनकी

दशापर विचार किया। उसको समझ पड़ा कि संसारमें सभी प्राणी दुःखमें फँसे हैं और उन्हें दुःखसे छुटकारेका मार्ग नहीं सूझ पड़ता। सिद्धार्थने दृढ़ सङ्कल्प किया कि लोगोंके छुटकारेका ठीक ठीक उपाय खोज निकालूंगा। तीस वर्षकी अवस्थाके पहले इसे एक पुत्र भी हो गया था जिसका नाम राहुल रक्खा गया। सिद्धार्थने एक बार नगर घूमते घूमते किसी साधुको देख पाया और उसके शान्तिमय जीवनको देख प्रसन्न हुआ। इससे इसके चित्तमें वैराग्यने और भी जड़ पकड़ा। एक दिन जब रात्रिको सब सो रहे थे सिद्धार्थ चुपचाप अपने बापके घरसे निकल भागा और राजवस्त्र त्यागके सन्यासीके कपड़े पहन लिये। कुछ दिन पटनेमें हिन्दू पण्डितोंकी धर्म शिक्षा ग्रहण करता रहा फिर कुछ दिन गयाके वनमें तपस्या करता रहा पर मनको सन्तोष न हुआ। सोचा कि तपस्या द्वारा शरीरको पीड़ा देनेसे कोई लाभ नहीं। एक दिन बैठे बैठे सोचते विचारते चित्तमें यह भाव आया कि भला जीवन बिताने और सब जीवोंपर दया करनेसे मनुष्यमात्रका छुटकारा हो सकता है। मनुष्यकी इच्छा ही उसके क्लेशका कारण है। जो मनुष्य दुःखसे बचना चाहे वह अपनी इच्छाओंको दबावे। इस भावने सिद्धार्थकी आंखें खोल दीं और उस दिनसे बुद्ध या ज्ञानीके नामसे संसारमें प्रसिद्ध हुए। अब उन्होंने अपने नये मतकी शिक्षा देना आरम्भ किया। कठिन संस्कृत भाषामें लोगोंको व्याख्यान न सुनाकर उस समय साधारण बोलचालमें अपने धर्मका उपदेश दिया। लोगोंने बुद्धकी शिक्षाको बड़ी रुचि और ध्यानसे सुना और थोड़े ही दिनोंमें उसके बहुतसे चेले हो गये। बुद्धकी शिक्षा यह थी कि ब्राह्मण या

ऊंची जातिका हो या नीच जातिका मोक्ष सभीको मिल सकता है मनुष्यका यह जीवन उसके पूर्व कर्मोंका फल है। जीवनमें सुख तो थोड़ा पर दुःख अधिक है। अतएव विद्वान् मनुष्यको चाहिये कि वह बारंबारके जन्मके बन्धनसे छूटने और निर्वाण अर्थात् छुटकारा या मोक्ष पानेका यत्न करे और मन, वचन तथा कर्मसे शुद्ध सच्चा बना रहे। इन्द्रियों और इच्छाओंका दमन करे।

बुद्धने पहलेपहल बनारसमें शिक्षा देना प्रारम्भ किया। उसने अपने चेलोंको भी दूरदेशमें धर्म फैलानेके लिये भेजा बुद्धकी शिक्षाका प्रभाव लोगोंपर बहुत शीघ्र पड़ा। मगधके बिम्बिसार और श्रावस्तीके प्रसेनजित् दोनों राजा बौद्धमतमें दीक्षित हुए। तीसवर्ष पीछे बुद्ध फिर एक बार अपने बापकी राजधानी कापिलवस्तुमें साधुके वेषमें आया। उसका बूढ़ा बाप शुद्धोदन, उसकी स्त्री और उसके पुत्रने भी बौद्ध धर्म ग्रहण कर लिया। बुद्धने उत्तरी हिन्दुस्तानके देशोंमें घूम घूमके अपने मतका प्रचार किया। वह जहां जाता लोग उसका बड़ा आदर करते। बुद्धने अपने मतके शीघ्र प्रचार और उन्नतिके विचारसे अपने चेलोंका एक संघ बनाया। ये लोग मठ बनाकर इकट्ठा रहते और संसारसे सम्बन्ध छोड़ भले चालचलन और शान्तिमें दिन काटते थे। इनमें स्त्री और पुरुष सभी सम्मिलित थे, इनके मठोंका नाम विहार था। विहारोंकी संख्या बहुत बढ़ जानेसे होते होते उस प्रान्तका नाम जहां ये लोग रहते थे "विहार" ही पड़ गया।

बुद्धदेव धर्मशिक्षा देते मगध और कोसल आदि राज्योंमें घूमते घूमते अस्सी वर्षकी अवस्थामें कुशीनगरमें शान्तिपूर्वक अपनी शिष्यमण्डलीसे बातचीत करते परलोक सिधारे।

युरोपके विद्वानोंने बहुत खोज करनेपर भी गौतम बुद्धके जन्म और मरणके ठीक ठीक समयका पता न पाया। पाली पुस्तकोंके द्वारा विदित होता है कि बुद्धका जन्म विक्रमसे ५६५ वर्ष पूर्व हुआ था और वह विक्रमसे ४८६ वर्ष पूर्व परलोक सिधारे।

उन्नीसवां अध्याय

पारसी और यूनानी चढ़ाई

(हिष्टास्पस) गश्तास्पका पुत्र दारा विक्रमाब्दसे ४२८ वर्ष पूर्वतक पारस देशका शासक था।* जब हिन्दुस्तानकी महिमा उसके कानोंतक पहुंची तो उसने इस देशका कुछ भाग अपने अधीन करना चाहा। अतएव उसने "स्काईला-क्स" नाम अपने एक सेनापतिको भारतमें घूम फिर कर भेद लेनेके लिये भेजा। इस मनुष्यने अटकमें नावपर बैठ सिन्धु नदीमें नीचेकी ओर यात्राकी सिन्धु देशमें होता हुआ वह अरबके समुद्रमें पहुँचा और फिर लालसागरकी सैर करता हुआ पारसमें लौट आया। स्काईलाक्सने पश्चिमी भागपर चढ़ाई कर उसे अपने अधिकारमें कर लिया। उन दिनोंमें उसभागकी भूमि बड़ी उपजाऊ थी, जैसा कि नहरोंके द्वारा अब फिर हो चली है यद्यपि मुसलमानोंके राज्यकालमें यह भूमि बहुत दिनोंतक उजाड़ और ऊसर ही पड़ी थी।

---

* फ़िरदौसीके शाहनामेके अनुसार विक्रमसे ४२८ बरस पहले गश्तास्प नामक बादशाह ईरानका शासक रहा होगा। इसने १२० वर्ष राज्य किया। इसका पोता बहमन (अर्दशेर दराज दस्त, Artaxerxes Longimanus) इसके बाद बाद-शाह हुआ। इसके बेटे शाह दाराबके समयमें सम्भव है कि भारतपर चढ़ाई हुई हो। इसीको भूलसे दारा लिखा गया है। दाराबका बेटा ही वह दारा था जिसके समयमें सिकन्दरने आक्रमण किया। इस तरह सिकन्दरसे ५०।६० बरस पहले ही पारसी आक्रमण सम्भव है, इससे पहलेकी कोई चर्चा शाहनामेमें नहीं है। हीरोडोटसके इतिहासके आधारपर ही वर्तमान इतिहासकारोंने लिखा है। सम्पादक।

दाराके अधिकारमें पहुँचकर सिन्धका यह भाग पारस राज्यका बीसवां तथा सबसे अधिक समृद्ध प्रान्त गिना जाने लगा। कुल पारसके राज्यका एक तिहाई कर केवल भारत वर्षके इस भागसे प्राप्त होता था और वह सब सुचे सोनेके रूपमें पारस पहुँचता था। यह बात ठीक ठीक विदित नहीं है कि पारसके राजाओंने कितने दिनतक भारतका यह भाग अपने अधीन रक्खा। जब पारसके (शेर) जर्कसी-जने यूनानपर चढ़ाई की थी तब उसकी सेनामें भारतके वीर धनुर्द्धर भी थे। यह तो निश्चय है कि जब यूनानी वीर सिकन्दरने विक्रमसे २७० वर्ष पूर्व भारतपर चढ़ाई की तो सिन्धु नद हीं, पारस राज्यकी पूर्वी सीमा माना गया था।

सिकन्दर

युरोपमें यूनान नामक एक देश है, इसमें 'मकदूनियां' नामका एक छोटा सा प्रान्त है। वहांके अधिकारी फैलबू-सका पुत्र सिकन्दर प्राचीन कालमें एक प्रसिद्ध राजा हो-गया है। यह समस्त पृथ्वी विजय करनेके इरादेसे उठा। पहले तो उसने पारसके राजा दारा को युद्धमें पराजित किया और अपना अधिकार पारस, तुर्किस्तान और अफ-गानिस्तानमें फैलाया। तदनन्तर वह एक बड़ी सेना लेकर भारत विजय करने आगे बढ़ा। सिन्धु नदीतक तो वह बिना रोकटोक चला आया और अटकके पास नावोंके पुलसे सिन्धुपार देशकी राजधानी तक्षशिलामें पहुँचा। तक्षशिलाके राजा अम्भीने सिकन्दरसे मेल कर लिया और बहुत कुछ भेंटद्वारा उसका सत्कार किया। वहांसे सिक-न्दर झेलमके किनारे पहुँचा। झेलमपार पंजाबका राजा

पोरस (पुरुषसेन) एक बड़ी सेनाले उससे लड़नेको उद्यत हुआ। यूनानियोंका साहस सहसा झेलमपार करनेका न पड़ा। अवसर पाके रातमें चुपकेसे सोलह मील ऊपरकी ओर बढ़कर, बारह सहस्र पैदल और पांच सहस्र सवारोंके साथ सिकन्दर झेलमपार उतरा। पुरुषसेन पहले केवल दो सहस्र सिपाहियोंको सिकन्दरके मुकाबलेपर भेजा पर यूनानियोंने उन्हें भगा दिया। फिर पुरुषसेनकी कुल सेना यूनानियोंसे युद्ध करनेको बढ़ी। यूनानी वीरोंने हिन्दू सेनाके हाथियोंपर बाणवर्षा की इससे हाथी बिगड़ भागे उनके पैरोंतले अनेक यूनानी और भारतीय योद्धा कुचल-गये। हिन्दू ऐसी वीरतासे लड़े कि यूनानियोंके छक्के छूट गये और उन्हें विदित हुआ कि किसी वीर जातिसे लड़ना पड़ा है। पुरुषसेनका बेटा इस लड़ाईमें खेत रहा। उसकी सेना यूनानियोंके सामने ठहर न सकी। परन्तु पुरुषसेन युद्धक्षेत्रमें अन्ततक डटा रहा। सिकन्दर विजयी हुआ और पुरुषसेनकी वीरतासे इतना प्रसन्न हुआ कि उसने न केवल उसका देश ही फेर दिया वरन् और भी भाग अपनी ओरसे दिया। सिकन्दर चनाब और रावी पारकर सतलजके किनारेतक विजय करता चला आया। यूनानियोंने यह सुना कि अब पूर्वदेशका राजा असंख्य सेना ले लड़नेको प्रस्तुत है तो आगे बढ़ना अस्वीकार किया। सिकन्दरने निराश हो लौटनेकी आज्ञा दी। कुछ सेनाको तो नावपर झेलम और सिन्धु तथा समुद्रके मार्गसे अपने देशको भेज दिया और शेषको अपने साथ लिये नदीके किनारे किनारे चला। मार्गमें मुलतान विजय करनेमें बड़ी कठिनाइयाँ झेलनी पड़ीं। यहीं सिकन्दर स्वयं मरते मरते बचा। बलूचिस्तानमें होके सिकन्दर

ईरानको गया। दो वर्ष पीछे विक्रमसे २६६ बरस पहले बाबुल नगरमें ठहरा था। अधिक मद्यपानसे सन्निपात हो गया और वहीं उसका देहान्त भी हो गया।

सिकन्दरके उत्तराधिकारी

सिकन्दरके मरनेपर एशियाका वह भाग जो उसने विजय किया था उसके सेनापतियोंमें बँट गया और वे लोग स्वतन्त्र राजा हो गये। तुर्किस्तानके उस भागको जो आमूनदीकी घाटीमें है यूनानी लोग बैक्ट्रियाके नामसे पुकारते थे, उसकी राजधानी बलख थी। एक दूसरा सूबा पार्थियाके नामसे प्रसिद्ध था और उसमें पारसका उत्तरी भाग मिला था। सिकन्दरके पीछे उसके सेनापति सिल्युकसने ये दोनों सूबे अपने अधिकारमें कर लिये और विक्रमाब्दसे २५५ वर्ष पहले उसने एक नया संवत् अपने नामसे चलाया। उसने हिन्दुस्तानके उन पश्चिमी भागोंपर फिरसे चढ़ाई की जहाँ पहले सिकन्दर विजय कर चुका था। पर इस समय उत्तरी भारतमें चन्द्रगुप्त मौर्यका प्रबल राज्य था। सिल्युकसने विक्रमसे २४८ वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्तसे लड़ाईमें पराजय पायी। अन्तमें दोनोंमें परस्पर सन्धि हो गयी। सन्धिसम्बन्ध दृढ़ करनेके लिये सिल्युकसने चन्द्रगुप्तको अपनी बेटी ब्याह दी। चन्द्रगुप्तने सिन्धुनदके पश्चिमका देश अपने श्वसुर सिल्युकसको फेर दिया। सिल्युकसकी ओरसे मेगस्थनीज नामक एक राजपुरुष एलची बनकर चन्द्रगुप्तकी राजसभामें आया। उसने उस समयके भारतका कुछ इतिहास लिखा था। यद्यपि अब वह पुस्तक अप्राप्य है तथापि और और यूनानी इतिहासलेखकोंने उसे देखके जो लिखा है सो अबतक मिलता है। मेगस्थनीज़ लिखता है कि उस समयके हिन्दू लोग सच्चे, वीर, ईमान्दार और सच्चरित्र थे।

सिल्युकसके पीछे भी यूनानियोंका बैक्ट्रियाका राज्य १२० वर्षतक बना रहा। इन यूनानी राजाओंके नाम सिक्कों-पर खुदे पाये गये हैं पर इतिहासमें इन लोगोंका कुछ विशेष विवरण नहीं मिलता। इनमें कदाचित् डेमेट्रियस सबसे अधिक प्रबल था और विक्रमाब्दसे १३२ वर्ष पहले बैक्ट्रि-याके राज्यपर उसका अधिकार था। एक दूसरा प्रसिद्ध राजा मिनेण्डर या मिलिन्द था जो विक्रमसे ९३ वर्ष पूर्व विद्य-मान था। उसने गङ्गाकी घाटीपर चढ़ाई की थी पर मगधके तत्कालीन राजा पुष्यमित्रने उसे हरा दिया था। विक्रमाब्द-से ७३ वर्ष पहिले मध्य एशियासे शक या सीथियन लोगोंने बैक्ट्रियाके यूनानी राज्यको नष्ट किया। इसके पीछे भी लगभग दो सौ वर्षतक यूनानीलोग पंजाबके उत्तर पश्चिमी भागपर राज्य करते रहे। अन्तिम यूनानी राजाका नाम हारमेयुस् था जो विक्रमाब्द ५६३में विद्यमान था।

पार्थिया वालोंने कुछ समयतक अफ़ग़ानिस्तान और हिन्दुस्तानके पश्चिमी भागपर राज्य किया होगा। उनमेंसे गायडोफरस नामका एक राजा प्रसिद्ध था जिसके नामके सिक्के पंजाबमें पाये गये हैं। गायडोफरस विक्रमाब्द ५६३ के लगभग भारतवर्षके पश्चिम भागमें राज्य करता था और लोग उसे महाराजा कहते थे। इस वंशके राज्यको सीथियनोंके दूसरे झुण्ड यूचिने नष्ट किया होगा।

सिकन्दरके समयसे लेकर विक्रमाब्द ५६३तक निरन्तर भारत और यूनानका परस्पर सम्बन्ध अक्षत रहा होगा। इस बीचमेंइन दोनों जातियोंने आपसमें एक दूसरेसे बहुत कुछ सीखा होगा। हिन्दुओंने यूनानियोंसे कई एक विद्याएं और कलाएं सीखी होंगी और धर्म, मत तथा दार्शनिक

विषयोंका ज्ञान यूनानियोंने हिन्दुओंकेद्वारा प्राप्त किया होगा। हिन्दुओंके ज्योतिष शास्त्रमें यूनानियोंके सिद्धान्तका 'यवनाचार्यका मत' इस रूपमें उल्लेख है। यूनानी राजा मिनेण्डर वा मिलिन्दने भी बौद्ध धर्मके आचार्य नागसेनसे बहुत कुछ उपदेश प्राप्त किये थे जो 'मिलिन्द प्रश्न' नामक पुस्तकमें लिखे हैं। सिकन्दर जब भारतवर्षसे लौटने लगा था तो उसने केल्लेनस (कल्याण) नामक किसी ब्राह्मणको भी अपने साथ ले लिया था कि उससे हिन्दूधर्मविषयक बातें सीखे।

सिकन्दरहीके समयमें युरोपियनोंको पहलेपहल भारतवर्षकी क्षत्रिय जातिकी वीरताका भली भांति परिचय मिला और वीर राजा पुरुषसेनके पराजित हो जानेपर भी उसकी गम्भीर बात चीतसे प्रसन्न हो सिकन्दरने जो अपना बड़प्पन दिग्विजयी होकर भी दिखलाया सो भी भारतवासियोंके लिये एक स्मरणीय बात है। इतिहास इस बातका साक्षी है कि एशियाहीके निवासी अफग़ानी और तुर्कोंने मुसल्मानी धर्म फैलानेके बहाने भारतवर्षपर ७०० वर्षतक कितना अत्याचार किया और देशकी उन्नतिमें कैसे बाधक रहे।

बीसवां अध्याय

बुद्धके पीछेके राजवंश

मौर्य वंश

(१) चन्द्रगुप्त
(२) बिन्दुसार
(३) अशोक
(४) दशरथ
(५) सङ्गत
(६) शालिशुक
(७) सोमशर्मा
(८) शतधन्वा
(९) बृहद्रथ

शुङ्गवंश

पुष्यमित्र
अग्निमित्र
सुज्येष्ठ
वसुमित्र
अन्ध्रक
पुलिन्दक
घोषवसु
वज्रमित्र
भागवत
देवभूमि

काण्ववंश

वसुदेव
भूमिमित्र
नारायण
सुशर्मा

अन्ध्रवंश

सिमुक
कृष्ण
श्रीमल्ल शातकर्णि
पूर्णोत्सङ्ग
शातकर्णि
लम्बोदर
अजीतक
सद्व
शातकर्णि
स्कन्दस्वाति
मृगेन्द्र शातकर्णि
कुन्तल शातकर्णि
सात शातकर्णि
पुलुमायी (१)
मेघ शातकर्णि

अरिष्ट शातकर्णि
हाल
मण्डलक
पुरीन्द्रसेन
सुन्दर शातकर्णि
चिल्वायकुर (१)
शिवलकुर
चिल्वायकुर (२)
पुलुमायी (२)
शिवश्री
शिवस्कन्द
यज्ञश्री
विजय
चाद
पुलुमायी (३)

तुरुष्कवंश

एजिस (१)
एजिस (२)
कैडफाइसिस (१)
कैडफाइसिस (२)
कनिष्क
हुविष्क
वासुदेव

गुप्तवंश

गुप्त या श्रीगुप्त
घटोत्कच
चन्द्रगुप्त (१)
समुद्रगुप्त
चन्द्रगुप्त (२)
कुमारगुप्त (१)
स्कन्दगुप्त
स्थिरगुप्त
नरसिंहगुप्त
कुमारगुप्त (२)
बुधगुप्त
भानुगुप्त

हूणवंश

तोरमान
मिहिरकुल

पश्चिमी क्षत्रप

नहपन
चष्टन
जयदामन्
रुद्रदामन्
दामजद
जीवदामन्
रुद्रसिंह (१)
रुद्रसेन
सङ्घदामन्
पृथ्वीसेन
दामसेन
दामजडश्री (१)
वीरदामन्

यशोदामन् (१)
विजयसेन
ईश्वरदत्त
दामजडश्री (२)
रुद्रसेन
विश्वसिंह
भर्तृदामन्
सिंहसेन (१)
विश्वसेन
रुद्रसिंह (२)
यशोदामन् (२)
सिंहसेन (२)
स्वामीरुद्रसेन
रुद्रसिंह (३)

बैसवंश

नरवर्द्धन
राज्यवर्द्धन
आदित्यवर्द्धन
प्रभाकरवर्द्धन
राज्यवर्द्धन हर्षवर्द्धन
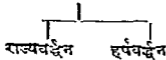
भड़ौंचके गूजर

दद्दा (१)
जयभट (१) वीतराग (१)
दद्दा (२) प्रशान्तराग (१)
दद्दा (३)
जयभट (२) वीतराग (२)
दद्दा (४) प्रशान्तराग (२)
जयभट (३)
दद्दा (५) बाहुसहाय
जयभट (४)

मौखरिवर्मन् लोग

हरिवर्मन्
आदित्यवर्मन्
ईश्वरवर्मन्
ईशानवर्मन्
सर्ववर्मन्
सुस्थितवर्मन्
अवन्तिवर्मन्
ग्रहवर्मन्
भोगवर्मन्
यशोवर्मन्

वलभी वंश

भट्टार्क
धरसेन (१)
द्रोणसिंह
ध्रुवसेन (१)
धरपट्ट
गुहसेन
धरसेन (२)
शिलादित्य (१)

खरग्रह (१)
धरसेन (३)
ध्रुवसेन (२)
धरसेन (४)
ध्रुवसेन (३)
खरग्रह (२)
शिलादित्य (२)
शिलादित्य (३)
शिलादित्य (४)
शिलादित्य (५)
शिलादित्य (६)

दक्षिणी पल्लव

विजयस्कन्द वर्मा
विजयबुद्ध वर्मा
बुद्धयंकुर
शिवस्कन्द वर्मा
स्कन्द वर्मा
वीर वर्मा
विष्णुगोप वर्मा
सिंह वर्मा

गुजरातके चालुक्य

प्रथम शाखा

जयसिंह राज
बुद्धवर्म राज
विजयवर्म राज

द्वितीय शाखा

धराश्रय जयसिंह वर्मन्
जयाश्रय नागवर्द्धन

तृयीय शाखा

धराश्रय जयसिंह वर्मन्
शिलादित्य श्याश्रय
युद्धमल्ल जयाश्रय मङ्गलराज
विनयादित्य
जनाश्रय पुलिकेशिन्

अन्हलवाड़ाके चापोत्कट

वनराज
योगराज
क्षेमराज
भूयाड़
वीरसिंह
रत्नादित्य
सामन्तसिंह

दिल्लीके राजा लोग

विसर्व
सुरिण
शीर्ष्य
अहंशाल
चरजित
दुर्वार

सदापाल
सुरसेन
सिंहराज
अमयद्दि
अमरपाल
स्वर्वहि
पदारत्
मदपाल

तृतीय वंश

महाराजि
श्रीसेन
महीपाल
महावली
श्रुपवर्त्ति
नेत्रसेन
सुमुख
जितमल
कलङ्क
कुलमान
श्रीमर्दन
जयवङ्ग
हर्मुज
हीरकसेन
अन्तिन

चतुर्थ वंश

भूदसेन
सिन्धुराज
महागंगो
नद
जीवन
उदय
जीहुल
आनन्द
राजपाल
सुखवन्त
विक्रमादित्य

गिरनारके चूड़ाशम

राय चूड़ाचन्द
दियास
नवघन (१)
खङ्गार
मूलराज
नवघन (२)
माण्डलिक
हम्मीरदेव
विजयपाल
नवघन (३)
खङ्गार (२)
माण्डलिक (२)
आलानसिंह
गणेश
नवघन (४)

खङ्गार (३)
माण्डलिक (३)
नवघन (५)
महीपालदेव (१)
खङ्गार (४)
जयसिंहदेव
मोकलसिंह
मेघलदेव
महीपालदेव (२)
माण्डलिक (४)
जयसिंहदेव (२)
खङ्गार (५)
माण्डलिक (५)

कान्यकुब्जके राजा

देवशक्ति
वत्सराज
नागभट्ट
रामभद्र
भोज (१)
महेन्द्रपाल
भोज (२)
विनायकपाल
देवपाल
विजयपाल
राज्यपाल
त्रिलोचनपाल
यशःपाल

कन्नौजके राठौर

यशोविग्रह
महीचन्द्र
चन्द्रदेव
मदनपाल
गोविन्दचन्द्र
विजयचन्द्र
जयचन्द्र
हरिश्चन्द्र

अनहलवाड़ाके चालुक्य

मूलराज (१)
चामुण्डराज
वल्लभराज
दुर्लभराज
भीमदेव (१)
कर्णदेव (१)
जयसिंह सिद्धराज
कुमारपाल
अजयपाल
मूलराज (२)
भीमदेव (२)
त्रिभुवनपाल

पृथिवीमल्ल
जयदेव
वीरपाल
अधिराज
विजय
विक्ष
ऋक्षपाल
सुखपाल
गोपाल
सल्लक्षणपाल
जयपाल
कुमारपाल
अनङ्गपाल (२)
विजयपाल
महीपाल
अर्कपाल
पृथ्वीराज (चौहान)

पाण्ड्यवंश

जटावर्म कुलशेखर
मारवर्म सुन्दर (१)
मारवर्म सुन्दर (२)
जटावर्म सुन्दर (१)
वीरपाण्ड्य
मारवर्म कुलशेखर (१)
जटावर्म सुन्दर (२)
मारवर्म कुलशेखर (२)
मारवर्म पराक्रम
जटावर्म पराक्रम
विक्रम पाण्ड्य
जटिलवर्म पराक्रम (१)
मारवर्म वीर
जटिलवर्म पराक्रम (२)
जटिलवर्म
मारवर्म सुन्दर (३)
जटिलवर्म (२)

पूर्वीय गांगवंश

वीरसिंह
कामार्णव (१)
दानार्णव
कामार्णव (२)
रणार्णव
वज्रहस्त (१)
कामार्णव (३)
गुणार्णव
जितांकुश
कलिगलांकुश
गंडम (१)
कामार्णव (४)
विनयादित्य
वज्रहस्त (२)
कामार्णव (५)
गंडम (२)

मधुकामार्णव
वज्रहस्त (३)
राजराज (१)
अनन्तवर्म चोड़गङ्ग
कामार्णव (६)
राघव
राजराज (२)
अनङ्ग भीम (१)
राजराज (३)
अनङ्ग भीम (२)
नरसिंह (१)
भानुदेव
नरसिंह (२)
भानुदेव (२)
नरसिंह (३)
भानुदेव (३)
नरसिंह (४)

पश्चिमीय गांगवंश

कोङ्गणिवर्म
माधव (१)
हरिवर्मा
विष्णुगोप
माधव (२)
अविनीत
दुर्विनीत
पुष्कर
श्रीविक्रम
भूविक्रम
शिवमार
श्रीपुरुष
रणविक्रम
राजमल्ल
नीतिमार्ग
सत्यवाक्य (१)
सत्यवाक्य (२)
एडेयप्प
राजमल्ल (१)
बूतग
मसलदेव
रचगङ्ग
मारसिंह
पञ्चलदेव
राजमल्ल (२)

देवगिरिके यादव

दृढ़प्रहार
सेउणचन्द्र
धाडियप्प (१)
भिल्लम (१)
श्रीराज
वद्दिग
धाडियप्प (२)
भिल्लम (२)

वेसुगी
भिल्लम (३)
वाडुगी (२)
वेसुगी (२)
भिल्लम (४)
सेउणचन्द्र (२)
मल्लुगीदेव
अमरगङ्ग
कर्णदेव
भिल्लम (५)

पिछले यादवगण

भिल्लम (१)
जैतुगी
सिंहण
जैनपाल
कृष्ण
महादेव
रामचन्द्र
शङ्कर
हरिपालदेव

द्वारसमुद्रके हयशल

विनयादित्य
इरेयाङ्ग
बल्लाल (१)
त्रिभुवनमल्ल विष्णुवर्द्धन
त्रिभुवनमल्ल नरसिंह
त्रिभुवनमल्ल वीरवल्लाल (२)
नरसिंह (२)
वीरसोमेश्वर
वीरनरसिंह (३)
वीरबल्लाल (३)

अजमेरके चौहान

सामन्तराज
जयराज
विग्रहराज
चन्द्रराज
गोपेन्द्रराज
दुर्लभ (१)
चन्द्रराज (२)
गोवक
चन्दन
वाक्पति
सिंहराज
विग्रहराज
दुर्लभ (२)
गोविन्द
वाक्पति (२)
वीर्यराम
दुर्लभ (३)
विग्रहराज (३)
पृथ्वीराज (१)

अजयराज
अर्णोराज
विग्रहराज (४)
पृथ्वीभट
सोमेश्वर
पृथ्वीराज (२)

चेदिके कलचुरि

काकवर्ण
शङ्करगण
बुद्धराज
कोकल (१)
मुग्धतुङ्ग प्रसिद्धधवल
बालहर्ष
केयूरवर्ष युवराजदेव (१)
लक्ष्मणराज
शङ्करगणदेव
युवराजदेव (२)
कोकल्लदेव (२)
गांगेयदेव
कर्णदेव
यशः कर्णदेव
गयकर्णदेव
नरसिंहदेव
जयसिंहदेव
विजयसिंहदेव

कल्याणके कलचुरि

जोगम
परमादि
त्रिभुवनमल्ल विज्जल
सोमेश्वर
निःशङ्कमल्ल
वीरनारायण आहवमल्ल
सिंहण
कलिङ्गराज
कमल
रत्नराज (१)
पृथ्वीदेव (१)
जाजल्लदेव (१)
रत्नदेव (२)
पृथ्वीदेव (२)
जाजल्लदेव (२)
रत्नदेव (३)
पृथ्वीदेव (३)

बंगालके पाल

गोपाल
धर्मपाल
देवपाल
विग्रहपाल
नारायणपाल
राज्यपाल

गोपाल (२)
विग्रहपाल (२)
महीपाल
नयपाल
विग्रहपाल (३)
रामपाल
कुमारपाल
महेन्द्रपाल
मदनपाल
गोविन्दपाल
इन्द्रद्युम्न

बंगालके सेन

सुखसेन
बल्लालसेन
लक्ष्मणसेन
माधवसेन
केशवसेन
सुरसेन
नारायण
लक्ष्मण
लाक्ष्मणेय

पश्चिमी चालुक्य

जयसिंह
रणराग
पुलिकेशिन् (३)
कीर्त्तिवर्मन् (१)
मङ्गलीश
पुलिकेशन् (२)
विक्रमादित्य (१)
विनयादित्य
विजयादित्य
विक्रमादित्य (२)
कीर्त्तिवर्मन् (२)
आहवमल्ल
सत्याश्रय
विक्रमादित्य (५)
जयसिंह (२)
सोमेश्वर (१)
सोमेश्वर (२)
विक्रमादित्य (६)
सोमेश्वर (३)
जगदेकमल्ल
नूरमडीतैल (३)
सोमेश्वर (४)
युद्धममल्ल (१)
अरिकेशरिन् (१)
नरसिंह (१)
दुग्धमल्ल
वड्डिग
युद्धमल्ल (२)
नरसिंह (२)
अरिकेशरिन् (२)

पूर्वी चालुक्य

विष्णुवर्द्धन (१)
जयसिंह (१)
इन्द्रभट्टार्क
विष्णुवर्द्धन (२)
मङ्गीयुवराज
जयसिंह (२)
कोक्किली
विष्णुवर्द्धन (३)
विजयादित्य (१)
विष्णुवर्द्धन (४)
विजयादित्य (२)
विष्णुवर्द्धन (५)
विजयादित्य (३)
भीम (१)
विजयादित्य (४)
अम्म (१)
विजयादित्य (५)
ताडप
विक्रमादित्य (२)
भीम (३)
युद्धमल्ल (२)
भीम (२)
अम्म (२)
दानार्णव
शक्तिवर्मन्
विमलादित्य
राजराज (१)
कुलोत्तुङ्ग चोडदेव (१)
विक्रमचोड
कुलोत्तुङ्ग चोडदेव (२)

मालवेके परमार

कृष्णउपेन्द्र
वैरिसिंह (१)
सीयक (१)
वाक्पति (१)
वैरिसिंह (२)
हर्षदेव
वाक्पति (२)
सिन्धुराज
भोज
जयसिंह
उदयादित्य
लक्ष्मीदेव
नरवर्मन्
यशोवर्मन्
जयवर्मन्
अजयवर्मन्
विन्ध्यवर्मन्
सुभटवर्मन्
अर्जुनवर्मन्

राष्ट्रकूट

दन्तिवर्मन्
इन्द्र (१)
गोविन्द (१)
कर्क (१)
इन्द्र (२)
दन्तिदुर्ग
कृष्ण (१)
गोविन्द (२)
ध्रुव निरुपम
गोविन्द (३)
अमोघवर्ष (१)
कृष्ण (२)
इन्द्र (३)
अमोघवर्ष (२)
गोविन्द (४)
बद्दिग
कृष्ण (३)
खोट्टिक
कोक्कलकर्क (२)
इन्द्र रट्टाकन्दर्प

काश्मीरके राजवंश

कर्कोटक वंश

दुर्लभवर्द्धन
दुर्लभक
चन्द्रापीड
तारापीड
ललितादित्य (१
कुवलयापीड
ललितादित्य (२)
पृथिव्यापीड
संग्रामापीड
जयापीड
अजितापीड
अनङ्गापीड
उत्पलापीड

उत्पलवंश

अवन्तिवर्मन्
शङ्करवर्मन्
गोपालवर्मन्
सङ्कट
सुगन्धा
पार्थ
निर्जितवर्मन्
चक्रवर्मन्
सुरवर्मन्
पार्थ
शम्भुवर्द्धन
चक्रवर्मन्
उन्मत्तावन्ती
सुरवर्मन् (२)

यशःकर्णदेव
संग्रामदेव
पर्वगुप्त
क्षेमगुप्त
अभिमन्यु
नन्दिगुप्त
त्रिभुवन
भीमगुप्त
दिद्दा (रानी)
संग्रामराज
हरिराज
अनन्तदेव
कलश
उत्कर्ष
हर्षदेव
उच्छल
रड्डा
सुशल
भिक्षाचर
जयसिंह

चोल राजा लोग

विजयालय
आदित्य
परान्तक (१)
राजादित्य
गण्डरादित्य
अरिञ्जय
परान्तक (२)
आदित्य (२)
मधुरान्तक (१)
राजराज
परकेसरीवर्मन् (१) राजेन्द्र (१)
राजशेखरवर्मन्
परकेसरीवर्मन् (२)
राजकेसरीवर्मन्
परकेसरीवर्मन् (३)
राजेन्द्र (२)
विक्रम
कुलोत्तुङ्ग
राजराजदेव
राजेन्द्र (३)
कण्डगोपालदेव

गुजरातके राठौर

प्रथम शाखा

कक्कराज (१)
ध्रुवराजदेव
गोविन्दराज
कक्कराज (२)

द्वितीय शाखा

इन्द्रराज
कक्कराज
गोविन्दराज

ध्रुवराज़ (१)
अकालवर्ष
ध्रुवराज (२)
दन्तिवर्मन्
कृष्णराज
[illegible]

काकुत्स्थवर्मा
शान्तिवर्मा
मृगेशवर्मा
मान्धातृवर्मा
रविवर्मा
भानुवर्मा
शिवरथ
हरिवर्मा

इक्कीसवां अध्याय

मौर्यवंश

जिस समय महावीर और गौतमबुद्ध अपना अपना नया मत भारतवर्षमें फैला रहे थे मगधमें शिशुनागवंशका राजा विम्बिसार राजसिंहासनपर था। विम्बिसारने वैशालिके लिच्छवी राजा कटककी बेटी ब्याही थी जिससे कि उसे अजातशत्रु नाम एक पुत्र उत्पन्न हुआ। विम्बिसारकी दूसरी रानी कोसलके राजा प्रसेनजित्की वहिन थी। विम्बिसारने अङ्गदेशके जो मगधकी दक्षिणपूर्व ओर था और जिसकी राजधानी चम्पा [भागलपुर] थी विजय किया। विम्बिसार अवस्थामें गौतमबुद्धसे पांच वर्ष बड़ा था और उसने २८ वर्षतक राज्य किया। अजातशत्रुने अपने पिताको दुर्बल देख उससे राजगद्दी छीन ली और इस नृशंसने बूढ़े पिताको बन्दीगृहमें भूखों मार डाला। अजातशत्रु और कोसलराज प्रसेनजित्से कई वार बड़ी बड़ी लड़ाइयां हुई और एक वार अजात्शत्रु बन्दी भी हो गया। छुटकारा पानेपर अजातशत्रुको अपने पितृवधपर बड़ा पश्चात्ताप हुआ। गौतमबुद्धके पास जाकर अपना अपराध स्वीकार किया और क्षमा चाही। अजातशत्रुके राज्यके आठवें वर्षमें बुद्धकी मृत्यु हुई। अजातशत्रुने अपने नानाकी राजधानी वैशालिपर भी चढ़ाई की और उसे जीत लिया। अजातशत्रुके पोते उदयने गङ्गा तीरपर 'पाटलिपुत्र' नाम नगर वसाया। उदयके बेटों और पोतोंके समयमें यही पटना मगधकी राजधानी थी। उदयके पोते महानन्दका

पुत्र महापद्मनन्द शूद्रा मातासे उत्पन्न हुआ था और इसने अपने पिताके पीछे शेष सब भाइयोंको मारके राज्य दब लिया। यह बड़ा निर्दय और क्रोधी था इसने और इसके बेटोंने सौ वर्षतक मगधमें राज्य किया। ये नवों राजा नन्दवंशी कहे जाते हैं। जब सिकन्दरने भारतपर चढ़ाई की थी तब यही वंश मगधमें राज्य करता था।

चन्द्रगुप्त

सिकन्दरके चले जानेके थोड़े ही दिन पीछे महापद्मनन्दके बेटे चन्द्रगुप्तने जिसकी माताका नाम मुरा था चाणक्य नाम चतुर और बुद्धिमान् ब्राह्मणकी सहायतासे नन्दवंशके अन्तिम राजाको मार डाला और मगधका राजसिंहासन ले लिया। चन्द्रगुप्त और उसके वंशज मौर्यके नामसे प्रसिद्ध हुए। यह राजा विक्रमाब्दसे २६५ वर्ष पहले राजगद्दीपर बैठा और इसने २४ वर्षतक राज्य किया। उत्तरी भारतमें इसके राज्य की सीमा पश्चिममें सिन्धुतक और पूर्वमें ब्रह्मपुत्रके तीरतक थी। इसीने यूनानी सेनापति सिल्युकसको हराया था।

मेगस्थनीज़ नामक एक यूनानी एलचीको सिल्युकसने चन्द्रगुप्तके दरबारमें भेजा था। मेगस्थनीज़ने उस समयके राज्यप्रबन्ध तथा व्यवहार आदिका ब्योरा लिख छोड़ा है जिससे हम लोगोंको उस समयके इतिहासकी अनेक बातें विदित होती हैं। मेगस्थनीज़ लिखता है कि मगधकी राजधानी पाटलीपुत्र नाम नगर गङ्गा और सोन नदके सङ्गमपर नौ मीलकी लम्बाईमें बसा था। चौड़ाई केवल डेढ़ मील थी। नगरके चारों ओर लकड़ीकी दीवार थी। नगरमें आने जानेके ६४ मार्ग थे और उसमें पांचसौ सत्तर गुम्बज थे। राज्यप्रबन्ध

तीस मनुष्योंकी एक सभाके सपुर्द था। यह सभा छः भागोंमें बटी थी और प्रत्येकमें पांच पांच सभासद थे। एक सभाका काम यह था कि वह प्रजाके जन्म मरणका लेखा रखे। सेना-का प्रवन्ध तीस मनुष्योंकी एक दूसरी सभाको सौंपा गया था और उनमें भी पांच पांच सभासदोंके छ भाग थे। एकके हाथ-में नौका प्रवन्ध, दूसरेके प्रवन्धमें भोजन सामग्री, तीसरेको पैदल सेना, चौथेको घुड़ सवारों और पाँचवेंको हाथियोंका प्रवन्ध सौंपा गया था। एक विभाग सिंचाईका भी प्रवन्ध करता और प्रजाको पानी पहुँचाता था। राजकर्मचारियोंके द्वारा ही भूमिका कर भी उगाहा जाता था।

राजभवन एक बहुत विस्तृत और सुन्दर महल था। उद्यान अनेक तालावों और वृक्षादिसे सुशोभित थे। घर लक-ड़ियोंसे वनाये जाते थे। राजा स्वयं राजसभामें साधारण वेषमें उपस्थित हो प्रजाके परस्परके झगड़ोंको निपटाता और कभी कभी विशेष वेषभूषासे अलङ्कृत हो लोगोंके अभियोग सुनता था। राजा वाहर निकलते समय ऐसी सुनहरी पालकी-में वैठता था जिसमें मोतियोंके झालर लटका करते थे। राज-कुलके लोग सोनेके वर्त्तन काममें लाते थे। राजाके उपयोगमें आनेवाले वर्त्तन वहुमूल्य रत्नोंसे जटित होते थे और उसके वस्त्र भी वहुमूल्य होते थे। राजभवनके अन्तःपुरमें स्त्रियोंका पहरा रहता था और दासके क्रयविक्रयकी प्रथा नहीं थी। एशियाकी और सब जातियोंकी अपेक्षा हिन्दू लोग अधिक वीर होते थे। घरोंमें ताला लगानेका प्रयोजन नहीं पड़ता था। भारतके निवासी परिश्रमी, बुद्धिमान्, चतुर, कारीगर और अच्छे किसान होते थे। स्त्रियाँ सती पतिव्रता होती थीं। राज्य ११८ सूवोंमें वटा हुआ था और चन्द्रगुप्त एक चक्रवर्ती राजा था।

जैनग्रन्थोंमें लिखा है कि चन्द्रगुप्त अपनी मृत्युसे १२ वर्ष पहले जैन आचार्य भद्रबाहुका चेला हो गया था और संसारसे सम्बन्ध तोड़ साधु बनके मैसूरमें चला आया और वहां चन्द्रगिरि नाम पर्वतपर जा बसा वहीं उसकी मृत्यु हुई।

चन्द्रगुप्तके पीछे उसका बेटा बिन्दुसार लगभग विक्रमाब्दसे २४० वर्ष पहले मगधके राजसिंहासनपर बैठा और पचीस वर्षतक राज्य किया। उसने नर्मदाके दक्षिणका कुछ देश विजय करके अपने राज्यमें मिलाया। यूनानियोंने इसका नाम एमिटरोगाद्रिस [अमित्रघात] लिखा है। सीरियाके एण्टिओकसने डाइमेकसको और मिस्रके टालेमीने भी डायोनिशसको बिन्दुसारके दरबारमें एलची बनाके भेजा था।

अशोकवर्द्धन

बिन्दुसारके राज्यकालमें उसका बेटा अशोकवर्द्धन उज्जैनका अधिकारी था। अपने बापके मरनेपर वह पटनेमें आया और विक्रमाब्दके २१५ वर्ष पूर्व राजगद्दीपर बैठा। अशोक बड़ा प्रतापी और भाग्यवान् राजा हुआ। पांच वर्ष पीछे उसका राज्याभिषेकोत्सव मनाया गया। पहले यह अपने राज्यकी सीमा बढ़ानेमें बहुत तत्पर रहा। कलिङ्गदेश त्रिकलिङ्ग वा तिलिंगानाको विजय करके उसने मगधराज्यमें मिला लिया। उसका राज्य भारतवर्षमें बहुत दूरतक फैल गया। पश्चिममें बैक्ट्रियासे लेके पूर्वमें ब्रह्मपुत्रके किनारेतक और उत्तरमें हिमालयसे दक्षिणमें कृष्णा नदीके तीरतक अशोकवर्द्धनहीका डङ्का बजता था। कलिंग विजय करते समय जो युद्धस्थलमें अनेक वीर मारे गये, उनकी दशा देख राजाके मनमें ऐसी दया आयी कि उसने अपना पैतृक धर्म परित्याग कर दिया और वह बौद्धाचार्य उप-

गुप्तका चेला हो गया। बौद्धोंने उसका नाम धर्माशोक और प्रियदर्शी रक्खा। बौद्धधर्म स्वीकार करनेके पीछे अशोकने प्रजाकी भलाईके लिये जो जो काम किये वैसे उससे पूर्व किसी राजाने नहीं किये थे। अब वह अपना समय धर्मोपदेश और सत्कर्मोंमें व्यतीत करता था। इस राजाके यहां प्रतिदिन चौंसठ सहस्र बौद्ध भिक्षुकोंको भोजन मिलता था। इन साधुओंके लिये अशोकने बहुतेरे 'विहार' अर्थात् मठ बनवा दिये थे। उसके राज्यमें सर्वत्र बौद्धधर्म प्रधान था। अशोकने अपनी प्रजाके बीच बडी उत्तम रीतिसे धर्म फैलाया, ऐसी अनेक सभाएं नियत कीं कि जिनमें धर्मसम्बन्धी बातोंका निर्णय होता था। ऐसी आज्ञाओंका प्रचार हुआ जिनमें धर्मके सिद्धान्त प्रकाशित किये गये। एक सरकारी विभाग भी इन बातोंकी जांचके लिये नियत हुआ। धर्मोपदेशका यथोचित प्रबन्ध किया गया। बौद्धधर्मकी पुस्तकोंका संशोधन किया गया। यूनान, मिस्र, सीरिया, तिब्बत, चीन, ब्रह्मा और लङ्का आदि दूर देशोंमें धर्मसम्बन्धी शिक्षा देनेवाले धर्मप्रचारक भेजे गये। प्रजाकी भलाईके लिये अशोकने जहांतहां सडक, तालाब, धर्मशाला, और औषधालय आदि बनवाये। गुरुओंकी आज्ञा, मानना, पशुओंपर कृपा रखना इत्यादि शिक्षा और सच्चरित्रता सिखलानेके लिए अशोकने पत्थरों, खम्भों और पहाडकी गुफाओंमें बहुतसे लेख खुदवा रक्खे थे, जो अबलों भारतके भिन्न भिन्न भागोंमें देख पडते और उसका स्मरण कराते हैं। यह राजा बडा धर्मिष्ठ और परिश्रमी था, इसने अनेक बौद्ध तीर्थोंके दर्शन किये थे। लगभग ३६ वर्ष राज्य करके अशोक बौद्धसंन्यासी हो गया और विक्रमाब्दसे १७५ वर्ष पहले मरा।

अशोकके मरनेपर मौर्य राज्यका ह्रास प्रारम्भ हुआ।

यह स्थान रुम्मिनदेइसे १२ मीलपर नेपालराज्यकी सीमाके पास है।
इसपर अशोककी लिपि है। (प्राचीन भारत पृ० २२८ २२९)
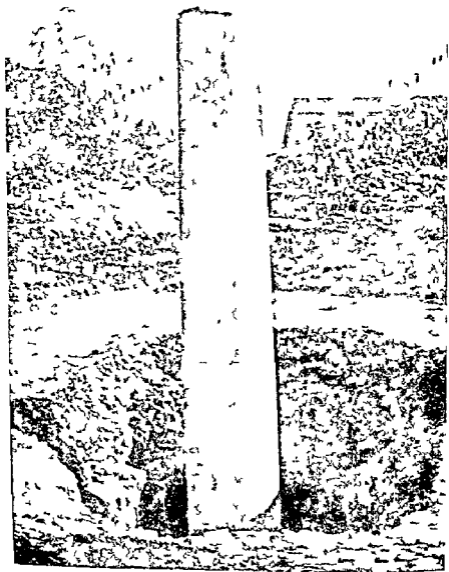
अशोकके उत्तराधिकारियोंमेंसे कोई भी ऐसा न निकला कि उसके गिरते हुए राज्यको सँभाले। विक्रमाब्दसे १७४ वर्ष पूर्व दशरथ मौर्य मगधके सिंहासनपर बैठा। यह राजा बहुत दुर्बल था और उसके समयमें सेनापति और प्रान्तीय अधिकारी स्वतन्त्र हो चले थे। कलिंगदेशमें प्रबल अन्ध्र लोग स्वतन्त्र हो गये और उन्होंने गोदावरीके किनारे धनकटकको अपनी राजधानी बनाया। दशरथ मौर्यने आठ वर्षतक राज्य किया। उसके पीछे कुछ और राजकुमार केवल नाम मात्रके राजा हुए। अन्तिम राजा बृहद्रथ मौर्य विक्रमाब्दसे १३७ वर्ष पूर्व राजसिंहासनपर विराजमान हुआ पर वह दस वर्ष भी राज्य न करने पाया था कि उसके सेनापति पुष्यमित्रने धोखा दे उसे मार डाला और आप मगधराज बन बैठा। चन्द्रगुप्तसे लेके बृहद्रथतक मौर्यवंशके दस राजाओंने लगभग १३७ वर्ष राज्य किया। पुष्यमित्रने विक्रमाब्दसे १२७ वर्ष पहले मौर्यवंशका विनाश करके शुङ्गवंशका राज्य स्थापित किया।

बाईसवां अध्याय

अन्तिम मगध राज्य और शुंग कण्व तथा आन्ध्रवंश

पुष्यमित्रने बड़े रोबदाबसे ३६ वर्षतक पटनेमें राज्य किया। उसके राज्यकालमें पश्चिमकी ओरसे यूनानी राजा मिनेण्डरने भारतवर्षपर चढ़ाई की पर पुष्यमित्रसे पराजित हो उसे पीछे हटना पड़ा। दक्षिणकी ओरसे विदर्भ देशके राजाने भी मगधपर चढ़ाई की, पुष्यमित्रने उसे भी लड़ाईमें हराया। अपने राज्यकी जड़ दृढ़ करके पुष्यमित्रने बड़ी धूमधामके साथ एक राजसूय और अश्वमेध यज्ञ किया। पुष्यमित्रका पुत्र अग्निमित्र मालवेका अधिकारी नियत किया गया था और वह इस समय (विदिशा) भेलसामें था। यज्ञके अवसरपर अग्निमित्रको पुष्यमित्रने अपने यहां बुला भेजा। जब यज्ञका घोड़ा छोड़ा गया तो उसकी रखवालीके लिये अग्निमित्रका पुत्र वसुमित्र सेना समेत नियुक्त किया गया। सिन्धु नदीके किनारे कुछ यवनोंने घोड़ा पकड़ना चाहा पर कुमार वसुमित्रने सबको हरा दिया। अन्तमें घोड़ा सब देशोंमें स्वच्छन्दतासे घूम फिर आया और पुष्यमित्रने बड़े उत्सवके साथ अपना यज्ञ समाप्त किया। कालिदासके 'मालविकाग्निमित्र' नाटकका नायक यही अग्निमित्र है।

पाणिनीय व्याकरणपर महाभाष्य लिखनेवाले पतञ्जलिने भी अपनी पुस्तकमें पुष्यमित्रके यज्ञ करने और (यवनों) यूनानियोंके साकेत नगरपर चढ़ाई करनेका सूचक एक वाक्य लिखा है जिससे विदित होता है कि पतञ्जलि इसी समयमें हुए और उन्होंने पुष्यमित्रको यज्ञ करते देखा होगा। बौद्ध

बाईसवां अध्याय

अन्तिम मगध राज्य और शुंग कण्व तथा आन्ध्रवंश

पुष्यमित्रने बड़े रोबदाबसे ३६ वर्षतक पटनेमें राज्य किया। उसके राज्यकालमें पश्चिमकी ओरसे यूनानी राजा मिनेण्डरने भारतवर्षपर चढ़ाई की पर पुष्यमित्रसे पराजित हो उसे पीछे हटना पड़ा। दक्षिणकी ओरसे विदर्भ देशके राजाने भी मगधपर चढ़ाई की, पुष्यमित्रने उसे भी लड़ाईमें हराया। अपने राज्यकी जड़ दृढ़ करके पुष्यमित्रने बड़ी धूमधामके साथ एक राजसूय और अश्वमेध यज्ञ किया। पुष्यमित्रका पुत्र अग्निमित्र मालवेका अधिकारी नियत किया गया था और वह इस समय (विदिशा) भेलसामें था। यज्ञके अवसरपर अग्निमित्रको पुष्यमित्रने अपने यहां बुला भेजा। जब यज्ञका घोड़ा छोड़ा गया तो उसकी रखवालीके लिये अग्निमित्रका पुत्र वसुमित्र सेना समेत नियुक्त किया गया। सिन्धु नदीके किनारे कुछ यवनोंने घोड़ा पकड़ना चाहा पर कुमार वसुमित्रने सबको हरा दिया। अन्तमें घोड़ा सब देशोंमें स्वच्छन्दतासे घूम फिर आया और पुष्यमित्रने बड़े उत्सवके साथ अपना यज्ञ समाप्त किया। कालिदासके 'मालविकाग्निमित्र' नाटकका नायक यही अग्निमित्र है।

पाणिनीय व्याकरणपर महाभाष्य लिखनेवाले पतञ्जलिने भी अपनी पुस्तकमें पुष्यमित्रके यज्ञ करने और (यवनों) यूनानियोंके साकेत नगरपर चढ़ाई करनेका सूचक एक वाक्य लिखा है जिससे विदित होता है कि पतञ्जलि इसी समयमें हुए और उन्होंने पुष्यमित्रको यज्ञ करते देखा होगा। बौद्ध

ग्रन्थकारोंने पुष्यमित्रको ब्राह्मण मतका पोषक और बौद्धमतका शत्रु लिखा है। वे लिखते हैं कि पुष्यमित्रने बौद्धोंके बहुतसे विहार जला दिये और पटनासे जलन्धरतकके निवासी असंख्य बौद्धभिक्षुकोंको मरवा डाला।

पुष्यमित्र राज्यपर बैठते समय बहुत बूढ़ा रहा होगा। वह विक्रमाब्दसे लगभग ६१ वर्ष पहले मरा और अपने बेटों तथा पोतोंके हाथ मगधका विस्तृत राज्य छोड़ गया। अग्निमित्र और उसके उत्तराधिकारियोंने लगभग ७६ वर्षतक मगधपर राज्य किया, पर इन राजाओंके नामके अतिरिक्त कोई विशेष विवरण नहीं मिलता। नवें राजा भागवतने कदाचित् २६ वर्षतक राज्य किया। शुङ्गवंशका अन्तिम राजा देवभूति विलासी और दुर्बल था। अन्तमें उसके मन्त्री वासुदेव काण्वने उसे मरवा डाला और स्वयं राजसिंहासन दबा लिया। इस प्रकार लगभग ११२ वर्ष राज करके विक्रमाब्दसे १५ वर्ष पूर्व शुङ्गवंशका राज्य नष्ट हो गया और कण्ववंशका राज्यारंभ हुआ।

वासुदेवकण्वने मगधराज्यपर अधिकार करके पटना वा पाटलिपुत्रहीको अपनी राजधानी बनाया। इसने ६ वर्षतक राज्य किया और उसके पीछे ३६ वर्षतक उसके वंशवालोंने मगधमें राज्य किया। जान पड़ता है कि कण्ववंशी राजाओंके समयमें उत्तरी भारतका राज्यप्रबन्ध बहुत गड़बड़ था और कण्व-लोग अपनी दुर्बलताके कारण उसे सँभाल न सके। मालवेके विक्रमादित्यने प्रबल हो इसी समयमें बाहरसे चढ़ाई करने-वाले शकोंको भारतसे निकाल बाहर किया होगा। विक्रमा-दित्यका वर्णन आगे किया जायगा। दक्षिणमें अन्ध्रजातिके लोग यहांतक प्रबल हुए कि उन्होंने अन्तिम काण्व राजा सुश-र्माको मारकर मगधदेश अपने राज्यमें मिला लिया। कण्व-

ग्रन्थकारोंने पुष्यमित्रको ब्राह्मण मतका पोषक और बौद्धमतका शत्रु लिखा है। वे लिखते हैं कि पुष्यमित्रने बौद्धोंके बहुतसे विहार जला दिये और पटनासे जलन्धरतकके निवासी असंख्य बौद्धभिक्षुकोंको मरवा डाला।

पुष्यमित्र राज्यपर बैठते समय बहुत बूढ़ा रहा होगा। वह विक्रमाब्दसे लगभग ९१ वर्ष पहले मरा और अपने बेटों तथा पोतोंके हाथ मगधका विस्तृत राज्य छोड़ गया। अग्निमित्र और उसके उत्तराधिकारियोंने लगभग ७६ वर्षतक मगधपर राज्य किया, पर इन राजाओंके नामके अतिरिक्त कोई विशेष विवरण नहीं मिलता। नवें राजा भागवतने कदाचित् २६ वर्षतक राज्य किया। शुङ्गवंशका अन्तिम राजा देवभूति विलासी और दुर्बल था। अन्तमें उसके मन्त्री वासुदेव काण्वने उसे मरवा डाला और स्वयं राजसिंहासन दबा लिया। इस प्रकार लगभग ११२ वर्ष राज करके विक्रमाब्दसे १५ वर्ष पूर्व शुङ्गवंशका राज्य नष्ट हो गया और कण्ववंशका राज्यारंभ हुआ।

वासुदेवकण्वने मगधराज्यपर अधिकार करके पटना वा पाटलिपुत्रहीको अपनी राजधानी बनाया। इसने ९ वर्षतक राज्य किया और उसके पीछे ३६ वर्षतक उसके वंशवालोंने मगधमें राज्य किया। जान पड़ता है कि कण्ववंशी राजाओंके समयमें उत्तरी भारतका राज्यप्रबन्ध बहुत गड़बड़ था और कण्व-लोग अपनी दुर्बलताके कारण उसे सँभाल न सके। मालवेके विक्रमादित्यने प्रबल हो इसी समयमें बाहरसे चढ़ाई करने-वाले शकोंको भारतसे निकाल बाहर किया होगा। विक्रमा-दित्यका वर्णन आगे किया जायगा। दक्षिणमें अन्ध्रजातिके लोग यहांतक प्रबल हुए कि उन्होंने अन्तिम काण्व राजा सुशर्माको मारकर मगधदेश अपने राज्यमें मिला लिया। कण्व-

वंशकी समाप्ति विक्रमाब्दसे लगभग ३० वर्ष पूर्व हुई होगी।

अन्ध्रजातिवालोंने अशोकवर्द्धनके पीछे विक्रमाब्दसे लगभग २६३ वर्ष पहले धनकटकमें अपने राज्यकी जड़ जमायी और स्वतन्त्र हो गये। पहिले तो ये केवल दक्षिणी भारतके अधिकारी थे पर पीछेसे उत्तरी और पूर्वी भारत भी इन लोगोंने विजय कर लिया। विक्रमाब्दसे ३० वर्ष पहले इन्होंने मगध जीत लिया और पश्चिमकी ओर हटके गोदावरी तीरपर प्रतिष्ठान वा पैठानको अपनी राजधानी बनाया। इस वंशके ३० राजाओंने लगभग ४५० वर्षतक भारतवर्षमें अपना राज्य अक्षत रखा। इन सब राजाओंका वर्णन आगे चलकर दक्षिणी भारतके इतिहासमें लिखा जायगा। ये राजालोग सातवाहन वा शालिवाहनके नामसे प्रसिद्ध हैं और इनमेंसे एकने जो विक्रमाब्द २१ में राजसिंहासनपर बैठा होगा शालिवाहनका शाका चलाया होगा। विक्रमाब्द १७३में अन्ध्रवंशका विनाश हो गया पर इस बातका ठीक ठीक पता नहीं लगता कि कैसे और किन लोगोंने अन्ध्रोंका विनाश किया। अन्ध्रलोग बौद्ध मतके माननेवाले थे इसी कारण ब्राह्मण मतके पक्षपाती काठियावारके पश्चिमी क्षत्रप इनके शत्रु हो गये और कभी कभी इनपर चढ़ाई करके इन्हें हरा देते थे जिसका परिणाम यह हुआ कि अन्ध्र जाति क्रमशः दुर्बल होती चली गयी। कौन जाने कदाचित् पश्चिमी क्षत्रपोंहीने अन्ध्र जातिको नष्ट किया हो। हाँ, काठिवारके पश्चिमी क्षत्रप विक्रमाब्द ३४३ तक वहां राज्य करते रहे और अन्तमें गुप्तवंशी दूसरे चन्द्रगुप्त विक्रमादित्यने उनका राज्य नष्ट किया।

तेइसवां अध्याय

शक, विक्रमादित्य और तुरुष्क

पश्चिमकी ओरसे भारतपर मिनेण्डरने विक्रमाब्दसे ६३ वर्ष पहले चढ़ाई की थी और पुष्यमित्रसे हारके उसे पीछे हटना पड़ा था। मध्य एशियामें कास्पियन समुद्रके किनारेके रहने वाले शक या सीथियनलोग इसी समयमें वहांसे निकाल दिये गये क्योंकि विक्रमाब्दसे १०३ वर्ष पहले 'यूचि' नामक तुर्की जातिवालोंने वहां अपनी बस्ती स्थापित की। शक लोग दक्षिण-में पारस और अफ़ग़ानिस्तानकी ओर आये और उन लोगोंने यूनानवालोंके बैक्ट्रिया राज्यका सत्यानाश किया। पर 'यूचि' लोगोंने यहां पहुँचकर भी उन्हें खदेड़ना आरम्भ किया। शकोंने अफ़ग़ानिस्तान और पंजाबपर चढ़ाई करके विक्रमाब्दसे ६६ वर्ष पहिले वहां अपना राज्य स्थापित किया। थोड़े दिनोंमें उत्तरपश्चिमी भारतमें इस जातिका अधिकार और दबदबा बैठ गया। यूनानियों और हिन्दुओंके सबन्धसे ये एक सभ्य जाति बन गये और महाराजाधिराजके नामसे पुकारे जाने लगे। इनके वशवर्त्ती प्रान्तीय अधिकारी क्षत्रपके नामसे प्रसिद्ध किये गये। इन क्षत्रपोंका अधिकार तक्षशिला, मथुरा और काठियावार आदि स्थानोंमें हो गया। शकलोग अधिक काल लों भारतके अधिकारी नहीं रहे।

महाराज विक्रमादित्य

एक तो शकलोग म्लेच्छ थे दूसरे उनका धर्म भी बौद्ध था। अतएव हिन्दूलोग उनके राज्यसे असन्तुष्ट थे। इस समय मालवेकी राजधानी उज्जैनमें महाराज विक्रमादित्य एक प्रतापी

राजा हुए जो बड़े शूर, पराक्रमी और विद्वान् थे। जब विक्रमने देखा कि उत्तरी भारतमें शकोंका अधिकार बढ़ता जाता है और भारतीय प्रजा उनसे असन्तुष्ट है तो उन्होंने युद्धमें शकोंको परास्त किया और उन्हें भारतवर्षसे बाहर निकाल दिया। तबसे लोगोंने विक्रमको महाराजाधिराज और शकारि कहना प्रारम्भ किया। शकोंको विजय करके इस राजाने अपने नामका एक संवत् चलाया जिसे लोग विक्रम वा मालव संवत्के नामसे पुकारते हैं और जिसका आरम्भ सन् ईस्वीसे लगभग ५७ वर्ष पूर्व होता है।

यद्यपि यह विक्रमादित्य कुल भारतवर्षमें अपने प्रतापके कारण प्रसिद्ध हैं तथापि इस बातका ठीक ठीक पता नहीं लगता कि यह क्षत्रियोंकी किस शाखा में उत्पन्न हुए। कर्नल टाडने इन्हें तोमर बतलाया है पर राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्द इन्हें परमारवंशी कहते हैं। मार्शमन् आदिने इन्हें अन्ध्रवंशी भी लिखा है पर इनमेंसे पक्का प्रमाण किसी बातका भी नहीं मिलता है। हम देख आये हैं कि महाभारतमें युधिष्ठिरकी गद्दी परीक्षित्को मिली। परीक्षित्की २६वीं पीढ़ीमें जो क्षेमक नामका राजा हुआ वह निपट दुर्बल था उसके मन्त्रीने उसे मारकर राज्य ले लिया। मन्त्रीके वंशने १४ पीढ़ीतक राज्य किया और फिर दूसरे वंशने १५ पीढ़ीतक वहीं राज्य किया। इसके पीछे एक तीसरा वंश राज्याधिकारी हुआ जिसने ६ पीढ़ीतक राज्य भोगा। इस अन्तिम वंशके सबसे पिछले राजा राजपालने कमाऊंपर चढ़ाईकी पर हार गया। कमाऊंके राजा सुखवन्तने राजपालको मार डाला और उसका राज्य छीन लिया। सुखवन्तने पाडवोंकी प्राचीन राजधानी इन्द्रप्रस्थको छुड़ाया पर उसे अपनी राजधानी नहीं बनाया। इस समय-

से लेकर लगभग ८०० वर्षतक इन्द्रप्रस्थ उजाड पडा रहा और पीछेसे तोमर राजा अनंगपालने विक्रमाब्द ७९३ के लगभग इस नगरको फिरसे बसाके उसका नाम "दिल्ली" रखा और वहां एक गढ बनवाया। आजकलके दिल्लीनगरसे ६ मील पश्चिमकी ओर अबतक उस पुराने नगरके खंडहर देखनेमें आते हैं और नाम भी 'इन्दरपत' है।

शकोंको जीतने और हिन्दूधर्मकी रक्षा करनेसे महाराज विक्रमादित्यका नाम भारतवर्षमें अचल हो गया। पढेलिखे तथा मूर्ख, कवि और कत्थक, किसान और बनिये, धनी और दरिद्र, बूढे और बालक, सभी विक्रमको जानते और उनकी प्रशंसा गाया करते हैं। उनके समयमें संस्कृत विद्याकी परम उन्नति हुई और साहित्यका सर्वत्र अनुशीलन होने लगा। प्रसिद्ध महाकवि कालिदास इन्हीकी राजसभामें रहे होंगे और संभवतः इन्हीके नामको लक्ष्यमें रखके कविने 'विक्रमोर्वशीय' नामनाटक लिखा। विक्रमने उज्जैनमें महाकाल महादेवजीका मन्दिर सवा दोसौ हाथ ऊँचा बनवाया और यही एक वेधशाला भी स्थापित की। विक्रम शूरता विद्या और सदाचरणमें ऐसा प्रसिद्ध था कि कदाचित् वैसा राजा और कोई न हुआ है न होगा। इसमें घमण्ड नामको न था। महाराजाधिराज होकर भी चटाईपर सोता और अपने हाथों शिप्रासे पानीका तूँबा भर लाता था। गाथासप्तशतीमें हालकविने इनकी प्रशंसामें एक गाथा लिखी है।

तुरुष्कवंश

तुर्की जातिके यूचिलोग जिन्होंने मध्य एशियामे शकोंको निकाल दिया था पाच भिन्न जातियोंमें बँट गये। उनकी एक जातिका नाम कुशान था। ये लोग तुर्किस्नान भरमें फैल गये

और हिन्दूकुश पहाड़को लाँघकर विक्रमाब्दकी पहली शताब्दीमें अफ़ग़ानिस्तान, पञ्जाब और काश्मीरपर चढ़ दौड़े, और उन सबको जीत लिया। ये लोग, तुरुष्क राजाओंके नामसे भारतमें प्रसिद्ध हुए।

इस वंशके प्रथम राजाका नाम यूनानियोंके अनुसार कुजुल कैडफाइसिस था। यह विक्रमाब्द १०२में राजसिंहासनपर बैठा और ४० वर्ष पीछे लगभग विक्रमाब्द १४२ में ८० वर्षका बूढ़ा होकर मरा। इसके पीछे वेमा कैडफाइसिस वा द्वितीय कैडफाइसिस उसका उत्तराधिकारी हुआ। इस राजाने चीनपर चढ़ाई की, पर पराजित हुआ और चीनवालोंनेइससे कर भी उगाहा। भारतवर्ष में जो यूनानी और पार्थियन राज्य रह गये थे उन सबको इसने विजय करके अपने राज्यमें मिला लिया। उत्तरी क्षत्रप भी इसके वशीभूत हुए। इस राजाके नामके जो सिक्के अब मिलते हैं उनमें महादेवजीका चित्र देख पड़ता है। लग भग ३० वर्ष राज्य करके विक्रमाब्द १८२में द्वितीय कैडफाइसिस परलोक सिधारा।

इसके पीछे तुरुष्क राजाओंमें सबसे अधिक प्रसिद्ध कनिष्क हुआ। इसके प्रतापकी प्रसिद्धि भारतके बाहर चीन तिब्बत और मंगोलिया आदि देशोंमें भी फैली थी। लगभग विक्रमाब्द १८२में राजगद्दीपर बैठा। उसका राज्य उत्तरी भारतमें दूरतक फैल गया था। सिन्ध और कश्मीरपर भी उसका अधिकार था। उसकी राजधानी पुरुषपुर वा पेशावर थी। भारतवर्षसे बाहर काशगर यारक़न्द और खुतनमें भी उसका राज्य था। उसने चीनको कर देना बन्द कर दिया। कनिष्कके सिक्कोंके देखनेसे ज्ञात होता है कि यह बौद्ध मतका अनुयायी था पर उसका मत अशोक सा न था किन्तु कुछ

भिन्न ही था। कनिष्कके राज्यकालमें बौद्धोंका एक सङ्घ भी हुआ था जो बुद्धके मरनेसे सात सौ वर्ष पीछे हुआ और जिसे लोग चौथा सङ्घ कहते थे। यह लगभग विक्रमान्द १६७ में हुआ और इसमें ५०० बौद्ध भिक्षु उपस्थित थे। कनिष्कहीके राज्यकालमें चीन और तिब्बतमें बौद्ध धर्मशिक्षक भेजे गये। संस्कृतके प्रसिद्ध वैद्यकशास्त्र चरकसंहिताके प्रणेता 'चरक' मुनि कनिष्कके आश्रित थे, ऐसा लोग बतलाते हैं।

कनिष्क बड़ा उत्साहशील था। कहते हैं कि जब उसके दरबारवालोंने देखा कि वह लालची और निर्दय हो चला तो उन लोगोंने उसे गद्दीपरसे उतार कर मार डाला। कनिष्कने लगभग २५ वर्ष राज्य किया होगा।

कनिष्कके पीछे उसका बेटा 'हुविष्क' राजा हुआ और लगभग ३५ वर्षलों राज्य किया, उसके समयकी कोई प्रसिद्ध घटना सुननेमें नहीं आती। उसके देहान्तानन्तर उसका पुत्र 'वसुदेव' अपने बापदादोंकी गद्दीपर बैठा। वह तुरुष्क राजाओंमें अन्तिम था। उसके नाम तथा सिक्कोंसे अनुमान होता है कि वह हिन्दूधर्मको मानता था। वसुदेवने प्रायः ४१ वर्ष राज्य किया और विक्रमान्द २८३ में जब उसका देहान्त हो गया तो तुरुष्कवंशी राजाओंका राज्य समाप्त हो गया।

पश्चिमी क्षत्रप

युरोपीय इतिहासज्ञ लोग बतलाते हैं कि विक्रमकी पहली शताब्दीमें शकोंकी एक शाखा दक्षिण भारतमें पहुँची और उसने गुजरात काठियावार आदिपर अपना अधिकार विस्तृत कर लिया। इस शाखाके मूल पुरुषका नाम 'भूमक' था जिसने विक्रमके पीछे फिर भारतमें अपना राज्य स्थापित किया। तद-

चौबीसवां अध्याय

गुप्त साम्राज्य

पहले लिखा जा चुका है कि मौर्योंकी राजधानी पटनेमें उनके पीछे क्रमसे शुङ्ग, कण्व और अन्ध्रवंशकेलोग राज्य करते रहे, अन्तमें विक्रमाब्द २८७ में अन्ध्रोंका राज्य नष्ट होनेपर फिर लगभग ८५ वर्षतक उत्तरी भारतमें कोई प्रबल वा चक्रवर्ती राजा राज्य करना नहीं सुना गया, जहांतहाँ छोटे छोटे अधिकारी अपने अपने प्रदेशोंमें स्वतन्त्रतापूर्वक राज करते रहे। चौथी शताब्दीके आरम्भमें चन्द्रगुप्त नामक एक छोटा सा राजा मगधके किसी भागमें राज्य करता था उसने विक्रमाब्द ३६४में लिच्छवी राजवंशकी कन्यासे विवाह किया। इस विवाहके समयसे ही गुप्तवंशवालोंकी उन्नतिका प्रारम्भ समझना चाहिये। बारह वर्ष पीछे यही राजा चन्द्रगुप्त प्रथमके नामसे पाटलिपुत्रमें प्रबल सम्राट् बन बैठा। उसने गंगातीरके देश आजकलके संयुक्त प्रदेश आगरा और अवध तथा विहारका कुल भाग अपने राज्यमें मिलाया और महाराजकी उपाधि धारण करके विक्रमाब्द ३७६-७७से गुप्त नामका एक नया संवत् चलाया।

समुद्रगुप्त

पहला चन्द्रगुप्त विक्रमाब्द ३८३में मरा और उसके स्थान पर उसका पुत्र समुद्रगुप्त राजगद्दीपर बैठा। यह बड़ा वीर और उत्साही था। इसने अपने पिताके राज्यकी सीमाको बहुत अधिक बढ़ाया और अपने विजयकी घटनाओंका वर्णन संस्कृत पद्योंमें लिखवाकर और अशोककी एक लाटपर जो

अब प्रयागमे है खुदवाकर प्रकाशित किया। उसके पढनेसे ज्ञात होता है कि समुद्रगुप्तने पहले उत्तरी भारतके उन नौ राज्योंको विजय किया जिन्हें उसका पिता अपने अधीन न कर पाया था। तदनन्तर उसने दक्षिणके ग्यारह राज्योंके विजयका सङ्कल्प किया और छोटा नागपुर उड़ीसा मध्यप्रदेश गोदावरी तथा कृष्णाकी घाटी आदि [illegible]नोंको विजय करता दक्षिण [illegible]शमें धँसा। तिलिंगाना विजय करके काञ्चीके पल्लव राजाको [illegible]राया, फिर पश्चिमी घाटकी ओर महाराष्ट्र, एरण्डपल्ल खानदेश) आदिको विजय करता उत्तरी भारतमें लौट [illegible]या। तीन वर्षके बीचमें समुद्रगुप्तका राज्य पश्चिममें यमुना-[illegible]से लेकर पूर्वमे हुगलीके किनारेतक और उत्तरमें हिमालयसे [illegible]र दक्षिणमें नर्मदातक फैल गया। आसाम बंगाल, नैपाल, माऊँ और पंजाब आदि स्थानोंके राजा समुद्रगुप्तके वशीभूत [illegible] गये। राजपुताना और मालवा भी उसके अधीन हुए। [illegible]विजयके अन्तमे अपनी राजधानीको लौटकर समुद्रगुप्तने [illegible] पुष्यमित्रकी तरह एक अश्वमेध यज्ञ किया। यह राजा बडा [illegible]द्वान्, कवि और गवैया था। इसने संस्कृतज्ञों और वैदिक [illegible]र्म माननेवालोंकी बडी प्रतिष्ठा की। लगभग ५० वर्ष राज्य [illegible]रके वह विक्रमाब्द ४३२ मे मरा।

चन्द्रगुप्त दूसरा, विक्रमादित्य

समुद्रगुप्तके पीछे उसका बेटा चन्द्रगुप्त दूसरा विक्रमादित्यकी उपाधि धारण करके उत्तरी भारतमें सम्राट् हो गया। यह राजा बडा सच्चरित्र, संस्कृत भाषाका विद्वान् तथा विष्णु-का भक्त था, कवियों और विद्वानोंका बडा आदर करता था। पहले कुछ दिनतक पटना और पीछेसे कन्नौज उसने

अपनी राजधानी बनायी। उसने कुल मालवा और गुजरातको विजय किया और काठियावारके पश्चिमी क्षत्रपोंको नष्ट किया। दिल्लीके एक पुराने खम्भेपर इस राजाकी प्रशंसामें संस्कृतमें बहुतसे श्लोक लिखे मिलते हैं। इसी राजाके समयमें फाहियान नामक एक चीनी यात्री बौद्धमतकी धर्मपुस्तकोंको ढूंढनेके लिये भारतमें आया था। उसने विक्रमाब्द ४६२ से ४६८तक भारतवर्षमें निवास किया और एक पुस्तक रचकर उसमें अपने समयके राज्यका वर्णन छोड़ गया है।

फ़ाहियान लिखता है कि प्राचीन राजधानी पटना एक बड़ा और धनी नगर था, और उसके आसपास ऐसे नगर थे जहाँ बौद्ध धर्म माननेवालोंकी घनी वस्ती थी, राजधानीमें बौद्धोंके दो मठ थे उनमें सात सौसे अधिक साधु निवास करते थे और दूर देशके लोग उनसे धर्मविषयक शिक्षा ग्रहण करने आते थे। इन मठोंमें बौद्धसम्बन्धी उत्सवके दिनोंमें बड़े समारोहके साथ आनन्द मनाया जाता था। चन्द्रगुप्तका राज्यप्रबन्ध दया तथा कोमलतासे पूर्ण था। लोगोंपर किसी प्रकारके नियमों वा करोंकी कड़ाई न थी और यात्रियोंको मार्गमें डाकू आदिको भय नहीं था। राजाकी आय विशेष कर मालगुज़ारी से होती थी जो कि उपजके अनुसार एक नियत लेखेसे ली जाती थी। अपराधियोंको कठोर दण्ड न दिया जाता था। साधारणतः धनदण्ड ही होता था। पर बार बारकी डकैती, चोरी आदि अपराधोंका दण्ड हाथोंका काट लेना था। किसीको प्राणदण्ड वा और कोई कठिन दण्ड नहीं दिया जाता था। राजाके शरीर संरक्षक इत्यादि पुरुषोंको नियत वेतन मिलता था। भले लोग न तो आखेट करते थे और न बाजारमें मांसकी बिक्री होती थी। मांस प्याज लहसुन और मादक द्रव्य आदि

का व्यवहार सर्वसाधारणमें न था और न नगरोंमें ऐसी दुकानें ही देखनेमें आती थीं। इन सब पदार्थोंका उपयोग केवल चाण्डाल आदि नीच जातियोंमें ही पाया जाता था। सिक्कोंमें कौड़ियोंका चलन अधिक था। इस समय पहाड़के नीचेका यह भाग जो नैपालकी तराईमें है तथा श्रावस्ती, कपिलवस्तु, कुशीनगर आदि बौद्ध धर्मके प्रसिद्ध, पवित्र और प्राचीन स्थान उजाड़ हो रहे थे। विद्याभ्यासकी यथोचित प्रतिष्ठा तथा उन्नति होती थी। राजा मतविशेषविषयक पक्षपात या द्वेष नहीं रखता था।"

आजकल जो गुप्त राजाओंके नामके सिक्के पाये गये हैं उनसे अनुमान होता है कि कौड़ियोंके अतिरिक्त सोना, चांदी और तांबेके सिक्के भी उस समय चलते रहे होंगे। इस सुशील राजाने विक्रमाब्द ४७०तक राज किया और अपने बेटे कुमार-गुप्तके लिए विस्तृत राज्य छोड़ कर मरा।

कुमारगुप्त और स्कन्दगुप्त

कुमारगुप्त अपने बापके समान योग्यतासे ४२ वर्षतक राज्य करता रहा। इसने भी अपने दादा समुद्रगुप्तकी नाईं एक अश्वमेध यज्ञ किया, और पत्थरपर एक लेखमें इसने पूरी वंशावली लिखा दी है जिससे ज्ञात होता है कि उसकी माताका नाम ध्रुवदेवी, दादीका नाम दत्तादेवी और परदादी-का नाम कुमारदेवी था। यह कुमारदेवी लिच्छवी राजवंश-की कन्या थी। कुमार गुप्तकी मृत्यु विक्रमाब्द ५१२में हुई।

कुमारगुप्तके बेटे स्कन्दगुप्तने विक्रमाब्द ५१२-५३७तक राज्य किया। राज्यारम्भके कुछ दिन पीछे इसे हूणोंसे लड़ना पड़ा जो झुण्डके झुण्ड उत्तर पश्चिमकी ओरसे भारतवर्षमें

घुस आये थे। विक्रमाब्द ५१४में स्कन्दगुप्तने पहली लडाईमें हूणोंको परास्त कर उन्हें यहासे भगा दिया। गिरनार परके जिस सुदर्शन तालका जीर्णोद्धार पश्चिमी क्षत्रप रुद्रदामन्ने कराया था वह फिर टूटा और स्कन्दगुप्तने पुनः उसका जीर्णोद्धार किया। स्कन्दगुप्तने कदाचित् अयोध्याको अपनी राजधानी बनाया था। वह विक्रमाब्द ५२७तक शान्तिपूर्वक राज्य करता रहा। इस वर्ष हूणोंने फिर चढाई की और स्कन्दगुप्त उन्हें रोक न सका। स्कन्दगुप्त विक्रमाब्द ५३७में मरा। जान पडता है कि इसके वशके लोग मगध और मालवामें पृथक् पृथक् छोटे सामन्त बनके राज्य करने लगे। पर स्कन्दगुप्तके मरते ही गुप्त साम्राज्यका प्रताप विनष्ट हो गया।

पचीसवाँ अध्याय

मिहिरकुल और यशोधर्म्मदेव

हूणोंका सेनापति तोरमान जिसने गुप्तसाम्राज्यको उजाड़ डाला लगभग विक्रमाब्द ५५७में मध्य और पश्चिमी भारतका राजा हुआ। उसने स्यालकोटको अपनी राजधानी बनाया और अपनेको महाराजाधिराज कहलवाया। तोरमान विक्रमाब्द ५६७में भारतके राज्यको अपने पुत्र मिहिरकुलके हाथमें छोड़ परलोक सिधारा।

मिहिरकुल मालवा, पंजाब और अफ़ग़ानिस्तानपर शासन करता था। लोग कहते हैं कि वह बड़ा निष्ठुर था। अन्तमें हिन्दू लोग उसकी क्रूरता सह न सके। हिन्दू राजाओंने, जिनमेंसे मालवेके यशोधर्मदेव और मगधके बालादित्य मुखिया थे, आपसमें मिलकर मिहिरकुलसे लड़ाई लड़ी। विक्रमाब्द ५८५में कोहरूरकी लड़ाईमें यशोधर्मदेवने मिहिरकुलको परास्त करके पश्चिमकी ओर खदेड़ दिया। उसने भागके कश्मीरमें शरण ली और अवसर पाकर वहाँका राजा बन बैठा। उसके अनर्थसे कश्मीर की प्रजा भी व्याकुल हुई और लोगोंने उसे राजगद्दीसे उतारकर मार डाला ‡।

हूणोंको हराके मालवाके यशोधर्मदेवने बड़ा नाम कमाया। उसने विक्रमादित्यकी उपाधि धारण की और प्राचीन महाराज

---

‡ कल्हणने अपनी राजतरंगिणीके १ तरंगमें मिहिरकुलके रोमाञ्चकारी अत्याचारोंका वर्णन करके लिखा है कि ७० वर्ष राज्य करनेके पश्चात् अनेक रोगोंसे पीडित होकर मिहिरकुल अग्निमें कूदकर स्वयं जल मरा था। राजतरंगिणीमें मिहिरकुलके पिताका नाम 'वसुकुल' लिखा है। सम्पादक।

विक्रमादित्यकी तरह हिन्दूधर्म और संस्कृत विद्याकी उन्नतिमें दत्तचित्त रहा। उसकी राजसभामें अनेक विद्वान् पण्डित उपस्थित थे, जिनमेंसे 'वराहमिहिर' ज्यौतिषी और अमरकोषके बनानेवाले अमरसिंह बहुत प्रसिद्ध हैं। यह यशोधर्मदेव किस वंशका था इस बातका ठीक ठीक पता नहीं लगता पर उत्तरी भारतवर्षमें इसने विक्रमाब्द ५८५–६०७तक बड़े रोबदाबसे राज्य किया। उज्जैन इसकी राजधानी थी।

यशोधर्मके पीछे विक्रमाब्द ६०७में उसका उत्तराधिकारी 'शीलादित्य' (प्रथम) प्रतापशीलकी उपाधि धारण करके राज्यासनपर बैठा। इसकी सभामें 'वसुबन्धु' नाम बौद्ध दार्शनिक वर्तमान था। चीनी यात्री ह्वान्त्साङ्ग लिखता है कि यह शीलादित्य बौद्ध मतका पक्षपाती था। यह राजा विक्रमाब्द ६३७में मरा। उसके पीछे फिर एक नया वंश कुछ कालके लिये उत्तरी भारतमें प्रसिद्ध और प्रबल हुआ।

सुनते ही भाग गये। अब हर्षवर्द्धनने कन्नौजहीको अपनी राजधानी बनाया और कुल भारतवर्षको विजय करना प्रारम्भ किया। धीरे धीरे नर्मदा नदीके उत्तरके सब देश हर्षवर्द्धनके अधिकारमें आगये। इस समय दक्षिण भारतमें चालुक्यवंशी पुलिकेशिन् जो सत्याश्रयके नामसे प्रसिद्ध था,राज्य करता था। हर्षवर्द्धनने उसके देशपर चढ़ाई की पर जीत न सका। मालवा, आसाम, नैपाल और गङ्गा यमुनाकी घाटीके सब देश हर्षवर्द्धनके अधीन हुए पर दक्षिणी भारत स्वतन्त्र ही बना रहा। गुजरातका राजा भी हर्षवर्द्धनके अधीन था। कश्मीर और पंजाबकी ओर हर्षवर्द्धन नहीं बढ़ा। प्रारम्भमें उसकी सेनामें पचास सहस्र पैदल, बीस सहस्र घुड़चढ़े और बारह सहस्र हाथी थे, पर पीछेसे सेनाकी संख्या इसकी पंचगुनी हो गयी।

हर्षवर्द्धन प्रति पांचवें वर्ष प्रयागक्षेत्रमें एक धर्मसमाज बैठाता था और लगभग अढ़ाई महीने वहां निवास करके अनेक प्रकारके उत्सव और धर्मानुष्ठान करता था। इन उत्सवोंमें सूर्य, शिव और बुद्धदेवकी पूजा विशेष प्रकारसे होती थी। राजा ब्राह्मणों और बौद्धोंको जी खोलकर दान दिया करता था और उत्सवके अन्तमें अपने गहने कपड़ेतक भिक्षुकोंको बांटकर सर्वस्व दान कर डालता था। कहते हैं कि हर्षवर्द्धन बौद्ध मतका था पर उसने अपने जीवन भरमें कभी हिन्दूमतको अनादरकी दृष्टिसे नहीं देखा। उसकी प्रजामें दोनों मतके लोग साथ साथ और मिलजुलकर रहते थे। हर्षवर्द्धनने अशोकवर्द्धनकी नाईं प्रजापालन किया। बड़ा दयालु और परिश्रमी था। विद्वानोंकी सङ्गति और विद्यामें भी उसकी बड़ी रुचि थी। उसकी राजसभामें संस्कृतके प्रसिद्ध कवि बाणभट्ट विद्यमान थे, जिन्होंने इस राजाकी प्रशंसामें

हर्षचरित नामक आख्यायिका लिखी है। विद्वानोंकी धारणा है कि रत्नावली, प्रियदर्शिका और नागानन्द नाम नाटकोंके कर्ता यही हर्ष हैं।

हर्षवर्द्धनहीके समयमें चीनका प्रसिद्ध यात्री ह्वान्त्साङ्ग भारतमें भ्रमणके लिये आया। वह लिखता है कि उन दिन राजगृहके निकट नालन्द नामक स्थानपर बौद्धोंका एक प्रसिद्ध विहार था जहां लगभग दससहस्र विद्यार्थी धर्मशिक्षा पाते थे और उन सबका निर्वाह राजकोषसे होता था। राजधानी कन्नोजमें हिन्दुओंके २०० मन्दिर और बौद्धोंके सौ विहार बने थे। राजा कभी कभी अपनी राजधानीमें भी धर्मसभा किया करता था। जिसमें भिन्न भिन्न देशोंके राजा, ब्राह्मण और बौद्ध भिक्षुक उपस्थित होते थे और परस्पर धर्मसम्बन्धी वाद-विवाद करते थे। हर्षवर्द्धनके दरबारमें ह्वान्त्साङ्गकी बड़ी प्रतिष्ठा हुई। उसने पन्द्रह वर्षलों भारतवर्षमें रहकर प्रत्येक प्रदेशमें भ्रमण किया। वह काबुलकी ओरसे भारतमें आया और काश्मीर तथा पंजाबमें घूमता हुआ उत्तरी भारतमें सर्वत्र घूमा फिरा। तदनन्तर उड़ीसा, तिलिङ्गाना आदिमें घूमता वह दक्षिणमें पहुँचा तथा महाराष्ट्र गुजरात सिन्ध और राजपूताना होता हुआ फिर उत्तर भारतमें लौट आया। ह्वान्त्साङ्गको प्रायः सभी देशोंमें ब्राह्मण और बौद्ध मतके लोग परस्पर मिलजुलकर रहते देखनेमें आये। उड़ीसा, काश्मीर और दक्षिण देशमें बौद्धमतके अनुयायी अधिक थे। हर्षवर्द्धनने ह्वान्त्साङ्गको बहुत कुछ भेंट दी। ह्वानत्साङ्गने बौद्ध मतके ६५० ग्रन्थ इकट्ठे किये जिन्हें बीस घोड़ोंपर लादकर अपने साथ चीन ले गया। विक्रमाब्द ६६६में ४२ वर्ष राज्य करनेके पश्चात् हर्षवर्द्धन परलोक सिधारा। उसके पीछे उत्तरी हिन्दुस्तान अनगिनती छोटे छोटे

राज्योंमें बँट गया। हर्ष नामका एक संवत् भी इस राजाके सिंहासनारोहणके समयसे आरम्भ हुआ और बहुत दिनोंतक उत्तरी भारतमें प्रचलित रहा।

महाराज हर्षवर्द्धनके समयमें संस्कृत विद्याकी वृद्धिके लिये प्राचीन पण्डितोंने अच्छा उद्योग किया। हर्षके पूर्वहीसे ज्योतिष, व्याकरण और संस्कृत साहित्यके लेखक प्रसिद्ध होते आये हैं। हर्षके समयमें उनकी संख्या और भी अधिक बढ़ी।

आर्यभट जिनका जन्म पटनामें विक्रमाब्द ५३२में हुआ था और वराहमिहिर जो विक्रमाब्द ५५६-६४४तक उज्जयिनीमें वर्त्तमान थे ये दोनों ज्यौतिषी हर्षवर्द्धनसे पूर्वके हैं। ब्रह्मगुप्त नाम ज्यौतिषीने हर्षवर्द्धनहीके राज्यकाल विक्रमाब्द ६८७में ब्रह्मस्फुटसिद्धान्त नाम ज्यौतिषका ग्रन्थ लिखा।

भर्तृहरि नामक प्रसिद्ध वैयाकरण भी जिन्होंने पतञ्जलिके महाभाष्यपर वाक्यपदीय नाम टीका लिखी है और नीति शृङ्गार और वैराग्यपर तीन शतक लिखे हर्षके समकालीन कहे जाते हैं। ह्वान्त्साङ्ग लिखता है कि भर्तृहरिने सात वार स्वमत परिवर्त्तन किया। इनकी मृत्यु विक्रमाब्द ७०८के लगभग हुई।

हर्षवर्द्धनसे कुछही पूर्व सुबन्धु नामक कवि हो गये हैं जिन्होंने वासवदत्ता* रची। हर्षचरित और कादम्बरीके रचयिता बाणकवि हर्षकी राजसभाहीमें उपस्थित थे। राजाहर्ष स्वयं कवि था और उसकी रचित तीन पुस्तकोंका उल्लेख ऊपर किया जा चुका है। कुछ युरोपियनोंकी कल्पना है कि हिन्दुओंके प्राचीन पुराणादि ग्रन्थ हर्षवर्द्धनहीके समयके लगभग बने होंगे।

* यह मत भ्रान्त है, मद्रासके प्रसिद्ध विद्वान् अभिनवबाण कृष्णमाचार्यने वासवदत्ताकी भूमिकामें इस मतका खण्डन किया है और सिद्ध किया है कि वासवदत्ताकी रचना हर्षचरितके पश्चात् हुई है। सम्पादक।

सत्ताईसवाँ अध्याय

राजपूतोंका राज्य

गुप्तोंके साम्राज्यकालहीसे भारतवर्षमें बौद्धोंका प्रभाव घटने लगा था पर हर्षवर्द्धनके पीछे तो कोई राजा इस धर्मका विशेष पक्षपाती न हुआ। ब्राह्मणोंके प्राचीन धर्मने फिर बल पकड़ा। राजाओंकी सहायतासे ब्राह्मण पण्डितोंने शास्त्रार्थमें बौद्धोंको हराकर या तो उनसे ब्राह्मणधर्म स्वीकार करा दिया अथवा उन्हें भारतसे निकलवा दिया। असम्भव नहीं है कि कहीं कहीं बौद्धाचार्योंको प्राणदण्ड भी दिया गया हो। इस प्रकारसे अपनी जन्मभूमि विहारको छोड़के शेष भारतवर्षके अन्य भागोंसे बौद्धधर्म लुप्त हो गया। फिर पुराने क्षत्रियोंके बचे हुए राजवंशों और कहीं कहीं नीच वंशके शूद्रादिकोंके राज्य भी यहां स्थापित हुए। ये सबलोग राजपूत जातिके नामसे प्रसिद्ध हुए और ब्राह्मणधर्मके अनुगामी हुए।

भारतमें बौद्धधर्मके प्रचारके पहले पुराणोंमें क्षत्रियोंके केवल दो वंश सुननेमें आते हैं अर्थात् सूर्य और चन्द्रवंश। बौद्धमतके प्रचारक गौतमबुद्ध स्वयं सूर्यवंशके राजकुमार थे। जब भारतमें बौद्धधर्म यहांतक बढ़ गया कि हिन्दुओंका पौराणिक धर्म प्रायः लुप्त होने लगा तो कहते हैं कि ब्राह्मणोंने अर्बुद-गिरिपर जाकर यज्ञ किया और होमकुण्डसे चार वीर उत्पन्न हुए जो भारतवर्षसे बौद्धधर्म निकालने और हिन्दूधर्मको अचल रखनेके लिये बद्धपरिकर हुए। इन चारों वीरोंके द्वारा जो वंश चला सो अग्निकुल क्षत्रियोंके नामसे प्रसिद्ध हुआ। प्रसिद्ध है कि इन क्षत्रियोंमें इन्द्रके अंशसे परमार, शिवजीके अंशसे सोलङ्की वा चालुक्य, भगवान् विष्णुके अंशसे चौहान और ब्रह्माके अंश-

से परिहार प्रकट हुए थे। चन्द्रकविने अग्निकुलके क्षत्रियोंको सबसे श्रेष्ठ गिना है क्योंकि आदिमें इनका जन्म स्त्रियोंके द्वारा नही हुआ। कितने इतिहासलेखकोंका अनुमान है कि ब्राह्मणोंने नास्तिक बौद्ध आदिसे सनातन हिन्दूधर्मको बचाने ही के लिये इन चारजनोंको हिन्दूधर्मकी शिक्षा दे उन्हें अग्निकुलसम्भूत क्षत्रिय कहकर महत्व दिया होगा। जो हो, पर ये चारों वीर प्राचीन भारत निवासी थे, अथवा शाकद्वीप आदि देशान्तरसे भारतमें आये? यह प्रश्न विचारने योग्य है। युरोपीय इतिहासलेखक तो अग्निकुलके क्षत्रियों तथा और और राजपूतोंको शाकद्वीप निवासी सिथियन कहतेही हैं पर खेदका विषय है कि अनेक भारतवर्षीय भी उन्हीकी रीतिपर चलकर भारतके प्राचीन इतिहासको भ्रान्त दृष्टिसे देखा करते हैं। यह बात न तो सम्भव ही है और न युक्तिसङ्गत ही है कि युरोपवालोंकी प्रत्येक कल्पना सत्य वा श्रद्धेय हो फिर उनकी सभी अटकलोंको ऐतिहासिक सत्य मान बैठना अच्छी बात नहीं है। यह भी एक शोकका विषय है कि हिन्दुओंके प्राचीन इतिहासग्रन्थ या तो हैं ही नही अथवा हैं भी तो कविताके रूपक और अत्युक्ति आदि अलङ्कारोंसे ऐसे मिले जुले हैं कि सब किसीके विश्वास योग्य ऐतिहासिक घटना उसमेंसे निकालना अत्यन्त कठिन है। अस्तु, अग्निकुल क्षत्रियोंका शक वा सीथियन होना असम्भव जान पड़ता है। यह मान लेनेपर भी कि ब्राह्मणोंने चार जनोंको हिन्दू धर्मकी दीक्षा देकर अग्निकुलके क्षत्रिय प्रसिद्ध कर दिया हो उनका सीथियन होना आवश्यक नही है। अग्निकुण्डसे उत्पन्न न होकर रमणियोंहीके गर्भसे उत्पन्न सही, इन चार वीरोंका प्राचीन सूर्य वा चन्द्रवंशके क्षत्रिय होना भी असम्भव नहीं है। इसमेंसे प्रत्येक कुलकी दशा ध्यानपूर्वक देखनेसे निःसन्देह ये सब जन्मसे क्षत्रिय ही

हैं और भारतके ही निवासी हैं, ऐसा प्रतीत होता है। यह भी सम्भव नहीं जान पड़ता कि विदेशी सीथियन भारतके साथ इतनी सहानुभूति दिखला सकें कि ब्राह्मणोंके सनातन धर्मको अचल रखनेके लिये बौद्धोंको भारतसे बाहर निकालनेका प्रचंड प्रण ठान बैठें। क्या कभी सम्भव है कि विदेशी अँगरेज़ लोग हिन्दुस्तानके साथ सहानुभूति दिखानेको हिन्दूधर्मके विरोधी अन्यमतोंको हिन्दुस्तानसे निकालनेकी उदारता दिखला सके और ब्राह्मणोंसे प्रतिष्ठा पाकर उनके मतको अक्षुण्ण रखनेके लिये बद्धपरिकर हों। यह कभी सम्भव नहीं है। हिन्दूधर्मके साथ सच्ची सहानुभूति वही करेंगे जिनका उद्भव क्षत्रियोंसे है, फिर चाहे वे महाराष्ट्र कहलाकर दक्षिण देशसे प्रकट हों, अथवा सिख बनकर पश्चिमसे, जैसा पिछले दिनोंके इतिहाससे सिद्ध है। और और बातोंमें चाहे अङ्गरेज़ या अन्य यूरोपियन जाति भारतसे सहानुभूति करे, पर धर्मके सम्बन्धमे विदेशी ऐसी सहानुभूति कदापि नहीं कर सकते, यह अनुभूत और मानी हुई बात है। अतएव हिन्दूधर्मका पुनरुत्थान विदेशी सीथियनोंके द्वारा नहीं किन्तु भारतवर्षीय क्षत्रियोंहीके द्वारा हुआ है। यही समझना उचित होगा।

अग्निकुलके क्षत्रिय यदि सूर्य और चन्द्रवंशहीमें उत्पन्न हों तो उनका सम्बन्ध इन विशाल वंशोंकी किसी न किसी शाखासे मिलना चाहिये। यह अनुमान किया जा सकता है कि बौद्धोंके प्रबल होने तथा ब्राह्मणधर्मके घटनेपर कदाचित् क्षत्रियोंकी दशा बिगड़ गयी हो और उन लोगोंने वर्णाश्रमधर्मकी उपेक्षा कर बिना विचारे जिस किसी वंशकी सुन्दरी कन्याओंसे विवाह करना प्रारम्भ किया हो जिससे राजवंशके लोग शूद्र कहे जाने लगे हों, फिर ब्राह्मणों ने उनकी शूरता और साहस आदि क्षत्रि-

योचित गुण देख अर्बुदगिरिपर लेजाकर विशेष यज्ञ होमादि द्वारा प्रायश्चित कर पीछे उन्हें अग्निकुलसम्भूत उच्च जातिके क्षत्रिय कहकर हिन्दूधर्मसंरक्षणके लिये उत्साह दिलाया हो ब्राह्मणोंसे प्रतिष्ठा तथा निज भुजबलसे अधिकार प्राप्त कर ये क्षत्रियगण इतने प्रभावशाली हो गये हों कि इनके सामने प्राचीन और शुद्ध सूर्य तथा चन्द्रवंशी क्षत्रिय भी दब गये हों।

अग्निकुलवालोंमें प्रथम नाम परमार देखनेमें आता है विचार करने तथा अनुसन्धानसे विदित होता है कि परमारवंश संभवतः सूर्यवंशकी एक शाखा है। परमारवंशकी कमसे कम २५ शाखाएँ हैं जिनमेंसे एक शाखाका नाम मोरी परमार है। ये मोरी लोग मौर्यवंशी राजा चन्द्रगुप्तके वंशज हैं। मगधराज चन्द्रगुप्त यूनानके बादशाह सिकन्दरके प्रायः समकालीन हैं। इनके पिता महापद्मनन्द शिशुनागवंशी राजा थे। पुराणोंमें महा॰ पद्मनन्दको शूद्र कहा है। टाड साहबने अनुमान किया है, कि शिशुनागवंशके लोग पश्चिमकी ओर तक्षस्थानसे आये हैं अतएव तक्षकवंशी (नागवंशी) हैं। भारतमें जो लोग बाहरसे आये हैं उन्हें सदा म्लेच्छ, यवन वा दस्यु, शक, पल्हव आदि नामोंसे प्राचीन ग्रन्थोंमें लिखा है पर वे शूद्र कभी नहीं कहे गये क्योंकि शूद्रलोग वर्णाश्रमधर्मके अनुयायी हिन्दू होते हैं। बाहरसे आनेवाले हिन्दूधर्मके नहीं होते अतएव उनकी गिनती शूद्रोंमें नहीं की जा सकती। क्या अंगरेज़, ईसाई, मुसलमान वा पारसियोंको कभी किसी ब्राह्मणने शूद्र कहकर स्वीकार किया है? यही नहीं, वरन हिन्दूधर्म छोड़नेवाले द्विजाति हिन्दुओंको भी ब्राह्मण लोग शूद्र नहीं कहा करते, उनकी गणना हिन्दुओंमें नहीं करते। जब अपने देशवालोंके साथ इतनी कठोरता है तो विदेशीय सीथियन आदिको लोग क्षत्रिय बना लेंगे, यह कपोल-

कल्पना नितान्त अविश्वास्य है। शूद्र तो भारतवर्षहीमें रहनेवाले नीच वा वर्णसङ्कर लोग कहे जाते हैं। गड़रिया, धोबी, चमार आदि सब हिन्दूधर्म माननेवाले शूद्र और अतिशूद्र कहे जाते हैं। शिशुनागवंशके लोग भारतवर्षहीके अन्तर्गत तक्षशिलासे आये हुए होंगे। अतएव यह जाति तक्षशिलाके तत्कालीन राजवंशसे सम्बन्ध रखनेवाली होगी। तक्षशिलाका राज्य भगवान् रामचन्द्रने अपने प्रियभ्राता भरतके पुत्र तक्षकको सौंप दिया था। इस प्रकार सूर्यवंशी तक्षकका राजवंश तक्षशिलामें राज्य करता था। इस वंशसे और तक्षकके नागवंशसे क्या सम्बन्ध था यह भली भांति विचारने और अधिक अनुसन्धानसे कदाचित् विदित हो सके। शिशुनागवंश सम्भवतः भरतवंशज होनेसे सूर्यवंशी है। इसकी उत्पत्तिका पूरा पूरा इतिहास यदि मिले तो कदाचित् महापद्मनन्दके शूद्र कहे जानेका कारण गुप्त न रहेगा। महापद्मनन्दकी माता शूद्रा थी अतएव उसका शूद्र कहा जाना कुछ अनुचित नहीं है। महापद्मनन्दका पुत्र चन्द्रगुप्त भी मुरा नामकी किसी नाइनके पेटसे हुआ था इसलिये मौर्यवंशवालोंको शूद्र कहना भी असङ्गत नहीं है। मौर्यवंशकी किसी शाखाने दक्षिण-पश्चिमकी ओर हटकर चित्तौरमें अपना राज्य स्थापित किया। भिन्न भिन्न स्थानोंमें भी मोरी या परमारवंशवालोंका राज्य फैल गया और इनकी राजधानियाँ महेश्वर, धारा, मांडू, उज्जैन, चन्द्रभागा, चित्तौर, चन्द्रावती, मऊ, मैदना, परमावती, अमरकोट, लोहुर्वा और पत्तन आदि स्थानोंमें सुननेमें आती हैं। उज्जैनके महाराज विक्रमादित्य राजा शिवप्रसाद सितारेहिन्दके कथनानुसार परमार वंशी हैं। धारा भी परमारवंशी महाराज भोजकी राजधानी थी। चित्तौरमें मोरीवंशकी एक शाखाका राज्य प्रायः विक-

माब्द ७८५तक था। सीसोदिया राजपूतोंके पूर्वपुरुष वाप्पा रावल इसी परमार शाखाके राजा मानके भान्जे लगते थे और उन्हींको विजयकर वाप्पाने मेवाड़के सूर्यकुल राज्यकी जड़ जमायी। अमरकोटके राजपूत भी परमारवंशी हैं। हुमायूं बादबादशाहको जब शेरशाहने दिल्लीके सिंहासनपरसे उतारा था तब कदाचित् परमारवंशी ही राजपूतोंने उन्हें शरण दी थी और इन्हींकी रक्षामें अकबरका जन्म हुआ था। मुसलमान राजाओंकी अत्यन्त श्रीवृद्धिके निमित्तकारण यही राजपूत हैं, सो सबको विदित ही है। और और स्थानोंके परमारवंशी राजपूतोंका कुछ विशेष प्रसिद्ध वा उल्लेखयोग्य विवरण अविदित है पर उन उन स्थानोंका इतिहास खोजनेसे बहुत सी बातें स्पष्ट हो सकती हैं। मोरीसे भिन्न और परमारवंशी शाखाओंका यदि ठीक ठीक पता लगाया जाय तो कदाचित् सबके मूलमें सूर्य वा चन्द्रवंशका सूत्र मिलेगा। कुछ क्षत्रिय लोग जो परमारोंको बहुत उच्च नहीं समझते इसका कारण संभवतः मुरा नामकी नाइनकी सन्तान होना ही हो।

सोलङ्कियोंके विषयमें विचार करनेसे विदित होता है कि ये सूर्यवंशी हैं निःसन्देह ये लोग बड़े शूर, वीर, पराक्रमी और प्रभावशाली थे। कुछ लोग गङ्गाके तटपर मुरु नाम स्थान और लवकोट या लाहौरको उनकी किसी शाखाका निवासस्थान बतलाते हैं। आठवीं शताब्दीमें ये लोग मुलतानके आसपासके देशोंमें रहते थे। बम्बई अहातेमें कल्याण नाम नगर भी बहुत कालतक सोलङ्कियोंकी राजधानी रहा। पीछेसे इन्हीं लोगोंने अन्हलवाड़ा पत्तनके सौरवंशी राजपूतोंको वहांसे हटाकर अपना राज्य स्थापन किया। यहांपर सोलङ्की राजपूत, अलाउद्दीन खिलजीके समयतक राज्य करते सुने

गये हैं। तदनन्तर सोलङ्कियोंका राज्य छिन्नभिन्न हो गया और उनकी बघेला नाम्नी एक शाखाने (रीवां) बघेलखण्ड-पर अधिकार कर लिया। हुमायूं बादशाहकी विपत्तिके समय में बान्धवगढ़के स्वामीने भी उसकी सहायता की थी। सोलङ्की वंशमें सिद्धराय नामके एक राजा हुए जिन्होंने संवत् ११५८ से १२०१तक राज्य किया। उनके एक पुत्रका नाम व्याघ्र-पाल वा बाघराय था। इसी बाघरायके वंशज 'बघेले' कह-लाते हैं। रीवाँके वर्त्तमान राजा बघेल क्षत्रिय हैं और ये अपने-को भगवान् रामचन्द्रजीके छोटे भाई लक्ष्मणजीके वंशमें बताते हैं। इससे सिद्ध होता है कि बघेल क्षत्रिय अथवा सोलङ्की वंशके अग्निकुल क्षत्रिय, लक्ष्मणजीके वंशज हैं अतएव ये राजपूत सूर्यवंश सम्भूत हैं। रीवांके राजा रामानुजकी वैष्णव सम्प्रदायमे हैं और इनकी भक्ति भगवान् रामचन्द्रजीमें होना यथार्थ ही है। इसी भांति यदि सोलङ्कियोंकी और और शाखाके विषयमें ठीक ठीक अनुसन्धान किया जाय तो उन सबके भी सूर्य वा चन्द्रवंशसे सम्बद्ध होनेका पता लगेगा। वाल्मीकीय रामायणमें लिखा है कि लक्ष्मणके पुत्र चन्द्रकेतुको रामने मल्लभूमिका राजा बनाया। कुछ लोग मुल्तानहीको मल्लभूमि कहते और उसे उस मल्लजातिका निवासस्थान बतलाते हैं, जिसने यूनानी वीर सिकन्दरका सामना किया था और अपनी वीरतासे उसे अचरजमें डाल दिया था। फिर क्या मल्लजातिके लोग लक्ष्मणके वंशज थे? हां, इतना तो प्रसिद्ध ही है कि आठवीं शताब्दीमें जो लङ्गहा और तोग्रा नामके क्षत्रिय मुल-तानके पास बसते थे वे सोलङ्की राजपूत थे। इससे भी सिद्ध होता है कि सोलङ्की सूर्यवंशी हैं।

कर्नल टाडके निर्देशानुसार चौहानकुलके आदि पुरुषका

नाम अग्निपाल वा अनल है। इसका राज्यकाल विक्रमाब्दसे ५६३वर्ष पूर्व था और राजधानी महेश्वर वा माहिष्मती थी। चन्द्रवंशकी एक शाखा जो हैहयवंशके नामसे प्रसिद्ध है प्राचीन कालमें नर्मदाके तीर माहिष्मतीमें राज्य करती थी। इस वंशके प्रसिद्ध राजा सहस्रार्जुनको भगवान् परशुरामजीने पितृवैरनिर्यातन करते समय सुरलोकको पठाया था। सहस्रार्जुनके वंशज जो राजा माहिष्मतीमें हुए, युद्धमें अग्निदेव उनकी सहायता करते थे ऐसा महाकवि कालिदासने (६।४२) रघुवंशमें लिखा है। महाभारतके सभापर्वमें भी लिखा है कि जब महाराज युधिष्ठिरने राजसूययज्ञके प्रकरणमें अपने चारों भाइयोंको चारों दिशाओंमें विजयार्थ भेजा तो सहदेवकी सेनाको दक्षिण दिशामें माहिष्मती विजय करते समय अग्निदेव जलाने लगे। सहदेवने स्तुति और पूजाकरके अग्निदेवको सन्तुष्ट किया और अपनी सेनाकी रक्षा की। बहुत संभव है कि अग्निको कुलदेव, पूज्य और सहायक समझकर उस राजाने अपना नाम अग्निपाल वा अनल रक्खा हो जो चौहान कुल का आदिम था। चौहानकुल हैहय वंशियोंकी एक शाखा हो सकती है जिसका कि मूल पुराणोंके प्रमाणपर चन्द्रवंश सिद्ध होता है। माहिष्मतीके पीछे अजमेरमें चौहानोंका अधिकार हुआ और दिल्लीके तोमरवंशी अन्तिम महाराज अनङ्गपालने अजमेरके चौहानकुल भूषण महाराज सोमेश्वरको अपनी कन्या अर्पण की। सोमेश्वरके पुत्र पृथ्वीराज चौहान दिल्लीके अन्तिम हिन्दू राजा थे और इन्हींकी मृत्युपर भारतकी स्वतन्त्रता भी सती हो गयी। चौहानवंशकी भी कोई चौबीस शाखाएं हैं जिनमेंसे बूंदी और कोटाके हाडा क्षत्रियोंकी वीरजाति सविशेष इतिहासप्रसिद्ध है।

खेदका विषय है कि परिहार वंशके क्षत्रियोंका विस्तृत वर्णन नहीं मिल सका जिससे उनका पक्का पता चल सके। जोधपुरमें राठौरोंके राज्यस्थापनके पूर्व मुण्डरमे इन लोगों-का राज्य था और पराक्रमी परिहारवंशी क्षत्रिय नाहरराव का नाम राजपुतानेके इतिहासमें उजागर है। परिहारवंशकी कई एक शाखाएं हैं जिनमेंसे इन्दो और सिन्धिल विशेष प्रसिद्ध हैं। इन्दोवंशके लोग इन्दु वा चन्द्रवंशकी किसी शाखामें हों तो कोई आश्चर्य नहीं है। इस विषयमें कुछ अधिक खोज करनेसे कदाचित कुछ निश्चित तथा सन्तोषप्रद उत्तर मिल सके। आधुनिक युरोपीय इतिहासलेखक परिहारों-को गूजरोंकी शाखा बतलाते हैं। पर यह बात अप्रामाणिक तथा कपोलकल्पित जान पड़ती है। हां, गूजर लोग चाहे शुद्ध क्षत्रिय न हों पर वे शक वा भारतके बाहरके निवासी भी नहीं हो सकते क्योंकि एक तो यदि वे बाहरके हैं तो कहांके निवासी हैं, इसका पता भी नहीं लगता। दूसरे ये जातिके अहीर अर्थात् शूद्र हैं। पुराणोंमें इन लोगोंका नाम कदाचित् 'आभीर' कहके दिया है जिससे सिद्ध है कि ये भी भारतवर्ष-हीके प्राचीन निवासी हैं। टाडसाहबने राजपूतोंके छत्तीस कुलोंकी तालिकामें कदचित् इन्हीं लोगोंको वीर गूजर लिखा है और सूर्यवंशीक्षत्रिय बतलाया है। इसी प्रकार भली भांति विचारनेसे और पता लगानेसे प्रायः क्षत्रियोंके छत्तीसों कुलों-का सम्बन्ध किसी न किसी प्रकार सूर्य वा चन्द्रवंशमें मिलता जायगा। हां, कहीं कहीं जो शूद्र जातिके लोग राज्य करने लगे थे वे भी पीछेसे राजपूतोंमें गिने जाने लगे हैं पर राजपूतोंके बीचमें जातिकी प्रतिष्ठाके भेदसे उनका ठीक ठीक पता लग जाता है। राजपूतोंका सीथियन होना एक ऐसी बात है जिसे

प्रायः आजकलके युरोपीय इतिहासलेखक सिद्ध और सत्य मान बैठे हैं पर उनके मान लेनेहीसे यह बात कदापि प्रामाणिक नहीं हो सकती क्योंकि यह युक्तिविरुद्ध तथा कल्पित है। राजपूतोंके प्रसिद्ध छत्तीस कुलोंमेंसे अग्निकुलवालों तथा गूजरोंको छोड़कर जिनका वर्णन ऊपर हो चुका है शेषमेंसे गुहिल, गुहिलौत, सीसोदिया, कछवाहा, राठौर, चावड़ा या चौर, काठी, बाला, आदि अनेक तो सूर्यवंशकी शाखासे निकले हैं तथा यदुवंशी, भट्टी, नरेजा, तोमर इत्यादि कई एक चन्द्रवंशियोंमेंसे हैं।

ब्राह्मणोंने बौद्धधर्मके घट जानेपर इन्हीं राजपूतोंपर भारतके राज्यशासनका भार सौंपा और राजपूतोंकी सहायतासे फिर प्राचीन वैदिक हिन्दूधर्मने बल पकड़ा। जिस समय भारतवर्षपर मुसलमानोंने चढ़ाई करना प्रारम्भ किया उस समय इन्हीं राजपूतोंने युद्धक्षेत्रमें उनका सामना किया। ये लोग ऐसे वीर और पराक्रमी थे कि सैकड़ों वर्षतक वारंवार मुसलमानोंकी चढ़ाईको रोकते रहे और सदा युद्धक्षेत्रमें उनके दाँत खट्टे करते रहे पर अन्तमें दुर्दैववश मुसल्मानोंकी चतुराईसे जब राजपूत सरदारोंका परस्पर वैमनस्य हो गया तब मुसल्मानोंकी दाल गलने पायी। मुसल्मान विजेताओंने जब देखा कि फूटसे भारतवर्षका शासनसूत्र शिथिल है तो चढ़ाई करके अनायास ही देशको अपने अधिकारमें कर लिया। जब मुसल्मानोंने भारतपर चढ़ाई की उस समय तथा उसके पहिले भी गुजरात, सिन्ध, बुन्देलखण्ड, अजमेर, कश्मीर, कन्नौज, बंगाल, विहार, मालवा, पंजाब, दिल्ली और दक्षिणी भारत आदि स्थानोंमें प्रबल राजपूत जातिका अधिकार था। ये सब शासक कभी कभी परस्पर मिल जुलके रहते और कभी कभी

बेतरह झगड़े पड़ते थे। इन राजपूतशासकोंमेंसे कुछ प्रसिद्ध अधिकारियोंका तथा राजाओंका संक्षेप वर्णन आगेके कई अध्यायोंमें दिया जाता है।

अट्ठाईसवाँ अध्याय

गुजरातका राज्य

गुजरातके दक्षिण पश्चिमी भागमें गूजरोंने अपना राज्य स्थापित किया। पहले तो इनकी राजधानी भिनमाल थी पर पीछेसे इन गूजरोंके एक सर्दारने जिसका नाम दिद्दा था विक्रमाब्द ४८७में भड़ोंचको राजधानी बनाकर वहां गूजरोंका राज्य स्थापित किया। छठी शताब्दीमें चालुक्योंने इस राज्यके कुछ दक्षिणी भागको अपने वशमें कर लिया था। जब कि अरब के तीसरे ख़लीफ़ा उसमानने कुछ समुद्री सेना थाना और भड़ोंचपर चढ़ाई करनेके लिये विक्रमाब्द ६६३में भेजी थी तब वहां इन्हीं गूजरोंका राज्य था। उस चढ़ाईमें मुसलमानोंसे कुछ भी न करते बन पड़ा। गूजरोंने भड़ोंचमें विक्रमाब्द ७६१तक अपना राज्य सँभाल रखा। पर पीछेसे दक्षिणकी ओरसे राष्ट्रकूटोंने गूजरोंके राज्यपर चढ़ाई की। राष्ट्रकूटसर्दार इन्द्रराजने भड़ोंच विजय करके गूजरोंको नष्ट किया। इन्द्रराज और उसकी सन्तानोंने लगभग विक्रमाब्द ८५७तक भड़ोंचमें राज किया।

महाराज सुमित्रके पीछे जान पड़ता है कि सूर्यवंशी राजकुमारोंने कोसल राज्यको छोड़ दिया और पश्चिमकी ओर पंजाबमें चले गये। वहांपर इन लोगोंने अपने पूर्वपुरुष लवके नामसे लवकोट नाम एक दुर्ग बनाया और एक नगर भी बसाया जिसका कि नाम पीछेसे लाहौर पड़ा। इस वंशका एक राजकुमार जिसका कि नाम कनकसेन था विक्रमाब्द २०१में लाहौरको छोड़कर दक्षिणकी ओर चला गया और काठियावार प्रायद्वीपमें "वलभी" नामक नगरको अपनी

राजधानी बनाकर राज्य करने लगा। पहले तो इन राजकुमारोंका कुछ विशेष प्रताप सुननेमें नहीं आया पर पीछेसे विक्रमाब्द ५५२में सेनापति भट्टार्कने स्वतन्त्र हो अपना प्रबल राज्य स्थापित किया। पहले तो इन राजपूतोंने कुछ समयतक हूण राजा तोरमान और मिहिरकुलकी अधीनता स्वीकार की होगी पर विक्रमाब्द ५८५में कोहरूर युद्धके पीछे स्वतन्त्र हो गये होंगे। हर्षवर्द्धनके समयमें वलभीका राज्य कन्नौजके अधीन था और यहांका राजा ध्रुवभट्ट हर्षवर्द्धनका जामाता लगता था। इस समयमें चीनी यात्री ह्वान्त्साङ्ग भी वलभीमें घूमने आया था। वह लिखता है कि वल भी एक घना और बड़ा नगर था जहां कि बौद्धधर्मके अनेक आचार्य और विद्यार्थी रहते थे। हर्षवर्द्धनके पीछे फिर वलभीके राजपूत स्वतन्त्र हो गये। यद्यपि ये लोग ब्राह्मण धर्मके अनुयायी थे तथापि बौद्धमतसे द्वेष न रखते थे। यह वलभी नगर काठियावार प्रायद्वीपकी पूर्व ओर और भाऊनगरसे बीस मीलपर उत्तरपश्चिमकी ओर था। यहींके राजा धरसेनका आश्रित भट्टिकवि था जिसने भट्टिकाव्यमें रामचरित वर्णन किया और संस्कृत व्याकरणके प्रयोगोंका संग्रह काव्य रूपमें किया। वलभीके अन्तिम राजपूत राजा शीलादित्य छठवेंको विक्रमाब्द ८२३में म्लेच्छोंने चढ़ाई करके युद्धक्षेत्रमें मार डाला और उस राजवंशका प्रायः विनाश कर दिया। शीलादित्यकी रानी पुष्पवती परमारकुलकी कन्या इस समय गर्भिणी थी और दैवात् अपने नैहरमें थी। जब उसने वलभीके विनाशका समाचार सुना तो अपने नवप्रसूत बालकको एक ब्राह्मणीके हाथ सौंप चिताग्निमें जल गयी। यही राजकुमार चित्तौड़के सीसोदिया राजपूतवंशका प्रवर्त्तक हुआ।

शिलालेखोंके देखनेसे पता लगता है कि जिस समय वलभीमें सूर्यवंशी राजपूत राज्य करते थे उसीके बीचमें अर्थात् विक्रमाब्द ७००से ७६६के बीचमें चालुक्य वंशियोंकी तीन भिन्न भिन्न शाखाओंने गुजरातके पूर्वी भागमें कहीं कहींपर राज्य किया। इन राज्योंकी ठीक ठीक सीमाका पता नहीं लगता पर यह संभव जान पड़ता है कि दक्षिण चालुक्य सर्दारोंमेंसे किसी किसीने गुजरातमें कुछ समयतक राज्य किया होगा। विक्रमाब्द ७६६ के पीछेके इनके कोई शिलालेख नहीं मिलते, और इनका राज्य कैसे नष्ट हुआ सो विदित नहीं है।

जूनागढ़में गिरिनार पर्वतके आसपास चूडाशम नामक राजपूतोंकी शाखाने विक्रमाब्द ६५७से लेकर विक्रमाब्द १४८६ तक राज्य किया। अन्तमें विक्रमाब्द १४८६में मुसल्मानोंने इस राज्यका विनाश किया और गिरनारके आसपास निज राज्य फैलाया। जब विक्रमाब्द १०८१में महमूद ग़ज़नवी सोमनाथके प्रसिद्ध मन्दिरको लूटने गया था इसी वंशके किसी राजाने युद्धमें उसका सामना किया था।

विक्रमाब्द ८०३में अन्हलवाड़ापत्तनको अपनी राजधानी बनाकर वनराजाने सौर वा चापोत्कट राजपूतोंके राज्यकी जड़ जमायी। ये लोग प्राचीन कालसे सौराष्ट्र वा काठियावार प्रायद्वीपमें रहते थे, ऐसा प्रसिद्ध है, और सौराष्ट्र नाम भी इन्हींके कारण पड़ा होगा। ये लोग सूर्यकी पूजा करते थे, अतएव सम्भव है कि ये सूर्यवंशी हों। पहले ये लोग समुद्र तटपर देवबन्दरमें रहते थे और सोमनाथका प्रसिद्ध मन्दिर इन्हीं लोगोंका बनवाया हुआ था। इनके उच्च जातिके क्षत्रिय होनेका एक बड़ा प्रमाण यह भी है कि वलभीके प्रसिद्ध सूर्यवंशी राजाओंके साथ इन लोगोंका वैवाहिक सम्बन्ध सुननेमें

आता है। सौरवंशके राजपूतोंने लगभग १६४ वर्षतक अन्हल-वाड़ापत्तन नामक राजधानीमें शासन किया। अन्तिम राजा भोजराज निःसन्तान था। उसकी कन्याका पाणिग्रहण कल्याणके निवासी जयसिंह सोलङ्कीने किया था। उसका पुत्र मूलराज सोलङ्की बड़ा उत्साही और पराक्रमी था। भोजराजके साथ ही सौरवंशके राज्यकी समाप्ति जानना चाहिये। क्योंकि उसकी मृत्यु जब विक्रमाब्द ६६८में हुई तो चालुक्यराज मूलराजने अन्हलवाड़ापत्तनको अपनी राजधानी बनाकर वहां चालुक्यवंशका राज्य स्थापित किया। चापोत्कटवशके राजपूतोंका राज्य इसके पीछे फिर सुननेमें नहीं आता।

चालुक्य वा सोलङ्कीवंशके राजपूतोंने बड़े प्रताप और रोबदाबके साथ अन्हलवाड़ापत्तनमें साढ़ेतीन सौ वर्षसे भी अधिक कालतक राज्य किया। जैनाचार्य हेमचन्द्र इन चालुक्य राजाओंकी राजसभामें उपस्थित थे और उन्होंने निजरचित ग्रन्थमें इन राजाओंका वर्णन भी किया है। हेमचन्द्रने मूल-राजको महाराजाधिराज कहा है। जब महमूद ग़ज़नवीने सोमनाथका मन्दिर लूटा तब इसवंशका राजा भीम चालुक्य काठियावार प्रायद्वीपमें राज्य करता था। इसी वंशके एक राजकुमार धवलने विक्रमाब्द ११६७में ढोलकामे एक नयी राजधानी नियत करके गुजरातमें चालुक्यवंशका एक नवीन राज्य स्थापित किया। इस वंशमें कुमारपाल नाम एक प्रतापी राजा हुआ है जिसके वर्णनमें संस्कृतमें कुमारपाल-चरित नाम ग्रन्थ लिखा गया है। इसी कुमारपालके राज्य-कालमें मुसल्मान सर्दार शहाबुद्दीन मुहम्मद-ग़ोरीने गुजरात पर चढ़ाई की थी। पर इस वीर राजाने अपने बाहुबलसे रण-

क्षेत्रमें दुष्ट मुसल्मानोंके दाँत खट्टे कर दिये। चढ़ाई करनेवाले मुसल्मान सर्दारको पराजित हो गुजरातविजयसे निराश होना पड़ा था। शहाबुद्दीन मुहम्मद-गोरीके सेनापति कुतबुद्दीन ऐबकने भी उत्तरी भारतके विजयकी उमङ्गमें ढोल्कापर चढ़ाई की थी। ढोल्काके राजकुमार लवणप्रसादने यहां भी मुसल्मानोंको हरा कर भगा दिया। मुसल्मान सर्दार जो उत्तरी भारतको इस समयपर विजय कर पाये इसका यह कारण नहीं था कि वे बड़े पराक्रमी थे और राजपूत दुर्बल थे। सच तो यह है कि उत्तरी भारतके राजपूतोंमें परस्पर फूट थी और ऐसे अवसरपर चतुर मुसल्मानोंकी बन पड़ी। मुसल्मानोंने एककी सहायतासे दूसरेका विनाश किया और सो भी युद्धक्षेत्रमें अनेक मुसल्मान वीरोंको कटवाकर तब वे विजय पा सके। दक्षिणी भारतवर्षमें दैवसंयोगसे अभी परस्पर वैर नहीं था और उनकी वीरता भी अक्षत थी जिससे शीघ्र मुसल्मानोंका अधिकार वहां होने न पाया। अन्हलवाड़ापत्तनको अन्तमें अलाउद्दीन खिलजीने चढ़ाई करके विक्रमाब्द १३५५में नष्ट किया और चालुक्यलोग वहांसे हटके बघेलखण्ड रीवांमें चले आये।

उन्तीसवाँ अध्याय

सिन्धका राज्य

चीनी यात्री ह्वन्त्साङ्गके वर्णनसे विदित होता है कि सिन्धमें एक नये राजपूतवंशका राज्य संवत् ५५७से प्रारम्भ हुआ। ये लोग जातिके शूद्र और धर्ममें बौद्ध थे। राज्य स्थापन करनेवाले वंशके आदिम पुरुषका नाम दीवाजी था। इस वंशके पाँच राजाओंने संवत् ६८८तक सिन्धमें राज्य किया। शिकारपुरके ज़िलेमें आजकल जो अलोर नामक प्राचीन स्थान देख पड़ता है वही इन राजाओंकी राजधानी थी। अरबवालोंने चढ़ाई करके कई बार इस राजवंशको पीड़ा पहुँचायी और दो बार युद्धक्षेत्रमें राजाओंको मार भी डाला। संवत् ६८८में चाच नामक एक जनने दीवाजीके उत्तराधिकारियोंको हटाकर सिन्धपर अपना अधिकार जमाया। यह एक प्रबल राजा था। इसके समयमें अरबके लोगोंने सिन्ध विजय करनेका साहस नहीं किया। चाचने ४० वर्षतक राज्य किया। उसके पोते दाहिरने अरबवाले मुसल्मानोंसे मेल कर लिया और उनकी सहायतासे कश्मीर राजकी उस सेनाको हटा दिया जो सिन्धपर चढ़ाई करने आयी थी। पर मुसल्मानोंकी मित्रताका फल दाहिरको यह मिला कि कई बार अरबवालोंने सिन्धपर चढ़ाई की। दाहिरने उनके रोकनेका पूरा प्रयत्न किया और दो बार युद्धक्षेत्रमें उन्हें भली भांति हरा भी दिया। अन्तमें जब तीसरी बार अरबवालोंने धावा किया तो दाहिरकी बहुत सी प्रजा मुसल्मानोंसे मिल गयी। इस लड़ाईमें राजा दाहिर मृत्युको प्राप्त हुआ। दाहिरकी रानीने फिर

भी बहुत दिनोंतक मुसल्मानोंका सामना किया पर अन्तमें मुसलमान सर्दार मुहम्मद-बिन-कासिमने सिन्धको जीत ही लिया और फिर मुलतानको जा दबाया। लोग कहते हैं कि जब मुहम्मद बिन-कासिमने सिन्ध विजय किया तो दो परम-सुन्दरी युवती राजकुमारियोंको पकड़कर उसने अरबके खलीफाके पास भेंटरूपसे भेज दिया। इन दोनों चतुर राज कुमारियोंने अपने पिताकी मृत्युका बदला कासिमसे लेना चाहा, जब वे खलीफाके पास पहुँचीं और खलीफाने उन्हें सह-वासके लिये विवश किया तो उन्होंने कहा कि हम तुम्हारे योग्य नहीं रहीं। मुहम्मद बिन कासिमने पहले पहले स्वयं हमें भ्रष्ट करके तब पीछे यहां भेजा है। खलीफ़ाने क्रोधान्ध हो कासिमको बैलकी खालमें सिलवाकर मरवा डाला। अस्तु सिन्धमें अरबवालोंका अधिकार अधिक दिनतक न रह सका। संवत् ६०७वि०में सिन्धके हिन्दुओंने वहांसे मुसल्मानोंको निकाल बाहर किया और फिर वहां एक बार हिन्दुओंका राज्य स्थापित किया।

तीसवाँ अध्याय

बुँदेलखण्ड

बुंदेलखण्डमें चँदेल राजपूतोंने नवीं शताब्दीमें अपना राज्य स्थापित किया। चँदेल राजपूत चन्द्रवंशी क्षत्रिय हैं और यदुवंशियोंकी उस शाखामें उत्पन्न हैं जिनमें चेदि या चँदेरीका राजा शिशुपाल था। चँदेलोंने महोबा और कालिञ्जर-पर अपना अधिकार जमाया। इनके राज्यकी सीमा उत्तरमें यमुना नदीसे लेकर दक्षिणमें नर्मदातक और पश्चिममें ग्वालि-यरसे लेकर पूर्वमें चित्तौड़तक थी। चँदेलोंका प्रथम प्रसिद्ध राजा यशोवर्मा है जो कन्नौजके राजा देवपालका समकालीन था। यशोवर्माने देवपालसे विष्णुकी एक मूर्त्ति बलात् छीन ली थी। इसी वंशके प्रसिद्ध राजा धांगा चँदेलने पंजाबके जयपालको सुबुकतगींसे लड़नेमें सहायता दी थी। जब कन्नौजके राजा राज्यपालने ग़ज़नीके प्रसिद्ध लुटेरे महमूद ग़ज़नवीसे सन्धि कर ली, तब धांगाके पुत्र गण्डा चँदेलने रुष्ट होकर राज्यपालका वध कर डाला था। इसी चँदेल वंशमें महाराज कीर्त्तिवर्मा हुए जिनकी राजसभामें प्रबोधचन्द्रोदय नाम नाटकके कर्ता कृष्णमिश्र थे। परमर्दिदेव (परमाल) चँदेल वही है जिसके यहाँ आल्हा, ऊदल और मलखान आदि प्रसिद्ध वीर थे और जिनके पराक्रमका वर्णन आल्हाखण्डमें आजतक जहाँतहाँ सुन पड़ता है। परमाल चँदेलसे और पृथ्वीराज चौहानसे संवत् १२३६में युद्ध हुआ था जिसमें चौहानोंने चँदेलोंको पराजित करके दुर्बल कर दिया था। यद्यपि कुतुबुद्दीनने चँदेलोंको संवत् १२५०में हराकर महोबे-को जीत लिया था तथापि वहाँ मुसलमानोंका राज्य स्था-

पित न हो सका और चँदेल फिर प्रबल होकर राज्य करने लगे। चँदेलोंका राज्य बुन्देलखण्डमें संवत् १६०२तक प्रबल बना रहा। अन्तमें अफ़ग़ान शेरशाहने कालिञ्जरका गढ़ संवत् १६०२में ले लिया और चँदेलवंशका प्रताप नष्ट हो गया। गढ़ामण्डलाके गोंड राजाओंकी प्रसिद्ध वीर रानी दुर्गावती चँदेलवंशके अन्तिम राजा कीर्त्तिशाहहीकी कन्या थी जिसकी वीरता आजतक संसारभरमें प्रसिद्ध है।

चँदेलोंकी बढ़तीके साथ प्रायः उन्हींके समकक्ष चेदिके कलचुरिलोग भी हैं। ये कलचुरि प्राचीन हैहय वंशकी सन्तानोंमेंसे हैं। हैहयवंशी राजपूत चन्द्रवंशी हैं और प्रसिद्ध महाराज ययातिके पुत्र यदुकी उस शाखामें हैं जिसमें परशुरामजीका वैरी सहस्रार्जुन था। सहस्रार्जुनकी राजधानी माहिष्मतीपुरी नर्मदाके किनारे थी और इन्हींके वंशज हैहयों और तालजङ्घ नाम क्षत्रियोंने सूर्यवंशी राजा सगरके पिताको मार डाला था। अन्तमें सगरने युद्धमें इन लोगोंको विजय किया। महाराज युधिष्ठिरने जब राजसूय यज्ञ किया था तब

लेकर सं० १०६७ तक राज्य किया। वह मध्य और उत्तरी भारतमे एक चक्रवर्त्ती राजाकी नाईं राज्य करता था। उसकी राजधानी त्रिपुरा थी जो आजकल जबलपुरके पास तेउरके नामसे प्रसिद्ध एक बस्ती है। गाङ्गेयदेवके पुत्र कर्णदेवने लगभग संवत् १०६७से ११२७तक राज्य किया और गुजरातके राजा भीम चालुक्यके साथ मिलकर संवत् १११७के लगभग मालवेके परमार राजा भोजको पराजित किया था। कीर्त्तिवर्मा चँदेलके साथ भी एक बार इस कर्णदेवने युद्ध किया था पर विजय न कर सका क्योंकि चँदेल वीर उससे कुछ दुर्बल नहीं था। चेदिके कलचुरियोंने त्रिपुरा राजधानीमें संवत् ५५७से १२३७-तक बड़े रोबदाबके साथ राज्य किया और इस विशाल वंशमेंसे दो शाखाएँ और फूटीं जिनमेंसे एक तो पूर्वमें रत्नपुरको अपनी राजधानी बनाकर रत्नपुरके कलचुरियाके नामसे प्रसिद्ध हुई और उसने लगभग १०० वर्ष अर्थात् संवत् ११५७ से १२५७तक राज्य किया। दूसरी शाखा दक्षिणकी ओर जाकर कल्याणके कलचुरिके नामसे प्रसिद्ध हुई। दक्षिणी भारतके इतिहासमें उसका वर्णन किया जायगा।

पित न हो सका और चँदेल फिर प्रबल होकर राज्य करने लगे। चँदेलोंका राज्य बुन्देलखण्डमें संवत् १६०२तक प्रबल बना रहा। अन्तमें अफ़ग़ान शेरशाहने कालिञ्जरका गढ़ संवत् १६०२में ले लिया और चँदेलवंशका प्रताप नष्ट हो गया। गढ़ामण्डलाके गोंड राजाओंकी प्रसिद्ध वीर रानी दुर्गावती चँदेलवंशके अन्तिम राजा कीर्त्तिशाहहीकी कन्या थी जिसकी वीरता आजतक संसारभरमें प्रसिद्ध है।

चँदेलोंकी बढ़तीके साथ प्रायः उन्हींके समकक्ष चेदिके कलचुरिलोग भी हैं। ये कलचुरि प्राचीन हैहय वंशकी सन्तानोंमेंसे हैं। हैहयवंशी राजपूत चन्द्रवंशी हैं और प्रसिद्ध महाराज ययातिके पुत्र यदुकी उस शाखामें हैं जिसमें परशुरामजीका वैरी सहस्रार्जुन था। सहस्रार्जुनकी राजधानी माहिष्मतीपुरी नर्मदाके किनारे थी और इन्हींके वंशज हैहयों और तालजङ्घ नाम क्षत्रियोंने सूर्यवंशी राजा सगरके पिताको मार डाला था। अन्तमें सगरने युद्धमें इन लोगोंको विजय किया। महाराज युधिष्ठिरने जब राजसूय यज्ञ किया था तब भी माहिष्मतीका राजा हैहयवंशी नील था। चँदेल और हैहयवंशी दोनों यदुके सन्तान और प्रायः निकटवर्त्ती देशोंके अधिकारी थे। अतएव बहुधा इनलोगोंमें परस्पर सन्धिविग्रह हुआ करते थे। राजपूतोंके राज्यकालमें यही हैहयवंशीलोग चेदिके कलचुरिके नामसे प्रसिद्ध हुए। चेदि वा कलचुरि नामका एक संवत् जिसे त्रैकूटक भी कहते हैं। यह संवत् ३०७ से प्रारम्भ होता है और इसी समयसे चेदिके कलचुरियोंका उत्थान या उदय समझना चाहिये।

चँदेलवंशी गण्डाका समकालीन गाङ्गेयदेव कलचुरि इस वंशका एक प्रसिद्ध राजा है जिसने लगभग संवत् १०७२से

लेकर सं० १०६७ तक राज्य किया। वह मध्य और उत्तरी भारतमें एक चक्रवर्ती राजाकी नाईं राज्य करता था। उसकी राजधानी त्रिपुरा थी जो आजकल जबलपुरके पास तेउरके नामसे प्रसिद्ध एक बस्ती है। गाङ्गेयदेवके पुत्र कर्णदेवने लगभग संवत् १०६७से ११२७तक राज्य किया और गुजरातके राजा भीम चालुक्यके साथ मिलकर संवत् १११७के लगभग मालवेके परमार राजा भोजको पराजित किया था। कीर्त्तिवर्मा चँदेलके साथ भी एक बार इस कर्णदेवने युद्ध किया था पर विजय न कर सका क्योंकि चँदेल वीर उससे कुछ दुर्बल नही था। चेदिके कलचुरियोंने त्रिपुरा राजधानीमें संवत् ५५७से १२३७-तक बड़े रोबदाबके साथ राज्य किया और इस विशाल वंशमेंसे दो शाखाएँ और फूटीं जिनमेंसे एक तो पूर्वमें रत्नपुरको अपनी राजधानी बनाकर रत्नपुरके कलचुरियाके नामसे प्रसिद्ध हुई और उसने लगभग १०० वर्ष अर्थात् संवत् ११५७ से १२५७तक राज्य किया। दूसरी शाखा दक्षिणकी ओर जाकर कल्याणके कलचुरिके नामसे प्रसिद्ध हुई। दक्षिणी भारतके इतिहासमें उसका वर्णन किया जायगा।

इकतीसवाँ अध्याय

अजमेर

अजमेरमें चौहान राजपूतोंने बहुत दिनतक बड़े प्रतापके साथ राज्य किया। चौहान कुलके क्षत्रिय संभवतः चन्द्रवंशी हैहयोंहीकी एक शाखामेंसे होंगे। इसी कारण वे चेदिके कलचुरियोंके समीपी बन्धु रहे होंगे। चौहानोंकी प्राचीन वस्ती "मकावती" नगरी थी। जो आजकल गढ़ामण्डलाके नामसे प्रसिद्ध है और चेदिके कलचुरियोंकी राजधानी त्रिपुराके बहुतही निकट स्थित है। जान पड़ता है कि शक्ति प्राप्त करके चौहानोंने प्राचीन कालमें ठट्ठा, मुलतान, पेशावर, लाहौर आदि स्थानोंको भी विजय कर लिया था। चौहान वंशके प्रतिष्ठाता अग्निपाल वा अनलने अत्यन्त ही शीघ्र ऐसी प्रतिष्ठा प्राप्त की कि भिन्न भिन्न स्थानोंके दुर्बल राजा शीघ्र इनके अधीन होने लगे। अनलका प्रादुर्भाव विक्रमाब्दसे प्रायः ६४३ वर्षपूर्व सुननेमें आता है। अनल निःसन्तान थे इस कारण उन्होंने पृथ्वीपहाड़ नाम एक कुमारको गोद लिया। इसी कुमारके वंशमें अजमेरपर अधिकार करनेवाले राजपूतकुलका जन्म हुआ। कहते हैं कि माणिक्यराय चौहान संवत् ७४२मे अजमेरके सिंहासनपर बैठे। इसी समयके लगभग अरबके मुसल्मानोंकी क्रूर दृष्टि भारतपर पड़ने लगी। यह कथा प्रसिद्ध है कि कोई मुसल्मान जिसका नाम रोशनअली था धर्मप्रचारके बहाने अजमेरमें आया। उसने राजाके भोज्य पदार्थोंके बीच किसी दधिपात्रमें अपनी अँगुली डुबो दी। राजाज्ञासे उसकी वह अँगुली कटवा ली गयी। जब यह समाचार अरबमें पहुँचा तो वहांके खलीफाने क्रुद्ध होकर अपने एक

सेनापतिको प्रबल दलके साथ अजमेरके राजासे बदला चुकानेके लिये भेजा। यह दल भारतवर्षमें घुसने न पाया था कि सिन्धके राजपूतोंने संग्रामभूमिमें मुसलमानोंके सेनापतिको मारकर नरकपुरीको भेज दिया। जब मुसल्मान लोग प्रतीकारमें शक्तिद्वारा असमर्थ रहे तो उन लोगोंने छल और चतुराईसे काम लिया। कुछ अश्वारोही सैनिक व्यापारियोंके वेषमें बिना रोकटोक अजमेरतक आ पहुंचे और राजपूतोंको असावधान पा उन लोगोंने राजगढ़पर धावा किया। माणिक्यरायके भाई दोलाराय इस युद्धमें वीरगतिको प्राप्त हुए और उनका एक पुत्र भी जो उस समय अटारीपर खेल रहा था मुसल्मानोंके शस्त्रप्रहारसे स्वर्ग सिधारा। कुछ काल तो मुसल्मानोंके पैर जमे रहे पर शीघ्रही माणिक्यरायने सेनाकी सहायतासे मुसल्मानोंको गढ़से निकाल बाहर किया।

माणिक्यरायकी सन्तानोंमें उनके पीछे हर्षराज एक प्रसिद्ध राजकुमार हुए। ये माणिक्यरायसे ग्यारहवीं पीढ़ीमें थे। इनने संवत् ८१२से ८२७तक अजमेरमें राज्य किया और आबू तथा अरावली पहाड़से लेकर चम्बल नदीतक अपना राज्य फैलाया। हर्षराजके पीछे उनके पुत्र कुजगनदेवको राजगद्दी मिली। ये भी परम प्रतापी और पराक्रमी थे। हर्षराज और कुजगनदेवने कई बार युद्धक्षेत्रमें उन मुसल्मान सर्दारोंको पराजित किया जो भारतपर चढ़ाई करते थे। हर्षराजको मुसल्मानोंपर विजय प्राप्त करनेसे अरिमर्दनकी उपाधि मिली थी। कुजगनदेवकी उपाधि 'सुलतानग्रह' पड़ी क्योंकि उन्होंने न केवल मुसलमानोंको पराजित ही किया वरन् उनके सर्दार (महमूद गजनवीके पिता सुबुक्तगीन) नाज़िरुद्दीनको बन्दी भी कर लिया था और जैसे प्राचीन कालमें माहि-

ष्मतीके राजा सहस्रार्जुनने लंकेश्वरको बन्दी करके पीछे दया करके छोड़ दिया था वैसेही कुजगनदेवने भी दया करके मुसल्मान सर्दारको छोड़ दिया। कुजगनदेवके पीछे अजमेरके चौहानवंशमें वीर वीलनदेव प्रसिद्ध राजा हुआ। कहते हैं कि महमूद ग़ज़नवीने जब अजमेरपर चढ़ाई की थी तो इसीने सामना करके उसे अजमेरसे मार भगाया। भागते हुए सिन्ध-की मरुस्थलीमें उसकी सेनाने गर्मी और प्यासके कारण बड़ी विपत्ति झेली। महमूद ग़ज़नवीहीकी किसी दूसरी चढ़ाईमें वीर वीलनदेवने युद्धक्षेत्रमें अपना प्राणत्याग किया पर मुसल्मानोंको विजयी न होने दिया। युद्धस्थलमें प्रसिद्ध राजपूत सर्दारोंने वीर वीलनदेवका साथ दिया था।

कुछ लोग अजमेरका राज्य स्थापित करनेवालेका नाम सामन्तराय बतलाते हैं और उसे छठी शताब्दीका पुरुष बताते हैं। अजमेरगढ़ बनवानेवालेका नाम इन लोगोंने अजय लिया है। पिछले चौहानोंमें वीसलदेव वा विग्रहराज अपनी वीरता, पराक्रम और प्रतापके लिये प्रसिद्ध है। इसने संवत् १२०८ में दिल्लीके तोमरराजा अनङ्गपाल दूसरेको युद्धमें पराजित किया। अनङ्गपालने अपनी कन्या रुकाबाई वीसलदेवके भाई सोमेश्वरको ब्याह दी। अनङ्गपाल निःसन्तान था अतएव उसने सोमेश्वरके पुत्र पृथ्वीराजको जो उसका नाती था गोद लिया। पृथ्वीराज संवत् १२२७में दिल्ली तथा अजमेर दोनों स्थानोंका राजा हुआ।

बत्तीसवां अध्याय

इन्द्रप्रस्थ वा दिल्ली

विक्रमादित्यने कमाऊंके राजा सुखवन्तसे दिल्लीको छीन तो लिया था पर उसे अपनी राजधानी नहीं बनाया, अतएव दिल्ली बहुत दिनतक उजाड़ पड़ी रही। पीछेसे संवत् ७९३के लगभग तोमरवंशके एक राजकुमारने जिसका नाम अनङ्गपाल था फिरसे दिल्लीको बसाकर उसे आपही राजधानी बनाया। तोमरवंशके राजा लोगोंको महाकवि चन्दवरदाईने पाण्डवोंके वंशमें उत्पन्न बतलाया है इससे ये लोग भी चन्द्रवंशी प्रतिष्ठित कुलके क्षत्रिय हैं। राजा अनङ्गपाल बड़े प्रतापी थे और उन्होंने एक लोहेका बहुत बड़ा खम्भा (कीली) अपनी राजधानीमें गड़वा दिया था। यह उनकी कीर्त्तिका ज्वलन्त उदाहरण कुतुबकी लाटके पास अबतक वर्त्तमान है। अनङ्गपालके वंश वालोंने १९ पीढ़ीतक दिल्ली राजधानीमें रहकर शासन किया। अन्तिम राजा वही अनङ्गपाल दूसरे हैं जिन्होंने अजमेरके विग्रहराजसे युद्धमें हार पायी और निःसन्तान होनेसे अपने नाती पृथ्वीराज चौहानको गोद लेकर उसे दिल्लीका राज्य सौंप गये।

अनङ्गपालके दो कन्या थीं, जिनमेंसे जेठी तो कन्नौजके राजा विजयचन्द्रको ब्याही थी, और उसका पुत्र जयचन्द्र कन्नौजके सिंहासनपर विराजमान था। छोटी बेटी वही रुका-बाई है जो अजमेरके राजा विग्रहराजके छोटे भाई सोमेश्वरको ब्याही थी और जिसका पुत्र पृथ्वीराज चौहान था। कन्नौजके जयचन्द्रको यह आशा थी कि राजा अनङ्गपाल जेठी कन्याका

की द्वेषाग्नि अब और भी अधिक वेगसे धधक उठी। जब उसने देखा कि पृथ्वीराजको विजय करना सहज नहीं है तो उसने लाहौरके तत्कालीन मुसलमान सूबेदार शहाबुद्दीन मुहम्मदगोरीको दिल्लीपर चढ़ाई करनेके लिये उभारा। मुसलमान लोग ऐसा सुअवसर ढूंढ ही रहे थे पर पृथ्वीराज चौहानकी शक्ति और प्रतापका विचार करके प्रारम्भमें उनका साहस न पड़ा। पृथ्वीराजको भी यह बात विदित हो गयी थी कि जयचन्द्र मुसलमानोंकी सहायतासे उसे नष्ट किया चाहता है पर उसने अपने पराक्रमके घमण्डमें इस ओर ध्यान न दिया।

मौका पाकर मुसलमानोंने एक विशाल सेना लेकर संवत् १२४८में दिल्लीपर चढ़ाई कर दी। थानेश्वरके मैदानमें, एक ओरसे हरहरकी ध्वनि करते शङ्ख बजाते राजपूत और दूसरी ओरसे अल्ला अल्ला और दीन दीन करके चिल्लानेवाले मुसलमान परस्पर भिड़ गये। देखते देखते राजपूतोंकी वीरताके सामने मुसलमानोंके होश उड़ गये। पृथ्वीराजकी ओरसे राजा गोविन्दरायने मुसलमान सर्दार मुहम्मद गोरीका सामना किया। मुहम्मदके प्रहारसे राजाके दो दांत टूट गये पर राजाने भी ऐसा कसके एक भाला जमाया कि मुहम्मद मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ा। राजा युद्धकी नीत्यनुसार उसे पुनः सांस आनेपर प्रहार करनेकी बाट जोहता रह गया। मुसलमान लोग अपने सेनापतिको घायल देखके झटपट उसे युद्धक्षेत्रसे उठा ले गये। मुसलमान सर्दार जब होशमें आया तो लड़ाईके मैदानको छोड़ लाहौरको भाग गया। उस दिन हिन्दुओंकी ही जीत रही। दो वर्षतक मुसलमानोंने फिर दिल्लीमें अपना मुँह न दिखलाया।

दो वर्ष पीछे मुसलमानोंको फिर समाचार मिला कि पृथ्वी-

पुत्र होनेसे उसीको गोद लेकर दिल्लीका सिंहासन अर्पण करेगा पर जब उसने देखा कि दिल्लीका राज्य पृथ्वीराज चौहानको मिल गया तो उसे अपने मौसेरे भाईके भाग्योदय-पर ईर्ष्या उत्पन्न हुई।

जयचन्द्र इस समय उत्तरी भारतमें परम प्रतापी और प्रतिष्ठित राजा गिना जाता था। उसने चाहा कि किसी प्रकार-पृथ्वीराजका अनादर किया जाय। उसने एक राजसूय यज्ञ ठाना और अपनी पोष्यपुत्री (?) संयुक्ताका स्वयंवर भी इसी अवसरपर रचा। जयचन्द्रने भारतवर्षके सभी बड़े बड़े राजाओंको अपनी सभामें उपस्थित होनेके लिये निमन्त्रण भेजा। पृथ्वीराज चौहानने निमन्त्रण स्वीकार नहीं किया। जयचन्द्रने इस बातपर अप्रसन्न हो पृथ्वीराजकी एक सोनेकी मूर्त्ति बनवाकर द्वारपालके स्थानपर खड़ी कर दी और यज्ञ और स्वयंवरके कार्य सम्पादनमें तत्पर हुआ।

पृथ्वीराज बड़ा वीर और अभिमानी था। राजकुमारी संयुक्ता उसके गुणोंका बखान सुनकर उसपर मुग्ध हो गयी थी और पृथ्वीराजसे गुप्त प्रेम भी रखती थी। स्वयंवरके अवसरमें राज्यकन्या जयमाल लेकर रङ्गभूमिमें आयी उसने सब राजाओंको ध्यानपूर्वक देखा और अन्तमें पृथ्वीराजकी स्वर्णमूर्त्तिके गलेमें जयमाल डाल दी। इस अवसरपर वहां पृथ्वीराज स्वयं आ पहुँचे और उस राजकन्याको अपने घोड़ेपर बिठा अपनी राजधानी दिल्लीकी ओर चल दिये। जयचन्द्र और उसके साथियोंने पृथ्वीराजका पीछा किया। दोनों दलोंमें घोर संग्राम हुआ, बहुतसे वीर मारे गये पर जयचन्द्रको विजय प्राप्त न हुई। पृथ्वीराज राजकन्या संयुक्ता सहित अक्षत शरीर अपनी राजधानीमें पहुँच गया। जयचन्द्र-

की द्वेषाग्नि अब और भी अधिक वेगसे धधक उठी। जब उसने देखा कि पृथ्वीराजको विजय करना सहज नहीं है तो उसने लाहौरके तत्कालीन मुसलमान सूबेदार शहाबुद्दीन मुहम्मदग़ोरीको दिल्लीपर चढ़ाई करनेके लिये उभारा। मुसलमान लोग ऐसा सुअवसर ढूंढ ही रहे थे पर पृथ्वीराज चौहानकी शक्ति और प्रतापका विचार करके प्रारम्भमें उनका साहस न पड़ा। पृथ्वीराजको भी यह बात विदित हो गयी थी कि जयचन्द्र मुसलमानोंकी सहायतासे उसे नष्ट किया चाहता है पर उसने अपने पराक्रमके घमण्डमें इस ओर ध्यान न दिया।

मौका पाकर मुसलमानोंने एक विशाल सेना लेकर संवत् १२४८में दिल्लीपर चढ़ाई कर दी। थानेश्वरके मैदानमें एक ओरसे हरहरकी ध्वनि करते शङ्ख बजाते राजपूत और दूसरी ओरसे अल्ला अल्ला और दीन दीन करके चिल्लानेवाले मुसलमान परस्पर भिड़ गये। देखते देखते राजपूतोंकी वीरताके सामने मुसलमानोंके होश उड़ गये। पृथ्वीराजकी ओरसे राजा गोविन्दरायने मुसलमान सर्दार मुहम्मद गोरीका सामना किया। मुहम्मदके प्रहारसे राजाके दो दांत टूट गये पर राजाने भी ऐसा कसके एक भाला जमाया कि मुहम्मद मूर्छित हो पृथ्वीपर गिर पड़ा। राजा युद्धकी नीत्यनुसार उसे पुनः सांस आनेपर प्रहार करनेकी बाट जोहता रह गया। मुसलमान लोग अपने सेनापतिको घायल देखके झटपट उसे युद्धक्षेत्रसे उठा ले गये। मुसलमान सर्दार जब होशमें आया तो लड़ाईके मैदानको छोड़ लाहौरको भाग गया। उस दिन हिन्दुओंकी ही जीत रही। दो वर्षतक मुसलमानोंने फिर दिल्लीमें अपना मुँह न दिखलाया।

दो वर्ष पीछे मुसलमानोंको फिर समाचार मिला कि पृथ्वी

राज आजकल सुखविलासमें मग्न हैं अतएव चढ़ाई करनेका ऐसा सुयोग फिर न मिलेगा। निदान पहलेसे भी अधिक सेना साथ ले फिर मुहम्मद गोरीने एक बार दिल्लीपर धावा किया। राजपूत वीरोंको मुसल्मानोंकी पिछली दुर्वलता और पराजयका स्मरण बना ही था उन्होंने मुहम्मद गोरीसे कहला भेजा कि अपने घरको लौट जाओ क्यों व्यर्थ मरने आये हो। मुहम्मद गोरीने उत्तरमें यह कहा कि हम तो स्वतन्त्र नहीं हैं पराये दास हैं और अपने स्वामी अफगानिस्तानके सुलतान गयासुद्दीन बिनसामकी आज्ञानुसार चढ़ाई करने आये हैं। यदि आपलोग कहें तो उनके पास सँदेश भेजकर न लड़नेकी आज्ञा मँगाऊँ तदनन्तर जैसा ठीक समझ पड़ेगा करेंगे। भोले भाले राजपूतोंने समझा कि मुसल्मान सर्दार सत्य कहता है अतएव वे युद्धकी ओरसे असावधान ही रहे। छली मुसल्मानोंने दूसरे ही दिन राजधानीपर धावा कर दिया। यद्यपि राजपूत इस समय युद्धके लिये प्रस्तुत न थे तथापि 'नारायणके' निकट युद्धक्षेत्रमें उन्होंने मुसल्मानोंका सामना किया। मुसल्मान लोग पहले तो हारके भाग चले और हिन्दुओंने उनका पीछा कुछ दूरतक किया। पर पीछेसे हिन्दुओंकी सेनाको छितर वितर देख मुसल्मानोंने फिरसे धावा किया। हिन्दुओंकी सेना अबकी बार इकट्ठा न हो सकी अतएव मुसल्मानोंने छलसे उनपर विजय पायी। इसी युद्धमें महाराज पृथ्वीराजके प्राण गये। उनके बहनोई समरसिंह जो मेवाड़के राजा थे उनकी सहायतार्थ आये थे रणभूमिमें उन्होंने भी अपने प्राण दिये। महारानी सयुक्ताने अपने शरीरको अग्निके समर्पण कर पतिका अनुगमन किया।।

इस प्रकार परस्परकी फूटके कारण वीर राजपूतजातिका

छली मुसलमानोंके आगे पतन हुआ। यह युद्ध संवत् १२५०में हुआ। यही मुसलमानोंके भारतविजयका सूत्रपात था। महाराज पृथ्वीराज चौहानके साथ हि दुओंकी स्वाधीनताका सूर्य सदाके लिए अस्त हो गया। दिल्लीपर अपना अधिकार स्थापित कर मुसलमान अजमेरकी ओर बढ़े और सहज ही उसे भी अपने अधिकारमें कर लिया। उत्साहमें भरे मुसलमानोंने इसी समय गुजरात भी लेना चाहा था पर चालुक्यवंशी राजपूतोंने उन्हें पराजित करके वहाँसे भगा दिया। दिल्ली तथा अजमेरपर अधिकार करके मुसलमानोंने नगरको प्रजाको लूटना और अत्याचार करना प्रारम्भ किया। इन दुष्टोंने हिन्दूधर्मके नष्ट करनेमें कुछ उठा न रखा। प्रसिद्ध प्रसिद्ध मन्दिर ढहाये गये और उनकी जगह अनेक नयी मसजिदें बनायी गयीं। इस प्रकार दिल्लीपर मुसलमानोंका अधिकार होते ही उत्तरी हिन्दुस्तानकी प्रजाकी सुखनिद्रा चिरकालके लिये विदा हो गयी।

कन्नौजका राजा जयचन्द्र ही इन सब अनर्थोंका मूल कारण समझा जाता है। उसने दिल्लीनगर तथा पृथ्वीराजका पतन देखके बड़ा आनन्द मनाया होगा पर उसके भाग्यमें भी चिरकालतक निश्चिन्त रहना नहीं लिखा था। जिन छली मुसलमानोंको उसने अपना मित्र समझ रक्खा था अब वही जयचन्द्रके भी वैरी हुए। मुसल्मान इस बातको नितान्त भूल गये कि उन्हें दिल्ली विजय जिसने कराया वह उनका मित्र है। संवत् १२५१में मुहम्मद गोरीने कन्नौजपर भी चढ़ाई कर दी। जयचन्द्र तथा उसके सहायक राजपूत पृथ्वीराज आदिकी नाईं साहसी और वीर न थे। इटावेके निकट मैदानमें मुसल्मानोंसे लड़कर राजपूत हार गये। जयचन्द्र या तो युद्धस्थलमें मारा गया अथवा भागते समय गङ्गामें डूब गया।

जयचन्द्रके वंशजोंने अन्तर्वेदको त्याग दिया और राजपूताने-की ओर चले गये। कन्नौजपर मुसल्मानोंका अधिकार हुआ और नये नये अत्याचार आरम्भ हुए। मुसल्मानोंने धीरे धीरे कालपी, बुंदेलखण्ड, अवध, विहार और बंगालपर भी अपना अधिकार जमाया।

शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरी और उसके सर्दारोंने जब बनारसके नगरपर अधिकार किया तो वहां इतने अधिक मन्दिर थे कि जिनकी संख्या नहीं बतायी जा सकती। नगरके निवासी भी बड़े धनी और सम्पन्न थे। बौद्धोंके समयमें यद्यपि यहाँ ब्राह्मणोंके वैदिक धर्मपर बौद्धोंका कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा होगा परन्तु यहींपर हिन्दू धर्मकी अचल नींव अब भी अप्रतिहत बची हुई थी। राजपूत क्षत्रियोंके राज्यकालमें बनारसमें पुनः हिन्दूधर्म प्रबल हो गया था। यहीं विश्वनाथजी महादेवका वह प्रसिद्ध मन्दिर था जहाँ ज्ञानवापी थी और जिसका उल्लेख चीनी यात्री ह्वान्त्साङ्ग कर गया है। अब भी यहाँपर विन्दुमाधव, आदिकेशव, दुर्गा, जगन्नाथ आदिके प्रसिद्ध मन्दिर विद्यमान हैं।

काशी या बनारसको विजय करके दुष्ट और उपद्रवी मुसलमान जातिका लोभ कब रुक सकता था। कहते हैं कि उसी समय लगभग एक सहस्र देवालय ढहाये गये और अमूल्य धन और रत्न चौदह सहस्र ऊँटोंपर लादके पश्चिमकी ओर भेजे गये। शान्ति और सुखके समयमें उन दिनोंके बनारसकी श्रीवृद्धिका अनुमान इतनेहीसे किया जा सकता है।

बनारसके पतनने मुसल्मानोंके पूर्वदेशविजयार्थ प्रस्थानोत्साहको बढ़ा दिया और थोड़ेही दिनोंमें इस जातिने विहार तथा बंगालको विजय करके भली भांति लूटा और वह वह

अत्याचार प्रारम्भ किये जो पहले कभी न सुन पडे थे। जिन देवालयोंपर मुसल्मानोंका हाथ लगा वे ढहाये गये और उनके मसालोंसे मसजिदें उठायी गयीं। जहाँ लाखों जन शङ्ख, घडी, घण्टा आदि बजाया करते थे वहाँ गलाफाड अल्लाह अल्लाह की ध्वनि करनेपर भी मुल्ला लोगोंको अल्पसंख्यक मनुष्योंका दर्शन होने लगा। लोग बरबस मुसल्मान बनाये जाने लगे और शेषपर जजिया नामका एक कर लगाया जाने लगा।

भारतवर्ष के उत्तरीय भागमें मुसल्मानोंके मनहूस कदम पडतही धर्म और विद्याका ह्रास तथा अधर्म और मूर्खताकी वृद्धि आरम्भ हुई। देशसे शान्ति और स्वच्छन्दता चिरकाल के लिये विदा हुई और सर्वत्र नहूसत छा गयी।

तैंतीसवाँ अध्याय

पंजाबका राज्य

कनिष्कके राजवंशकी समाप्ति उत्तरीपश्चिमी भारतवर्षमें २८३के लगभग हुई जब कि वासुदेवका देहान्त हुआ था। पर काबुलमें इस तुरुष्कवंशका राज्य अधिक दिनोंतक बना रहा यहांतक कि संवत् ६५७तक कनिष्कहीके वंशज काबुलमें राज्य करते सुननेमे आते हैं। प्रायः ६५७ विक्रमाब्दमें कुछ लोगोंने काबुलके इस प्राचीन वंशको दुर्बल पाकर उन्हें राज्यसे उतार दिया और वहां तथा पंजावके पश्चिमी भागपर भी अपना अधिकार कर लिया। लोग वताते हैं कि ये नये विजेता ब्राह्मण जातिके थे और इनके सरदारका नाम कल्लर (कल्हार) था। ये लोग हिन्दू शाहिया राजाओंके नामसे प्रसिद्ध हुए। सं० ६५६में कमालू नामक राजा सिंहासनपर बैठा और उसने लगभग ४८ वर्षतक राज्य किया। उसका पुत्र भीम सं० १००७में उत्तराधिकारी हुआ और लगभग २७ वर्ष राज्य करके परलोक सिधारा।

भीमके पुत्र "जयपाल" के राज्यकालमें पश्चिमकी ओरसे अफगान जातिके मुसल्मानोंने पंजावकी सीमापर लूटमार करना प्रारम्भ किया। जयपालको जब इन अनर्थोंसे पीडा होने लगी तो वह आवेशमें आ थोडीसी सेना लेकर अफगानोंकी राजधानीपर चढ गया। दुष्ट अफगानोंने युद्धमें जयपाल को हरा दिया और धोखा देके उसके भारतको लौट आनेका मार्ग भी रोक दिया। अन्तमें उसकी सेनाके ५० हाथी छीनकर और अढाई लाख रुपया देनेकी प्रतिज्ञा कराके उसका पिण्ड छोडा। जयपालने भारतमें आकर अपनी प्रतिज्ञा पूरी न

की। अफग़ान लोग अबकी बार खुल्लमखुल्ला उसकी राजधानी-पर चढ़ आये। युद्धमें जयपालकी हार हुई और उसे अफ़ग़ानों-की अधीनता स्वीकार करके उनका करद बनना पड़ा। थोड़े ही दिन पीछे अफ़ग़ानोंका सर्दार महमूद अपने पिता सुबुक-तगीनके मरनेपर अपने जेठे भाईको वन्दी करके आप राज-सिंहासनपर बैठ गया। इसकी राजधानी "ग़ज़नी" थी। महमूदका पिता एक तुर्की दास था। अलप्तगीन नाम अफ़ग़ा-निस्तानके बादशाहने इसे मोल लिया था और होनहार देखकर अपना सेनापति बना लिया। सुबुकतगीनने अपने स्वामीकी कन्यासे विवाह किया और उसके मरनेपर आप अफग़ानि-स्तानका शासक बन बैठा। उसने लोभवश कई बार भारतवर्ष-पर चढाई करके लूटमार की और अन्तमें पंजाबके ब्राह्मण राजा जयपालको अपना करद बना लिया। महमूद भी कई बार अपने पिताके साथ भारतमें आया और यहाके लोगोंको धनवान देख उसके मुहमें पानी भर आया। उसने बारबार भारतपर चढ़ाई की और संयोगवश अपनी चतुराईसे अधिकांश चढाईयोंमें वह विजयी रहा। हर बार लूटमें बहुतसा धन उसके हाथ लगा।

राज्यपर बैठनेके तीन वर्ष पीछे उसने पंजाबपर चढाई की। जयपाल अबकी बार फिर हारा और मुसल्मानोंका वन्दी हो गया। उससे अधिक कर लेनेकी प्रतिज्ञा करा और उसके शरीरपरके बहुमूल्य आभरणोंको छीन महमूदने उसे छुटकारा दिया। जयपालको इस बारकी हारसे ऐसी ग्लानि हुई कि वह अपना राज्य अपने पुत्र आनन्दपालको सौंप आप तुपानलमें जल मरा।

आनन्दपाल यद्यपि अपने पिताकी प्रतिज्ञाके अनुसार यथा-समय महमूदको कर देताही जाता था तौभी लोभके वशीभूत

हो उसके समयमें फिर एक वार महमूद पंजावमें चढ़ आया। वह संवत् १०६६में एक विशाल सेना लेकर पेशावर होता हुआ भटिण्डातक चला आया। आनन्दपालने अपनी रक्षाके लिये प्रायः उत्तरी हिन्दुस्तानके सभी राजाओंकी सहायतासे महमूदका सामना करनेके लिये एक बड़ी सेना इकट्ठी कर ली। महमूद वडी सेना देखडर गया और चुपका हो रहा। पर आनन्दपालने लड़ाई छेडही दी। दैवात् आनन्दपालका हाथी लडाईके मैदानमें भड़क गया और पीछेको भागा। हिन्दुओंकी सेना तितर वितर हो गयी और मुसल्मानोंको न जीत सकी। इसपर मुसल्मानोंका उत्साह वढ़ गया और उन लोगोंने लूटमार की।

थोड़े दिन पीछे आनन्दपालके मरनेपर उसका पुत्र त्रिलोचनपाल उसके स्थानमें गद्दीपर बैठा पर यह भी महमूदका सामना करनेमें सफल न हुआ। उसके पीछे उसका पुत्र भीमपाल राजगद्दीपर बैठा पर वह निपट दुर्वल था। संवत् १०८२में उसके मरजानेपर महमूदने पंजावको अपने राज्यमें मिला लिया। तबसे लेकर संवत् १८५७ तक अर्थात् सिक्खोंके सर्दार रणजीतसिंहके विजय करनेके पूर्वतक पंजाबमें मुसल्मानोंका ही अधिकार रहा।

चौंतीसवाँ अध्याय

मालवेके परमार

जब पटनेमें शुङ्गवंशवालोंने मौर्यवंशको राजसिंहासनपरसे उतार दिया तो बचेखुचे मौर्यवंशी दक्षिणकी ओर चले आये और उनकी एक शाखा चित्तौरमें और दूसरी मालवेमें शासन करने लगी। मालवेवाली शाखामें ही कदाचित् शकारि महाराज विक्रमादित्य सन् ईसीसे ५७वर्ष पहले हो गये हैं। दूसरी शाखाका अधिकार चित्तौरमें संवत् ७६२तक रहा और इसी संवत्‌में वाप्पाके पुत्र गुहिलने मोरी राजा मानसे चित्तौर छीनकर वहाँ सूर्यवंशी राजपूतोंका अधिकार जमाया। संवत् १४०में उग्रसेन परमार मालवेमें शासन करने लगा और उसका रोबदाब दूरतक फैल गया। इसके पीछे लगभग ७४२वर्ष तक मालवेके परमारोंकी विशेष कीर्त्ति नहीं सुन पड़ती केवल राम परमार नामके एक राजाका अधिकार लगभग संवत् ५२७में कन्नौजतक विस्तृत सुना गया है। संवत् ८८२में कृष्ण उपेन्द्र परमारके समयमे मालवेमें इन लोगोंकी अधिक बढ़ती सुननेमें आती है। कृष्ण उपेन्द्रके पीछे सातवाँ राजा "वाक्‌पति मुञ्ज" संवत् १०३१मे राजसिंहासनपर बैठा। उसकी राजधानी "धारा" थी। वह बड़ा विद्वान् और साहित्यसेवी था। उसने न केवल कवियोंका आदर ही किया किन्तु वह स्वयं एक महाकवि था। उसकी राजसभामें दशरूपकके रचयिता धनञ्जय और उसके भाई धनिक उपस्थित थे और प्रसिद्ध कवि परिमल भी इन्हींके आश्रित थे, जिन्होंने "नवसाहसाङ्क चरित" काव्य इनके भाईके समयमें बनाया। मुञ्ज बड़ा वीर और पराक्रमी भी था। उसने १६ बार युद्धमें चालुक्यराज "तैल" को हराया

पर अन्तमें सत्रहवीं बार जब वह गोदावरी पार गया तो तैलने उसे पराजित करके वन्दी कर लिया। वह लगभग संवत् १०२९-में मरा होगा। मुञ्जके पीछे उसका भाई सिन्धुराज राजगद्दीपर बैठा और इसीका पुत्र राजा भोज जो लगभग संवत् १०७५में धाराके सिंहासनपर बैठा परमारवंशका सबसे अधिक प्रसिद्ध और प्रतापी शासक हुआ। वह अपने पितृव्य मुञ्जहीकी नाई विद्यानुरागी और पराक्रमी था। जब ग़ज़नीके लुटेरेने सोमनाथपर चढ़ाई की थी तो भोजने भी उसे रोकनेकी चेष्टा की थी। विद्याव्यसनमें भोजकी प्रसिद्धि महाराज विक्रमसे कम नहीं हुई। ज्यौतिष, शिल्प, काव्य साहित्य आदि सभी विषयोंमें उसने अनेक ग्रन्थ रचे, उसकी सभामें अनेक धुरन्धर विद्वान् पण्डित उपस्थित थे। उसने एक मन्दिर सरस्वती देवीका स्थापित कराया था और ब्राह्मण तथा दीनोंको वह प्रचुर द्रव्य दान किया करता था। भूपालमें जो भोजपुर नामका एक ताल* सुननेमें आता है वह इन्हीं महाराज भोजका बनवाया हुआ है। पीछेसे किसी 'कट्टर' मुसलमान शासककी आज्ञासे इस तालका बांध तोड़कर सब पानी बहा दिया गया। उस मुसलमानका नाम तो कोई स्मरण नहीं रखता पर सूखे तालके देखने वालोंको भोजका नाम अबतक याद आ जाता है। गुजरातके चालुक्य और चेदिके कलचुरियोंने मालवेपर चढ़ाई करके अन्तमें भोजको पराजित किया। इस युद्धके साथ भोजका राजप्रताप संसारसे जाता रहा पर उसकी विद्वत्ता

* यह ताल इतना विस्तृत था कि इसके सूखे अंशोंमें कई बड़े बड़े महल्ले बसे हुए हैं। लगभग आधा शहर भूपाल इसी तालकी भूमिमें है। अब भी इसका बचा हुआ अंश राजपुतानेकी मरुस्थलीमें जल पहुँचाता है और भूपालकी बेगमसाहबको इससे अच्छी आय है। [रा. गौ.]

और कीर्त्ति संसारमें अमर हो गयी जिसको न चालाक चालुक्य न कलयुगी कलचुरी और न म्लेच्छ मुसलमान, कोई भी लुप्त नहीं कर सका।

भोजके पीछे मालवेके परमारोंकी प्रभुता प्रतिदिन घटती ही चली गयी। उसके उत्तराधिकारियोंमें उदयादित्य नामका एक राजा प्रसिद्ध है जो संवत् ११३७में राजसिंहासनपर बैठा था और कदाचित् अजमेरके वीर बेलनदेव चौहानका समकालीन था। जब चौहानराजने अन्हलवाड़ाके हठी चालुक्य राजापर चढ़ाई की थी तो और और राजाओंके साथ उदयादित्य परमारने भी उसे सहायता दी थी। इस वंशका राज्य धारामें बहुत थोड़ी सी भूमिपर रह गया और उसे भी अन्तमें क्रमसे तोमर, चौहान और मुसलमानोंने छीन लिया।

पर फिर भी किसी न किसी प्रकार मालवेके परमारोंका राज्य उज्जैनमें बना रहा। अन्तमें दिल्लीके मुसलमान बादशाह शमशुद्दीन अल्तमशने मालवेपर चढ़ाई की, इस समय अन्तिम परमार राजा अर्जुनवर्मन जो संवत् १२६८में सिंहासनपर बैठा था इतना दुर्बल हो गया था कि मुसलमानोंके आगे उसकी एक न चली। अल्तमशने मालवा जीतकर दिल्लीके राज्यमें मिला लिया और उज्जैनके महाकालके प्रसिद्ध मन्दिरको जिसे महाराज विक्रमादित्यने बनवाया था और जो दो सौ हाथ ऊंचा था इस दुष्टने तुड़वा डाला। दैवगतिसे उसी वर्ष अर्थात् संवत् १२९३में अल्तमश भी महाकालका ग्रास बना।

पैंतीसवाँ अध्याय

कश्मीरका राज्य

भारतवर्षमें यदि किसी देशका लिखा इतिहास मिलता है तो इसी कश्मीरका। कश्मीरके इतिहासका नाम राजतरङ्गिणी, और उसके रचयिताका नाम कल्हण पण्डित है जिसने सवत् १२०५के लगभग यह ग्रन्थ रचा। पीछेसे औरभी कई पण्डितोंने इस ग्रन्थमें पीछेका इतिहास जोड़ दिया है।

राजतरङ्गिणी देखनेसे विदित होता है कि महाभारतके समयके पूर्व कश्मीरमें आदिगोनर्द नामक राजा राज्य करता था। वह मगधराज जरासन्धका समकालीन और उसका मित्र था। जब जरासन्धने मथुरापर चढ़ाईकी तो आदि गोनर्द भी उसके साथ यदुवंशियोंसे लड़ने गया था। युद्धमें श्रीकृष्णके बड़े भाई बलरामने इसे वहां मार डाला। इसके पीछे उसका पुत्र दामोदर कश्मीरका राजा हुआ। पर गान्धार देशके स्वयंवरमें श्रीकृष्णने उसे भी मार डाला और उसकी सगर्भा रानी यशवतीको राज्यासन दिया। कुछ दिन पीछे इस रानीके जो लड़का हुआ उसका नाम 'बालगोनर्द' हुआ, और श्रीकृष्णने उसे राजा बनाया। यह भी पीछे महाभारतके युद्धमें मारा गया। तदनन्तर पाण्डववंशी पैंतीस राजाओंने कश्मीरमें राज्य किया। इसके पीछेके राजवंशके प्रथम राजाका नाम लव और अन्तिमका सुरेन्द्र था। सुरेन्द्रने ईरानके बादशाह बहमनको विजय किया और वहांके एक प्रसिद्ध हकीमको अपने यहां बुलाकर रक्खा था। सुरेन्द्रके निःसन्तान मरनेपर फिर एक नये वंशने कश्मीरपर राज्य किया। इस वंशके राजा अशोकने कश्मीरमें जैनमतका प्रचार किया और श्रीनगरको बसाया

जो पिछले समयसे अबतक कश्मीरकी राजधानी चली आ रही है। 'जलौक' इस वंशका एक और प्रसिद्ध राजा था जिसने यवन राजा यूथिदेयुसको हराया और अन्तिओकससे सन्धि की। इस वंशका अन्तिम राजा दूसरा दामोदर था जिसके शासनकालमें कश्मीरमें शैव मतका प्रचार हुआ। इसके पीछे तीन तुरुष्क राजाओंका अधिकार कश्मीरपर हुआ और इनमें सबसे प्रसिद्ध कनिष्कका वर्णन तुरुष्क राजाओंके इतिहासके साथ लिखा जा चुका है। तुरुष्कोंके पीछे अभिमन्यु नाम राजाने फिर एक नये वंशका राज्य चलाया। इसीके समय कश्मीरमें व्याकरण महाभाष्यका प्रचार हुआ। इसी वंशमें मिहिरकुल नामका एक राजा हुआ है जो बड़ा क्रूर और अत्याचारी था। इस वंशके अन्तिम राजाका नाम अन्ध युधिष्ठिर था जिसे राज छोड़कर भागना पड़ा था। *

अन्ध युधिष्ठिरके पीछे मालवेके प्रतापादित्य नाम एक वीर राजाने कश्मीरको अपने अधीन कर लिया। उसके वंशने बहुत दिनोंतक कश्मीरका राज्य भोगा, अन्तिम राजाका नाम तुंजीन था जो बड़ा धर्मात्मा था। अकाल पड़नेपर इसने अपना सञ्चित धन दीन दुःखियोंको बांट दिया। इसकी रानीका नाम दक्षिणा था। तुंजीनके पीछे और तीन भिन्न भिन्न वंशके राजाओंने यहां राज्य किया। अन्तिम राजा हिरण्य था उसका मन्त्री और भाई पुरवाहन था। हिरण्यके पीछे विक्रमादित्यके भेजे हुए मातृगुप्तने चार मास नौ महीने कश्मीरका शासन किया। उसके पीछे पुरवाहनके पुत्र प्रवरसेनने फिरसे श्रीनगरको बसाकर राज्य किया। प्रवरसेनने झेलम नदीपर नावोंका पुल बांधा था। यह राजा शैव मतका अनुगामी था। प्रवरसेनके वंशके अन्तिम राजाका नाम बालादित्य था।

बालादित्यके पीछे कर्कोटक वंशके प्रथम राजा दुर्लभवर्द्धन-ने कश्मीरपर अपना अधिकार किया। वह कन्नौजके हर्ष-वर्द्धनका समकालीन था। उसके राज्यमें प्रजा शान्ति और सुखसे रहती थी। दुर्लभवर्द्धनका राज्य काश्मीरके बाहर तक्ष-शिलाके आसपासके प्रदेशोंमें भी था। दुर्लभवर्द्धनका पोता ललितादित्य संवत् ७६०में राजगद्दीपर बैठा और ३६ वर्ष-तक उसने बड़े प्रतापसे राज्य किया। इसने तिब्बत, भूटान और तुरुष्क देशवालोंको युद्धमें विजय किया, और कन्नौज-के यशोवर्मन्को युद्धमें हराया। मार्त्तण्डका प्रसिद्ध मन्दिर भी इसीने बनवाया। ललितादित्यका पोता जयापीड भी कश्मीरके प्रसिद्ध राजाओंमेंसे एक है जिसने कन्नौज, बंगाल और नैपालके राजाओंको हराया और लोभके कारण अपनी प्रजाको भी पीड़ित किया।

उत्पलवंशके राजाओंने कर्कोटकवंशके अधिकारके पीछे काश्मीरपर राज्य किया। इस वंशके बारह राजाओंने संवत् ६१३से १०६०तक राज्य किया। प्रथम राजा अवन्तिवर्मा बड़ा विद्यानुरागी था। उसके मन्त्रीने झेलमसे नहर खुदवा-कर देशमें सिंचाई और खेतीका सुभीता किया। उसके उत्तराधिकारी शङ्कर वर्माके दुराचरणसे प्रजा बहुत खिन्न हुई, वह ऐसा लोभी था कि मन्दिरोंमें सञ्चित देवद्रव्यको भी अछूता न छोड़ा उसे भी लूटा। उसके पीछे पार्थ नाम एक राजा हुआ। यह ऐसा क्रूर और पापी था कि इसने अपने पिताहीको मार डाला, और अपनी प्रजाके लोगोंको कोड़ोंसे पिटवाता था। थोड़े दिन राज्य कर वह कठिन रोग-में ग्रस्त होकर मरा।

पार्थके पीछे कई एक साधारण राजाओंने और भी राज्य
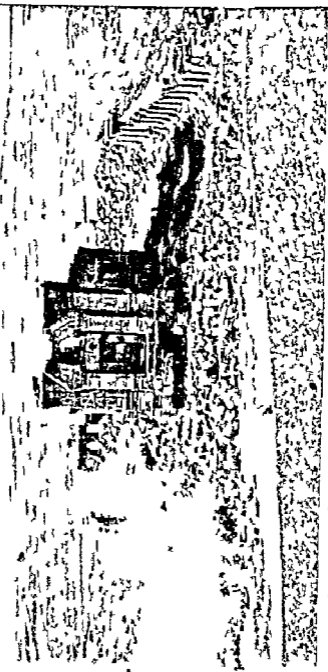
किया। संवत् १०६०में उत्पलवंशके राज्यका अन्त हुआ।

उत्पलवंशके पीछे लोहरवंशने १२५वर्षतक कश्मीरमें राज किया, इन राजाओंमेंसे अधिकांशने नाना प्रकार अनर्थ करके कश्मीरकी प्रजाको वड़ी पीड़ा पहुँचाई।

दसवीं शताब्दीके पिछले आधे भागमे कश्मीरपर शासन करनेवाली दिद्दा नामकी एक रानी थी। कश्मीरकी दक्षिण पश्चिम ओर लोहर नाम एक छोटा सा राज्य है। दिद्दा रानी वहींके किसी सामन्तकी कन्या थी। पहले जब उसका पति राज्य करता था तब वह साधारण रानी रही। फिर अपने बेटों और पोतोंके राज्यकालमें कुछ समयतक उनकी बाल्यावस्थामें राज्यको सँभालनेवाली और अन्तमें तेईस वर्षतक स्वयं भी शासनकर्त्री बनी रही। यह बड़ी दुश्चरित्रा थी, 'पङ्गु' (लङ्गड़ी) थी पर इसने अपने विरोधियों और राजवंशके अनेक 'चलते पुर्जे' प्राणियोंको एक एक करके मरवा डाला और अपने अधिकारके लगभग ५० वर्षोंमें कश्मीरकी प्रजाको अपने अत्याचारोंसे अत्यन्त व्याकुल और पीडित रखा। एक नीचवंशोद्भव तुङ्ग नामक व्यक्ति इसका विशेष 'कृपा-पात्र' था।

रानी दिद्दाके उत्तराधिकारी राजा संग्रामके समयमें लुटेरे ग़ज़नवीने कश्मीरपर चढ़ाई की पर विजय प्राप्त करना तो दूर रहा अन्नप्राप्तिके अभावसे उसकी सेनाके प्राण कण्ठगत होने लगे। झखमारके ‡ महमूदको अपना सा मुंह लिये लौट आना पड़ा।

इस वंशमे कलश नाम एक और अत्याचारी राजा हुआ

‡ महमूदका नाम कल्हणने अपनी राजतरंगिणीमें (त० ७।६४) "हम्मीर" लिखा है, जो 'अमीरुल मोमिनीन' का रूपान्तर है। सम्पादक

जिसने अपने पिता अनन्तको इतना तंग किया कि उसने आत्महत्या कर ली, अनन्तकी रानी कलशकी माता सुभटा भी पतिके साथ सती हो गयी। कलशने प्रजाको बड़ी पीड़ा दी और बड़े अनर्थ किये। कलशका पोता हर्ष, सुन्दर, पराक्रमी, चतुर, गवैया और कवि था पर उसने भी अपनी प्रजाका यहांतक उत्पीड़न किया कि अन्तमें बागियोंने उसे मार डाला।

तदनन्तर संवत् ११८५से १३६६तक लोहरवंशकी एक छोटी शाखाने कश्मीरपर राज्य किया। अन्तिम शासक कोटा रानीको हराकर संवत् १३६६में मुसलमानोंने कश्मीरपर अधिकार कर लिया।

छत्तीसवाँ अध्याय

कन्नौजका राज्य

हम पहले लिख चुके हैं कि हर्षवर्द्धनने सं० ६६३से ७०५ तक कन्नौजमें राज्य किया और उसके पीछे राज्य कई छोटे छोटे टुकड़ोंमें बँट गया। हर्षवर्द्धनके पीछे कुछ दिनोंतक हरिश्चन्द्र नाम एक राजा कन्नौजमें शासन करता सुना जाता है पर ठीक ठीक पता नहीं लगता कि वह कहांसे आया, किस वंशका था, उसने कितने दिन राज्य किया और उसका वा उसके वंशका कैसे विनाश हुआ। हरिश्चन्द्रके अनन्तर यदि किसी प्रतापी राजाका नाम सुना गया है तो यशोवर्मन्का। यह किस वंशका था अथवा हरिश्चन्द्रसे और इससे कोई सम्बन्ध था वा नहीं, पता नहीं लगता। यशोवर्मन्ने बंगालके राजाको युद्धमें मार डाला था, और इस लड़ाईका वर्णन 'गौड़वहो' (गौड़वध) नाम प्राकृत ग्रन्थमें उसकी सभाके कवि वाक्पतिराजने किया है। यशोवर्मन्की सभामें ही भवभूति संस्कृतके प्रसिद्ध कवि भी थे। भवभूतिका निवासस्थान विदर्भ देशमें पद्मपुर नाम नगर था। अतएव अनुमान होता है कि या तो 'विदर्भ' उस समय यशोवर्मन्के राज्यमें सम्मिलित था अथवा उसके किसी सामन्तके अधिकारमें था। यशोवर्मन्ने संवत् ७८८में चीनमें अपना एक एलची (दूत) भेजा था। संवत् ७९७के लगभग कश्मीरके राजा ललितादित्यने यशोवर्माको युद्धमें परास्त कर दिया था। यशोवर्मन्के पीछे वज्रायुध नाम राजाने कन्नौजकी गद्दी सँभाली। पर उसे भी कश्मीरके राजा जयापीड़ने पराजित किया। वज्रायुधका उत्तराधिकारी भी जो संवत् ८४०में कन्नौजमें

राज्य करता था सुखचैनसे न रहने पाया। इसका नाम इन्द्रायुध था और इसे संवत् ८५७के लगभग बङ्गालके राजा धर्मपालने हरा दिया। तदनन्तर आसपासके राजाओंकी संमत्यनुसार चक्रायुध कन्नौजके सिंहासनपर बैठा, पर वह भी विशेप प्रतापी न निकला, क्योंकि संवत् ८६७के लगभग राजपुतानेके परिहार राजा नागभट्टने आकर उसका राज्य छीन लिया। बहुत समयतक कन्नौजमे नागभट्ट और उसके वंशका राज्य बना रहा। इन परिहारोंने २०० वर्षसे भी अधिक कालतक राज्य किया होगा और इनका प्रताप प्रायः मध्यभारत और उत्तरी भागोंमें सर्वत्र छाया रहा।

नागभट्ट परिहारने लगभग संवत् ८६७से ८८७तक राज्य किया और मरनेपर अपने पुत्र मिहिरभोजके अधिकारमें एक विशाल राज्य छोड़ गया। राजपुताना, आजकलका सयुक्त प्रदेश, पंजाबका सतलज नदीके पूर्वका भाग, ग्वालियर तथा गुजरात और मालवा भी उसके अधीन था। इस राजाका प्रताप बहुत चढा बढ़ा था। उसकी पताकामें विष्णुके वराहावतारकी मूर्त्ति अङ्कित थी और उसके नामके जो सिक्के पाये गये हैं उनमें भी यही चिह्न अङ्कित देखनेमें आता है। भोजके पुत्र महेन्द्रपालने उसके पीछे लगभग अठारह वर्ष राज्य किया। यह भी एक चक्रवर्त्ती राजा था जिसका लोहा उत्तरी भारतमें पंजाबसे बिहारतक सब लोग मानते थे। संस्कृतका प्रसिद्ध कवि राजशेखर इसकी सभामें उपस्थित था और वह इस राजाका गुरु था। महेन्द्रपालका पुत्र द्वितीयभोज दो तीन ही वर्ष राज करके मर गया। उसका सौतेला भाई महीपाल गद्दीपर बैठा। इसने संवत् ९६७ से संवत् ९९७तक राज्य किया पर इसके समयसे कन्नौजमें परिहारोंकी घटती प्रारम्भ

हुई। राठौर राजा दूसरे इन्द्रने कन्नौजपर चढ़ाई करके उसे छीन लिया पर अन्तमें चँदेलोंकी सहायतासे राठौरलोग कन्नौजसे निकाल दिये गये, परन्तु बहुतेरे सूबे परिहारोंकी अधीनतासे बाहर हो गये।

दूसरे राजा देवपालने लगभग १५ वर्ष राज किया। यह वही राजा है जिससे चंदेल राजा यशोवर्मनने विष्णुकी एक मूर्त्ति छीन ली थी और उसे खजुराहोके मन्दिरमें स्थापित किया था। देवपालके पीछे विजयपालने ३५ वर्षतक कन्नोजमें राज्य किया। पर कछवाहोंने उससे ग्वालियर और सोलङ्कियोंने गुजरात छीन लिया। विजयपालके उत्तराधिकारी राज्यपालके समयमें महमूद ग़ज़नवी कन्नौजपर चढ़ आया। राज्यपालसे जब कुछ करते न बन पड़ा तो वह महमूदसे मिल गया तथा उसका बड़ा सम्मान किया। परिणाम यह हुआ कि महमूदके लौट जानेपर चंदेल राजा गण्डाने इस सन्धिसे क्रुद्ध होकर राज्यपालको मार डाला। कन्नौजके परिहार राजपूत प्रतिदिन दुर्बल होते गये। अन्तमें गाहरवार राजपूतोंके सर्दार चन्द्रदेवने कन्नौजको जीतकर वहाँ अपना राज्य स्थापित किया। संवत् ११४७से १२५०तक इन्हीं राजपूतोंका अधिकार कन्नौजपर रहा। यह राठौरके नामसे प्रसिद्ध हैं। अन्तिम राठौर राजा जयचन्द्रसे मुसलमानोंने जिस प्रकार कन्नौज लिया उसका वर्णन पहले दिल्लीके राज्यसम्बन्धमें लिखा जा चुका है। यह जयचन्द्र ही भारतके अधःपतनका कारण हुआ।

सैंतीसवाँ अध्याय

बंगालका राज्य

हर्षवर्द्धनके समयमें बंगालका शासक राजा शशाङ्क था जिसने राज्यवर्द्धनसे पराजित होकर मित्रता कर ली थी और प्रीतिभोजके बहाने उसे अपने यहाँ बुलाकर मार डाला था। उसीके वंशमें वह राजा आदिसूर हुआ होगा जिसने बंगालमें वैदिक धर्म फैलानेकी इच्छासे कान्यकुब्जसे पांच प्रतिष्ठित ब्राह्मणोंको बुलाया था। लगभग संवत् ७५७में मगध और बंगालमें पालवंश वालोंका राज्यारम्भ हुआ। पहले राजाका नाम गोपाल था जिसने मुङ्गेरके पास ओदन्तपुरीको अपनी राजधानी बनाकर लगभग ४५ वर्षतक राज्य किया। दूसरे राजा धर्मपालने अपने राज्यकी सीमा बढ़ायी और कन्नौजके राजा इन्द्रायुधको युद्धमें हराया। धर्मपालके पीछे देवपाल संवत् ८६७में सिंहासनपर बैठा। इसका प्रताप और राज्यविस्तार अपने पहलेके राजाओंसे अधिक था। उसने उड़ीसाको भी अपने राज्यमें मिला लिया और ४८ वर्षतक राज्य किया। इस वंशका नवा राजा महीपाल था जिसने ५२ वर्ष राज्य किया और महीपाल दीघी बनवायी। दीनाजपुरके जिलेमें अबतक यह तालाब विद्यमान है। राजा रामपालने मिथिलाको भी विजय किया। अन्तिम राजा गोविन्दपाल संवत् १२३२में राजसिंहासनपर बैठा। इसीके समयमें विहारपर लुटेरे मुसल्मानोंने चढ़ाई की और ओदन्तपुरके मठके निरपराध बौद्ध भिक्षुकोंकी हत्या की। इसी चढ़ाईके साथ पालवंशके राज्यकी समाप्ति समझनी चाहिये। पालवंशके राजा बौद्धमतको मानते थे पर हिन्दू धर्मसे उनका विरोध न था। इन राजाओंक

अधिकार गङ्गाकी निचली घाटीमें बनारससे लेकर गङ्गासागर-तक सुननेमें आता है।

बंगालके दक्षिणी भागमें संवत् ११९७के लगभग कर्णाट देशसे सेनवंशके राजकुमारोंने आकर अपना राज्य स्थापित किया। नदिया और गौड़ नामक नगर बारीबारीसे उनकी राजधानी रहे। राजा बल्लालसेनका नाम प्रायः सभी लोगोंने सुना होगा। यह बड़ा विद्वान् था, इसने "दानसागर" एक पुस्तक लिखी और उच्च जातिके ब्राह्मणोंमें कुलीनताकी प्रथा इसीके समय प्रचलित हुई। यह राजा संवत् ११२३में राजसिंहासनपर बैठा और लगभग ५० वर्षतक राज्य किया।

बल्लालसेनके पीछे सवत् ११७६में उसका बेटा लक्ष्मणसेन बंगालका राजा हुआ। गीतगोविन्द काव्यके रचयिता प्रसिद्ध कवि जयदेव तथा धोयी कवि इन्हींकी राजसभामें थे। मुसल्मान सर्दार मुहम्मद गोरीके एक सेनापति बख़्तियार* खिलजीने घोड़ोंका सौदागर बनकर संवत् १२६०मे बहुत थोड़े सवार लेकर नदियामें प्रवेश किया और राजगढ़ीपर एकाएकी चढाई की। पर लक्ष्मणसेन एक तो अत्यन्त वृद्ध था दूसरे

* कहते हैं कि इस चढाईमें बख़्तियार खिलजीके साथ सिर्फ १८ सवार थे। इन्हींके मुकाबलेमें लक्ष्मणसेन न ठहर सका। इसी खिलजीने २०० सवारोंकी मददसे "विहार" को फतह किया था, परन्तु वह "विहार" वस्तुतः बौद्ध सन्यासियोंका एक विशाल मठ एव विद्यालय था, जहा रक्षार्थ कोई शस्त्रधारी न था। मुसल्मान शूरोंने सभी सन्यासियोंके सिर काट लिए और "विहार" को जनशून्य कर दिया। शायद बौद्धमतकी शान्तिके प्रभावसे अन्यत्र मुसल्मानोंके उत्पात सुनकर भी लोग सतर्क नहीं रहते थे और साथ ही मालूम होता है कि उन दिनों बगाल और विहारके हिन्दू राजा भीरु और निर्बल हो गये थे। [सम्पादक—रा. गौ.]

इस धोखेकी चढ़ाईका उत्तर देनेमें असमर्थ था। खबर सुनते ही भाग खड़ा हुआ और ज़िला ढाकेमें विक्रमपुर नाम स्थानमें पहुँचकर आश्रय ग्रहण किया। उसकी सन्तान १२० वर्षतक वहाँ राज्य करती रही पर नदियाका राज्य तभी से मुसलमानोंके हाथमें चला गया।

इन प्रसिद्ध और बड़े राजपूत राज्योंके अतिरिक्त औरभी कई एक स्थानोंमें जैसे राजपुताना, ग्वालियर, नैपाल और आसाम आदि प्रदेशोंमें भी राजपूतोंकी प्रबल जातिका राज्य था। मुसलमानोंकी चढ़ाई रोकनेका प्रयत्न प्रायः सब किसीने किया और कुछ राज्योंको मुसलमान विजय भी न कर सके पर प्रायः संवत् १२५७में उत्तरी भारतका अधिकांश मुसलमानोंके हाथ आ गया और राजपूत साम्राज्यकी समाप्ति हो गयी। तबसे लेकर लगभग ६०० वर्षतक भारतमें मुसलमानोंका राज्य रहा पर उन्हें एकछत्र शासनमें सफलता प्राप्त न हो सकी। कुछ राजपूत सर्दार जो मुसलमानोंके प्रवेशके पूर्व यहाँ राज्य करते थे अब भी वहीं राजा बने थे, यद्यपि समयपर मुसलमानोंने उनपर भी धावा किया पर वे सब अनर्थ झेलकर अक्षत ही बने रहे। मुसलमान विजेता भारतमें आये, देशको विजय किया, लूटमार की, राज्य स्थापित किया पर अन्तमें धूलमें मिल गये, और राजपूतोंके राज्य यद्यपि कभी कभी उनके अधीन हो जाया करते थे तथापि अबतक स्थिर हैं। इन सर्दारोंमें निम्नलिखित बहुत प्रसिद्ध हैं—

(१) मेवाड़के सीसोदिये
(२) मारवाड़के राठौर
(३) आमेरके कछवाहे
(४) बीकानेरके राठौर
(५) कोटेके चौहान
(६) बूंदीके चौहान
(७) सिरोहीके चौहान
(८) अलवरके कछवाहे
(९) जैसलमेरके भट्टी

अड़तीसवाँ अध्याय

दक्षिणी हिन्दुस्तान

प्राचीन कालमे जहां इक्ष्वाकुके पुत्र दण्डकका राज्य था और जहाँ ययातिके पुत्र अनुकी सन्तानोंमेंसे कलिङ्गने जहां अपना राज्य स्थापित किया और फिर दुष्यन्तके पौत्र पाण्ड्य, चोल और केरलने जहाँ अपना राज्य नियत किया सो सब देश दक्षिणी भारतवर्षमें गिना जाता है। रामायणके समयमें राक्षसादिका राज्य सुननेमें आता है और महाभारतके समयमें भी दिग्विजयादिके लिये उत्तरी भारतके राजा दक्षिणी भारतमें आते जाते सुन पडे हैं जिससे विदित होता है कि लोगोंको बहुत प्राचीन कालसे दक्षिणी भागका ज्ञान बना चला आता है पर उत्तरके लोग कभी कभी अथवा बहुत कम दक्षिणमे आते जाते थे। बुद्धके पीछे देखनेमें आया कि चन्द्रगुप्त मौर्य जैनाचार्य भद्रबाहुका चेला हो मैसूरमें चन्द्रगिरिपर चला था गया और वहीं मरा भी। उसके पोते अशोक मौर्यका राज्य दक्षिणमें कृष्णा नदीतक फैल गया और अशोकने* अपने पुत्र महेन्द्रको लङ्कामें बौद्ध धर्मके प्रचारार्थ भेजा था। अशोकके शिला लेखोंमें दक्षिणकी अन्ध्रजातिका उल्लेख देखनेमें आता है। यह जाति दक्षिणी भारतमें बौद्धकालमें अत्यन्त प्रबल हुई।

अन्ध्रोंके राज्यका स्थापनकर्त्ता सिमुक चिक्रमसे लगभग १६६ वर्ष पूर्व गोदावरीके किनारे धनकटक वा धान्यकटक-को राजधानी बनाकर दक्षिण देशमें शासन करने लगा। पहले

---

* कई ऐतिहासिकोंका मत है कि यह अशोक द्वितीय था जिसने लंकादिमें बौद्धधर्मके प्रचारार्थ अपने पुत्र और पुत्रीको भेजा था, स्टाइन साहबने भी राजतरंगिणीकी टिप्पणीमें ऐसाही लिखा है। सम्पादक।

तो अन्ध्रोंके राज्यकी सीमा बहुत बड़ी न थी पर शीघ्रही उनका राज्य बढ़ने लगा यहाँतक कि द्वितीय राजा कान्ह वा कृष्णके समयमें अन्ध्रोंका राज्य पश्चिमीघाटपर गोदावरीके किनारे नासिकतक पहुँच गया। इस वंशके तीसरे या चौथे राजाने कलिङ्गराज खरवेलकी सहायतार्थ एक सेना भेजी थी। पीछेसे अन्ध्रोंकी राजधानी प्रतिष्ठान वा पैठान हो गयी। इन राजाओंकी उपाधि सातवाहन वा शालिवाहन हुई। इसी वंशके किसी राजाने विक्रमाब्द ३० के लगभग कण्ववंशके अन्तिम राजा सुशर्माको मारकर मगधपर अपना राज्य फैलाया। सत्रहवां राजा "हाल" बड़ा विद्याव्यसनी था। इसने स्वयं "गाथा सप्तशती" नाम सातसौ श्लोकोंका एक प्राकृत काव्य संगृहीत किया जिसका उल्लेख बाणने अपने हर्षचरितमें किया है। इसी राजाके मन्त्रियोंने पैशाची भाषामें 'बृहत्कथा' रची थी और एक प्राकृत व्याकरण भी लिखा था। हालहीके राज्य-कालसे कदाचित् शालिवाहनका शाका चला जो विक्रमाब्द १३५से प्रारम्भ होता है।

तेईसवें राजा गौतमीपुत्र शातकर्णिने शकों, यवनों और पह्लवोंको लगभग संवत् १८३में हराया तथा पश्चिमी क्षत्रप नहपनका विनाश करदिया। इसके पुत्र पुलुमायी दूसरेने पश्चिमी क्षत्रप रुद्रदामनकी बेटी ब्याही पर लड़ाईमें यह रुद्रदामनसे हारकर अपना बहुत कुछ राज्य खो बैठा। पुलुमायीने लगभग संवत् २०२से २२७तक राज्य किया। पिछले राजाओंमें सबसे अधिक प्रतापी यज्ञश्री था। इसने संवत् २४१से २७०तक राज्य किया। लगभग संवत् २८७में अन्ध्रवंशका विनाश हुआ होगा पर ठीक पता नहीं लगता कि किन लोगोंके द्वारा अथवा कैसे इनलोगों का साम्राज्य नष्ट हुआ। त्रिक-

अलूराके प्राचीन गुफामन्दिर जो पर्वत काटकर बनाये गये। (प्राचीन भारत पृ० २००-३०)
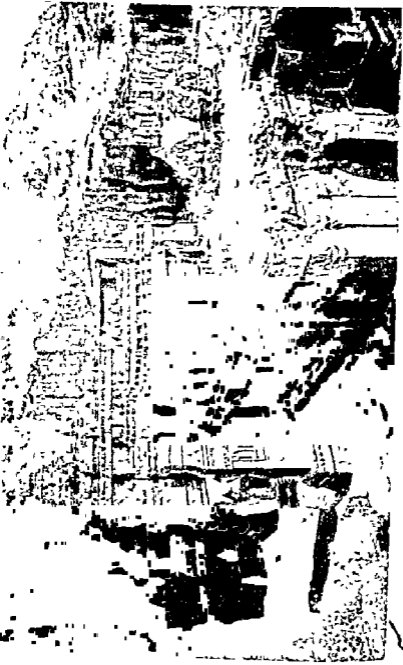
लिङ्ग या तिलिङ्गाना देशका नाम भी इस जातिके निवासके कारण अन्ध्र पड़ गया।

दक्षिणी भारतमें अन्ध्रोंके पीछे वाणवासीके कदम्बोंका राज्य अधिक प्रबल हुआ। इन लोगोंका अधिकार पश्चिमीघाट-के दोनों ओर मलाबार किनारेके कनारा देशमें और उसके बाहर भी रहा होगा। कदाचित् कुर्गके निवासी इन्हीं कदम्बोंके वंशज होंगे। विक्रमाब्दसे लगभग १४३ वर्ष पहले त्रिलोचन कदम्ब नाम कोई राजा राज्य करता था। कदम्बलोग कभी पल्हवों और कभी पश्चिमी गाङ्ग राजपूतोंसे लड़ा करते थे। वाणवासीके कदम्बोंमेंसे राजा मयूरवर्माका नाम सबसे अधिक प्रसिद्ध है। इन कदम्बोंको संवत् ६५७में कीर्त्तिवर्मा चालुक्यने हराकर बहुत दुर्बल कर दिया। कदम्बोंकी दो और शाखा भी गोवा और हांगलमें राज्य करती सुन पड़ी हैं।

गाङ्गवंशी राजपूतोंकी दो शाखायें थीं जिनमेंसे एक तो पूर्वी और दूसरी पश्चिमी कहलाती थी। पूर्वी शाखाके अधिकारमें बहुत दिनोंतक उड़ीसा और कलिङ्ग देश रहा। इन राजाओंकी राजधानी जगन्नाथपुरी थी। इस वंशके एक राजा अनङ्ग भीमदेवने लगभग संवत् १२३३में जगन्नाथजीका प्रसिद्ध मन्दिर बनवाया था। कलिङ्गदेशके राजा युद्धमें हाथियोंपर सवार होकर लडते थे अतएव वे गजपतिकी उपाधिसे प्रसिद्ध हुए थे। मद्रासके ज़िले गंजाम तथा विशाखपत्तन उन दिनों उड़ीसाहीके राज्यमें गिने जाते थे। मुसल्मान लोग जब प्रायः भारतमें सर्वत्र फैल गये तब संवत् १५६१में उन लोगोंने उड़ीसा विजय करके बंगालके सूबेमें मिला लिया।

पश्चिमी गाङ्ग राजपूतोंका राज्य मैसूरमें था और इनकी राजधानी तालकद थी। इनका अधिकार पहले कोलारके

आसपासके स्थानोंमे था। वहाँ खान हैं जिनसे अबतक सोना निकाला जाता है। ये राजा जैन मतके पक्षपाती थे। दद्दिग और माधव नामके दो भाई इस वंशके सबसे पुराने पुरखा सुन पड़ते हैं। वे पहले नन्दगिरिमें राज्य करते थे और राष्ट्रकूटोंके अधीन थे। चामुण्डराय नाम राजाने श्रवण वेलगोला में महावीरकी एक पत्थरकी विशाल मूर्ति स्थापित की। अन्तमें दक्षिणके चोल सरदारोंने एक बड़ी सेना लेकर गाङ्गोंके राज्यपर चढ़ाईकर उन्हें नष्ट कर डाला। गाङ्गवंशके बचेखुचे राजकुमार भागकर चालुक्यों, हयशालों और पूर्वी गाङ्गोंकी शरणमें चले गये।

पल्लव नामधारी राजपूतोंने भी दक्षिणी भारतमें कुछ दिनोंतक बड़े रोबदाबके साथ राज्य किया। इन पल्लवोंकी भी दो शाखायें थीं जिनमेंसे उत्तरवाली उत्तरी और दक्षिणवाली दक्षिणी पल्लवोंके नामसे प्रसिद्ध हैं। उत्तरी शाखाने "वातापी" या बादामी को अपनी राजधानी बनाकर संवत् ३५७ से ६०७ तक राज्य किया। इसी समय चालुक्योंने वहाँपर चढ़ाई करके बादामीको जीत लिया और उत्तरी पल्लवोंको वहांसे निकाल बाहर किया। अब इन पल्लवोंने पूर्वकी ओर हटकर वेङ्गीको अपनी राजधानी बनाया और संवत् ६७२तक वहां राज्य करते रहे। चालुक्योंने वहाँ भी इनका पीछा किया और संवत् ६७२में वेङ्गीको विजय करके उत्तरी पल्लवोंका राज्य बिलकुल नष्ट कर दिया। नामावलीके अतिरिक्त और कुछ इन उत्तरी पल्लवोंके विषयमें विदित नहीं है।

दक्षिणी पल्लवोंने काञ्ची वा काञ्जीवरम्‌को राजधानी बनाकर संवत् २५७से ७६७तक राज्य किया। संवत् ३६७में जब गुप्तवंशी राजा समुद्रगुप्त दक्षिणकी ओर आया था तो

काञ्चीमें इन्हीं पल्लवोंका राज्य था। उस समय विष्णु गोपवर्मा राज्य कर रहा था। राजा महेन्द्रवर्मन लगभग संवत् ६५७में गद्दीपर बैठा और उसने चालुक्य राजा पुलिकेशिन् द्वितीयसे लड़ाई की। महेन्द्रवर्मन्के पुत्र नरसिंहवर्मन्ने संवत् ६८२से ७०२तक राज्य किया था। इसने लड़ाईमें पुलिकेशिन्को मार डाला और उसकी राजधानी वातापीपर अधिकार कर लिया। पुलिकेशिन्के पुत्र विक्रमादित्यने नरसिंहवर्मन्के बेटे परमेश्वरवर्मन्से वातापी नगर संवत् ७१२में छीन लिया। पल्लव राजा नन्दिवर्मन् संवत् ७७६में काञ्चीमें राज्य करता था कि बादामीसे विक्रमादित्य बड़ी सेना ले वहाँ चढ़ आया। नन्दिवर्मन् हार गया। संवत् ७६७से काञ्चीमें चालुक्योंका राज्य हो गया और पल्लवोंका नाम संसारसे मिट गया।

पश्चिमी चालुक्योंके प्रथम राजा जयसिंहने महाराष्ट्र देशके कुछ भागोंमेंसे पुराने राष्ट्रकूट सरदारोंको हटाकर वहां अपना राज्य स्थापित किया। द्वितीय राजा रणराग लगभग संवत् ५८२में हुआ। यह भी बहुत प्रबल था और इसने राज्यकी सीमा अधिक बढ़ायी। पुलिकेशिन् पहला संवत् ६०७में राजा हुआ उसने बादामीसे उत्तरी पल्लवोंको निकालकर वेङ्गीमें भगा दिया। राजा कीर्त्तिवर्माने संवत् ६२४से ६४८तक राज्य किया और थाणवासीके कदम्बोंका विनाश किया। उसके पीछे उसके भाई मङ्गलीशने संवत् ६४८से ६६५तक राज्य किया। त्रिपुराके कलचुरियोंको युद्धमें हराकर मङ्गलीशने उत्तरकी ओर अपने राज्यकी सीमा बढ़ायी। उसके भतीजे पुलिकेशिन् दूसरेने संवत् ६६५से ६६६तक राज्य किया। यह कन्नौजके हर्षवर्द्धनका समकालीन था और उसके समान प्रतापी था। उस समय जैसे उत्तरी भारतमें हर्षवर्द्धन चक्रवर्त्ती

था वैसे ही पुलिकेशिन् दक्षिणीमें था। पुलिकेशिन्ने युद्धमें हर्षवर्द्धनको भी हराया था। राष्ट्रकूट, कदम्ब, कोङ्कणके मौर्य गाङ्ग तथा लाट, गुर्जर और महाराष्ट्रके निवासी पुलिकेशिन्का लोहा मान गये थे। पुलिकेशिन्हीने वेङ्गीके पल्लवोंको हराकर उनका देश जीत लिया और वहाँ अपने भाई विष्णुवर्द्धनको राजा बनाया। इसी समयसे उत्तरी पल्लवोंका विनाश समझना चाहिये। पुलिकेशिन्ने दक्षिणी पल्लवोंसे भी लड़ाई की। पाण्डय, चौल और केरलके राजा भी उसके अधीन थे। अन्तमें संवत् ६९९में दक्षिणी पल्लव नरसिंहवर्मन्के हाथ पुलिकेशिन् युद्धमें मारा गया। पुलिकेशिन्के राज्यके जिस भागको नरसिंहवर्मन्ने छीन लिया था उसे पुलिकेशिन्के पुत्र विक्रमादित्यने फिरसे छीन लिया और काञ्चीके पल्लवोंको हराया और अपने छोटे भाई जयसिंहको भेजकर गुजरातके चालुक्य वंशकी भी जड़ पक्की करायी।

चालुक्यवंशी राजा विक्रमादित्य दूसरेने लगभग संवत् ७९७में पल्लवोंसे युद्ध करके उनकी राजधानी काञ्चीपर अधिकार कर लिया। इस वंशका अन्तिम राजा कीर्त्तिवर्मा दूसरा था। उसीके राज्यकालमें राष्ट्रकूट सर्दार दन्तिदुर्ग महाराष्ट्र देशमें स्वतन्त्र हो गया और इसी दन्तिदुर्गने संवत् ८११में पश्चिमी चालुक्योंका राज्य छीन लिया।

जैसा कि ऊपर वर्णन हो चुका है पूर्वी चालुक्योंका राज्य पुलिकेशिन् दूसरेके भाई कुब्ज विष्णुवर्द्धनने उत्तरी पल्लवोंका राज्य विनष्ट करके वेङ्गीमें स्थापित किया और इन पूर्वी चालुक्योंका राज्य संवत् ६७२से सं० ११८४तक रहा। ये लोग सदा गाङ्गों, राष्ट्रकूटों और पल्लवोंसे लड़ा भिड़ा करते थे। इस वंशमें तीस राजा हुए जिनमेंसे ११वें राजा विजयादित्य

द्वितीयने संवत् ८५७से ६००तक राज्य किया था। यह राजा बडा पराक्रमी था, कलिङ्गके गाङ्गोंको इसने कई वार हराया। इसने बारह वर्षमें १०८ लडाइयां जीती और विजयके उपलक्ष्य-में प्रत्येक वार एक नया शिवजीका मन्दिर बनवाया। तेरहवां राजा विजयादित्य तीसरा भी परम पराक्रमी था उसने चोल राजा भङ्गीका सिर युद्धक्षेत्रमे काट डाला और गाङ्गों तथा राष्ट्रकूटोंको लडाईमें परास्त किया। इस राजाने संवत् ६०१से ६४०तक राज्य किया। सोलहवें राजा अम्म प्रथमने राजधानी वेङ्गीसे राजमहेन्द्रीको उठा ली, और राजमहेन्द्रकी उपाधि धारण की, इसने संवत् ८७५मे ६८२तक राज्य किया। अट्ठार-सवें राजा चोडलदेव प्रथमने सवत् ११२०से ११६६तक राज्य किया, जान पडता है कि इसने चोलोंको वशीभूत करके उनका राज्य छीन लिया था। अन्तिम राजा चोडदेव दूसरा संवत् ११८४में राज्यपर बैठा।

पूर्वी चालुक्य राजाओंमेंसे एकके शिलालेखमें चालुक्य राजाओंके यह सात राजचिह्न गिनाये हैं

(१) एक श्वेतच्छत्र। (२) एक शङ्ख।
(३) एक ढोल। (४) पताकामें वाराहकीमूर्त्ति।
(५) एक स्वर्णदण्ड। (६) गङ्गा औरयमुनाकीमूर्त्ति।
(७) मयूर पुच्छके दो चँवर।

उन्तालीसवाँ अध्याय

राष्ट्रकूट चालुक्य और कलचुरि

दन्तिदुर्गने संवत् ८११मे पूर्वी चालुक्योंका राज्य छीनकर दक्षिणी भारतमे राष्ट्रकूटोंका प्रबल राज्य स्थापित किया। ये लोग दक्षिणी भारतमें पहलेहीसे धीरे धीरे बल पकड़ रहे थे पर जब इन्होंने देखा कि पल्लवोंसे लड़ लड़कर चालुक्यलोग दुर्बल पड़ गये तो इन लोगोंको अपने स्वार्थसाधनकी सूझी। दन्तिदुर्ग एक कठोर शासक था अतएव उसके चचा कृष्ण प्रथमने उसे सिंहासनसे उतारकर शासनदण्ड अपने हाथमें ले लिया। यह बड़ा वीर और धनी था। इसने एलोरामें कैलास नाम प्रसिद्ध शिवमन्दिर बनवाया। इसके पीछे ध्रुव एक प्रतापी राजा हुआ जिसने लड़ाइमें तालकद्के गाङ्गों, काञ्चीके पल्लवों, कौशाम्बीके वत्सों और कोसलके भी राजाओंको हराया था। ध्रुवका पुत्र गोविन्दराज तीसरा भी बड़ा भाग्यवान् राजा था। यह विहारके पाल राजा धर्मपालका समकालीन था और इसने धर्मपालको अपनी बेटी व्याही थी। गुजरात और मालवेपर चढ़ाई करके गोविन्दराजने अपने अधीन किया और पुरानी नासिकवाली राजधानी मयूरखण्डको छोड़ आधुनिक हैदराबादमेंके मान्यखेतको राजधानी बनाया। उसने गाङ्गों और पल्लवोंको हराया और ब्राह्मणोंको बहुत सी भूमि दान दी। यह और इसका पुत्र अमोघवर्ष दोनों जैनोंपर बड़ी कृपा करते थे। अमोघवर्षने बासठ वर्ष राज्य किया। मालखेद्का गढ़ बनवाकर उसने अपनी राजधानी सुरक्षित की। अन्तिम राजा कक्कल मालवेके परमारोंकी लूटमारसे दुर्बल

पड़ गया। यहाँतक कि चालुक्य सरदार तैलपने जो कक्कलकाही जामाता था अपने श्वसुरका राज्य संवत् १०३०में छीन लिया।

पिछले चालुक्य

तैलपने फिर एक बार चालुक्यवंशका राज्य स्थापित किया। इस वंशके ११ राजाओंने २१०वर्षतक राज्य किया। तैलप राजपर बैठकर मालवके परमारोंसे कई लड़ाइयाँ लड़ा। अन्तमें उसने मालवराज मुञ्जको हराकर बन्दी कर लिया और अन्तमें उसे मरवा डाला। तैलपने २४ वर्षतक राज्य किया। उसके बेटे सत्याश्रयके राज्यकालमें चोल राजा राजराजने चालुक्योंके राज्यपर चढ़ाई की और नगरको लूटकर प्रजाकी हत्या की। यहांतक कि इस क्रूरने स्त्री, बच्चों और ब्राह्मणोंको भी नहीं छोड़ा। संवत् ११०६मे सोमेश्वर पहला राजा हुआ। इसने तुङ्गभद्रा नदीके निकट लड़ाईके मैदानमें चोलराजा राजाधिराजको मार डाला और मालवा, काञ्ची और चेदिके राजाओंको भी जीत लिया। संवत् ११२५में साङ्घातिक रोगसे आक्रान्त होनेपर सोमेश्वरने तुङ्गभद्रा नदीमें डूबकर प्राणत्याग किया। विक्रमादित्य छठा सवत् ११३३में राजगद्दीपर बैठा। इसकी राजसभामें कश्मीरी कवि विल्हण उपस्थित था। विल्हणने "विक्रमाङ्कदेव चरित" नाम काव्यमें इस राजाकी बड़ी प्रशंसा की है और उसका इतिहास लिखा है। विक्रमादित्यने अपने नामका एक संवत् भी चलाया था। उसकी राजधानी कल्याण थी जहाँ याज्ञवल्क्यस्मृतिपर मिताक्षरा नाम्नी टीकाके रचयिता विज्ञानेश्वर निवास करते थे। विक्रमादित्यने काञ्ची विजय कर लिया था और द्वारसमुद्रके हयशल राजा विष्णुने

भी युद्ध किया था। पिछले चालुक्योंमें यह राजा सबसे अधिक प्रतापी गिना जाता है। विक्रमादित्यके पीछे चालुक्योंका बल घट चला। तैलप तीसरेके राज्यकालमें कलचुरि सर्दार विज्जलने स्वतन्त्र होकर राज्यका बहुत सा भाग दबा लिया। अन्तमें सोमेश्वर चौथेने फिर संवत् १२४०में कलचुरियोंको हराकर अपना राज्य फिर पाया। पर अबकी बार देवगिरिके यादवों और द्वार समुद्रके हयशालोंने उसके राज्यके अधिकांशपर अधिकार कर लिया और संवत् १२४७में चालुक्योंका बचाखुचा भी राज्य जड़से उखड़ गया।

कल्याणके कलचुरि

चेदिके कलचुरियोंकी एक शाखा दक्षिणकी ओर चली आयी और इसीं कल्याणको अपनी राजधानी बनाकर ११८५से १२४० तक राज्य किया। इस वंशमें सात राजा हुए जिनमेंसे सबसे अधिक प्रसिद्ध विज्जल था जो चालुक्य राजा सोमेश्वर चौथेका सेनापति था। वह संवत् १२१६में स्वतन्त्र राजा बन बैठा। इन कलचुरियोंके राज्यमें लिङ्गायत सम्प्रदायके शैवोंने बड़ा जोर पकड़ा। यहांतक इन शैवोंने जैनोंको सताना प्रारम्भ किया कि कलचुरि राजाने अप्रसन्न हो दो शैवाचार्योंकी आंखें फोड़वा डालीं। शैवोंने विगडकर राजाहीको मार डाला। संवत् १२४०में चालुक्य राजा सोमेश्वरने फिर कल्याणको जीत कर कलचुरियोंके राज्यको नष्ट कर दिया।
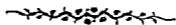
चालीसवाँ अध्याय

यादव हयशल और काकटेय

देवगिरिके यादव

यदुवंशी श्रीकृष्णचन्द्रजीकी सन्तानोंने द्वारकामें अपना राज्य स्थापन किया पर पीछेसे उनकी एक शाखा दक्षिणकी ओर चली आयी। एक शाखाने देवगिरिमें और दूसरीने मैसूरके द्वारसमुद्रमें अपनी राजधानी बनायी।

देवगिरिके यादवोंका एक सर्दार भिल्लम पहले चालुक्य राजाओंका सेनापति था। छठे चालुक्य राजा विक्रमादित्यके मरनेपर भिल्लम स्वतन्त्र हो गया। उसने संवत् १२४४से १२४८ तक राज्य किया। सोरातुरकी लड़ाईमें यह सर्दार मारा गया। उसके पुत्र जैतुवाने त्रिकलिङ्ग वातिलिङ्गानाके काकटेयवंशी राजा महादेवको लड़ाईमें हराकर अपनी शक्तिको पुष्ट और दृढ़ किया। जैतुवाने संवत् १२४८से १२६७तक राज्य किया। उसका पुत्र सिंहण अपने बाप दादोंसे बढ़कर प्रतापी हुआ। उसने अपने राज्यको पक्का कर देवगिरि आजकलके दौलताबादको अपनी राजधानी बनाया। सिंहणने संवत् १२६७से १३०४तक राज्य किया। राजा महादेवने संवत् १३०४से १३२८तक राज्य किया। उसीके समयमें देवगिरिमें "हेमाद्रि" नाम संस्कृतके एक प्रसिद्ध ग्रन्थकार विद्यमान थे। जिन्होंने हिन्दुओंके धर्म सम्बन्धी विषयोंके वर्णनमें एक बड़ी पुस्तक लिखी है और उसीमें देवगिरिके यादवोंकी वंशावली और इतिहासादिक लिखे हैं।

महादेवके पुत्र रामचन्द्रने संवत् १३२८से १३६७तक राज्य किया। मुसलमान इतिहास लेखकोंने इसका नाम राम-

देव लिखा है। इसीके राज्यकालमें उत्तरकी ओरसे लूटमार करते लुटेरे मुसलमान सवत् १२५१में दक्षिणी भारतमें घुस पड़े। मुसलमानोंका सेनापति वही अलाउद्दीन खिलजी था जो पीछेसे दिल्लीको दबाकर स्वयं शासक बन बैठा था। पहले तो इस दुष्ट और छली सेनापतिने भेलसा नगरको जहां उन दिनों बौद्धोंके बहुतसे मन्दिर थे लूटा और फिर दक्षिणमें जा लोगोंसे कहा कि मैं अपने चचाके यहांसे भागकर राजमहेन्द्री के राजाके यहां जीविकाकी खोजमें जाता हूं। लोगोंने समझा कि सचमुच यह कोई शरण ढूंढनेवाला है अतएव मार्गमें किसीने उसे न रोका। आगे बढ अलाउद्दीनने देवगिरिपर चढाई कर दी। बेचारे रामदेवसे कुछ न करते बना उसने छ सौ मन मोती और दो मन बहुमूल्य रत्न इन लुटेरोंको दे बडी कठिनाईसे अपना पिण्ड छुडाया। इस समय तो मुसलमान लोग लौट गये, पर लोभ और लालच फिर एक बार सवत् १३६६में इन लोगोंको दक्षिणकी ओर खींच लाया। इस बार रामदेवने विना लड़े उनकी अधीनता मान ली।

रामदेवके पुत्र शङ्करको संवत् १३६६में मुसलमान सेनापति मलिक काफ़ूरने, जो पहले हिन्दू और हिजड़ा था पर पीछेसे दास बना लिया गया था, युद्धमें परास्त कर मार डाला। इसके पीछे रामदेवके जामाता हरपालदेवने फिर कुछ दिनोंतक देवगिरिमें राज्य किया। मुसलमानोंने इसे भी चैनसे न बैठने दिया। इस समयतक अलाउद्दीन अपने पापोंका फल पानेके लिये यमलोकको सिधार चुका था। दिल्लीकी गद्दीपर उसका बेटा मुबारक शाह बैठा था। संवत् १३७५में मुबारक दक्षिणकी ओर आया। हरपालदेव परास्त हुआ और मुसलमानोंने उसे मार डाला। इस प्रकार देवगिरिके यादवोंकी समाप्ति हुई।

द्वारसमुद्रके हयशल

मैसूरमे मनजराबाद नामका एक गांव है। प्राचीन कालमें उसके पास एक घना जङ्गल था जिसमें बाघ इत्यादि हिंस्र पशु रहा करते थे। इस वनमें देवीका एक मन्दिर था। एक दिन शल नामक कोई सर्दार अपने पुरोहितके साथ उस वनमें देवीकी पूजा करने गया। पूजाके समय पुरोहितने देखा कि एक बाघ उसपर झपट रहा है। उसने एक छड़ी उठाकर अपनी भाषामें कहा कि 'होयशल' अर्थात् हे शल मारो। शलने शीघ्र उठ उसी छड़ीके प्रहारसे बाघको मार डाला। पुरोहितने उसी समय उसका और उसके वंशका नाम "होयशल" रख दिया। शलने अपनी बेटी तत्कालीन चालुक्य राजाको ब्याह दी और अपनी शक्ति बढ़ाने लगा। होयशल राजाओंमेंसे पहले, के कुछ राजा लोग जैन मतानुयायी थे पर पीछे संवत् ११७४-से वे लोग वैष्णव हो गये। इनके पहले पांच सर्दार चालुक्यों-के अधीन रहे।

शलके पुत्र विनयादित्यने संवत् ११०४से ११५७तक राज्य किया और क्रमसे अपनी उन्नति करता गया। उसका पुत्र विट्टिग वा विट्टीदेव बड़ा पराक्रमी था। इसने द्वारसमुद्रको अपनी राजधानी बनाया यह जैनोंपर बड़ी कृपादृष्टि रखता था। पीछे पण्डितोंकी शिक्षासे यह राजा संवत् ११८४में वैष्णव हो गया। और उसने अपना नाम विष्णु रखा। द्वारसमुद्रमें उसने विष्णुका एक अच्छा मन्दिर भी बनवाया। इस राजा-का राज्यकाल लगभग संवत् ११६१से ११९८तक था।

होयशल वंशमें इसके पीछे वीर बल्लालदेव दूसरा भी एक प्रसिद्ध राजा हुआ। इसने राज्यहीन चालुक्य राजा सोमेश्वर चौथेके सेनापति बोम्मा और देवगिरिके यादव भिल्लमको

युद्धक्षेत्रमें परास्त करके अपने राज्यकी सीमा बढ़ायी। १२२६-से १२६७तक इसने राज्य किया।

तीसरा वीर वल्लाल होयशल राजाओंमें अन्तिम था। इसके राज्यकालमें संवत् १३६७में अलाउद्दीन खिलजीके सेनापति मलिक काफ़ूरने दक्षिण देशमें लूटमार मचा दी। उसने द्वारसमुद्रपर धावा किया और नगरको बुरी तरह लूटा। सोने चांदीके बोझसे लदकर वह दिल्ली लौटा। वीर वल्लाल तीसरेके राज्यके साथ होयशल राजाओंका राज्य समाप्त हुआ। मुसल्मानोंने संवत् १३८४ में इस राज्यकी इतिश्री कर दी।

वारंगलके काकटेय

काकटेय वंशके राजपूतोंने तिलिङ्गानामें प्रायः संवत् ७५७ से १४८१तक राज्य किया। इसका ठीक ठीक पता नहीं लगता कि ये लोग क्षत्रियोंकी कौनसी शाखामें थे पर आश्चर्य नहीं कि ये वेङ्गीके पूर्वी चालुक्योंसे कुछ सम्बन्ध रखते हों। सातवीं शताब्दीमें उत्तुङ्गभुज नाम कोई योद्धा गोदावरी और कृष्ण-नदियोंके बीचवाले तिलिङ्गानाके भागमें टिक गया। उसका पुत्र नन्द नन्दगिरि नामका दुर्ग बनाकर वहां रहने लगा और उसने चोल देशके राजाकी कन्यासे विवाह किया। उसे उड़ीसाके किसी राजाने मार डाला और उसकी रानीको दक्षिणकी ओर भागना पड़ा। आजकल जहांपर "वारङ्गल" है वहीं प्राचीन कालमें हनुमद्गिरि नामक टीला था। किसी कृपालु ब्राह्मणने यहीं उस रानीकी रक्षा की। रानीने एक पुत्र प्रसव किया। यह पुत्र जब युवा हुआ तो बड़ा पराक्रमी निकला। उसने इसी पर्वतके पास एक नगर बसाकर उसका नाम हनुमान-कुण्ड रखा और वहां राज्य करने लगा। उसकी सन्तानने

वहाँ लगभग ४०० वर्षतक हनुमान्‌कुण्डपर राज्य किया और पूर्वी चालुक्योंके अधीन बने रहे।

प्रथम त्रिभुवनमल्ल काकटेयोंका प्रसिद्ध सर्दार था जिसका नाम नन्दके पीछे सुननेमें आता है। यह राजा संवत् ११५७में विद्यमान था। प्रौढ़राज इस कुलमें दूसरा प्रसिद्ध राजा हुआ जो शैव था, इसे इसीके पुत्र रुद्रदेवने धोखेसे मार डाला। पितृघातके प्रायश्चितमें रुद्रदेवने हनुमान्‌कुण्डके पास सहस्र खम्भों वाला एक शिवजीका मन्दिर बनवाया। यह मन्दिर संवत् १२१६ में बनकर प्रस्तुत हुआ। रुद्रदेव देवगिरिके यादव राजा मल्लगीका समकालीन था। रुद्रदेवने उड़ीसा भी विजय कर लिया था।

इसके पीछे गणपति एक प्रसिद्ध राजा हुआ। वारङ्गल इस समय काकटेयोंकी राजधानी थी। देवगिरिके यादवोंने वारङ्गलपर चढ़ाई की पर सफल न हो सके। गणपतिने देवगिरिके यादवराजकी कन्या रुद्रम्मादेवीसे विवाह किया। गणपति और रुद्रम्माने अपनी राजधानीके चारों ओर पत्थरकी एक शहरपनाह (परकोटा) बनाया। पीछेके प्रसिद्ध राजा प्रताप रुद्रने तुङ्ग और भद्रा नदियोंके बीचमें रायचूरतक अपने राज्यकी सीमा बढ़ायी। इसी राजाके समयमें मुसल्मानोंका दक्षिण भारतमें प्रवेश होने लगा। संवत् १३६६में मलिक काफूरने तिलिङ्गानापर चढ़ाई की। राजा हार गया और उसने बहुतसे रत्न हाथी घोड़े आदि मुसल्मानोंको भेंट दिये। मुसल्मानोंने उसे दिल्लीका करद राजा बना दिया। संवत् १३८०में फिर मुसल्मानोंने वारङ्गलपर चढ़ाई की और राजाको बन्दी करके दिल्ली पकड़ ले गये। दिल्लीसम्राट्‌की अधीनता स्वीकार करनेपर उसे छुटकारा मिला। राजा वारङ्गलको लौट आया पर दो वर्ष पीछे उसकी मृत्यु हो गयी।

काकटेय वंशके सबसे पिछले प्रसिद्ध राजाका नाम कृष्ण वा कन्हैया नायक था। उसके राज्यकालमें बहमनी वंशके मुसल्मानोंने वारङ्गलमें ऊधम मचाना प्रारम्भ कर दिया। उन लोगोंने राजाको हरा दिया और उसे अपना अधीन शासक बनाकर छोड़ा। कृष्णके पीछे काकटेय वंशके राजा परम दुर्बल हो चले। यह दशा देखकर मुसल्मानोंके चित्तमें फिर लोभ समाया। निदान संवत् १४८१में बहमनी रियासतके सर्दारने वारङ्गलको विजय कर लिया। तबसे काकटेयोंका राज्य नष्ट हो गया। जहांतहां कुछ छोटे सर्दार पालीगारके नामसे रह गये।

इकतालीसवाँ अध्याय

पाण्ड्य, चोल और केरल

महाराज दुष्यन्तके तीन पोतोंने दक्षिणमे जाकर अपने राज्य स्थापित किये। इन पोतोंके नाम पाण्ड्य, चोल और केरल थे। इन राजकुमारोंके नामसे उनके अधिकृत देशोंका नाम भी पाण्ड्य, चोल और केरल वा चेर पड गया।

प्राचीन कालमे पाण्ड्य राज्यकी सीमा प्रायः उतनीही थी जितनी कि आजकल मदुरा और तिनेवली जिलेकी सीमा मद्रास प्रान्तमें है। यह राज्य पाँच भागोंमे बँटा हुआ था और 'पांचो पाण्ड्य' के नामसे प्रसिद्ध था। पहले इसकी राजधानी 'नागपत्तन' रही होगी क्योंकि कालिदासने रघुवंशके षष्ठ सर्गमे पाण्ड्य राजाको इसी नगरका स्वामी लिखा है। यह नगर अब तञ्जौरके जिलेमे एक प्रसिद्ध बन्दर है। कुछ दिनतक पाण्ड्य देशकी राजधानी कोरकेई और कायल भी रही होगी जो दक्षिणमें सुभीतेके बन्दर हैं। तूतीकोरनका बन्दर अब भी उसीके पास प्रसिद्ध व्यापारिक स्थान है। पिछले समयमें बन्दरोंको छोड पाण्ड्य राजाओंने भीतरकी ओर मदुरा नाम नगरकोअपनी राजधानी बना लिया। यह मदुरा अबतक मद्-रास प्रान्तमे एक बडा नगर विद्यमान है और उसमे देवताओं-के बहुतसे मन्दिर हैं।

पाण्ड्योंका राज्य मद्रासके प्रान्तमें बहुत प्राचीन कालसे चला आ रहा है। रामायणमें पाण्ड्यके राज्यका उल्लेख किया गया है। महाभारतके युद्धमें पाण्ड्यराजने भी अपने प्राण खोये। पाणिनिकी अष्टाध्यायीपर वार्त्तिक लिखनेवाले कात्यायनने जो अवश्य विक्रमसे ३४२ वर्षसे अधिक पहलेके

होंगे अपने रचित ग्रन्थमें पाण्ड्योंका नाम लिखा है। मेगस्थनीज़ने भी जो चन्द्रगुप्तके दरबारमें यूनानके राजा सिल्यूकसकी ओरसे एलची था पाण्ड्यके राज्यका उल्लेख किया है। टालेमी नामक यूनानी लेखकने भी पाण्ड्य राज्यके स्थान और गढ़ आदिके विषयका ज्ञान निज लेखमें प्रकट किया है। लगभग संवत् २७२में दक्षिणी भारत और मिस्रदेशके बीचका व्यापार बन्द हो गया था। जब चीनी यात्री ह्वान्त्साङ्ग लगभग संवत् ६६७में दक्षिणी भारतमें गया तो उसने अपने मित्रोंसे पाण्ड्य देशका समाचार पाया होगा। वह लिखता है कि पाण्ड्योंकी राजधानीमें बौद्ध धर्मका नाम भी न था। सैकड़ों हिन्दुओंके देवमन्दिर थे। वहांके निवासी विद्यानुरागी न थे पर वाणिज्यव्यापारमें बड़े व्यापृत थे।

बहुत दिन नहीं बीते कि एक शिलालेखमें पाण्ड्य राजाओंकी वंशावली मिली है जो डेढ़ सौ वर्षकी अर्थात् ६वीं शताब्दीके आरम्भसे दसवीं शताब्दीके मध्यतककी है। चोल राजा राजराजने लगभग संवत् १०५१में पाण्ड्य देशके राजाओंको अपने अधीन कर लिया था। तबसे लगभग दो सौ वर्षतक पाण्ड्य देश चोलके राजाके अधिकारमें रहा होगा। तेरहवीं शताब्दीके आरम्भमें पाण्ड्योंने अपना कुछ राज्य फेर पाया था। पाण्ड्य राजा सुन्दरको लोग यह दोष लगाते हैं कि उसने प्रायः आठ सहस्र जैनोंकी हत्या करवायी। बारहवीं शताब्दीमें लङ्काके राजाने पाण्ड्य राजापर चढ़ाई कर दी पर अन्तमें लङ्काके राजाको पीछेही हटना पड़ा यद्यपि उसे कई एक लड़ाइयोंमें सफलता प्राप्त हुई। मुसलमानोंके सेनापति मलिक काफ़ूरने संवत् १३६७में पाण्ड्य राज्यको कुछ विजय कर लिया था पर इन लोगोंका राज्य प्रायः अठारहवीं शताब्दीतक अटल बना रहा।

प्राचीन कालमें पाण्ड्यकी राजधानी मदुरा एक विशाल और सुरक्षित नगर था। इसके चारों ओर पत्थरकी चहार-दीवारी थी और चार बड़े फाटक और कई एक ऊँचे मीनार थे। दीवारके नीचे गहरी खाई और खाईके पार घना जङ्गल था। नगरमें गलियाँ चौड़ी और दुकानें सुहावनी थी।

चोल राज्य

पाण्ड्य राज्यकी नाईं चोल राज्य भी बहुत प्राचीन कालसे चला आता है। चोल राज्यकी ठीक सीमाका पता नहीं लगता पर इसमें सन्देह नहीं कि मद्रासके ज़िले त्रिचनापल्ली, तञ्जोर उत्तरी और दक्षिणी अर्काट, चिङ्गलपट, नीलगिरि और कोयम्बटूर इस राज्यके अन्तर्गत थे। चोल राज्यकी राजधानी, कुम्भाकोनम्, तञ्जोर और काञ्जीवरम् बारीबारी रहती आयीं। अशोक मौर्यके समय चोल राज्य स्वतन्त्र था। प्राचीन कालमें भारतके दक्षिणी भागके पूर्वी किनारे चोलमण्डल वा कारोमण्डलमें वाणिज्यकी बड़ी उन्नति थी। इस बातको तामील भाषाके पुराने ग्रन्थ सिद्ध करते हैं। दूसरी और तीसरी शताब्दीमें चोल राजाओंकी शक्ति कुछ घटने लगी और पल्लवोंने अपना अधिकार बढ़ाया। चीनी यात्री ह्वान्त्साङ्ग लिखता है कि चोल राज्यमें बौद्धधर्मकी घटती हो रही थी जैनधर्म उन्नतिपर था किन्तु हाँ सर्वव्यापी ब्राह्मण जाति इस देशमें भी अधिकतासे विद्यमान थी और यहाँ उनके अनेक मन्दिर थे। आठवीं शताब्दीके मध्यभागमें जब पल्लवोंकी शक्तिका ह्रास होने लगा तो चोल राजाओंने फिर बल पकड़ा। चोल राजा पहला परान्तक जो संवत् ९६४में विद्यमान था न केवल बड़ा विजयी ही था किन्तु सुशासक भी था। उसके खुदवाये शिला

लेखमें 'पञ्चायती निर्णय'का भी अच्छा वर्णन मिलता है। संवत् १०४२से २७वर्ष पीछेतक चोल राजने राज्य किया और वह दक्षिणी भारतमें एक चक्रवर्त्ती राजा गिना जाने लगा था। इस राजाने न केवल भारतही की भूमिपर वरन् दूरदूरके द्वीपों पर भी अपना अधिकार जमा रखा था। इसके पुत्र राजेन्द्र चोड़देवने न केवल अपने पिताहीके राज्यको संभाला किन्तु ब्रह्माके पीगू नाम प्रान्तको भी अपने राज्में मिला लिया। राजेन्द्र चोल दूसरेने जिसका नामान्तर कुलोत्तुङ्ग सुननेमें आता है संवत् ११२७से ११७५तक राज्य किया। यह शैव था। वैष्णव धर्मके प्रचारक "रामानुजस्वामी" कुछ दिन इसके राज्यमें रहे, पीछे मैसूर राज्यमें चले गये। अन्तिम राजा कुलोत्तुङ्ग चोल तीसरा संवत् १२३५में राजगद्दीपर बैठा और उसने ४० वर्षतक राज्य किया। अन्तमें मुसलमान लुटेरोंने चोलोंके राज्यको विनष्ट कर दिया।

चेर वा केरल

केरलका राज्यभी पाण्ड्य और चोलकी नाईं बहुत प्राचीन कालसे चला आया है पर पुराणोंमें इस देशके नामोल्लेखके अतिरिक्त और कोई बात देखनेमें नहीं आती है। हिन्दुस्तानके प्रायद्वीपकी दक्षिणपश्चिमकी ओर मलाबारके किनारेपर यह राज्य बहुत प्राचीन कालसे चला आता है इसमें कुछ सन्देह नहीं। इस राज्यमें मलाबार, कोचीन, त्रिवंकुर आदि मद्रासके पश्चिमी भाग संमिलित थे। कोचीनसे लगभग तीस मील उत्तरकी ओर पेरियार नदीके किनारे "वाञ्ची" नाम एक नगर था जिसे अब लोग करूर कहते हैं। प्राचीन कालमें यही नगर बहुत दिनोंतक चेर राज्यकी राजधानी थी।

इस राज्यमें दो एक प्रसिद्ध बन्दर भी थे जहाँसे दूर देशोंसे सामुद्रिक वाणिज्यका सुभीता था। भारतवर्षभरमें कदाचित् यही एक ऐसा राज्य रहा कि जहाँ दुष्ट मुसलमानोंके मनहूस कदम नहीं पहुंचने पाये थे अतएव प्राचीन हिन्दू राज्य-व्यवस्थाका उचित उपयोग तथा वहाँके निवासियोंका सुख अब भी भली भाँति देखने सुननेमें आता है।

केरल देशका पहला राजा जिसका नाम युरोपियनोंने खोज पाया है अर्थेम पहला है। इसका राज्य तो अवश्य विक्रम सं० २५७से पहले रहा होगा। ऐसा जान पड़ता है कि प्राचीन केरल राज्य कई भिन्न भिन्न भागोंमें बँटा हुआ था और संवत् ११८२के पहलेतक स्वतन्त्र भी रहा होगा। केरल राजाओंकी पताकाका चिह्न धनुष था। इन राजाओंके सिक्के बहुतही कम पाये गये हैं।

संवत् ११८२के पीछे केरल देशके अधिकांशमें चोल देशके राजाओंका अधिकार हो गया था। इस समयका इतिहास ढूंढनेसे ऐसा विदित होता है कि देशके प्रायः प्रत्येक गाँव एक एक राज्यकी नाईं थे और वहाँके लोग अपने आपही सब राज्य प्रबन्ध देख लिया करते थे। हाँ, चोल राजा जबतब उनके कार्योंकी जाँच किया करते थे।

अशोक मौर्यके समयसे लेके अबतक चेर देशमें हिन्दुओंका राज्य चला आता है और आजकल "ट्रावनकोर"का हिन्दू राज्य अपनी पहली जगहपर विद्यमान है।

→⊰⊱←

बयालीसवाँ अध्याय

हिन्दुओंका धार्मिक साहित्य

भारतवर्षका इतिहास भली भाँति जाननेके लिये यह भी आवश्यक है कि संस्कृत भाषाका इतिहास ध्यानपूर्वक देखा जाय। इसमें सन्देह नहीं कि प्राचीन कालके ब्राह्मणोंने संस्कृत विद्यामें बड़ी उन्नति की और उन प्राचीन ऋषियों तथा पण्डितोंके लिखे ग्रन्थ सदाके लिये भारतवर्षके गौरवका विषय हो गये। संस्कृत भाषा बहुत प्राचीन और प्रौढ़ है। शब्दोंकी तो इस भाषामें गिनतीही नहीं की जा सकती। पहले तो मूल शब्दोंहीकी संख्या बहुत अधिक है फिर शब्दोंमें प्रकृति प्रत्यय, विभक्ति अथवा शब्दान्तरके जोड़नेसे शब्दोंका भाण्डार इतना बढ़ जाता है कि मनुष्यके चित्तके किसी प्रकारके भी गूढ़से गूढ़ भावको प्रगट करनेके लिये शब्दोंकी कमी नहीं रहती। कुछ विद्वानोंकी सम्मति है कि संस्कृतही समस्त संसारकी आर्यभाषाओंकी जननी है। यह सब कुछ होनेपर भी खेदका विषय है कि सर्वसाधारणमें उसका व्यवहार नहीं रहा अनएव अब संस्कृत भाषा 'मृतभाषा' कही जाती है। भारतवर्षके लोग संस्कृतको देवभाषा या "अमर भाषा" कहते हैं और यह भी विश्वासकरते हैं कि अति प्राचीन कालमें पढ़े लिखे लोग इसी भाषाका व्यवहार करते थे। हाँ अपढ़ और साधारण नीच जातिके लोग एक बिगड़ी हुई भाषा बोलते थे जिसे प्राकृत कहते हैं। यही प्राकृत भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें भिन्न भिन्न प्रकारसे बोली जाती और भिन्न भिन्न नामसे पुकारी जाती थी। यथा महाराष्ट्री, शौरसेनी, मागधी और पैशाची। इनमेंसे महाराष्ट्री दक्षिण देशोंमें, शौरसेनी मथुराके आसपास

व्रजमण्डलमें, मागधी मगध आदि देशोंमें तथा पैशाची वन-वासियों और नीच जातिके लोगोंमें बोली जाती थी। हिन्दुस्तानमें आजकल भिन्न भिन्न प्रान्तोंमें बोलीजानेवाली भाषाएं हिन्दी, बंगला, मरहठी, पंजाबी, गुजराती आदि सब उन्हीं प्राकृत भाषाओंसे निकली हैं और उन्हीका रूपान्तर हैं।

संस्कृत भाषाके ग्रन्थोंको हम सामान्य रीतिसे दो भागोंमें बाँट सकते हैं एक तो धर्मग्रन्थ जिनमें विशेष करके ब्राह्मणोंके धर्मसे सम्बन्ध रखनेवाली बातें लिखी गयी हैं और दूसरे साहित्य ग्रन्थ जिनका प्रधानतया संस्कृत भाषाके साहित्यहीसे सम्बन्ध है। जिस तरह धर्मग्रन्थोंमें संस्कृतका साहित्य कम नहीं उसी तरह संस्कृतसाहित्यके ग्रन्थ भी धर्मविषयक बातोंसे रहित नहीं हैं। तथापि धर्मग्रन्थोंमें मुख्य करके धर्मका और साहित्यग्रन्थोंमें मुख्य करके साहित्यका सम्बन्ध रहनेसे उक्त विभाग किया गया है।

संस्कृतके धर्मग्रन्थ अठारह भागोंमे विभक्त हैं और उन्हें अठारह विद्याओंके नामसे पुकारते हैं। इन अठारह विद्याओंमें चार वेद, चार उपवेद, छः वेदाङ्ग और ४ उपाङ्ग गिने जाते हैं। चारो वेदोंके नाम ऋक्, यजु, साम और अथर्व हैं। चारों उपवेदोंके नाम आयुर्वेद, धनुर्वेद, गान्धर्ववेद और अर्थशास्त्र हैं। छओं वेदाङ्गोंके नाम शिक्षा, व्याकरण, निरुक्त, कल्प, ज्योतिष और छन्द हैं। पुराण, न्याय, मीमांसा और धर्मशास्त्र ये चारों उपाङ्ग कहे जाते हैं। इनमेंसे प्रत्येकका संक्षेप रीतिसे वर्णन नीचे किये जाता है।

चारों वेदोंमें ऋग्वेद विस्तारमें सबसे बड़ा और ध्यान देने योग्य है। युरोपियनोंकी सम्मतिमें यह सब वेदोंमें अधिक प्राचीन है। इसमे कुल मिलकर १०१७ सूक्त या मन्त्रसमूह पाये

जाते हैं। प्रत्येक मन्त्रका नाम ऋक् है। ऋग्वेदके दो प्रकारके विभाग किये गये हैं। इस ग्रन्थमें आठ आठ अध्यायवाले आठ अष्टक हैं। प्रत्येक अष्टकमें कई एक सूक्त और प्रत्येक सूक्तमें कई एक ऋचायें हैं। ऐसे ही ऋग्वेदमें १० मण्डल हैं। प्रत्येक मण्डलमें कई एक अध्याय और प्रत्येक अध्यायमें कई एक मन्त्र हैं। आर्यों के प्राचीन सिद्धान्तानुसार वेद ईश्वर प्रणीत हैं, पर आधुनिक मतसे वेदोंके प्रणेता ऋषि हैं। ऋग्वेदके प्रथम और दशम मण्डलको छोड़ शेष मण्डल किसी एक ही ऋषिके कहे हुए हैं। प्रथम तथा दशम मण्डल कई एक भिन्न ऋषियोंके प्रोक्त हैं। युरोपियनोंकी कल्पना है कि ऋग्वेदका दशम मण्डल पीछेसे जोड़ा गया है। वेदके मन्त्र भागोंका नाम संहिता है। शाकल्य ऋषिने प्रत्येक मन्त्रका पदपाठ भी लिखा है। अर्थात् मन्त्रके प्रत्येक शब्दोंका भिन्न भिन्न पूर्णरूप पृथक् लिख रखा है। वेदोंके किस मन्त्रका विनियोग किस प्रकरणमें करना चाहिये इसके बतलानेके लिये ब्राह्मण ग्रन्थ लिखे गये हैं। वेदोंके समान ब्राह्मणोंमें भी सब मन्त्र सस्वर लिखे गये हैं। ऋग्वेदमें प्रायः तीन छन्दोंमें लिखे मन्त्र देख पड़ते हैं। वे छन्द गायत्री, त्रिष्टुप् और अनुष्टुप् हैं। ऋग्वेदके मन्त्रोंमें अनेक देवताओंकी स्तुति की गयी है और उनसे प्रार्थनाकी गयी है कि वे अपने भक्तोंको विपत्तिसे बचावें और उनके शत्रुओंका विनाश करें। प्राचीन कालके ऋषि ईश्वरपर विश्वास रखते थे और देवताओंको जिन्हें वे ईश्वरकी शक्ति मानते थे सज्जनोंका रक्षक और दुष्टोंका संहारक समझते थे। ऋग्वेदमें अदिति, द्यौ, अग्नि, सूर्य, वरुण, उषस, अश्विनीकुमार, इन्द्र, मरुत्, रुद्र, विष्णु (सर्वव्यापी परमेश्वर) और यम आदि देवताओंकी स्तुतिके मन्त्र हैं सिन्धु और सरस्वती इन दो नदियोंकी भी स्तुति है।

ऋग्वेदके मन्त्रोंमें प्रजापति और मित्रावरुणका, और कहीं कहीं अवसरानुसार, गन्धर्वों, अप्सराओं, उर्वशी और पुरूरवा, मनु, इक्ष्वाकु, त्रसदस्यु, पुरुकुत्स, सुदास, दशरथ, राम, पुरु, यदु तुर्वसु, द्रुह्यु, और अनुके सन्तानों तथा भरत आदि कुरुवंशी राजाओंका और विश्वामित्र वसिष्ठ आदि ऋषियोंका भी उल्लेख है। ऋग्वेदमें हिमालय पर्वत, पञ्जावकी सब नदियोंका भी नाम आया है यथा सिन्धु, वितस्ता (झेलम), परुष्णी वा इरावती (रावी), विपाशा (व्यासा), चन्द्रभाग, (चनाब), शतद्रु (सतलज), कुभा (काबुल), सुवस्तु (स्वात), क्रमु (कुर्रम), गोमती (गोमाल)। यमुना और गङ्गा का भी नाम प्रसङ्गवश आया है। उस समयके लोगोंका भोजन मुख्य करके गेहूँ और यव था। इस बातका भी पता लगता है कि ऋग्वेदके समयमें लोग सोना, चांदी आदिका व्यवहार जानते थे। वन्य पशुओंमें, सिंह, वृक, व्याघ्र, भालू और हाथी तथा पालतू पशुओंमें घोडा, गाय, भेड़, बकरी, कुत्ता, गंदहा और भैंस, पक्षियोंमें हंस, तोता मोर, कौवा आदिका उल्लेख ऋग्वेदमें किया गया है। सर्पकी चर्चा भी आयी है और उसे मनुष्य जातिका शत्रु गिना है।

ऋग्वेदके द्वारा उस समयके भारत निवासियोंके चाल-चलन, व्यवहार, आदिके बारेमें बहुत कुछ विदित होता है। पिता घरमें सबसे बड़ा अधिकारी समझा जाता था। स्त्री और पुरुष दोनों मिलकर वैदिक यज्ञ करते और अपनी सन्तानका भला मनाते थे। स्त्रियोंका बड़ा आदर किया जाता था। स्त्रियां भी विद्याभ्यास करती थी। कुछ वैदिक सूक्तोंकी स्त्रियाँ ऋषितक हुई हैं। विवाहकी विधि जैसी उस समयमें थी प्रायः वैसी ही अबतक हिन्दुओंके बीच प्रचलित पायी जाती है।

कन्या अपनी इच्छानुसार भी वर खोज लेती थी। विधवाका भी कभी कभी पुनर्विवाह होता था। कन्याके जन्मपर आजकलकी नाईं उन दिनों भी लोग नहीं प्रसन्न थे। चोरीके दण्ड और उधार लेना आदि व्यवहारकी व्यवस्था तब भी प्रचलित थी। मुर्दे जलाये जाते थे, पर कभी कभी धरतीमें भी गाड़े जाते थे। उस समयके लोगोंका भोजन विशेषतः दूध, घी, गेहूं और यव था। अन्न कभी तो पीसकर आटेकी रोटी बनाके कभी भूनके और कभी खीरके रूपमें भी खाया जाता था। साग, पात, तरकारी और फल भी उस समय खाद्य पदार्थ थे। मांसका वर्णन भी पाया जाता है। लोग यज्ञमें सोमलताका रस देवताओंको अर्पण करके पान किया करते थे। जुआ खेलना और मदिरा पीना पाप समझा जाता था। प्रत्येक गृहस्थ अग्निहोत्री होता था। खेती, वाणिज्य तथा पशुपालन आदिका व्यापार वैश्योंका था। ब्राह्मण पुरोहित होते थे और पूजा आदिका कार्य कराया करते थे। लेनदेनका व्यवहार भी प्रचलित था। शस्त्र विद्याका यथोचित अभ्यास करके राजा प्रजाकी रक्षा करते थे और अन्तमें शासनका भार वे अपनी सन्तानको सौंप जाया करते थे। ढोल, बीणा, बांसुरी आदिका बजाना और गीत गाना उस समय भी प्रचलित था। वाणिज्यमें बहुधा गौके द्वारा वस्तुओंका मूल्य निर्द्धारित होता था। काठ, लकड़ी धातु आदिका कार्य भी होता था और रथ, पताका इत्यादि चीज़ें बनायी जाती थीं। कपड़े बुनना और चमड़ेका काम भी होता था। समुद्रयात्राका प्रचार भी था पर कम। दान करना गृहस्थका एक मुख्य धर्म समझा जाता था। लोग पढ़नेमें विशेष रुचि रखते थे। नीति, धर्म, दर्शन, व्याकरण, ज्योतिष, गणित आदिमें लोग परिश्रम किया करते थे। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य

और शूद्र ये चार जातियां और ब्रह्मचर्य, गार्हस्थ्य, वानप्रस्थ और संन्यास ये चार आश्रम थे।

यजुर्वेदके मन्त्र यज्ञकर्ममें पुरोहितोंके पाठके लिये लिखे गये हैं। यजुर्वेदका सम्बन्ध मुख्यतया कर्मकाण्डहीसे है। यजुर्वेदके लगभग आधे मन्त्र ऐसे भी होंगे जो ऋग्वेदमें भी पाये जाते हैं। यजुस् उन मन्त्रोंको कहते हैं जो यज्ञादि कर्म कलापके समय पढ़े जायँ। इस वेदके दो भाग हैं एक कृष्ण यजुर्वेद या तैत्तिरीय संहिता अर्थात् वह भाग जिसे व्यासजीके शिष्य वैशम्पायनने सङ्कलित किया। दूसरे शुक्ल यजुर्वेद या वाजसनेयिसंहिता जिसे वैशम्पायनके शिष्य याज्ञवल्क्यने सङ्कलित किया। ऋग्वेदके मन्त्रोंका पाठ यदि यज्ञके किसी कर्ममें किया जाय तो यजुस् कहलावेंगे। यजुर्वेदके मन्त्रोंमें गङ्गा, यमुना आदि नदियों और कुरुपाञ्चाल आदि देशोंके नाम आये हैं। रुद्रके नामान्तर महादेव, शङ्कर, शिव इत्यादि लिखे हैं। विष्णुका भी नाम इन मन्त्रोंमें आया है। युरोपियनोंकी कल्पना है कि ऋग्वेदकी अपेक्षा यजुर्वेद पिछला है।

सामवेदके मंत्र जो गागाकर पढ़े जाते हैं। इस वेदमें लगभग १५४९ मन्त्र मिलते हैं इनमेंसे केवल ७५ साममन्त्रोंको छोड़के शेष सभी ऋग्वेदमें भी हैं। सामोंके पढ़नेका प्रयोजन सोमयागमें पड़ता है। ऋग्वेदसे भिन्न कुछ ऐतिहासिक तत्त्व न पा सकनेके कारण युरोपियनोंने इस ग्रन्थको विशेष नहीं माना है।

अथर्ववेदमें लगभग ६००० मन्त्र मिलते हैं जिनमेंसे प्रायः १२०० ऋग्वेदमें भी पाये जाते हैं। अथर्वके मन्त्र भी कर्मकाण्ड हीसे सम्बन्ध रखनेवाले हैं। जन्म, विवाह, मृत्यु और राज्याभिषेक आदिके कृत्यसम्बन्धी मन्त्र तथा मारण, उच्चाटन,

आरोग्य, चिरजीविता, शत्रुनाश आदिके उपयोगी मन्त्र भी इस वेदमें सङ्कलित हैं। विशेष करके ऐहिक विषयोंसे सम्बद्ध होनेके कारण पारलौकिक (ऋक् यजुस् और सामवेद) त्रयीके साथ स्वाध्यायमें इसके पाठकी विधि नहीं मानी गयी है। युरोपियनोंकी कल्पना है कि अथर्ववेद चारों वेदोंमेंसे सबसे पिछला है और उस समय बना होगा जब आर्य लोग उत्तरी भारतवर्षमें सर्वत्र अर्थात् बंगाल, बिहार आदि प्रदेशोंमें भी फैल चुके होंगे।

ऊपर जिन चार वेदोंका वर्णन किया गया उन्हें केवल संहिता वा मन्त्रभाग समझना चाहिये। वास्तवमें इसका निर्णय करना कठिन है कि वेदकी संहिता कब रची गयी। जैसे अनादि कालसे सृष्टि चली आती है वैसे ही अनादि कालसे ऋषियों-के प्रोक्त मन्त्र भी संसारमें प्रचलित हैं। हां जिस वैदिक मन्त्र में जिस ऋषिका वा राजा आदिका उल्लेख है वह मन्त्र उस ऋषि वा उसी राजाके समयमें कहा गया होगा यह बात मानी जासकती है। जैसे जिस मन्त्रमें राजा भरतका नाम आया है वह राजा भरत हीके समयमें वा उससे पीछे कहा गया। निदान सब वैदिक मन्त्रोंके समयका ठीक ठीक पता न लगनेसे यह कहना अनुचित न होगा कि वेद अनादि हैं। इसी प्रकारसे यह भी नहीं कहा जा सकता कि वेद समग्र इतना ही है क्योंकि इसका पक्का प्रमाण नहीं मिलता कि वेदके सभी मन्त्र आज-कलकी प्रचलित पुस्तकोंमें सन्निवेशित हैं। महाभारतमें वर्णित कुरुक्षेत्रके युद्धके समयमें पराशरके पुत्र कृष्णद्वैपायन व्यासने वैदिक मन्त्रोंका सङ्कलन किया। जितना भाग उनलोगोंको मिल सका वह पूर्ण ही था अथवा वह उतना ही था जितना कि अब पाया जाता है इसका भी ठीक नहीं है। वेदका

समय और समग्र भाग ऐतिहासिक रीतिसे किसीको विदित होना कठिन है। वेदोंको सङ्कलन करने हीके कारणसे कृष्ण द्वैपायनका नाम वेदव्यास पड़ा। ऐतिहासिक दृष्टिसे इतना कह देना ही उचित है कि वेदोंके प्रचलित मन्त्रोंका सङ्कलन कुरुक्षेत्र युद्धके समयके लगभग हुआ।

यह तो हुई संहिताकी बात। केवल संहिता भागही वेद माना जाता हो सो नहीं। वेदहीमें ब्राह्मण, आरण्यक तथा उपनिषद् भाग भी संमिलित हैं इस कारण उक्त ग्रन्थोंको भी वेद ही माना जाता है। वैदिक कर्मकाण्डकी प्रक्रिया बनानेवाले तथा उनसे सम्बन्ध रखनेवाले कथानकोंका विवरण ब्राह्मण नाम वैदिक ग्रन्थोंमें किया गया है। उपासना अर्थात् देवपूजन वा ध्यान और ज्ञानसे सम्बन्ध रखनेवाले विषयोंका वर्णन जिन वेदोंमें है उनका नाम आरण्यक और उपनिषद् है। प्रत्येक वैदिक संहितासे सम्बद्ध ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् हैं। आरण्यकमें वनवासी ऋषियोंने अधिकारी शिष्योंको जो शिक्षा अपने आश्रमोंमें दी, सो लिखी है और उपनिषदोंमें अनेक उपाख्यानों आदिके द्वारा एक आत्मा वा ब्रह्मकी वेसिद्धि की गयी है। उपनिषदोंका सिद्धान्त भी अद्वैतवाद ही है। वेदोंके सङ्कलनकालकी तरह ब्राह्मण, आरण्यक और उपनिषद् ग्रन्थोंके सङ्कलनकालका भी कुछ पता नहीं लगाया जा सकता। शतपथ ब्राह्मणमें परीक्षित्के पुत्र जनमेजय तथा उनके भाइयोंके नाम मिलते हैं जिससे अनुमान होता है कि यह ग्रन्थ जनमेजयसे कुछही पीछे लिखा गया होगा। इससे अनुमान किया जाता है कि संहिताभाग और ब्राह्मणादि ग्रन्थोंके सङ्कलनमें प्रायः १५० वर्षसे अधिक समयका भेद न होगा। क्योंकि कुरुक्षेत्रके युद्धके ठीक पीछे परीक्षितका जन्म हुआ। ३६ वर्षकी

अवस्थामें हस्तिनापुरके राजसिंहासनपर विराजमान हुए। महाराज परीक्षितने ६० वर्षतक राज किया। और जनमेजयका राज्यकाल प्रायः ४० वर्ष मानलें, क्योंकि वे अपनी किशोरावस्थामें राजा हुए थे, तो उसके कुछ पीछे कुरुक्षेत्रके युद्धको हुए प्रायः १५० वर्ष बीत जाते हैं।

चार उपवेदोंके मध्य ऋग्वेदका उपवेद आयुर्वेद या वैद्यक शास्त्र है। उसके निर्माणकर्त्ता धन्वन्तरि, भरद्वाज, अग्नि और अग्निवेश आदि ऋषि हैं। इन ऋषियोंके ग्रन्थका आशय लेकर चरकने एक संक्षिप्त वैद्यक ग्रन्थ बनाया जो चरकसंहिताके नामसे प्रसिद्ध है। लोग कहते हैं कि चरक कश्मीरके तुरुष्क राजा कनिष्कके यहां राजवैद्य थे। इस प्रकार चरकसंहिताके लिखे जानेका समय विक्रमकी द्वितीय शताब्दी है। चरकसंहितामें आठ स्थान या प्रकरण हैं। सुश्रुत नाम पण्डित एक दूसरे वैद्यक ग्रन्थ सुश्रुतसंहिताके लिखनेवाले हैं। इनके ग्रन्थमें घावोंके चीर फाड़की प्रक्रिया तथा उसके उपयोगमें आनेवाले लगभग १२७ यन्त्रोंका वर्णन है। लोग अनुमान करते हैं कि सुश्रुत विक्रमकी चौथी शताब्दीमें रहे होंगे। सुश्रुतके पीछे वागभट आदि कई एक विद्वान् वैद्य संस्कृत भाषामें वैद्यक ग्रन्थोंके लेखक हो गये हैं। इन ग्रन्थोंके देखनेसे भली भाँति विदित हो जाता है कि प्राचीन कालमें कहांतक हिन्दुओंने वैद्यक या चिकित्साशास्त्रमें उन्नति प्राप्त कर ली थी।

यजुर्वेदका उपवेद धनुर्वेद है, उसे विश्वामित्र नाम ऋषिने बनाया है। यह धनुर्वेद कब रचा गया इसका ठीक ठीक निर्णय होना कठिन है। धनुष शब्दका अर्थ चाप प्रसिद्ध है परन्तु धनुर्वेद शब्दमें धनुस् शब्दसे आयुध मात्रका ग्रहण किया जाता है। आयुध चार प्रकारके होते हैं। एक तो वे जो फेंककर मारे

जाते हैं जैसे चक्र आदि इन्हें मुक्त कहते हैं। दूसरे वे जो पकड़े ही पकड़े चलाये जाते हैं जैसे खड्ग आदि इन्हें अमुक्त कहते हैं। तीसरे वे जो दोनों प्रकारसे अर्थात् फेंककर और पकड़े हुए भी चलाये जाते हैं जैसे गदा बरछी आदि इन्हें मुक्तामुक्त कहते हैं और चौथे जो यन्त्रद्वारा चलाये जाते हैं जैसे बाण, शतघ्नी इत्यादि इन्हें यन्त्रमुक्त कहते हैं।

सामवेदका उपवेद गान्धर्व वेद या सङ्गीतशास्त्र है। इस विषयके ग्रन्थको भरत मुनिने बनाया है और उसका नाम नाट्यशास्त्र है। इस ग्रन्थमें गाने बजाने और नाचनेके नाना-प्रकारके भेद बताये गये हैं। भरत मुनिके समयका ठीक पता नहीं लगता।

अथर्ववेदका उपवेद अर्थशास्त्र है जिसकी अनेक शाखाएँ हैं यथा नीतिशास्त्र, शालिहोत्र (अश्वविद्या), शिल्पशास्त्र (कारीगरी), सूपशास्त्र (रसोई बनाना), चौसठ कला इत्यादि अनेक विषय इस शास्त्रके अन्तर्गत हैं। इनमेंसे नीतिशास्त्रके रचयिता शुक्र, विदुर, कामन्दक, चाणक्य इत्यादि अनेक विद्वज्जन हैं। यद्यपि चाणक्यका समय विक्रमसे लगभग २६३ वर्ष पूर्व प्रायः निश्चित ही है और चाणक्यका 'अर्थशास्त्र' इस विषयका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है। तथापि अर्थशास्त्रकी प्रत्येक शाखाके विस्तारका समय ठीक ठीक निर्णय करना दुर्घट है।

वेदाङ्गोंमेंसे शिक्षाका अध्ययन करनेसे अक्षरोंके शुद्ध उच्चारणकी रीति विदित होती है। उदात्त, अनुदात्त, स्वरित और ह्रस्व, दीर्घ, प्लुत इत्यादि स्वरोंके विशेष नियम हैं इनका और ऐसे ही व्यञ्जनोंके उच्चारणके परस्परके भेदका बोध शिक्षाद्वारा होता है। स्वरादिके यथार्थज्ञानके बिना मन्त्रोंके अशुद्ध पाठसे अनिष्ट होता है।

शब्दों और वाक्योंका यथोचित रीतिसे प्रयोग करना व्याकरण सिखलाता है। पाणिनि जो विक्रमसे ७५० वर्ष पूर्व हुए हैं जिनकी माताका नाम दाक्षी था और जो शलातुर* नाम स्थानके निवासी थे शिक्षा और व्याकरणशास्त्रके बनाने-वाले आचार्य हैं। पाणिनिने अष्टाध्यायीमें व्याकरणके सब नियम सूत्र रूपसे अति संक्षिप्त करके लिखे हैं। इसपर कात्या-यन मुनिने विक्रमसे लगभग ३४३ वर्ष पूर्व वार्त्तिक रचे। पतञ्जलि-ने जो पटनेके† निवासी थे जिनकी माताका नाम गोणिका था और जो विक्रमसे लगभग ९८ वर्ष पूर्व मगधके शुङ्गवंशी राजा पुष्यमित्रके समयमें विद्यमान थे, पाणिनिके व्याकरणपर और वार्त्तिकोंपर महाभाष्य लिखा।

वेदके मन्त्र छन्दोंमें रचे गये हैं अतएव इन छन्दोंके पढ़ने-की रीति बतलानेके लिये छन्दःशास्त्र नाम वेदाङ्गका प्रयोजन पडता है। छन्द दो प्रकारके हैं। लौकिक और अलौकिक। अलौकिक छन्द वेदमें पाये जाते हैं। दोनों प्रकारके छन्दोंका निरूपण छन्दोविवृति नाम ग्रन्थमें पिङ्गल नागने किया है। इनके समयका पता नहीं है और न यही विदित है कि ये कहां रहते थे। गायत्री, उष्णिक्, अनुष्टुप्, वृहती, पंक्ति, त्रिष्टुप् और जगती ये सातों छन्द और इनके अवान्तर भेदोंसे भिन्न भिन्न और भी बहुतेरे वैदिक छन्द हैं। लौकिक छन्द जैसे उपजाति, इन्द्रवज्रा, वसन्ततिलका आदि जो इतिहास और

---

* अनेक विद्वानोंका मत है कि पाणिनिकी जन्मभूमि 'तुरी' नामक ग्राम था, जो पेशावरके समीप था। सम्पादक।

† पतञ्जलिका नाम 'गोनर्दीय' भी है और विद्वानोंके मतमें 'गोनर्द' मवध प्रान्तके वर्तमान गोंडेका नाम है इसलिये पतञ्जलि गोंडेके निवासी थे पटनेके नहीं। सम्पादक।

पुराणों आदिमें पाये जाते हैं उनके नियम बतलानेवाले और भी ग्रन्थ वृत्तरत्नाकर आदि पीछे बने हैं।

वेदोंमें प्रयुक्त शब्दोंकी व्युत्पत्ति और निरुक्तिका जानना भी आवश्यक है। जिस अङ्गमें इसका वर्णन है उसे निरुक्त कहते हैं। निरुक्तके रचयिता यास्क विक्रमसे लगभग ८४३ वर्ष पूर्व रहे होंगे। इन्होंने वैदिक शब्दोंकी व्युत्पत्ति और उनके अर्थके यथोचित ज्ञानकी रीति निरुक्तमें लिखी है। वेदके बहुतसे मन्त्रोंका ठीक अर्थ निरुक्तहीके द्वारा ज्ञात होता है अतएव यह एक बड़ा प्रामाणिक ग्रन्थ माना गया है।

वेदमें कहे हुए किस किस कर्मके करनेका क्या क्या क्रम है इसको वह वेदाङ्ग बतलाता है जिसे कल्प कहते हैं। कल्प छोटे छोटे सूत्रोंमें लिखे गये हैं। कल्पसूत्रोंके तीन विभाग हैं श्रौत सूत्र, गृह्यसूत्र और धर्मसूत्र। श्रौतसूत्र वे हैं जिनका सम्बन्ध श्रुतियों अर्थात वेदों, ब्राह्मणों, आरण्यकों और उपनिषदोंसे है। गृह्यसूत्र वे हैं जिनमें गृहस्थीके प्रत्येक कर्म करनेकी विधि विस्तारपूर्वक लिखी है। बच्चेके जन्मसे लेकर मरणपर्यन्त जो जो कर्म वेदकी रीति अनुसार किये जाने चाहिये उन सबके अनुष्ठानकी रीति इन गृह्यसूत्रोंमें लिखी है।

धर्मसूत्रोंमें वर्णों और आश्रमोंके धर्मोंका यथोचित रीतिसे वर्णन लिखा गया है। आचार व्यवहार आदिके जाननेके लिये यही सूत्र काममें लाये जाते हैं। इन्हींके आधारपर मनुस्मृति प्रभृति शास्त्रोंकी रचना हुई है।

लाट्यायन, द्राह्यायण इत्यादि श्रौतसूत्र, आश्वलायन, गोभिल, पारस्कर इत्यादि गृह्यसूत्र और बौधायन, आपस्तम्ब, कात्यायन आदि धर्मसूत्र हैं। कुछ युरोपियनोंका मत है कि इन कल्पसूत्रोंके रचे जानेका समय विक्रमसे लगभग ४४३से

१४३ वर्ष पूर्वतकका है।

वेदमें करने योग्य जो कर्म कहे गये हैं उनका नियत समयपर होना आवश्यक है, अतएव समयका ठीक ठीक ज्ञान प्राप्त करनेके लिये ज्यौतिष शास्त्र लिखा गया है। इसमें तिथि, वार, नक्षत्र, मास, वर्ष आदि समयविभागोंके जाननेकी रीति निर्दिष्ट है तथा सूर्य, चन्द्र, मङ्गल आदि ग्रहोंकी गति आदिका वर्णन गणितशास्त्रद्वारा बतलाया गया है। ज्यौतिषका सबसे प्राचीन ग्रन्थ 'पाराशरी संहिता' है जिसे पराशरने बनाकर प्रकट किया। यदि ये पराशर व्यासके पिता हैं तो इस ग्रन्थके निर्माणका समय कुरुक्षेत्रके युद्धका समय ही है, पर यदि ये पराशर कोई दूसरे हों जैसा कि युरोपियन लोग अनुमान करते हैं तो यह ग्रन्थ विक्रमसे लगभग १५० वर्ष पूर्व बना होगा। इसमें यवन आदि जातियोंका उल्लेख भी है।

ज्यौतिषका दूसरा प्राचीन ग्रन्थ गर्गसंहिता है जिसे गर्गाचार्यने जो युरोपियनोंके मतानुसार पराशरसे प्रायः १०० वर्ष पीछेके हैं बनाया। वह अपने ग्रन्थमें लिखते हैं कि "इस समय भारतवर्षमेंसे शकोंने यवनोंको निकाल दिया है और आप शासन कर रहे हैं।" यवनोंकी ज्यौतिषशास्त्रविषयक व्युत्पत्तिकी प्रशंसा भी गर्गने अपने ग्रन्थमें की है। आर्यभटीय नाम तीसरे प्रसिद्ध ज्यौतिषग्रन्थके लेखक आर्यभट्ट पटनेके निकट संवत् ५३३में जन्मे थे। आर्यभट्टने लिखा कि पृथ्वी अपनी धुरीपर घूमती है और सूर्य तथा चन्द्रग्रहणका ठीक ठीक कारण भी बतलाया है, आर्यभट्टने पृथ्वीका प्रायः ठीक ठीक विस्तार निर्णय करके लिखा है और गणितशास्त्रका यथेष्ट उपयोग किया है। बृहत्संहिता या वाराही संहिता नाम प्रसिद्ध ज्यौतिषग्रन्थके रचयिता वराहमिहिर मालवदेशके निवासी

थे। इनका जन्म संवत् ५५६मे हुआ था और लगभग संवत् ४६६में परलोक सिधारे। इनके ग्रन्थमे भूगोल, खगोल, गणित, वनस्पति और प्राणिविद्या आदि सभीका विस्तारपूर्वक वर्णन देखनेमें आता है। ब्रह्मस्फुट सिद्धान्तके रचयिता विक्रमकी आठवीं शताब्दीके पूर्वार्धमें रहे होंगे। इन्होंने अपने ग्रन्थमें गणित और फलित दोनों प्रकारकी विद्यासे काम लिया है। बारहवीं शताब्दीमें भास्कराचार्यने सिद्धान्तशिरोमणि, लीलावती और बीजगणित रचकर उस समयके हिन्दुओंके ज्यौतिष-शास्त्रके ज्ञानका पूरा पूरा परिचय दिया है। लल्ल, श्रीधर, इत्यादि और भी अनेक प्राचीन ज्यौतिषशास्त्र ग्रन्थोंके निर्माता हुए हैं।

वेदके छओ अङ्गोंका क्रमपूर्वक वर्णन ऊपर लिखा गया है। वेदके चार उपाङ्गोंमेंसे पुराण भी एक अङ्ग है। हिन्दुओंके बीच यह प्रवाद प्रचलित है कि पुराणग्रन्थ व्यासजीके बनाये हुए हैं और उनकी संख्या अठारह है। इन पुराणोंमें सृष्टि, सृष्टिकी परम्परा, वंश, मन्वन्तर और वंशमें उत्पन्न मनुष्योंके चरित्र, इतिहास आदि लिखे गये हैं। उन अठारह पुराणोंके नाम ये हैं—ब्रह्म, पद्म, विष्णु, वायु, श्रीमद्भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त्त, लिङ्ग, वाराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड तथा ब्रह्माण्ड। इन अठारह पुराणोंके अतिरिक्त और भी नाना पुराण हैं जिनमेंसे अठारह उपपुराणोंको व्यासजीके पिता पराशरजीने बनाया, ऐसी प्रसिद्धि है। उपपुराण ये हैं—सनत्कुमारसंहिता, नृसिंह पुराण, नन्दिपुराण, शिवधर्मोत्तर, दुर्वाससंहिता, ब्रह्माण्ड-पुराण, मनुसंहिता, उशनस् संहिता, वरुणपुराण, कालीपुराण, वसिष्ठसंहिता, वसिष्ठकृत लिङ्गपुराण, महेश्वरपुराण, साम्ब-

पुराण, सूर्यपुराण, पराशरसंहिता, मरीचिपुराण, तथा भृगुसंहिता। केवल इतनी ही संख्या पुराणों और उपपुराणोंकी हो सो नहीं, और भी कई एक पुराण जैसे शिवपुराण, कल्किपुराण, देवीभागवत, बृहन्नारदीयपुराण आदि हैं जिनकी संख्याकी परिमिति नहीं है।

पुराणोंके विषयमें प्रसिद्ध तो यही है कि इन्हें व्यासजी तथा उनके पिता पराशरने बनाया है पर कई कारणोंसे इस सिद्धान्त और प्रचलित प्रवादोंमें लोगोंको सन्देह है। एक तो यह कि प्रायः आजकल जो पुराणग्रन्थ देखनेमें आते हैं उनमें परस्पर इतना भेद पाया जाता है कि जिससे मानना पड़ता है कि ये एकही व्यक्तिके बनाये नहीं हो सकते। दूसरे यह भी संभव नहीं जान पड़ता कि ये सब एक ही समयमें बने हैं। तीसरे कई एक पुराणोंके विषयमें सन्देह भी है कि ये पुराण हैं वा उपपुराण। व्यासके बनाये हैं वा पराशरके, इत्यादि। इसके अतिरिक्त पुराणोंमें क्षेपक भी पीछेसे बहुत मिला दिये गये हैं जिन्हें मूलसे पृथक् करना कठिन हो गया है। ऐसी अवस्थामें यह अनुमान करना कि पराशर तथा व्यासजीके बनाये वास्तविक पुराण काल पाकर बौद्धों वा म्लेच्छोंके समयमें लुप्त हो गये हों और पीछेके पण्डितोंने कुछ अपनी स्मृतिसे और कुछ कल्पनासे बौद्धादिकोंसे ब्राह्मणधर्म बचानेके अर्थ रच रखे हों और पुराणोंके नामसे उन्हें प्रसिद्ध किया हो, असङ्गत नहीं है। तथापि वैदिक धर्मके प्रायः अनुकूल होनेके कारण ये पुराणग्रन्थ हिन्दुओंमें प्रामाणिक ही गिने जाते हैं। यद्यपि आधुनिक पुराणोंमेंसे कई व्यास वा पराशरके बनाये न भी सिद्ध हो सकते हों तथापि उन्हीं ऋषियोंसरीखे विद्वानों और पण्डितोंके बनाये ये ग्रन्थ अवश्य

होंगे और उतने अधिक अर्वाचीन भी न होंगे जितना कि आजकलके युरोपियन कल्पना करते हैं। प्राचीन भारतवर्षका इतिहास लिखनेमें जितनी सहायता इन पुराणोंसे मिलती है उतनी किसी और ग्रन्थसे नहीं मिलती। पुराणोंके ऐतिहासिक विषय विश्वासयोग्य भी हैं जिसका यही प्रमाण है कि मौर्यो तथा उनके उत्तराधिकारी क्षत्रिय राजवंशोंकी जैसी वंशावली पुराणोंमें पायी गयी प्रायः ठीक वही शिलालेख इत्यादि प्रमाणान्तरोंसे सिद्ध हुई है। पुराणोंमें श्रीमद्भागवत सबसे अधिक उत्कृष्ट, प्रतिष्ठित और प्रचलित है। इसके बारहवें स्कन्धमें जहाँ कलियुगके भावी राजाओं और राज्योंका वर्णन किया है वहाँपर गुप्तवंशके राजाओंके राज्यवर्णनके पूर्वतकका उल्लेख मिलता है। युरोपियन लोग श्रीमद्भागवत आदि पुराणोंका रचनाकाल गुप्तोंहीके समयमें मानते हैं अर्थात् यह कि विक्रमकी चौथी वा पांचवीं शताब्दीमें ये ग्रन्थ बने। हिन्दू लोग इन कल्पनाओंको स्वीकार नहीं करते। ऐतिहासिक दृष्टिसे श्रीमद्भागवत, विष्णु, मत्स्य, वायु और ब्रह्माण्डपुराण विशेष ध्यानसे देखने योग्य हैं।

दूसरा उपाङ्ग न्यायशास्त्र है। जिस गौतम ऋषिने न्यायसूत्र लिखे हैं उनके समयका ठीक पता नहीं चलता। गौतमने प्रमाण प्रमेय आदि सोलह पदार्थोंका निरूपण किया है और सिद्ध किया है कि इन्हींको यथोचित रीतिसे जान लेनेसे तर्कशास्त्रमें व्युत्पत्ति होती है और इन्हीं सोलह पदार्थोंका सम्यक् ज्ञान मोक्षप्रद है। गौतमके बताये तर्कशास्त्रके नियम आजतक विचारशील विद्वानोंमें प्रतिष्ठाकी दृष्टिसे देखे जाते हैं और परस्पर वादविवादके समय लोग सदा इनका सहारा लेते हैं। गौतमके मतमें सृष्टि परमाणुओंसे बनी है। ईश्वर जगत्-

का निमित्त कारण है और दुःखोंका जड़से मिट जाना ही मोक्ष है। वैशेषिक शास्त्र भी इसी न्यायके अन्तर्गत माना गया है। इसके प्रवर्तक कणाद मुनि हैं। इनका भी यही मत है कि संसारके पदार्थ परमाणुओंसे बने हैं और ईश्वर जगत्का निमित्त कारण है। इनके मतमें भी दुःखका जड़से मिट जाना ही मोक्ष है पर कणादने केवल छः पदार्थोंहीको मुख्य माना है जो द्रव्य, गुण, कर्म, सामान्य समवाय और विशेषके नामसे प्रचलित हैं। "विशेष" वह पदार्थ है जो प्रत्येक परमाणुओंमें परस्परके भेदका परिचायक है। इसी कारणसे कणादके शास्त्रका नाम वैशेषिक रखा गया है। आत्माके विषयमें गौतम और कणादका मत तथा सिद्धान्त बिलकुल एकही सा है। गौतमके समान कणादके भी समयका ठीक पता नहीं है। कणादका नामान्तर पुराणोंमें "उलूक" लिखा मिलता है जिससे स्पष्ट अनुमित होता है कि कणाद भी गौतमकी नाईं कोई परम प्राचीन ऋषि हैं। गौतमका नामान्तर "अक्षपाद" भी है।

*गौतमप्रणीतन्यायसूत्रपर वात्स्यायनका और कणादके वैशेषिकपर प्रशस्त पादका भाष्य है पर इन दोनों भाष्योंके रचे जानेका समय भी नहीं विदित होता इतना तो अवश्य है कि ये ग्रन्थ भी बहुत प्राचीन हैं। इनके पश्चात भी न्यायशास्त्रपर ग्रन्थ लिखनेवाले अनेक विद्वान हुए जिनमेंसे वाचस्पति मिश्र ८वी शताब्दीमें, उदयनाचार्य १२वीं शताब्दीमें, रघुनाथ शिरोमणि, पक्षधर मिश्र १४वी शताब्दीमें और गणेश, जगदीश, विश्वनाथ तथा शङ्कर मिश्र १६वी शताब्दीमे परम प्रसिद्ध तार्किक हो गये हैं। बङ्गाल प्रान्तके नदिया नाम नगरमें अबतक न्याय-

* बहुतसे विद्वानोंका मत है कि वात्स्यायनभाष्यके निर्माता प्रसिद्ध चाणक्य हैं। और गतापाद भाष्यके रचयिता, गौतम मुनि है। सम्पादक

शास्त्रके पठनपाठनका क्रम प्राचीन पद्धतिपर चला आरहा है।

तीसरा उपाङ्ग मीमांसा है। मीमांसाका अर्थ है-निर्णय। मीमांसाशास्त्रके भी दो भाग हैं। एक पूर्व मीमांसा और दूसरा उत्तरमीमांसा या वेदान्तशास्त्र। पूर्वमीमांसाशास्त्रमें वेदोंमें विहित यज्ञादि कर्मोंके बारेमें तर्कवितर्कपूर्वक धर्म वा कर्त्तव्यकर्मोंकी व्याख्या की गयी है। पूर्वमीमांसाशास्त्र-के कर्ता महामुनि जैमिनि हैं जो व्यासजीके समकालीन और उनके शिष्य थे। जैमिनिके मीमांसासूत्रोंपर शबरस्वामीने भाष्य लिखा है। यह शबरस्वामी कब और कहां हुए इसका कुछ ठीक पता नहीं लगता। विक्रमकी पांचवीं और छठी शताब्दि-योंमें पूर्वमीमांसाके विद्वान् दो प्राचीन आचार्य कुमारिल और प्रभाकर ऐसे हो गये हैं जिन्होंने वादविवाद करके बौद्धमतका प्रबल खण्डन किया है।

महाराज कृष्णद्वैपायन व्यासजीने जो कुरुक्षेत्रके युद्धके समय संसारमें विद्यमान थे वेदान्तसूत्रोंको लिखकर वेदों तथा उपनिषदोंमें प्रतिपादित आत्मा वा ब्रह्मके ज्ञानसे मोक्ष होता है, इसका निरूपण किया है। वेदान्तसूत्रोंपर शङ्करा-चार्य (आठवीं शताब्दी, रामानुज (१२वीं शताब्दी) मध्व (१३वीं शताब्दी) वल्लभ (१६वी शताब्दी), विज्ञानभिक्षु निम्बार्काचार्य आदि अनेक विद्वानोंने अपनी अपनी बुद्धिके अनु-सार भाष्य लिखे हैं। इनमेंसे भगवत्पाद शङ्कराचार्यकृत भाष्य शारीरकमीमांसाके नामसे सविशेष प्रसिद्ध और प्रमाणिक है। जब भारतमें बौद्ध मत बहुत बढ़ गया था तब शङ्करा-चार्यहीने वादविवादके द्वारा बौद्ध सिद्धान्तोंकी तुच्छता सिद्ध करके उसका बल घटाया। शङ्कराचार्यने वेदान्तसूत्रोंके भाष्योंमें विचारशक्तिकी पराकाष्ठा दिखलायी है। युरोपीय

भी मत है कि आजतक किसी देशके किसी विद्वान्ने शङ्कराचार्यकी युक्तिसे बढ़कर युक्ति किसी बातके सिद्ध करनेमें प्रयोग नहीं की।

चौथा उपाङ्ग धर्मशास्त्र है। इसीमें कपिल-मुनि-विरचित सांख्य, पतञ्जलि-मुनि-लिखित योग, धर्म प्रधान इतिहास ग्रन्थ और स्मृति आदिक हैं। सांख्य और योगकी गणना षड्दर्शनोंमें भी की जाती है। कपिलने सांख्यशास्त्रको संसारमें प्रचलित किया। कपिलमुनि किस समयमें हुए इसका ठीक निर्णय नहीं हो सकता। सांख्य शब्द संख्या वा गिनतीसे बना है। सांसारिक तत्वोंकी यथोचित रीतिसे गिनती करनेके कारण कपिलने वेद और युक्ति दोनोंका प्रामाण्य गृहण किया है कपिल मुनिके ग्रंथका नाम सांख्यशास्त्र रखा गया है। उनका सिद्धान्त द्वैतमत है और वह संसारको सत्य मानते हैं। सांख्यमतमें प्रकृति और पुरुष दो पदार्थोंकी विवेचना की गयी है जिनमेंसे पुरुष केवल भोक्ता है और प्रकृति परिणामिनी है अर्थात् रूपान्तरको प्राप्त होती है। पुरुष अनेक हैं। पुरुष अपने कर्मानुसार उच्च वा नीच दशामें जन्म पाता है। पुरुषका शरीरके बन्धनसे छूटनाही मोक्ष है। तीनों प्रकारके दुःखोंका अभावही मोक्ष है।

योगशास्त्रके रचयिता भगवान् पतञ्जलि कई लोगोंके मतमें वही हैं जिन्होंने व्याकरणका महाभाष्य रचा और जो शुङ्गवंशी राजा पुष्यमित्रके राज्यकालमें विद्यमान थे। तत्वोंकी संख्या तो योगशास्त्रमें पतञ्जलिने भी कपिल मुनिके मतानुसार मानी है पर सांख्य और योगमें यह भेद है कि योगमें सबसे अधिक सामर्थ्यशाली पुरुषविशेषको ईश्वर सिद्ध किया है। ईश्वरकी सत्ताका अपलाप तो कपिल भी नहीं करते

है पर उसकी सिद्धिपर युक्तियोंके द्वारा उन्होंने बल नहीं दिया है। योगशास्त्रमें युक्तिसे ईश्वरकी सिद्धि मानी गयी है। आत्मा वा पुरुष अविनाशी है और ईश्वरके निरन्तर ध्यानसे वह शरीरके बन्धनसे छूटकर मोक्ष पाता है। योगका अर्थ "चित्तवृत्तिको सांसारिक पदार्थोंकी ओरसे रोककर ईश्वरमें लगाना" है। योगशास्त्रमें वह प्रक्रियाएं बतायी गयी हैं जिनसे मनुष्य अपने चित्तको संसारके विक्षेपक पदार्थोंसे हटाकर ईश्वरमें लगा सके। पतञ्जलिके योगसूत्रोंपर व्यास नामक किसी विद्वान्ने भाष्य रचा है। योगसूत्रोंपर भोजराज-की वृत्ति भी है।

धर्मप्रधान इतिहासग्रन्थ रामायण और महाभारत हैं जिनमेंसे रामायण अधिक प्राचीन है। रामायणको महर्षि वाल्मीकिने रचा। वाल्मीकि मुनि अयोध्याके महाराज राम-चन्द्रके समकालीन हैं। प्रसिद्ध तो यही है और रामायणमें यह लिखा भी है कि रामचन्द्रके राज्यकालहीमें वाल्मीकिने रामायण रचकर उनके पुत्र कुश और लवको कण्ठस्थ करायी और वे बालक बड़े मधुर स्वरसे इसका गान किया करते। जब रामने अश्वमेध यज्ञ रचा था तो वाल्मीकिजीकी आज्ञा पाकर कुश और लवने यज्ञमें उपस्थितहो मधुर ध्वनिसे गा गा कर रामायण सुनायी थी जिससे रामचन्द्र और उनकी राजसभाके सभी सहृदय मोहित हो गये थे। उक्त इतिहाससे सिद्ध होता है कि रामायणका कुछ न कुछ अंश अवश्यही राम चन्द्रहीके समयमें रचा गया था चाहे समस्त ग्रन्थ उसी सम-यमें न बना हो। सूर्यवंशी राजाओंकी नामावली जो रामा-यणमें मिलती है वह अन्य पुराणोंमें लिखित वंशपरम्पराके साथ मेल नहीं खाती। इसका कारण यही जान पड़ता है कि

रामायणमें उन्हीं राजाओंके नाम वंशावलीमें रख दिये गये हैं जिन प्रसिद्ध प्रसिद्ध प्राचीन राजाओंके नाम उस समय लोगों को स्मरण थे। नहुष और ययाति जो पुराणोंमें चन्द्रवंशी राजा प्रसिद्ध हैं रामायणमें सूर्यवंशी मनु तथा इक्ष्वाकुकी सन्तान और अयोध्याधिपति रामचन्द्रके पूर्वजोंमें गिने गये हैं जो नितान्त असम्भव है। ऐसी अवस्थामें पुराणोंकी वंशप रम्परा अधिक शुद्ध और प्रामाणिक जँचती है। रामायणक वंशपरम्परा स्मृतिमूलक होनेसे अशुद्ध और गड़बड़ समझ पडती है। सूर्यवंशकी सन्तानपरम्परामें अग्नि वर्णके पुत्र प्रसुश्रुकतकका नाम मिलता है जिससे यह अनुमान होता है कि इस वंशावलीके लिखे जानेके समय वह राजा प्राचीन प्रसिद्ध राजाओंके बीचमें गिना जा चुका था। वास्तवमें प्रसुश्रुक रामचन्द्रका पूर्वज नहीं किन्तु उनसे प्रायः २५ पीढ़ी पीछे हुआ है। यह राजा महाभारतके समयसे पहलेका है अतएव रामा यण ग्रन्थ सूर्यवंशी राजा प्रसुकके समयमें अर्थात् कौरवों और पाण्डवोंके युद्धसे कुछ पहले पूर्ण होकर उस अवस्थाको प्राप्त हुआ होगा जिसमें अब पाया जाता है।।

रामायण इतिहास ग्रन्थ है और साथही काव्य भी। सस्कृत भाषामें रामायणके पूर्व और कोई काव्य न लिखा गया होगा इससे लोगोंने इसका नाम "आदिकाव्य" रखा है। अनुष्टुप, उपजाति, वसन्ततिलका आदि लौकिक छन्दोंमें सबसे पहली रचना होने और ऋतु, देशविशेष आदिका रोचक वर्णन रहनेके कारण लोग इसे काव्य कहते हैं। प्राचीन कालके राजा और प्रजाका वर्णन भी इसमें पाया जाता है अतएव लोग इसे इति- हास भी कहते हैं। इतिहासके सम्बन्धमें यह ग्रन्थ प्रायः पुरा णोंहीका सा है। यदि पुराणोंमें अनेक कथाएं रूपक वा उपा-

ख्यानकी रीतिसे इसलिये लिखी गयी हैं कि लोगोंको विशेष रोचक और उपदेशप्रद हो तो रामायण में भी ऐसी कथाएं मिलेंगी जो रूपक या उपाख्यानकी रीतिसे लिखी गयी हैं। केवल इतिहासनाम रखनेसे रामायणका प्रामाणय अधिक मानना और केवल पुराण नाम पड़नेसे पुराणोंकी प्रामाणिकतामें सन्देह करना, भूल है। दोनोंहीमें रूपक अत्युक्ति, और उपाख्यान आदि भागोंको सावधानता पूर्वक अलग करनेसे सच्ची ऐतिहासिक घटनाएं विदित हो सकती हैं।

रामायणमें अयोध्याके राजा दशरथके पुत्र रामचन्द्रका पूरा पूरा इतिहास विस्तारपूर्वक लिखा गया है और सूर्यवंशके इतिहासमें ऊपर जो रामचन्द्रका वर्णन लिखा गया है सो इसी रामायणके सहारेपर लिखा गया है। रामायणमें सात काण्ड और चौबीस सहस्र श्लोक हैं। सातों काण्डोंके नाम क्रमसे बाल या आदि, अयोध्या, आरण्य, किष्किन्धा, सुन्दर, लङ्का या युद्ध और उत्तर काण्ड हैं। बालकाण्डमे राजा-दशरथके यहाँ राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इन चारों भाइयोंके जन्म और बालचरितका संक्षेप वर्णन, विश्वामित्रके यज्ञकी रक्षाके लिये राम और लक्ष्मणका जाना, मार्गमें ताड़का-का वध और यज्ञकी रक्षा, जनकके यज्ञमें उपस्थित होनेके लिये प्रस्थान, जनकपुरमें राजकुमारोंका पहुँचना, शिवधनुपका रामद्वारा भङ्ग होना और चारों भाइयोंके साथ मिथिलाकी चारों राजकुमारियोंका पाणिग्रहण वर्णित है। बीचमें उपाख्यान रूपसे ऋष्यश्रृङ्ग, त्रिशङ्कु, अम्बरीप, विश्वामित्रके पूर्वजोंका इतिहास, विश्वामित्र और वसिष्ठका परस्पर विरोध और कलह तथा विश्वामित्रकी ब्राह्मणत्वप्राप्ति, सगरके पुत्रोंका कपिलद्वारा भस्म होना और भगीरथकी तपस्यासे गङ्गा-

वतरण आदि वर्णित हैं।

अयोध्याकाण्डमें राजा दशरथका रामको युवराज बनानेका उद्योग केकयीका बीचमें विघ्न डालना, रामका वनवास, लक्ष्मण और सीताका साथ जाना, राजा दशरथका प्राणत्याग, भरतका आगमन, राजसिंहासनका अस्वीकार, रामको लौटानेके लिये चित्रकूट पर्वतपर गमन, रामका पिताकी आज्ञापर दृढ़रहना और भरतका लौटकर अयोध्याके निकट नन्दिग्राममें निवास, वर्णित है।

बीचमें अन्धमुनिके पुत्र श्रवणका उपाख्यान और वर्षाऋतुका अति संक्षिप्त और अनूठा वर्णन इसी काण्डमें है।

आरण्यकाण्डमें रामका दण्डकवनमें प्रवेश, विराधवध, शरभङ्गका प्राणत्याग, सुतीक्ष्ण और अगस्त्यादि ऋषियोंसे रामकी भेंट, जटायुसे मिलाप, पञ्चवटीमें राम लक्ष्मण और सीताका वास, शूर्पणखाके नाक कानका काटना, खर दूषण त्रिशिरादि चौदह सहस्र राक्षसोंका वध, रावणका मारीचके साथ पञ्चवटीमें गमन, मारीचका रामलक्ष्मणको धोखा देना रावणद्वारा सीताहरण, जटायुवध, सीताके विरहमें रामका विलाप, और भी अधिक दक्षिणकी ओर प्रस्थान, कबन्धकी भुजा काटना, पम्पासरोवरके निकट पहुँचके ऋष्यमूक गिरि पर जानेका विचार आदि वर्णित है।

किष्किन्धाकाण्डमें वसन्त ऋतुका वर्णन, सीताके वियोगमें आतुर हो रामका विलाप, रामसे हनूमानजीकी भेंट, राम और सुग्रीवकी परस्पर मित्रता, वालिवध, सीताको खोजनेके अर्थ वानरोंका सब दिशाओंमें गमन, दक्षिण दिशाकी ओर जानेवाले वानरोंसे पर्वतकी गुहामें एक तपस्विनीसे भेंट, वानरोंसे जटायुके भाई सम्पातिका साक्षात्कार, सीताका

पता और वानरोंका समुद्रतीरपर पहुँचना वर्णन किया गया है।

बीचमें प्रसङ्गवश वालिद्वारा दुन्दुभि असुरका घात तथा वालि और सुग्रीवके परस्पर वैरकी कथा आदिका वर्णन उपाख्यान रूपसे किया गया है।

सुन्दरकाण्डमें हनुमानजीका आकाशमार्गसे समुद्रपार करना और लङ्कामें प्रवेश, रावणके अन्तःपुरमे भ्रमण, सोते हुए रावणका दर्शन [इस प्रसंगमें रावणके केवल एक मुख और दो भुजायें लिखी हैं न कि दस सिर और बीस भुजायें] सीता और रावणके परस्पर प्रश्नोत्तर, सीता और हनुमानकी भेंट, हनुमान्का रावणके प्रमोदवनको उजाड़ना, अक्षयकुमारका वध, मेघनाद द्वारा हनुमान्का बन्धन, हनुमान्का रावणकी सभामें जाना, रावणका हनुमान्के बधकी आज्ञा देना विभीषणका उसे वर्जना, हनुमान्का लङ्कापुरीको जलाना, सीताकी निशानी रत्न लेकर रामके पास लौटना, मधुवनभङ्ग और हनुमान्का लौटकर रामको सीताके समाचार सुनाना आदि वर्णित है।

लङ्काकाण्डमें वानरोंका समुद्रपर सेतु बांधना, विभीषणका रावणको समझानेमें अपमानित हो रामसे आ मिलना, वानरोंकी संख्या जाननेके अर्थ रावणका गुप्तचरोंको भेजना, रावणका माया रचकर सीताको पीड़ा पहुँचाना, सरमाका सीताको समाश्वासन, राक्षसों और वानरोंका युद्ध, रावणके अनेक पुत्रों समेत मेघनादका पतन, कुम्भकर्णवध, रावणके शक्तिप्रहारसे लक्ष्मणकी मूर्च्छा, हनुमान्का औषधि ले आना, लक्ष्मणका पुनरुत्थान, राम रावणका परस्पर घोर युद्ध रावणवध, सीताकी पुनः प्राप्ति, लङ्काका

विभीषणको देना, अयोध्याको लौटना, मार्गमें भरद्वाज, वाल्मीकि, निषाद आदिसे भेंट, अयोध्यामें पहुँचनेपर राम और भरतकी भेंट तथा रामका राज्याभिषेक आदि विस्तारपूर्वक लिखा गया है।

उत्तरकाण्डमें अगस्त्य आदि ऋषियोंका राज्यभिषेकोत्सवमें आगमन, रामसे रावणके जन्म पराक्रम आदिका वर्णन, रामसे विदा मांगकर ऋषियों वानरों और राक्षसोंका प्रस्थान पुष्पकका कुबेरके यहाँ गमन, सीतारामका विहार और विलास, रामका सीतापरित्याग, सीताका वाल्मीकिके आश्रममें गमन और कुशलवका जन्म, रामका गृध्र और उलूकके झगड़ेका निबटेरा, कुक्कुर और संन्यासीके झगड़ेका न्याय, लवणके वधके लिये शत्रुघ्नका जाना, शत्रुघ्नद्वारा लवणका वध, रामका अश्वमेध यज्ञ, वहां लवकुशका आगमन और रामायणपाठ, वाल्मीकिके अनुरोधसे रामका परीक्षानन्तर सीताको पुनर्ग्रहण का विचार, सीताका प्राणत्याग, रामका शोक, कौशल्यादिका प्राणत्याग, रामका अपने भतीजों और पुत्रोंको भिन्न भिन्न देशोंका राज्यसमर्पण और लोकान्तर गमन आदि वर्णित हैं।

बीचमें ययाति, मान्धाता, वृत्र, इला आदिके उपाख्यान भी प्रसङ्गवश वर्णन किये गये हैं।

रामायणमें क्षत्रियोंकी स्वाभाविक वीरता, पिताकी आज्ञा का पालन, भाइयोंका परस्पर प्रेम, स्त्रियोंकी पतिभक्ति इत्यादि अनेक बातें आदर्श रूपसे दिखलायी गयी हैं। लोग इन्हें पढ़कर अपना चालचलन सुधार सकते हैं। रामायण पढ़नेसे स्पष्ट प्रकट होता है कि भारतवर्षके प्राचीन आर्य लोग कैसे सच्चे, भोलेभाले, सादे, शूरवीर, बुद्धिमान्, धर्मात्मा, परोपकारी और निश्छल होते थे।

रामायणके अतिरिक्त और भी संस्कृतके कई प्राचीन ग्रन्थोंमें रामकी कथाका पूर्ण वर्णन मिलता है जिनमेंसे ब्रह्माण्ड पुराणान्तर्गत अध्यात्मरामायणमें वाल्मीकि रामायणहीकी तरह सात काण्डोमें रामके इतिहासका वर्णन है,हाँ कहीं कहीं किसी किसी कथामें वाल्मीकिसे और उससे भेद है। ऐसेही पद्मपुराण पातालखण्डमें रामाश्वमेधकी कथा और रामका इतिहास निराले ही ढङ्गपर लिखा है। पद्मपुराण उत्तरखण्डमें भी विस्तारसे रामचरित वर्णित है जिसकी कथाका अधिकांश वाल्मीकि रामायणसे मिलता जुलता है। नृसिंह पुराणमें भी विस्तारसे रामचरित वर्णित है। कल्किपुराणमें भी संक्षेपसे रामका इतिहास वर्णन किया गया है। महाभारतके वनपर्वमें भी विस्तारपूर्वक कुल रामायणका इतिहास लिखा गया है।

आनन्द रामायण और अद्भुत रामायण नामके दो और रामकथा विषयक ग्रन्थ हैं पर इन दोनोंका प्रचार वाल्मीकि रामायण सा नहो है। कुछ लोग आनन्द रामायणको वाल्मीकि ऋषिका विरचित ही बतलाते हैं। परन्तु आनन्दरामायण और अद्भुतरामायण भारतवर्षके प्राचीन इतिहासकी खोजमें विशेष उपयोगी नहीं समझ पड़ते।

दूसरा धर्मप्रधान ऐतिहासिक ग्रन्थ महाभारत है जिसको-क कृष्णद्वैपायन व्यासने बनाया है, व्यासजी महाभारत युद्धके समकालीन वही वेदव्यास हैं जिन्होंने कि वेदोंका सङ्कलन किया और वेदान्तसूत्र रचे। महाभारतमें हस्तिनापुरके चन्द्रवंशी राजकुमारों अर्थात् कौरवों और पाण्डवोंका राज्य-के लिये परस्परका कलह और अन्तमें घोर संग्राम वर्णित है। माहाभारतका भी इतिहास पहले लिखा जा चुका है। महा-भारत भी रामायणकी नाईं एक ऐतिहासिक काव्य है। जिसमें

आर्योंकी अर्थात् प्राचीन हिन्दुओंकी सच्चरित्रता पूर्ण रीतिसे दिखलायी गयी है। स्थानस्थानपर पुराने इतिहासों और उपाख्यानोंके भर देनेसे पुस्तकका आकार इतना अधिक बढ गया है कि उसकी श्लोकसंख्या एकलाखसे ऊपर पहुंच गयी है। महाभारतके वर्णित इतिहासमें निषध देशके राजा वीरसेनके पुत्र नल और उनकी रानी, विदर्भ देशके राजा भीमकी कन्या और दमकी बहिन, दमयन्तीका चरित है। इसी ग्रन्थमें रामायणकी समग्र कथाका भी पूरापूरा उल्लेख है। युधिष्ठिरकी सत्यता, भीमसेन, अर्जुन, दुर्योधन, भीष्म, द्रोण, कर्ण आदिका पराक्रम, भीष्मका कठोर व्रतपालन और धर्ममें अचल निष्ठा, आदि बातें हिन्दूधर्मके सत्कार्योंके ऐसे सच्चे आदर्श हैं कि आज अनेक वर्ष बीतनेपर इस पतितावस्थामें भी उनके कारण हिन्दू जातिका सिर ऊँचा है। रामायण और महाभारत इन दोनों ग्रन्थोंसे यह शिक्षा मिलती है कि रावण और दुर्योधन आदिकी नाईं कुमार्गपर चलना कदापि उचित नहीं है किन्तु राम और युधिष्ठिर आदिके समान सच्चरित्र मनुष्य ही संसारमें प्रसन्न रहता और प्रशंसाका पात्र बनता है। ऐसे चरित्रसे ही मनुष्यका परलोक सुधरता है। यद्यपि राम मर्यादा पुरुषोत्तम माने जाते हैं तथापि उनका छिपकर वालिको मारना मित्रका पक्षपात सिद्ध करता है, निरपराध सीताका परित्याग अपनी कीर्तिका लोभ द्योतित करता है। युधिष्ठिरका चरित्र सब प्रकार निर्दोष होते हुए भी द्यूतक्रीडा और द्रोणको विश्वास दिलानेके निमित्त मिथ्याभाषण मनुष्यके अवश्यम्भावी स्वार्थमय जीवनकी त्रुटिको दिखलाती है।

माहाभारतमें अठारह पर्व हैं और अन्तमें हरिवंशपर्व नामक एक ग्रन्थ और भी जोड दिया गया है जिसे लोग प्रायः

पुराणके नामसे पुकारा करते हैं। आदिपर्वके प्रारम्भमें महाराज परीक्षितका इतिहास वर्णन करके तक्षकके द्वारा उनके काटे जाने और मृत्युकी कथा लिखी है। तदनन्तर जनमेजयके सर्पसत्रका इतिहास है। इसी प्रकरणमें वेदव्यासके शिष्य वैशम्पायन मुनिने राजा जनमेजयको पाण्डवों और कौरवोंका समग्र इतिहास सुनाया है। इस अवसरपर मुनिने चन्द्रवंशी राजाओंकी तालिका पुरूरवासे प्रारम्भ करके जनमेजयके पुत्रों और पौत्रोंतक कह डाली है और इसकेद्वारा पढ़नेहारेको पुरुवंशी राजाओंमेंसे प्रत्येकका नाम उसकी रानीके नाम सहित विदित हो जाता है। वंशपरम्पराके वर्णनमें ययाति, दुष्यन्त शान्तनु और उपरिचरवसुका भी विस्तारपूर्वक वर्णन है। फिर पाण्डवों और कौरवोंकी उत्पत्ति, चचेरे भाइयोंका परस्पर वैर, पाण्डवोंका हस्तिनापुर छोडके निकल जाना, जतुगृहदाह, द्रौपदी स्वयंवर, इन्द्रप्रस्थमें पाण्डवोंकी राज्यप्राप्ति, अर्जुनकृत सुभद्राहरण, अभिमन्युका जन्म, खाण्डववनदहन इत्यादि कथाएँ क्रमसे आदिपर्वमें कही गयी हैं।

सभापर्वमे खाण्डवदाहसे रक्षित मय नाम दानवद्वारा युधिष्ठिरके लिये सभानिर्माण, युधिष्ठिरका राजसूययज्ञ, शिशुपालवध, पाण्डवोंसे कौरवोंकी ईर्षा, शकुनिकी सहायतासे युधिष्ठिरके साथ दुर्योधनादिकी द्यूतक्रीडा, आदिका विस्तारपूर्वक वर्णन आया है।

वनपर्वमें पांडवोंका बारह वर्षलों वनवास, अनेक विपत्तियां झेलना, तीर्थयात्रा, अर्जुनका स्वर्गलोक जाकर दिव्यास्त्रोंकी प्राप्ति, नलोपाख्यान, सावित्र्युपाख्यान और रामोपाख्यान आदिका भी प्रसङ्गवश वर्णन है।

विराटपर्वमें पाण्डवोंका मत्स्यदेशमे तेरहवें वर्षका गुप्त-

वास, कीचकवध, अर्जुनकृत कौरवसेनाका पराजय आदि वर्णित हैं। इसीकी समाप्तिमें मत्स्यराज विराटकी कन्याका अर्जुनके पुत्र अभिमन्युके साथ विवाहका वर्णन भी है जिस अवसरपर प्रायः पाण्डवोंके सभी नातेदार क्षत्रियलोग मत्स्यदेशमें आ उपस्थित हुए थे।

उद्योगपर्वमें श्रीकृष्णका पाण्डवोंकी ओरसे दूत बनकर कौरवोंकी सभामें जाना और परस्पर मेलके लिये चेष्टा करना, दुर्योधनका हठ और दोनों ओर युद्धके लिये सेना इकट्ठा करना आदि उद्योग वर्णित हैं।

भीष्मपर्वमें दुर्योधनका भीष्मको कौरव सेनाका सेनापति बनाना, युद्धारम्भ, अर्जुनका युद्धस्थलमें विषाद, श्रीकृष्णका उन्हें समझाना, कौरवों और पाण्डवोंका दस दिनतक परस्पर घोर युद्ध और अन्तमें भीष्मका पतन इत्यादि वर्णित है।

द्रोणपर्वमें द्रोणाचार्यका कौरवसेनाका सेनापति बनाया जाना, ५ दिनका घोर युद्ध, अनेक राजाओं और अर्जुनके पुत्र अभिमन्यु आदिका वध, अश्वत्थामाकी मृत्युका झूठा सामाचार सुन द्रोणका अस्त्रत्याग और धृष्टद्युम्नकृत द्रोणका व आदि वर्णन किया गया है।

कर्णपर्वमें कर्णका सेनापति बनना, शल्यका उसका रथ हाँकना, दो दिनका युद्ध, भीमसेनकृत अनेक कौरवोंका वध, अर्जुनकृत कर्णका वध इत्यादि वर्णित है।

शल्यपर्वमें मद्रराज शल्यका सेनापति बनना तथा युधिष्ठिरके हाथसे उनका माराजाना वर्णन किया गया है।

गदापर्वमें भीमसेनका तालमें छिपे दुर्योधनको ललकारना, दोनों वीरोंका परस्पर गदायुद्ध और जाँघ टूट जानेपर दुर्योधनका पतन इत्यादि वर्णित है।

सौप्तिकपर्वमें अश्वत्थामा, कृप और कृतवर्माका रात्रिमें पाण्डवशिविरमें प्रवेश और द्रौपदीके पाँचों पुत्रोंके सोतेमें मारे जानेकी चर्चा है।

स्त्रीपर्वमें रणभूमिमें पतित क्षत्रिययोद्धाओंको देखकर गान्धारी आदि रानियोंका अनेक प्रकारका विलाप और मृत वीरोंकी प्रेतक्रिया आदिका वर्णन है।

शान्ति और अनुशासन पर्वोंमें शरशय्यापर पड़े भीष्मपितामहका युधिष्ठिरको अनेक प्रकारके उपदेश देना विस्तारपूर्वक वर्णित है। अनुशासनपर्वके अन्तमें भीष्मका सूर्यके उत्तरायण होनेपर प्राणत्याग और युधिष्ठिरद्वारा उनकी अन्त्येष्टि क्रियाका वर्णन है।

अश्वमेधपर्वमें महाराज युधिष्ठिरका हस्तिनापुरके राजसिंहासनपर बैठकर अपने छोटे भाइयों तथा श्रीकृष्णकी सहायतासे अश्वमेध यज्ञ करनेका इतिहास लिखा गया है।

आश्रमवासिक पर्वमें धृतराष्ट्र, गान्धारी, कुन्ती और विदुरका तपस्यार्थ वनमें निवास और दावाग्निमें जल मरनेका वर्णन है।

मौसलपर्वमें भोज, वृष्णि, अन्धक, कुकुर आदि द्वारकाके यदुवंशियोंका मद्यपान करके परस्पर कलह और अन्तमें युद्ध-द्वारा उन सबका विनाश, बलराम तथा श्रीकृष्णका भी परलोकगमन वर्णन किया गया है

महाप्रास्थानिकपर्वमें युधिष्ठिरका हस्तिनापुरके राजसिंहासनपर अभिमन्युके पुत्र परीक्षित्को बिठा छोटे भाइयों और द्रौपदी समेत उत्तर दिशाकी ओर प्रस्थान वर्णित है।

स्वर्गारोहणपर्वमें पाण्डवोंके सांसारिक जीवनकी समाप्तिका वर्णन है।

हरिवंशमें सूर्य और चन्द्रवंशके राजाओंकी नामावली, भगवान् कृष्णचन्द्रजीके चरित्रोंका वर्णन है, और और भी अनेक इतिहास लिखे गये हैं।

भीष्मपर्वमें जब युद्धस्थलमें अपने भाई बन्धुओंको प्राणत्यागार्थ उद्यत देख अर्जुनका चित्त कुछ खिन्न हुआ है और वैराग्यके कारण उसने युद्धसे मुख मोड़ना चाहा है तो उनके सारथि श्रीकृष्णने उन्हें अनेक प्रकारसे स्वकर्त्तव्य पालनका उपदेश दिया है। ग्रन्थका यह भाग भी श्रीमद्‌भगवद्‌गीताके नामसे प्रसिद्ध है। इस पर शङ्कराचार्य, रामानुज, नीलकण्ठ, मधुसूदन सरस्वती, आनन्दगिरि आदि अनेक आचार्योंने टीकाएँ की हैं जो जिज्ञासुके लिये परमोपयोगी है।

धर्मशास्त्रका वह भाग जो स्मृतिशास्त्रके नामसे संसारमें विख्यात है प्रायः अपने अपने रचयिताहीके नामोंसे प्रचलित है। इनमेंसे एक 'मानवधर्मशास्त्र' वा 'मनुस्मृति'* सबसे अधिक प्राचीन तथा प्रामाणिक है। मनुस्मृतिके निर्माणकालका ठीक ठीक पता लगना तो दुर्घट है। मनुके विषयमें लोगों का मतभेद है। कदाचित् यही मनु सूर्यवंशके प्रथम राजा हों जिन्होंने अयोध्यापुरीको बसाया था। युरोपियन विद्वानोंकी कल्पना है कि मनुस्मृति किसी एक मनुष्यका बनाया ग्रन्थ नहीं किन्तु अनेक प्राचीन धर्मके नियमोंका संग्रहमात्र है और यह संग्रह भी लगभग विक्रम संवत् स ४४३ वर्ष पूर्वका किया हुआ है। मनुस्मृतिकी कई संस्कृत टीकाएँ हैं जिनमेंसे पण्डितवर कुल्लूक भट्टकी रचित टीका सबसे पिछली और

* वर्तमान मनुस्मृति, भृगुकी सकलित की हुई है। यह मनुस्मृतिमेंही लिखा है "...भृगुप्रोक्तां पठन् द्विजः।" प्राचीन मानव धर्मशास्त्र सूत्ररूपमें था जो अब अप्राप्य है। सम्पादक

प्रामाणिक मानी जाती है। ये कुल्लूक भट्ट सम्भवतः १४वीं शताब्दीके जान पड़ते हैं।

मानव धर्मशास्त्रको छोड 'याज्ञवल्क्य स्मृति' नाम एक दूसरा ग्रन्थ भी हिन्दुओंके बीच प्रचलित है पर लोग इसे मनुस्मृति सा नहीं मानते। 'याज्ञवल्क्य स्मृति' पर चालुक्य राजा विक्रमादित्यके सभासद विज्ञानेश्वरने 'मिताक्षरा' नाम टीका लिखी है। हिन्दू धर्मशास्त्रोंके बीच यह टीका बड़ी प्रामाणिक है।

उक्त दोनों स्मृतियोंके अतिरिक्त और भी कई प्रसिद्ध स्मृतियाँ हैं जिनमेंसे प्रायः निम्नलिखितका थोड़ा बहुत प्रचार देखनेमें आता है। विष्णु, यम, आङ्गिरस, वसिष्ठ, दक्ष, सवर्त्त शातातप, पराशर, गौतम, शङ्ख, लिखित, हारीत, आपस्तम्ब, उशनस्, व्यास, देवल, कात्यायन, वृहस्पति, नारद और पैठीनसि, इत्यादि।

उक्त सभी ग्रन्थोंकी गिनती हिन्दू धर्मशास्त्रोंमें की जाती है।

तैतालीसवां अध्याय

संस्कृत काव्यग्रंथ

संस्कृतके काव्य प्रायः दो भागोंमें बांटे गये हैं जिनमेंसे एकको श्रव्य और दूसरेको दृश्य कहते हैं। दृश्यकाव्य ही नाटक है जिसके अनेक प्रकारके भेद भरतमुनि-विरचित नाट्यशास्त्रमें और साहित्यदर्पणके छठे परिच्छेदमें विस्तार पूर्वक वर्णित हैं। श्रव्यकाव्य तीन प्रकारके होते हैं। केवल पद्यमय जैसे रघुवंश, मेघदूत इत्यादि। केवल गद्यमय जैसे कादम्बरी, दशकुमारचरित इत्यादि। गद्यपद्यमय काव्य जिन्हें चम्पू कहते हैं, जैसे नलचम्पू रामायणचम्पू इत्यादि। केवल पद्यमय काव्य भी तीन प्रकारके होते हैं यथा महाकाव्य जैसे नैषधचरित, रघुवंश आदि, खण्डकाव्य जैसे सूर्यशतक, मेघदूत इत्यादि और कोषकाव्य जैसे अमरुशतक, आर्यासप्तशती आदि। गद्यमय काव्य भी दो प्रकारके होते हैं। एक 'कथा' जिसमें किसी कल्पित राजा आदिका चरित्र वर्णित हो यथा कादम्बरी आदि, और दूसरे 'आख्यायिका' जिसमें किसी ऐतिहासिक व्यक्तिका इतिहास लिखा गया हो जैसे हर्षचरित इत्यादि।

संस्कृत भाषामें उक्त दृश्य और श्रव्य काव्योंके अनेक ग्रन्थ प्राचीन कवियोंने लिखे हैं। भारतवर्षमें संस्कृत काव्योंका लिखा जाना कबसे प्रारम्भ हुआ इसका निर्णय करना प्रायः असम्भव हो गया है क्योंकि प्राचीन कालके बहुतसे ग्रन्थ अब लुप्त हो गये हैं। जिन कवियोंके विरचित ग्रन्थ अब पाये भी जाते हैं उनमेंसे भी कई एकके समय आदिका ठीक पता नहीं लग सका है। ऐसी दशामें संस्कृत काव्योंका यथार्थ इतिहास

लिखना कितना कठिन है सो लोग समझ सकते हैं। युरोपीय विद्वानोंने बहुत परिश्रमद्वारा जाँच खोज करके जो कुछ पता पाया अथवा जहाँपर ठीक पता न चल सका वहांपर अपनी कल्पनाकी सहायतासे संस्कृत साहित्यका इतिहास लिखा है। विशेषतः उसीके आधारपर संस्कृतके प्राचीन काव्यों और कवियोंके विषयमें कुछ लिखा जाता है।

ऊपर जितने प्रकारके काव्य कहे गये हैं किसी किसी कविके तो उनमेंसे अनेक प्रकारके काव्य पाये जाते हैं और किसी किसी कविके केवल एक ही प्रकारके काव्य पाये जाते हैं। अतएव काव्यभेदके अनुसार ग्रन्थोंका वर्णन करनेमें सुभीता न होनेसे प्रत्येक कवि और उसके विरचित ग्रन्थोंके विषयमें जो जो बातें विदित हो सकी हैं यहांपर अति संक्षेपमें लिख दी जाती हैं जिसमें कवियों वा उनके विरचित काव्योंको लोग सहज हीमें ध्यानस्थ कर लेवें।

संस्कृत काव्योंमेंसे अधिकांश ग्रन्थोंकी रचना रामायण अथवा महाभारत वा और और पुराणोंके उपाख्यानोंका आधार लेकर की गयी है। इन सब काव्योंमें भाषाके अनेक प्रकारके चमत्कार और वर्णनके उत्कर्ष समझनेवालोंके लिये परमानन्ददायक हैं। प्राचीन कवियोंमेंसे कालिदाससे पूर्व भास, सौमिल्ल आदि कुछ कवि हो चुके हैं। सौमिल्लका तो केवल नाममात्र सुन पड़ता है, उनकी रचनाके ग्रन्थ कहीं नहीं पाये गये। हाँ भास कविके कुछ नाटक अभी हालमें मिले हैं इनमेंसे कई ‡ ग्रन्थ-पञ्चरात्र, स्वप्नवासवदत्त प्रतिज्ञायौगन्धरा-

‡ भासके नाटकोंका उद्धार त० गणपति शास्त्रीने किया है। त्रिवांकुर-राज्यके त्रिवेन्द्रम् (अनन्तशयन) नगरसे उनकी सम्पादकतामें अबतक भासके कई नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। उनमें इन तीन नाटकोंके अतिरिक्त ये और हैं—

यण आदि छप गये हैं। इन ग्रन्थोंके देखनेसे भासकी कवित्वशक्तिका पूरा परिचय मिल जाता है। भास कविका समय ठीक ठीक निर्णय करना तो बहुत कठिन है पर इतना कहा जा सकता है कि वे गौतमबुद्धसे पीछे और कालिदाससे पूर्व हुए हैं क्योंकि 'स्वप्नवासवदत्तम्' और प्रतिज्ञा-यौगन्धरायणम्' नाम ग्रन्थोंमें जिस वत्सराज उदयनका उल्लेख भासने किया है वह कौशाम्बीका राजा उदयन गौतमबुद्धका समकालीन है अर्थात् विक्रमसे ४४३ वर्ष पूर्वका व्यक्ति है। कालिदास भी उज्जयिनीके राजा विक्रमादित्यके समकालीन हैं और इन्ही विक्रमादित्यका चलाया संवत् भारतवर्षमें अब-तक प्रचलित है जो सन् ईस्वीसे ५७ वर्ष पूर्व आरम्भ होता है। इस कारण भास कविका समय विक्रमाब्दसे पहले ४४३ वर्ष पूर्वतकके बीचमें अनुमित होता है।

पञ्चरात्रमें भासने महाभारतकी कथाका उल्लेख प्रायः विराटपर्वकी समाप्तिसे निराले ढंगपर किया है। द्यूतमें पाण्डवोंको हराकर दुर्योधनादिने उन्हें बारह वर्षलौं वनवास करने और तेरहवें वर्ष गुप्तवासके अर्थ भेज दिया है। पाण्डवोंका वनवास-काल तो व्यतीत हो गया है पर तेरहवें वर्षमें अभी वे मत्स्य देशके राजा विराटके यहां गुप्त रीतिसे निवासकर रहे हैं। दुर्योधनने इस बीचमें एक बड़ा यज्ञ ठाना है जिसके अन्तमें उसने

(१) अविमारकम्, (२) बालचरितम्, (३) अभिषेक नाटकम्, (४) चारुदत्तम्, (५) प्रतिमानाटकम् (६) मध्यम व्यायोग, (७) दूतवाक्य (८) दूत घटोत्कच, (९) कर्णभार (१०) ऊरुभग।

साहित्याचार्य प० रामावतार शर्मा एम. ए आदि कई विद्वानोंको इन नाटकोंके भासकृत होनेमें सन्देह है। पर गणपति शास्त्रीने बड़े ऊहापोहपूर्वक अपनी भूमिकामें इनका भासकृत होना प्रमाणित किया है। सम्पादक।

अपने गुरु द्रोणाचार्यसे कहा है कि आप गुरुदक्षिणा माँगिये। द्रोणने कहा कि पाण्डवोंको उनके भागका आधा राज्य सौंप दो। अपने मामा शकुनिकी संमतिसे दुर्योधनने यह कहकर द्रोणकी बात स्वीकार कर ली है कि यदि पाँच दिनरातमें पाण्डवोंका पता लग जाय तो मैं उन्हें आधा राज्य बांटनेके अर्थ प्रस्तुत हूँ। उधर दुर्योधनादिको यह समाचार मिला कि मत्स्यदेशके राजा विराटका प्रधान मन्त्री कीचक अपने पुत्रों सहित मार डाला गया है जिससे कि वह राज दुर्बल हो गया है। विराट दुर्योधनके यज्ञमें भेंट लेके भी उपस्थित न हुआ था।

दुर्योधनने एक बड़ी सेना ले विराटके नगरपर चढ़ाई की और उस राजाकी गायोंको हाँककर चल दिये। पाण्डवलोग जो उस समय गुप्त रीतिसे विराटके नगरमें थे इस अवसर पर राजा विराटके आड़े आये। अर्जुनने युद्धमें कौरवोंकी सेनाको हराकर विराटकी गायें छीन लीं। भीमसेनने युद्धमें कुमार अभिमन्युको पकड़ लिया और उसे विराटकी सभामें लाये। अभिमन्युसे अनेक प्रश्न किये गये पर उसने प्रश्नोंका ठीक ठीक उत्तर देना अस्वीकार किया। निदान विराटको जब पाण्डवोंका पता लग गया तो उसने अति प्रसन्न हो अपनी कन्या उत्तराका विवाह अर्जुनके पुत्र अभिमन्युसे कर दिया। जब दुर्योधनको यह समाचार ज्ञात हुआ कि पाण्डवोंकी सहायतासे ही विराटने अपनी गायें फेर पायी हैं तो उसे सन्तोष हुआ। पाँच ही दिनरातके बीचमें इस रीतिसे पाण्डवोंका पता लग जानेपर द्रोणने अपनी गुरुदक्षिणाका स्मरण दुर्योधनको दिलाया। दुर्योधनने भी प्रसन्नतापूर्वक पाण्डवोंको हस्तिनापुरमें बुलाकर आधा राजपाट दे अपनी प्रसन्नता तथा सत्यप्रतिज्ञा प्रकट की।

'स्वप्नवासवदत्तम्'में राजकन्या वासवदत्ताका कौशाम्बीके राजा उदयनपर प्रेम वर्णित है। प्रतिज्ञायौगन्धरायणमें उज्जयिनीके राजा चण्डप्रद्योतने धोखेसे कौशाम्बीके राजा उदयनको बन्दी कर लिया है और अन्तमें अपनी कन्या उसे समर्पण कर दी है यही इतिहास नाटकके रूपमें लिखा है। इन तीनों ग्रन्थोंमें भास कविकी कविता अनूठी है।

सबसे अधिक प्रसिद्ध और यशस्वी प्राचीन संस्कृत कवि कालिदास हैं जो उज्जयिनीके महाराज विक्रमादित्यके सभारत्न थे। प्रायः खीष्टसे ५७ वर्ष पूर्व भारतवर्षमें यह कवि वर्त्तमान थे। सुननेमें आता है कि यह पहले इतने मूर्ख थे कि वृक्षकी जिस डालपर बैठे थे उसीको कुल्हाडीसे काट रहे थे। इनका विवाह एक विदुषी राजकन्यासे हुआ जिसके उपदेशसे इन्होंने विद्याध्ययनमें बडा परिश्रम किया और अन्तमें संसारमें अक्षय-कीर्त्तिविशिष्ट पण्डित और कवि हो गये। निःसन्देह कालिदास अलौकिक शक्तिसम्पन्न महाकवि थे। उनके समान दृश्य और श्रव्य काव्य लिखनेवाला संसारमें कोई दूसरा कवि नहीं हुआ। इनकी रचनाको पढकर एक दिव्य आनन्दकी प्राप्ति होती है। इनकी उपमा निराली और निरुपम है। कालिदासकी भाषा सरल और प्रसादगुणविशिष्ट है। इनका वर्णन बड़ाही हृदयहारी है। इस कविका जितना आदर किया जाय कम है।

कालिदास विरचित काव्योंमें सबसे सुन्दर और बडा महाकाव्य रघुवंश है, जिसमें रघुके पिता दिलीपका अपनी पत्नी समेत गोसेवा करने और उसके द्वारा पुत्रोत्पत्तिके वर्णनसे प्रारम्भ किया है। फिर महाराज रघु और उनके पुत्र अज तथा पौत्र दशरथका वर्णन परम रोचक कवितामें किया है।

तदनन्तर छः सर्गोंमें श्रीरामचन्द्रजीका चरित्र लिखा गया है। पिछले चार सर्गोंमें रामकी सन्तानोंका वर्णन अग्निवर्णके जीवनतक किया गया है। इस ग्रन्थके १६ सर्गोंमे १५६६ श्लोक लिखे गये हैं।

कालिदासविरचित दूसरा महाकाव्य कुमारसम्भव है। इसके प्रारम्भहीमें हिमालय पर्वतका अनूठा वर्णन है। फिर पार्वतीजीके जन्मका वर्णन है। उनके नखशिखका वर्णन बहुत अच्छी कवितामें है। द्वितीय सर्गमें देवताओंकी ब्रह्मासे भेंट और तारकासुर कृत अनर्थ आदिका उल्लेख है। तृतीयसर्गमें इन्द्रकी आज्ञा पाकर कामदेवने महादेवजीकी तपस्या भङ्ग करनेका प्रयत्न किया और अपने प्राण खोये। चतुर्थमें रतिका अपने पतिके लिये विलाप, पञ्चममें पार्वतीकी तपस्या और शिवजीका उनकी परीक्षा लेनेका वर्णन है इस सर्गका वर्णन बड़ाही हृदयहारी है। षष्ठमें शिवजीकी संमतिसे सप्तर्षियोंने हिमालयके पास जा शिवपार्वतीके विवाहकी चर्चा चलायी और हिमालयने उसे स्वीकार कर लिया। सप्तमसर्गमें शिवपार्वतीके विवाहका वर्णन है। अष्टममें शिवपार्वतीका सम्भोग शृङ्गार और सायंकालादिका अनुपम वर्णन है। इसके पीछेके ६ सर्गोंमें स्वामिकार्त्तिकेयके जन्म, तारकासुरका युद्ध और उसके वधकी कथा है। कुमारसंभवके पहले आठ और पिछले ६ सर्गोंकी रचनामें बड़ा भेद पाया जाता है जिससे यह भी सन्देह होता है कि कदाचित् पिछले भागोंकी कविता कालिदास विरचित नहीं है।

इसके सम्बन्धमें यह कथा भी प्रसिद्ध है कि जब कुमारसम्भवमें कालिदासने शिवपार्वतीके सम्भोग शृङ्गारका वर्णन किया तो उन्हें कुष्ठरोग हो गया और उनका यह रोग रघुवंशमें

रामचरित वर्णन करनेसे जाता रहा। इस कथानकसे सिद्ध होता है कि कालिदासने पहले कुमारसम्भव लिखा और तदनन्तर रघुवंश। कुमारसम्भवके कुल १७ सर्गोंमें १०४० श्लोक हैं।

मेघदूत (खण्डकाव्य)—इस काव्यमें एक विरही यक्षने अपनी प्यारी पत्नीके पास वर्षाऋतुमें मेघद्वारा संदेशा भेजा है। इस गून्थमें रामगिरिसे अलकातक मेघके जानेका मार्ग और बीचके नगर, पर्वत,वन और नदी आदिका वर्णन बहुत अच्छा है। इससे कालिदासके भूगोलज्ञानका भी अच्छा परिचय मिलता है।

कालिदासने ऋतुसंहार नाम एक लघुकाव्यमें छहों ऋतुओंका वर्णन परम रोचक कवितामें किया है।

कालिदासविरचित तीन दृश्य काव्य भी अनुपम कविताके अनुत्तम उदाहरण हैं जिनसे संस्कृतसाहित्यका गौरव बहुत बढ़ गया है। उनमेंसे एक तो "अभिज्ञानशाकुन्तल" नाम नाटक है जिसमें महर्षि कण्वकी पोष्यपुत्री शकुन्तला और हस्तिनापुरके चन्द्रवंशी राजा दुष्यन्तके परस्पर प्रेमका वर्णन है। इसके चतुर्थ अङ्कमें शकुन्तलाको विदा करते समय महर्षि कण्वका जो मनोगत भाव व्यक्त किया गया है वह बहुत ही स्वाभाविक और मनोहर है। शकुन्तला और दुष्यन्तका इतिहास अन्यत्र लिखा जा चुका है।

दूसरा दृश्यकाव्य "विक्रमोर्वशी" है जिसमें कि विक्रम अर्थात् चन्द्रवंशी महाराज पुरुरवाके और उर्वशीके प्रेमका वर्णन है। पुरुरवाका भी इतिहास ऊपर लिखा जा चुका है।

तीसरा नाटक "मालविकाग्निमित्र" है जिसमें कि विदिशा या भेलसाके राजा अग्निमित्रका उसकी रानीकी सखी मालविकाके साथ प्रेम और विवाहका वर्णन। है इस पुस्तकमें राज-

भवनके भीतरके व्यवहारोंका परम मनोहर चित्र खींचा गया है।

ऊपर लिखे गुन्थोंके अतिरिक्त और भी कई गुन्थ जैसे नलोदय, द्वात्रिंशत्पुत्तलिका, पुष्पवाणविलास, शृङ्गारतिलक, ज्योतिर्विदाभरण इत्यादि कालिदासहीके वनाये प्रसिद्ध सुननेमें आते हैं पर ये सब रघुवंश आदिके लिखनेवाले कालिदासके वनाये हैं वा किसी और कालिदासके इसमें सन्देह है।

कालिदास नामके कई कवि हो गये हैं। तीनका उल्लेख तो राजशेखर कविने किया है। पर विक्रमके समयके प्रसिद्ध कालिदासको छोड़ औरोंके विषयमें कुछ विशेष बातें विदित नहीं होती। हाँ, धारा नगरीके महाराज भोजकी सभामें भी कालिदास नाम एक कवि उपस्थित थे जो रघुवंशादिके कर्त्तासे अवश्य भिन्न होंगे पर उनके विषयमें और कुछ ज्ञात नहीं है। सम्भव है कि नलोदयादि अन्य गुन्थ जो कालिदासके नामसे प्रसिद्ध हैं उनमें कोई कोई इन्हींके वनाये हों।

कालिदासके प्रादुर्भावकालके विषयमें अनेक लोगोंके अनेक अनेक मत हैं, कोई उन्हें इधर पांचवी शताब्दी और कोई छठी शताब्दीतक खींच लाता है। इन लोगोंके इस प्रकारके अनुमान दृढ़तर प्रमाणोंके द्वारा पुष्ट न होनेसे श्रद्धा वा विश्वासके योग्य नहीं। बहुमतसे यही निर्णय सम्भव जान पड़ता है कि ये विक्रमी संवतको आदिमें उज्जैनके महाराज विक्रमादित्यके ही सभासद थे।

कालिदासविरचित तीनों नाटकोंकी नान्दी और रघुवंशके मङ्गलाचरणमें महादेवजीका स्मरण, तथा कुमारसंभवमें उनका सविशेष चरित्र वर्णन और मेघदूतमें भी आदरपूर्वक उनका उल्लेख देखकर अनेक विद्वानोंने कालिदासको शैव अनु-

मान किया है। यह बात असम्भव तो नहीं है परन्तु रघुवंशके दशम सर्ग तथा कुमारसम्भवके द्वितीयसर्गमें विष्णु और ब्रह्माकी स्तुतिसे कालिदासकी इन दोनों देवताओंपर भी दृढ़ भक्ति स्पष्टतया व्यक्त है। कालिदासविरचित गून्थोंके देखनेसे यह भी स्पष्ट विदित होता है कि उन्होंने पुराणोंकी प्रचलित कथाओंको ध्यानपूर्वक पढ़ा सुना और स्मरण रखा होगा क्योंकि उनके लिखे सभी गून्थोंमें पदपदपर पौराणिक कथाओंका उल्लेख पाया जाता है।

भारवि

संस्कृत भाषामें रुचि रखनेवाला ऐसा कौन पुरुष होगा जो किरातार्जुनीय नाम महाकाव्यके रचयिता भारविको न जानता हो, पर इनके समय और निवासस्थानका ठीक ठीक पता लगाना एक कठिन कार्य है। कविने स्वरचित गून्थमें अपना कुछभी परिचय नहीं दिया है। किरातार्जुनीयको छोड़ भारविका बनाया और कोई गून्थ सुननेमें वा देखनेमें नहीं आया। प्राचीन शिलालेखोंमेंसे एक जो संवत ६९१में लिखा गया है उसमें महाकवि कालिदासके साथ भारविका भी नामोल्लेख है जिससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि संवत् ६९१ तक भारवि अपनी कविताद्वारा कलिदासवत् प्रसिद्धि प्राप्त कर चुके थे। कई श्लोक संस्कृत जाननेवाले पण्डित बहुधा कहा करते हैं कि जिनमें भारविका नाम माघ आदि कवियोंके साथ लिया जाता है। ये सब भारविके महाकवि होनेके परिचायक हैं। संवत् ६९१के शिलालेखमें भारविका नाम मिलनेसे इतना तो प्रायः निश्चित है कि भारवि छठी शताब्दीके पूर्व थे, इसी कारण भारविका समय संवत्६०७से ६५७तकके लग-

भग रमेशचन्द्र आदि महाशयोंने मानाहै। परन्तु पश्चिमी गाङ्ग राजपूत वंशमें दुर्विनीत नामक एक राजा होगया है जिसने कि किरातार्ज्जुनीय काव्यके १५ सर्गतककी टीका लिखी है। इस राजाका राज्यकाल संवत् ५३६ से ५७४तक था। अतएव भारविको इसी राजाका समकालीन वा उससे पूर्वका व्यक्ति मानना उचित है। ऐसी दशामें भारविकी स्थिति ५वीं शताब्दीकी समाप्ति वा छठी शताब्दीके प्रारम्भमें होती है और स्मवत ६६१तक भारतवर्षमें उनके गून्थका प्रचार होना और मान्य कवियोंमें उनकी गणना होनी कोई असम्भव बात नहीं है। भारवि किस देशके निवासी हैं इस प्रश्नका उत्तर देनेमें कुछ लोगोंने उनके गून्थमें सह्यादि आदि दक्षिणके पहाडोंका वर्णन देख उन्हें दक्षिणात्य ठहराया है। पर यह भी निरी कल्पना ही है, वास्तवमें इनका देशकाल अज्ञातही है।

भारविके विषयमे एक कथानक प्रचलित है कि इनके पिता इनकी परम अद्भुत प्रतिभाशक्तिपर मनही मन बहुत सन्तुष्ट थे पर ऊपरसे सदा इन्हें कटु वचन सुनाते और डाट डपट रखते थे। किसी दिन पिताने कुछ ऐसे कटु वचन कह सुनाये कि भारविसे न सहे गये। वे हाथमें एक नङ्गी तलवार लेकर पिताके शयनागारमें छिप रहे और उन्हें मार डालनेका स्थिर सङ्कल्प किया। उस रात्रिमें अत्यन्त विशद चन्द्रिका छिटक रही थी। भारविकी माताने अपने स्वामीसे कहा कि देखिये आज कैसी निर्मल चाँदनी रात्रिकी शोभाको बढ़ा रही है। भारविके पिताने उत्तर दिया कि हाँ आजकी चाँदनी वैसी ही निर्मल है जैसी कि मेरे पुत्र भारविकी बुद्धि निर्मल है। भारवि यह बात सुन पितृघातके सङ्कल्पसे निवृत्त हुए और तत्काल जाकर पिताके चरणोंपर गिर पडे। भारविने अपने

कुत्सित संकल्पको मनहीमें छिपा न रखा, पिताके सामने उसे प्रकटकर क्षमाके प्रार्थी हुए। पिताने फिर भी उनकी बहुत कुछ भर्त्सना की।

भारवि बड़े नीतिज्ञ थे, स्वरचित किरातार्जुनीय काव्यमें भारविने अनेक नीतिसारगर्भित श्लोक लिखे हैं जो आजकलके प्रायः सुविज्ञ पण्डितोंको कण्ठस्थ हैं। यह बहुत संभव जान-पड़ता है कि भारविके विरचित किरातार्जुनीय काव्यको देख कर ही माघकविने शिशुपालवध नाम काव्य निर्माण किया हो। दोनों काव्योंका प्रारंभ श्रीशब्दसे है दोनोंमें जलक्रीडा, पुष्पावचय, मधुपान और विलासका विस्तारपूर्वक वर्णन है। दोनोंने एक एक सर्गमें चित्रकाव्यमें युद्धका वर्णन किया है। ऋतुओंका भी वर्णन दोनों काव्योंमें अच्छा है।

किरातार्जुनीयका आरंभ द्वैतवनमें रहते हुए युधिष्ठिरका अपने एक आतनरद्वारा दुर्योधनके समाचार सुननेसे होता है। द्रौपदीका दुर्योधनसे लड़नेके लिये युधिष्ठिरको उकसाना भीमसेनका द्रौपदीके वाक्योंका अनुमोदन करके क्रोध प्रकट करना और युधिष्ठिरका शान्तिपूर्वक उन्हें समझा बुझाकर नियत समयतक प्रतिज्ञापालनका, उपदेश है। व्यासजीकी संमतिसे अर्जुनका दिव्यास्त्र प्राप्त्यर्थ इन्द्रकील पर्वतपर तपस्याके हेतु जाना, वहाँपर किसी वराहका उपस्थित होना, अर्जुनका उसपर बाण चलाना और गिरे हुए बाणके उठाते समय उनको किरातवेषधारी शिवसे भेट होना है। अर्जुनका शिवजीको न पहचानकर उन्हें किरात समझ उनसे बाणके अर्थ लड़ना झगड़ना, युद्ध करना और अन्तमें दोनोंके युद्धका वर्णन है। अर्जुनके पराक्रमको देख शिवजीका प्रसन्न होकर अपना स्वरूप दिखाना, अर्जुनका नम्र होना, स्तुति करना और

अन्तमें शिवजीका प्रसन्न हो उन्हें पाशुपतादि अस्त्रोंके देनेका वर्णन है।

शूद्रक

बहुत प्राचीन कालमें इस नामका कोई राजा उज्जयिनी पुरीमें राज्य करता था। संभवतः उसकी राजसभाके किसी पण्डितने मृच्छकटिकः नाम नाटक अपनी ओरसे बनाकर शूद्रक राजाके नामसे उसे प्रकाशित किया होगा और पुरस्कार रूपसे धन आदि पाया होगा। इस नाटककी प्रस्तावनामें राजा शूद्रककी मृत्युका भी उल्लेख मिलता है जिससे यह अनुमान होता है कि प्रस्तावना पीछेसे किसी औरके द्वारा लिखी गयी है। राजा शूद्रकके प्रादुर्भावकालका भी ठीक पता नहीं लगता। कुछ लोग इसे शकारि विक्रमादित्यसे भी पूर्वका राजा शूद्रक समझते हैं जिसका उल्लेख कुमारिका खण्डमें किया गया है। कुछ युरोपियनलोग इसी शूद्रकको छठी शताब्दी में उज्जैनका राजा मानते हैं और यह भी समझते हैं कि दण्डी कविने शूद्रकके नामसे मृच्छकटिक लिखा है।

इसमें सन्देह नहीं कि मृच्छकटिक एक प्राचीन ग्रन्थ है और उसका कर्ता एक चतुर और योग्य कवि था, नाटककी रचना उत्तम और उसमेंके वर्णन मनोहर तथा ऐतिहासिक दृष्टिसे ध्यान देने योग्य हैं। यद्यपि यह पुस्तक कालिदास और भवभूति आदि कवियोंके अनुपम नाटकोंके तुल्य नहीं समझी जाती, तथापि इसे संस्कृतके दृश्य काव्योंमेंसे एक उत्तम काव्य कहना अनुचित न होगा। प्रस्तावना तथा समग्र ग्रन्थकी रचनाशैली परस्पर इतनी मिलती जुलती है कि जिससे यही अनुमान पुष्ट होता है कि शूद्रक राजाकी ओरसे

किसी एकही पण्डितने इसे लिखा है। मृच्छकटिकके द्वारा उस समयकी उज्जयिनीकी दशा अच्छी तरह प्रकट होती है। पुस्तकमें स्थान स्थानपर उज्जैनवासियोंका रहन सहन, चोरों और जुवारियोंके व्यापार, सिपाहियोंकी चौकीदारी, न्यायालय, धनी पुरुषोंके घर और उद्यान आदिकी शोभा, इत्यादिका अनूठा वर्णन है। पुस्तकका नायक चारुदत्त नाम एक सच्चरित्र ब्राह्मण है जो दान करते करते अन्तमें दरिद्र हो गया। वसन्तसेना नाम एक धनवती वेश्या उज्जैनमें रहती थी जो चारुदत्तके गुणोंपर-मुग्ध हो उससे प्रेम करती थी। नगरके राजा पालकका साला भी इस वेश्यासे प्रेम करता था, अतएव वह चारुदत्तका वैरी हो गया और अन्याय रीतिसे उसे मरवा डालनेपर उतारू हो गया। इस दुष्टने वसन्तसेनाके भी प्राण ले लिये थे पर दैवात् वसन्तसेना बच गयी और अन्तमें चारुदत्त और वसन्तसेनाके विवाहके साथ इस प्रकरणकी समाप्ति की गयी है।

विष्णुशर्मा

लोग कहते हैं कि चन्द्रगुप्तके मन्त्री चाणक्यहीका नामान्तर विष्णुशर्मा है। चाणक्यका बनाया हुआ एक ग्रन्थ 'चाणक्य नीति' के नामसे प्रसिद्ध है। यदि वास्तवमें चन्द्रगुप्तके मन्त्रीहीका बनाया चाणक्यनीति नाम ग्रन्थ हो तो यह अवश्य ही बहुत प्राचीन है। इसमें नीति सम्बन्धी उपदेशकी अनेक बातें हैं।

नीतिशास्त्रके दो और ग्रन्थ पञ्चतन्त्र और हितोपदेश नामक संस्कृत साहित्यमें प्रसिद्ध हैं। इन पुस्तकोंमें लिखी कथा विष्णुशर्मा नाम ब्राह्मणने कुछ राजपुत्रोंको सुनायी

है इतनेहीसे लोग अनुमान करते हैं कि विष्णुशर्मा ही ग्रन्थकार है। वास्तवमें ग्रन्थकारका ठीक पता नहीं चलता। पञ्चतन्त्र एक बहुत प्राचीन ग्रन्थ है और उसके पीछे हितोपदेश लिखा गया है। पञ्चतन्त्रादिके आधारपर श्रीनारायण पण्डितने हितोपदेशका संकलन किया है।

पंचतन्त्र नाम पडनेका यह कारण है कि उसके पाँच भाग हैं जिनके नाम मित्रभेद, मित्रप्राप्ति, काकोलूकीय, लब्धप्रणाश और असम्प्रेक्ष्यकारित्व हैं। यह पुस्तक फारसके बादशाह नौशीरवांकी आज्ञासे संवत् ५८८ से ६४८ के बीचमें पहलवी भाषामें अनुवादित हुई तदनन्तर बेदपाय आदि कहानियोंके नामसे यह पुस्तक कई एक पाश्चात्य भाषाओंमें उलथा करके लिखी गयी। अरबी भाषामें भी संवत् ८१७ से पूर्व इसका अनुवाद हो चुका था और यह 'कलैला दमना' के नामसे प्रसिद्ध हुई।

हितोपदेश भी पञ्चतन्त्रकी तरह सरल संस्कृत भाषामें लिखा गया है। इसके चारखण्ड हैं जिनका मित्रलाभ, सुहृद्भेद, विग्रह और सन्धि नाम हैं। हितोपदेशकी अधिकांश कथाएँ पञ्चतन्त्र हीसे ली गयी हैं। छोटे छोटे बालकोंको नीति सिखाने और संस्कृत विद्याका अभ्यास करानेके लिये ये दोनों पुस्तकें अत्यन्त उपयोगी हैं।

भट्टि

इस महाकविका बनाया भट्टिकाव्य प्रसिद्ध है और लोग अनुमान करते हैं कि कविका नाम भट्टिही था। भरतमल्लिकने भट्टिकाव्यकी एक टीका रची है वह भट्टिकाव्यके रचयिताका नाम भर्तृहरि बतलाते हैं। यदि उनका कहना ठीक हो तो

यह भर्तृहरि विक्रमके भाई भर्तृहरिसे भिन्नहोंगे। जयमङ्गल भी भट्टिकाव्यके एक अति प्रसिद्ध प्राचीन और प्रामाणिक टीकाकार हैं उन्होंने कविका नाम भट्टि ही लिखा है। ग्रन्थकी समाप्तिमें ग्रन्थकारने अपना कुछ परिचय दिया है जिससे अनुमान होता है कि ये कवि वलभीपुरके निवासी थे और श्रीधरसेन नाम किसी राजाके आश्रित थे। बाबू रामेशचन्द्र दत्तके अनुमानसे वलभीके राजाओंका समय संवत् ५२७से लेके संवत् ७२७पर्यन्त निश्चित होता है। यह वलभी गुजरातमें है। यहांके राजालोग अपनेको सूर्यवंशी अर्थात् रामचन्द्रके पुत्र लवके वंशमें उत्पन्न बतलाते हैं। सम्भव है अपने आश्रयदाता राजाके प्रसिद्ध पूर्वपुरुष श्रीरामचन्द्रजीकी कीर्त्ति फैलानेके लक्ष्यसे कविने यह काव्य रचा हो। यदि राजा श्रीधरसेन वा उसके किसी पुत्रके समयमें कवि वलभीपुरीमें निवास करते रहे हों तो उनका समय सातवीं शताब्दीके अनन्तर नहीं हो सकता और पूर्वमें पांचवीं शताब्दीके पिछले भागतक पहुँच सकता है। संवत् ५१७से लेके ७२७तकके बीच किसी समयमें ये कवि रहे होंगे। कुछ लोगोंने भट्टिको श्रीमद्भागवतके टीकाकारश्रीधरस्वामीका पुत्र भी कहा है।

सुननेमें आता है कि किसी राजाने एक पण्डितसे पूछा कि क्या तुम मेरे पुत्रको एक वर्षके भीतर संस्कृतका व्याकरण भली भांति सिखला सकते हो। पण्डितने उत्तरमें कहा, हां। राजा ऐसा उत्तर सुन अत्यन्त चकित हो गया। पण्डितसे राजाने विनति की कि आप मेरे पुत्रको संस्कृतव्याकरण पढ़ाइये, पण्डितने प्रार्थना स्वीकार की और पढ़ाना आरम्भ कर दिया। पाठावस्थामें गुरु और शिष्यके बीचसे यदि हाथी निकल जायतो उन दिनों व्याकरणशास्त्रका वर्षभर अनध्याय

माना जाता था। दैवात् पढ़ने समय राजाके पुत्र और उनके गुरुके बीचसे एक हाथी निकल गया। व्याकरणका वर्षभरके लिये अनध्याय हुआ। पण्डितने देखा कि यह तो हमारी बात झूठ हुआ चाहती है। अतएव उसने भट्टिकाव्यहीके द्वारा राजकुमारको संस्कृतव्याकरणका यथेष्ट परिचय करा दिया और राजासे पारितोषक पाया।

भट्टिकाव्यकी रचना कहीं कहींपर काव्य दृष्टिसे बहुत सुन्दर है विशेष करके द्वितीयसर्गके प्रारम्भमें 'शरदृतु'का वर्णन परम मनोहर है और भट्टि कविकी अद्भुत कविताशक्तिका निदर्शन है।

घटकर्पर

महाराज विक्रमादित्यकी सभाके जो नवरत्न प्रसिद्ध हैं घटकर्पर भी उनमेंसे एक है। घटकर्परने एक छोटासा काव्य २२ श्लोकका बनाया जिसमें पादान्त यमक रक्खा गया है। सुनते हैं कि जब इस कविने यह प्रतिज्ञा की कि जो कोई दूसरा कवि मुझे यमक रचनाकी चतुराईमें जीत ले तो मैं उसके यहाँ पानी भरूं। इसपर कवि कालिदासने नलोदय नाम काव्य रचकर यमकमें घटकर्परको परास्त किया। पर नलोदयके निर्माता कालिदास वही प्रसिद्ध रघुवंश आदिके रचयिता हैं वा उनसे भिन्न हैं इसका ठीक पता नहीं है। यदि घटकर्पर महाकवि कालिदासके समकालीन और शकारि विक्रमादित्यके सभारत्न रहे हों तो इनका समय सन् इस्वीसे ५७ वर्ष पूर्व मानना चाहिये। परन्तु यह बात सन्देह युक्त है। वास्तवमें घटकर्परके समयका ठीक ठीक पता नहीं लगता। लोग कहते हैं कि नीतिसार नाम ग्रन्थ और राक्षसकाव्य नामकूटात्मक पुस्तक भी घटकर्पर ही की बनायी हुई है।

अमरसिंह

संस्कृतमें 'नामलिङ्गानुशासन' नामका जो एक कोश है संस्कृत विद्यारम्भ करते समय प्रायः सभी विद्यार्थी उसे कण्ठस्थ करते हैं। इस कोशका नामान्तर अमरकोश भी है। अमरकोश अमरसिंहजीका बनाया हुआ है। कुछ लोगतो इन्हें बौद्ध और कुछ जैन बतलाते हैं। पाश्चात्य विद्वानोंका विश्वास है कि गयाका बौद्ध मन्दिर इन्हींका बनवाया हुआ है। यदि उन लोगोंका यह अनुमान सत्य हो तो ज्ञान पड़ता है कि अमरसिंह ५ वी, शताब्दीमें रहे होंगे क्योंकि कनिङ्गहम आदि विद्वानोंका अनुमान है कि गयाका बौद्धमन्दिर पांचवीं शताब्दीमें बना होगा। विक्रमादित्यकी सभामें भी अमरसिंह नाम किसी पण्डितकी गिनती नवरत्नोंमें की गयी है। यदि वे अमरसिंह ही 'नाम लिङ्गानुशासन'के रचयिता हो तो युरोपीयोंकी यह कल्पना कि वे पांचवीं शताब्दीके व्यक्ति हैं ठीक नहीं उतरती। यदि अमरसिंह बुद्धगयाके मन्दिरके बनवानेवाले पांचवीं शताब्दीके व्यक्ति हो तो नवरत्नके पण्डित अमरसिंहसे अवश्य भिन्न होंगे। परन्तु आश्चर्य है कि अमरसिंह नामके दो प्राचीन पण्डितोंका उल्लेख कभी किसी इतिहास लेखकको करते नही सुन पाया। जो कुछ हो अमरकोशके रचयिता अमरसिंह कोई असाधारण पण्डित थे और अमरकोश एक बड़ा प्रामाणिक कोश माना जाता है।

दण्डी

दण्डी कविके भी निवासस्थान और समयका ठीक ठीक पता नहीं है। बंगालियोंने दशकुमारचरितमें विदर्भ देशकी बड़ी प्रशंसा लिखी देख अनुमान कर लिया है कि ये विदर्भ देशके

निवासी हैं पर इस बातके लिये और अधिक प्रमाणोंकी आवश्यकता है। दण्डी रचित काव्यादर्श नाम ग्रन्थमें शूद्रक विरचित मृच्छकटिकसे उद्धृत एक श्लोकको देख लोगोंने दण्डीको उज्जैनका निवासी और शूद्रकसे पिछला अथवा छठी शताब्दीका व्यक्ति अनुमान किया है। कुछ लोगोंका मत है कि दण्डी उज्जैनके किसी राजाके आश्रित थे और मृच्छकटिक नाम नाटक शूद्रकका नहीं किन्तु दण्डीहीका बनाया हुआ है।

विलसन साहब अनुमान करते हैं कि दण्डी सोमदेवकी अपेक्षा अर्वाचीन हैं और इन्होंने सोमदेवके कथासरित्सागरको देखके दशकुमारचरित बनाया होगा पर यह अनुमान प्रमाणोंसे पुष्ट नहीं होता। दण्डीके विषयमें एक कथानक यह भी सुन पड़ता है कि उन्होंने कालिदाससे शास्त्रार्थ किया था। पर ये कालिदास कौन हैं इसका ठीक ठीक पता लगना परम कठिन है।

जो लोग गृहस्थाश्रमको छोड़ संन्यासी हो जाते हैं संस्कृतमें उन्हें 'दण्डी' कहते हैं। सम्भव है कि 'दण्डी' कविका नाम न हो प्रत्युत उनका आश्रममात्र द्योतित करता हो। इस अनुमानके पोषणमें पण्डित ईश्वरचन्द्रजी विद्यासागर लिखते हैं—दण्डियोंके निवासका कोई नियत स्थान नहीं है वे सदा रमते विचरते रहते हैं केवल वर्षाऋतुके चार महीनोंमें यात्रामें अधिक क्लेश मिलनेसे दण्डीलोग किसी गृहस्थके यहाँ टिक रहा करते हैं। ये प्रसिद्ध दण्डी कवि भी बरसातमें किसी गृहस्थके यहां टिक रहते थे और प्रत्येक चौमासेमें एक एक ग्रन्थ बनाते थे। जिस बार दण्डी जिस गृहस्थके यहाँ टिकते थे, वर्षाके अन्तमें चलते समय अपनी रचित पुस्तक उसीको सौंप जाते थे। दशकुमारचरितको दण्डीने

किसी वर्षके चौमासेमें बनाया। अलङ्कारका ग्रन्थ काव्यादर्श भी एक ही चौमासेका बना प्रतीत होता है। यदि यह किंवदन्ती सत्य हो तो दण्डीरचित ग्रन्थोंके आरम्भ और अन्तमें जो न्यूनता दिखलायी पड़ती है उसका भी उत्तर मिल जाता है क्योंकि ऐसा भी सुननेमें आता है कि दण्डीने जिस बरसातमें दशकुमारचरित बनाया उसी बरसातमें उनका देहान्त हुआ। इसी कारणसे न तो दशकुमारचरित सम्पूर्ण हो सका और न उसका ठीक पूर्वापर सम्बन्ध लग सका।

दण्डीके बनाये जो ग्रन्थ आजकल मिलते हैं उनके नाम ये हैं—काव्यादर्श, दशकुमारचरित, छन्दोविचिति और कला परिच्छेद। इनमें पहले दो तो प्रसिद्ध हैं पिछले दो अभीतक नहीं मिले। वासवदत्ताकी भूमिकामें हाल साहिबने अनुमान किया है कि मृच्छकटिकका एक श्लोक जो काव्यप्रकाशमें भी मम्मटद्वारा उद्धृत है, दण्डी कवि विरचित है।

सुबन्धु

सुबन्धुने वासवदत्ता नामक एक गद्यकाव्य लिखा है। सुबन्धु अपनेको वररुचिका भाजा लिखते हैं पर ये वररुचि कौन हैं सो ठीक ठीक पता नहीं लगता। सुबन्धुने वासवदत्तामें लिखा है कि अब संसारमें विक्रमादित्य वर्त्तमान नहीं हैं जो विद्वानों और पण्डितोंका आदर करते थे। बाणभट्टकी कादम्बरी और सुबन्धुकी वासवदत्ता प्रायः एकही प्रकारकी शैलीसे लिखी पुस्तकें हैं। बाणने हर्षचरितमें वासवदत्ताका* उल्लेख किया है

* वासवदत्ताकी विद्वत्तापूर्ण भूमिकामें अभिनव बाण श्रीरंगाचार्यने इस अनुमानका युक्ति प्रमाणद्वारा खण्डन किया है कि बाणके हर्षचरितसे पूर्व वासवदत्ता लिखी गयी। सम्पादक

जिससे सिद्ध है कि सुबन्धुकी वासवदत्ता बाणभट्टके ग्रन्थोंकी अपेक्षा प्राचीन है और बहुत सम्भव भी है कि कादम्बरीमें वासवदत्ताकी शैलीका अनुकरण किया गया हो।

इस वासवदत्ता नाम ग्रन्थमें सुबन्धुने वश या वत्सवंशके राजकुमार कन्दर्पकेतुके साथ उज्जैनकी राजकुमारी वासवदत्ताके प्रेम और राजकुमार तथा राजकुमारीके विवाहका वर्णन किया है। कन्दर्पकेतु कौशाम्बीहीका राजकुमार है। अतएव भासके 'स्वप्नवासवदत्तम्' और 'प्रतिज्ञायौगन्धरायण'-हीकी कथा सुबन्धुने वासवदत्तामें लिखी है, सो प्रकट है। बाणभट्टसे कुछ प्राचीन होनेके कारण लोगोंने सुबन्धुको ६०० विक्रमाब्द पूर्वका व्यक्ति अनुमान किया है। सुबन्धु संस्कृत भाषाके एक अच्छे गद्यपद्यलेखक, पण्डित और सुकवि हो गये हैं। वासवदत्ता नाम गद्यग्रन्थको छोड़ सुबन्धुका कोई और ग्रन्थ देखने या सुननेमें नहीं आया।

हर्षवर्द्धन

ये कन्नौजके वेही प्रसिद्ध हर्षवर्द्धन या शीलादित्य हैं जिनका कि वर्णन बाणकविने निज रचित हर्षचरितमें लिखा है और जिनके दर्बारमें ह्वान्त्साङ्ग नामक चीनी यात्री आया था। यह राजा बहुत विद्वान् और धार्मिक था। यह संवत् ६६३ में राजसिंहासनपर बैठा और इसने अपने नामका एक नया संवत् भी चलाया। इस राजाका इतिहास ऊपर लिखा जा चुका है।

रत्नावली, नागानन्द और प्रियदर्शिका नाम तीन नाटक ग्रन्थ इसी राजाके बनाये प्रसिद्ध हैं परन्तु लोगोंका अनुमान है कि बाणभट्ट और धावक आदि कवियोंने ये नाटक ग्रन्थ रचकर

राजाके नामसे प्रचलित कर दिये और बहुत सा धन उससे पुरस्कारमें पाया।

धावक कविके विषयमें पण्डित ईश्वरचन्द्र विद्यासागर लिखते हैं कि ऐसी किंवदन्ती प्रचलित है कि धावक नाम किसी कविने रत्नावली और नागानन्द नाम नाटक बनाये, राजा श्रीहर्षने धन देकर धावकको परितुष्ट किया और इन दोनों नाटकोंको अपने नामसे प्रचलित करवाया। अलङ्कारशास्त्रके प्रसिद्ध जाननेवाले मम्मटभट्टके लेखसे भी यही बात पक्की होती है। पर धावक और राजा श्रीहर्ष इन दोनोंके समयमें सहस्रसे भी अधिक वर्षोंका अन्तर पड़ता है, दोनों एक ही समयके व्यक्ति नही हो सकते। कालिदास-विरचित मालविकाग्निमित्र नाटक की प्रस्तावनामें प्राचीन नाटक लिखनेवालोंमें धावकका भी नाम लिखा मिलता है। इसके अनुसार धावक शकारि विक्रमादित्यके भी बहुत पूर्व प्रगट हुए जान पड़ते हैं। अतएव यह किंवदन्ती और उसका मूल मम्मटका सिद्धान्त ठीक नहीं जचता और फिर भी श्रीहर्षका एक अनुपम कवि होना और सब देशकी भाषाका जानना प्रामाणिक इतिहासग्रन्थ राजतरङ्गिणीसे सिद्ध होता है। निर्मूलक किंवदन्ती तथा मम्मटका लेख सँभालनेके लिये किसी दूसरे धावक कविकी कल्पना करके राजा श्रीहर्षकी कविताशक्तिको उड़ा देना किसी प्रकार न्याय्य नहीं जचता है।"

उक्त मतसे प्रकट होता है कि धावकका समय विक्रमादित्यसे भी बहुत पूर्व रहा होगा पर ध्यान रखना चाहिये कि मालविकाग्निमित्रकी केवल दो एक प्रतिमें धावक नाम मिलता है और सभी प्रतियोंमें उसकी जगह भासकवि का नाम है। भास

धावकका नामान्तर हो यह बात संभव नहीं जान पड़ती। हाँ, यह संभव है कि कोई लेखक भूलसे भासकी जगह धावक लिख गया हो। ऐसे लेखकोंके प्रमाणपर मम्मटभट्टकी उक्तिपर सन्देह करना श्लाघ्य नहीं है। मेरी समझमें मम्मटहीका कथन ठीक जान पड़ता है क्योंकि काव्यप्रकाशके प्रामाणिक टीकाकारोंने भी यह किंवदन्ती उठायी है जिससे विद्यासागर महाशयकी भ्रान्तिसिद्ध होती है। प्रत्युत जिस श्रीहर्षने धावक कविसे ग्रन्थ बनवाये वह कश्मीरका राजा और सब देशोंकी भाषा जाननेवाला राजा श्रीहर्ष नहीं है किन्तु कान्यकुब्जका वह हर्षवर्द्धन है जिसके यश और प्रतापका वर्णन बाणभट्टने हर्षचरितमें किया है धावक कवि इस प्रकारसे बाणभट्टका समकालीन ही सिद्ध होता है और उसका श्रीहर्षवर्द्धनका आश्रित होना संभव है।* रत्नावलीमें कौशाम्बीके राजा उदयनका अपनी रानीकी एक सखी सागरिकासे प्रेमका वर्णन है पता लगनेपर विदित हुआ कि सागरिका सिंहलद्वीप की राजकन्या थी और नौका डूबते समय समुद्रसे बचायी जाकर कौशाम्बीमें लायी गयी थी। अन्तमें उदयन और सागरिकाका विवाह हो गया।

प्रियदर्शिका भी रत्नावलीकी नाईं एक छोटासा नाटक है। जिसमें नायक नायिकाके परस्पर प्रेम और विवाहका वर्णन किया गया है।

---

* प्रियदर्शिकाकी भूमिकामें श्रीकृष्णमाचार्यने इन सब विकल्पों और अनुमानोंका, जो श्रीहर्ष और उनकी रचनाके सम्बन्ध किये गये हैं, खण्डन करके अच्छी तरह सिद्ध किया है कि इन तीनों नाटकोंके कर्त्ता कन्नौजके श्रीहर्षवर्द्धन ही थे, धावक आदि अन्य कोई नहीं था। — सम्पादक

नागानन्द नाम नाटकके मङ्गलाचरणमें भगवान् बुद्धका स्मरण किया गया है। इस छोटेसे नाटकमें जीमूतवाहन नाम एक बौद्ध मतावलम्बी परोपकारी, राजकुमारने नागोंका प्राण बचाने लिए अपना प्राणोत्सर्ग किया, यह इतिहास वर्णित है।

बाण

हर्षचरित नामक प्रसिद्ध ग्रन्थमें बाणने अपने आश्रयदाता महाराज हर्षवर्द्धनका इतिहास लिखा है और संक्षेपमें अपना भी कुछ इतिहास दिया है। बाण वात्स्यायन वंशमें उत्पन्न मगध देशी ब्राह्मण थे। इनके पिताका नाम चित्रभानु और माताका नाम राज्यदेवी था। बचपनहीमें बाणको मातृवियोगका दुःख झेलना पडा और जब उनकी अवस्था १४ वर्षकी हुई तब उनके पिता भी स्वर्ग सिधारे। चीनी यात्री ह्वान्साङ्गके वर्णनानुसार तो विदित होता है कि राजा हर्षवर्द्धन बौद्धमतका पक्षपाती था पर उसके आश्रित होनेपर भी बाणकवि बौद्ध मतावलम्बी नहीं थे ऐसा कादम्बरी आदि ग्रन्थों के पढनेसे सिद्ध होता है। बाणभट्टके बनाये ग्रन्थोंके नाम कादम्बरी, हर्षचरित, चण्डीशतक और पारवतीपरिणय हैं। हर्षचरितके आरम्भमें बाणने अपने पूर्वके प्रसिद्ध कवियोंका उल्लेख किया है जिससे स्पष्ट है कि सुबन्धु, हरिचन्द, सातवाहन (शालिवाहन) प्रवरसेन, भास, कालिदास, गुणाढ्य और आढ्यराज ये कवि बाणसे पूर्व भारतमें प्रसिद्धि पा चुके थे। ये सब कवि छठी शताब्दीसे पूर्वके हैं और बाणतो हर्षवर्द्धनका समकालीन होनेके कारण सातवीं शताब्दीका व्यक्ति प्रमाणसिद्ध है ही।

बाणभट्टके पुरखे कन्नौजके 'मौखरि' राजाओंके गुरु थे ऐसा कादम्बरीकी भूमिकासे पता लगता है। इन्हीं मौखरि

राजाओंकी उपाधि वर्मा थी और इसी वंशका राजा ग्रहवर्मा प्रसिद्ध हर्षवर्द्धनका बहनोई था और इसी ग्रहवर्माके मारे जानेपर हर्षवर्द्धनको जब अपने बहनोईका राज्य मिला तो उसने कन्नौज अपनी राजधानी बनायी।

कादम्बरी संस्कृत गद्यका एक अनूठा ग्रन्थ है। इसके लेखसे बाणभट्टकी अलौकिक योग्यताका पूर्ण परिचय मिलता है। संस्कृत भाषामें शब्दोंका भाण्डार कितना अधिक है इसका प्रमाण कादम्बरी देखनेपर मिलता है। कथा भी अत्यन्त, चमत्कारिणी है । विदिशा नगरीका वर्णन, राजा तारापीडका प्रभाव, राजमन्त्री शुकनासका राजकुमार चन्द्रापीडको उपदेश इत्यादि परम मनोहर वर्णन हैं। बाणभट्टने केवल कादम्बरीका पूर्व भाग बना पाया था। उसे समाप्त नहीं करने पाये थे शेष कथाको उनके पुत्र भूषणभट्टने* लिखकर समाप्त किया परन्तु पिता पुत्रके लेखोंमें बड़ा अन्तर है और बाण-

---

* बाणभट्टके पुत्रका नाम "भूषणभट्ट" प्रसिद्ध करनेवाले डाक्टर बूलर है। पर यह नाम कोरा कल्पित है, किसी पुस्तकमें भी बाणके पुत्रका यह नाम नहीं मिलता। प० पाण्डुरंगशास्त्रीने अपने मराठी निबन्ध "बाणभट्ट"में अनेक प्रमाणोंद्वारा यह सिद्ध किया है कि बाणके पुत्रका नाम "पुलिन्दभट्ट" था। उनमेंसे तीन प्रमाण यह है —

(१) काश्मीर राज्यके पुस्तकालयमें शके १५६६की शारदालिपिमें भोजपत्रपर लिखी कादम्बरी है, उसकी समाप्तिपर बाणपुत्रका नाम "भट्टपुलिन्द" स्पष्ट लिखा हुआ है,

(२) उदयपुर नाथद्वारेकी पुस्तकोंमें भी यही नाम है।

(३) सूक्ति मुक्तावलिमें धनपाल कविकृत–बाणपुलिन्दकी प्रशंसामें एक श्लिष्ट पद्य है, उसमें भी यही सूचित होता है, यथा

भट्टकी अद्भुत कवित्वशक्तिकी बराबरी करनेमें उसका पुत्र पूर्णतया सफल नहीं हो सका है।

हर्षचरितमें जो ऐतिहासिक बातें पायी गयी हैं उनका वर्णन ऊपर हर्षवर्द्धनके इतिहास आदिमें किया जा चुका है।

लोग कहते हैं चण्डीदेवीको प्रसन्न करनेके लिये बाणभट्टने चण्डीशतक लिखा और इससे इष्टसिद्धि प्राप्त की।

पार्वतीपरिणय नाम नाटकभी बाणभट्ट रचित प्रसिद्ध है इसकी कविता और कथाभाग कविवर कालिदासकृत कुमारसम्भवसे बहुत मिलती है पर यह निश्चय नहीं होता कि यह नाटक इन्हीं बाणभट्टका विरचित है वा बाणभट्ट नामके किसी और कविका*।

संयुक्तप्रान्तके इटावा नाम नगरमें लोग आजतक एक कुआँ दिखलाते हैं और कहते हैं कि यह बाणका कुआँ है पर ठीक पता नहीं चलता कि उसका सम्बन्ध इन्हीं बाणकविसे है या किसी और से।

कुछ लोग कहते हैं कि बाणके श्वशुर, और कुछ लोग कहते हैं कि साले, मयूरभट्ट थे। यह किंवदन्ती प्रचलित है कि मयूरभट्टको कुष्ठ हो गया था और सूर्यशतक बनानेसे उनका रोग निवृत्त हुआ। मम्मटभट्टने भी काव्यप्रकाशमें लिखा है कि सूर्यके द्वारा मयूरभट्टका रोग दूर हुआ था।

" केवलोपिस्फुरन्**बाणः** करोति विमदान् कवीन्।
किं पुन क्लृप्त सधान-**पुलिन्द**-कृत सन्निधि ॥
(ज्वालापुरके भारतोदयमें प्रकाशित एक लेखके आधारपर)। **सम्पादक**

* पार्वतीपरिणय किसी दूसरे बाणभट्टकी रचना है, यह बात इसी नाटककी भूमिकामें श्रीकृष्णमाचार्यने युक्ति प्रमाणद्वारा सिद्ध कर दी है। **सम्पादक**

भर्तृहरि

भारतवर्षमें यह किंवदन्ती प्रचलित है कि भर्तृहरि महाराज विक्रमादित्यके जेठे भाई थे। ये पहले राजा थे पर अपनी स्त्रीके चरित्रपर सन्देह होनेसे इनके चित्तमें वैराग्य आ गया और अपने भाई विक्रमके हाथमें राजकाज सौंपकर वैरागी हो गये। महाराज विक्रमका समय विक्रमाब्दका आरंभ है, यदि भर्तृहरि उन्हीके जेठे भाई हैं तो कालिदास आदि कवियोंसे प्राचीन हैं। के. टी तैलङ्ग महाशयका अनुमान है कि भर्तृहरि अवश्य कालिदासने पिछले हैं और जबतक पतञ्जलिका महाभाष्य चन्द्राचार्य आदि वैयाकरणोंके द्वारा हिन्दुस्तानमें भलीभाँति प्रचलित न हो चुका होगा तबतक भर्तृहरि नहीं हो सकते। उन महाशयका सिद्धान्त भर्तृहरिको लगभग संवत् १३५का व्यक्ति बनाता है तथा विक्रमसंवत्को शालिवाहनके शाकेसे मिला देता है। यद्यपि तैलङ्ग महाशयके मतमें यह निर्विवाद सिद्धान्त निर्णीत किया गया है पर इसमें और भी कई एक सन्देह उपस्थित होते हैं। भर्तृहरिजी एक प्रसिद्ध वैयाकरण, दार्शनिक और कवि थे। इनका बनाया व्याकरण ग्रन्थ 'वाक्य-पदीय' है। भट्टिकाव्य इन्हीं भर्तृहरिका बनाया है ऐसा कहनेमें कुछ भी प्रमाण नहीं मिलता इसके विरुद्ध भलेही बहुत कुछ कहा जा सकता है। नीति, शृंगार और वैराग्य शतकतो भर्तृहरिहीके बनाये प्रसिद्ध हैं पर फिर भी यह सन्देह हो सकता है कि यह उनकी स्वतन्त्र रचना है या संग्रह, अथवा दोनों मिश्रित हैं। इन शतकोंमेंके अनेक श्लोक कालिदास यथा और और कवियोंके ग्रन्थोंमें भी पाये जाते हैं जिससे अनुमान होता है कि भर्तृहरिने भिन्न स्थानोंसे श्लोकोंका

संग्रह किया है। राज्यसे विरक्त होकर भर्तृहरिने तपस्या की और ज़िला मिर्ज़ापुरके चुनार नामक स्थानमें जो एक प्राचीन दुर्ग है उसीमेंकी एक गुफाको लोग भर्तृहरिकी तपोभूमि बतलाते हैं*।

उनके ग्रन्थोंके देखनेसे ज्ञान पड़ता है कि भर्तृहरि एक असाधारण विद्वान् थे। वाक्यपदीय ग्रन्थसे इनका व्याकरण और दर्शनशास्त्र सम्बन्धिनी व्युत्पत्तिका पता लगता है। नीति और वैराग्यशतककी कविता देखनेसे इनके संसारकी दशाके अनुभवका पूर्णतया परिचय मिलता है। भर्तृहरि विरचित शृङ्गारशतक तो एक अद्भुत ग्रन्थ है। इसमें स्त्रियोंकी प्रशंसा भी की गयी है और उनके फन्दोंसे बचनेका उपदेश भी युवा पुरुषोंको दिया गया है। चीनी यात्री इतसिङ्गने लिखा है कि भर्तृहरि सात बार बौद्धभिक्षु बने और फिर वैरागी हो गये पर यह बात मिथ्या जान पड़ती है। युरोपियनोंकी कल्पना है कि भर्तृहरि सातवीं शताब्दीके प्रथमार्द्धके व्यक्ति हैं।

भवभूति

भवभूति संस्कृतके एक सुप्रसिद्ध कवि हो गये हैं जिनकी गणना कालिदास, भारवि, बाणभट्ट, माघ, श्रीहर्ष आदिके साथ करनी चाहिये। इनकी रचना अति विचित्र और मनोहर है। भवभूतिकी रचनामें एक बात जो कि औरोंसे विलक्षण पायी जाती है यह है कि दृश्यकाव्यके भीतर भी उन्होंने दीर्घ समास और गभीर अर्थवाले शब्दोंका प्रयोग किया है जो खटकता है। इनके बनाये तीन प्रचलित नाटक वीरचरित, उत्तररामचरित और मालतीमाधव हैं। वीरचरितमें वीररस,

* उज्जैनमें भी एक पुरानी गुफा भर्तृहरिके नामसे प्रसिद्ध है। सम्पादक

उत्तर चरितमें करुणारस और मालती माधवमें शृङ्गाररसका प्राधान्य रखा गया है। ये तीनों नाटक उत्तम हैं।

नाटकोंके प्रारम्भमें भवभूतिने जी खोलकर अपना परिचय दिया है। भवभूति दक्षिण देशमें पद्मपुर नामक स्थानके निवासी और विद्वान् ब्राह्मणोंके कुलमें उत्पन हुए थे। उनके पितामह का नाम गोपालभट्ट और पिताका नाम नीलकण्ठ था। भवभूतिकी माताका नाम जातूकर्णी और गुरुका नाम ज्ञाननिधि था।

भवभूति और वाक्पतिराज ये दोनों कवि कन्नौजके राजा यशोवर्मदेवके सभासद् थे। इस यशोवर्मदेवको काश्मीरके राजा ललितादित्यने युद्धमें परास्त किया था। ललितादित्यका राज्यकाल संवत् ७५० से७८६ तक है अतएव भवभूति आठवीं शतब्दीके प्रारम्भ कालके व्यक्ति सिद्ध होते हैं। कुछ लोग भवभूतिको ब्रह्मसूत्रके टीकाकार भगवत्पादशङ्कराचार्यसे अर्वाचीन मानते है। दूसरे लोग भवभूतिको कालिदासका समकालीन बतलाते हैं और कहते हैं कि भवभूतिने कालिदासको निजरचित उत्तरचरित दिखलाया था और कालिदासने उसमें एक स्थानपर 'एवं'के स्थानमें 'एव' बनवा दिया था। यदि यह कथा सत्य हो तो मानना पड़ेगा कि भवभूतिके समकालीन भी कोई कालिदास हुए हैं और ये रघुवंश आदि काव्योंके रचयितासे नितान्त भिन्न हैं। भवभूतिने मालतीमाधवमें शकुन्तलाका नामोल्लेख किया है और एक स्थानमें मेघद्वारा संदेसा भेजनेकी बात भी छेड़ी है जिससे लोग अनुमान करते हैं कि वे महाकवि कालिदासके अभिज्ञानशाकुन्तलनाटक और मेघदूत काव्यसे परिचित थे। मालतीमाधवसे भवभूतिके समयमें भारतके बौद्ध समाजकी

तान्त्रिकोंकी दशा, स्त्रीशिक्षा और न्यायादिका प्रचार भली भांति विदित होता है। कालिन्दीतीरके श्याम नामक वट और उज्जयिनीके भगवान् कालप्रियनाथ महादेवका भी उल्लेख भवभूतिने निज ग्रन्थोंमें किया है।

विशाखदत्त

विलसन् साहबने मुद्राराक्षसमें 'पृथुसूनु' ऐसा देखकर इन्हें दिल्लीके महाराज पृथ्वी राजका पुत्र कल्पना किया है और सोमेश्वरको सामन्त वटेश्वरदत्तका संक्षिप्त रूप समझ इन्हें बारहवीं शताब्दीका व्यक्ति निर्धारित किया है पर यह बात ठीक नहीं जान पड़ती।

विशाखदत्त सम्भवतः अवन्तिवर्मा नाम किसी राजाके राज्यकालमें उपस्थित थे। यह अवन्तिवर्मा संभवतः कन्नौजके मौखरिवर्मन् राजाओंमेंसे कोई एक हैं। अतएव विशाखदत्त भी उसके समकालीन हैं और सातवीं शताब्दीसे पूर्वके व्यक्ति सिद्ध होते हैं। इनके पिताका नाम पृथु और दादाका नाम सामन्त वटेश्वरदत्त था।

विशाखदत्तकी बनायी केवल एक ही पुस्तक संसारमें प्रचलित देखनेमें आयी है और वह पुस्तक मुद्राराक्षस नाटक है। और कोई ग्रन्थ विशाखदत्तका बनाया देखने वा सुननेमें नहीं आया पर इसी एक नाटकसे विशाखदत्तकी कविता शक्तिका पूर्णपरिचय मिलता है। मुद्राराक्षस राजकीय गूढ़नीति विषयक प्रपञ्चमय एक अद्भुत नाटक है जिसमें शृङ्गाररसकी गन्ध तक नहीं है फिर भी अत्यन्त रोचक है। चन्द्रगुप्तके मन्त्री चाणक्यने किस प्रकार नन्दोंके संहारानन्तर नन्दवंशके सच्चे हितैषी मन्त्री राक्षसको नीतिबलसे अपने वशीभूत करके

चन्द्रगुप्तका हितकारक मन्त्री बनाया, यही दिखलाना नाटकका मुख्य उद्देश्य है।

त्रिविक्रमभट्ट

ये कवि प्रसिद्ध विद्वान् श्रीदेवादित्य शर्माके पुत्र थे। बचपनमें इनकी पढ़ने लिखनेमें विशेष अभिरुचि न थी। परन्तु प्रयोजनवश सरस्वती देवीकी आराधनाकर कुछ कालमें उनकी कृपासे इन्हें विद्यासे अच्छा परिचय हो गया। सुननेमें आता है कि सरस्वतीकी अनुग्रहावस्थामें ही त्रिविक्रमभट्टने सात उछ्वासवाला नलचम्पू नाम एक अत्युत्कृष्ट ग्रन्थ रचा था। चम्पूग्रन्थ बहुधा खण्डित ही छोड़ दिये जाते हैं अतएव नलचम्पू भी खण्डित ही है। त्रिविक्रमभट्टकी उपाधि यमुना त्रिविक्रम थी।

नलचम्पूमें बाणभट्टका नाम मिलनेसे विदित होता है कि ये सातवीं शताब्दीसे पिछले हैं और भी सरस्वतीकण्ठाभरणमें भोजराजने नलचम्पूसे एक श्लोक उद्धत किया है जिससे सिद्ध है कि त्रिविक्रमभट्ट भोजराजसे पूर्वके व्यक्ति हैं। अतएव इनका समय आठवीं शताब्दी वा नवीं शताब्दीमें मान लिया जा सकता है।

अमरु

इनका रचित अमरुशतक नाम एक शृङ्गाररसका काव्य देखनेमें आता है। अमरुकविके विषयमें एक कथानक प्रसिद्ध है कि जब भगवत्पादशङ्कराचार्यजी काश्मीर गये तो वहांवालोंने इन्हें संन्यासी समझ इनसे शृङ्गाररसकी कविता बनानेका आग्रह इस अभिसन्धिसे किया कि जिसमें स्वामीजी परास्त होके हार मान लें। शङ्कराचार्यजी परकायप्रवेशकी योग–

शक्तिद्वारा राजा अमरुके शरीरमें पैठे और उसी अवस्थामें अमरुशतक बनाया। इस कथानकसे इतनी बात तो अवश्य ही अनुमित होती है कि चाहे अमरुकवि और भगवत्पाद-शङ्कराचार्य एक जन न हो पर वे परस्पर समकालीन अवश्य हैं। शङ्कराचार्यजीका समय आर्यविद्यासुधाकरके अनुसार शालिवाहिनीय संवत् ७१०से ७४२तक अर्थात् वि० सं० ८४५से ८७७तक विदित है। श्रीकाशीनाथ त्र्यम्बक तैलङ्गका मत है कि शङ्कराचार्यजी संवत् ६४७ में विद्यमान रहे होंगे और उससे पिछले व्यक्ति न होंगे। इहीके समकालीन होनेसे अमरु-कविको सातवीं और आठवीं शताब्दीके बीचमें किसी समयका या उससे भी पूर्वका कवि मानना चाहिये †

लोग कहते हैं कि अमरुकवि कश्मीरका राजा और बडा कामी था। इसके सौ रानियां थीं। पर राजतरङ्गिणीमें इस राजाका कहीं भी उल्लेख नहीं मिलता जिससे यह प्रवाद सर्वथा मिथ्या प्रतीत होता है।

पण्डितश्रेष्ठ ईश्वरचन्द्रजी विद्यासागर महाशय स्वरचित संस्कृत साहित्यके इतिहासमें लिखते हैं कि संस्कृतमें जितने कोशात्मक काव्य अथवा खण्डकाव्य हैं उनमें से अमरुशतक ही सबसे उत्तम है। निःसन्देह इस सौ श्लोकवाले ग्रन्थकी रचना परम मनोहर और अद्भुत है। रचना देखनेसे ग्रन्थकी प्राचीनता भी झलकती है। कालिदासके ग्रन्थोंके पढनेसे चित्त जैसा अनुपम आह्लादसे भर जाता है अमरुशतकके पाठसे भी चित्त वैसा ही तृप्त होता है। अमरु एक प्रधान कवि थे और

---

† साहित्याचार्य प. रामावतार शर्मा एम. ए. ने अपने 'भारतीयेतिवृत्त,' में [संक्षिप्त संस्कृत इतिहास] अमरुक कविको स्वर्णकार लिखा है, जो समुद्रगुप्तके समय, कालिदासके समकालीन थे। सम्पादक।

इनकी लेखप्रणाली उत्तम कवियोंकी रचनासे किसी प्रकार कम नहीं है।

काव्यप्रकाश और कुवलयानन्द आदि संस्कृतके साहित्य-ग्रन्थोंमें अमरुशतकके श्लोक बहुतायतसे उद्धृत मिलते हैं।

अमरुशतक तो शृङ्गाररसका काव्य है पर कुछ पण्डितोंने खींचा-खांची करके उसका अर्थ वैराग्य और भक्तिकी ओर भी घटानेकी चेष्टा की है।

भट्टनारायण

वेणीसंहार नामक प्रसिद्ध नाटकके रचयिता भट्टनारायण उन पांच ब्राह्मणोंमेंसे हैं जिन्हें बङ्गालके राजा आदिशूरने मध्यदेशसे बुलाकर बङ्गालमें बसाया। डाक्टर राजेन्द्रलाल मित्रके कथनानुसार आदिशूरहीका नामान्तर वीरसेन है और उन्हींके तथा रमेशचन्द्रदत्तके कथनानुसार बङ्गालके राजा वीरसेनका समय संवत् १०४३से १०६३तक अनुमित होता है। भट्टनारायणने आदिशूरको अपना परिचय देते समय बतलाया है कि मैं वेणीसंहार नाम नाटकका रचयिता हूं। निदान आदिशूरके समकालीन भट्टनारायण दशवीं शताब्दीमें संसारमें विद्यमान थे। भट्टनारायणके रचित एक और ग्रन्थका नाम प्रयोगरत्न है। काव्यप्रकाशमें मम्मटने वेणीसंहारके बहुतसे श्लोक उद्धृत किये हैं।

बङ्गालके श्रीयुक्त बाबू प्रसन्नकुमार ठाकुर अपनेको भट्टनारायणका वंशज बतलाते हैं और उन्होंने जो वेणीसंहार नाम नाटक छपवाया है उसके प्रारम्भमें अपनी वंशावली भी दी है। उक्त वंशावलीके अनुसार बाबू प्रसन्नकुमार ठाकुर भट्ट-नारायणसे ३२वीं पीढ़ीमें आते हैं।

भट्टनारायणके पिताका नाम भट्टमाहेश्वर था। भट्टमाहेश्वर साहसाङ्कचरितके रचयिता हैं वा उनसे भिन्न हैं पता नहीं लगता। बूलर साहिबने लिखा है कि शैव दार्शनिक लक्ष्मणगुप्त संवत् १००७में विद्यमान थे और भट्टनारायणके शिष्य थे। बहुत संभव है कि लक्ष्मणगुप्त केगुरु वेणीसंहारके रचयिता ही रहे हों।

माघ

संस्कृतके छः प्रसिद्ध महाकाव्योंमेंसे माघका शिशुपालवध भी एक है। इस महाकाव्यके २० सर्गोंमें श्रीकृष्णजीने किस प्रकारसे युधिष्ठिरके राजसूय यज्ञमें चेदिदेशके राजा शिशुपालका वध किया सो वर्णित है। इतिहासका भाग तो केवल इतना ही है पर राजनीति, द्वारकापुरी, रैवतकगिरि, वन, जलक्रीड़ा, पुष्पावचय, मद्यपान, युद्धक्षेत्र, यज्ञ आदिका वर्णन इसमें बहुत अच्छी रीतिसे किया गया है और प्रायः प्रत्येक स्थलपर भारविकृत किराताजुनीयका अनुकरण हुआ है वास्तव में माघ कोई अनुपम शक्ति विशिष्ट योग्य कवि थे और केवल इसी एक ग्रन्थके कारण इन्होंने संसारमें अक्षय कीर्ति प्राप्त की है।

माघनें शिशुपालवधकी समाप्तिमें अपने पितामह सुप्रभदेव और पिता 'दत्तक'का नामोल्लेख किया। दत्तकके भाई शुभङ्करके पुत्र सिद्धार्थ भी एक प्रसिद्ध ग्रन्थकार हैं। लोगोंने माघकविका प्रादुर्भावकाल संवत् ६०७के लगभग अनुमान किया है।

राजशेखर

यह कवि कन्नौजके राजा महेन्द्रपाल और उसके पुत्र भोज-

के दरबारमें उपस्थित थे। यह राजा महेन्द्रपालके गुरु भी थे। राजशेखरने कालिदास और भवभूतिका अनुकरण करके कई एक नाटक लिखे हैं जो कि मनोहर हैं पर कालिदास अथवा भवभूति विरचित नाटकोंकी समताको नही पहुँच सकते। हाँ कवितामें राजशेखर भी संसारमें प्रसिद्धि पा गये हैं। इनके बनाये ग्रन्थ निम्नलिखित हैं—

(१) बालरामायण—जिसमें रामके जन्मसे लेकर उनके राज्याभिषेक तक रामायणकी कथाका वर्णन सात अङ्कोंमें दिखलाया गया है यह नाटक कुछ विस्तृत हो गया है।

(२) बालभारत—इसमें द्रौपदीके विवाहसे लेके द्यूत-क्रीड़ाकी समाप्तिके अनन्तर पाण्डवोंके वनगमन तककी महाभारतकी कथाका भाग है।

(३) विद्धशालभञ्जिका—यह श्रीहर्षकी रत्नावलीके समान कथासे पूरित पर उसकी अपेक्षा कम मनोहर नाटक है।

(४) कर्पूरमंजरी—यह एक अत्यन्त छोटा नाटक प्राकृत भाषामें लिखा गया है। *

धनञ्जय और धनिक

ये दोनों भाई अवन्तीपुरीकी धारानगरीमें भोजके चचा-मुञ्जके सभारत्न थे। इनके पिताका नाम विष्णुथा। धनञ्जयने दशरूपक नामका एक अलङ्कार ग्रन्थ लिखा है और धनिकने उसपर दशरूपकावलोक नामकी टीका रची है। राजामुञ्ज और भोजका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। उनके समकालीन

* राजशेखरका एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण और अपने विषयका संस्कृतमें एक ही ग्रन्थ "काव्यमीमांसा" अभी हालमें मिला है, जो बड़ौदा राजकीय संस्कृत विभागकी ओरसे प्रकाशित हुआ है। सम्पादक।

इन दोनों भाइयोंका समय दसवीं शताब्दी जान पड़ती है इन दोनों भाइयोंके समकालीन पद्मगुप्त (परिमल) और हलायुध आदि ग्रन्थकार हैं। पद्मगुप्त तो "नवसाहसाङ्कचरित" नामक ग्रन्थके रचयिता हैं और हलायुध एक प्रसिद्ध संस्कृत कोशके लेखक तथा पिङ्गलसूत्रोंके टीकाकार हैं। रघुवंश आदि काव्योंके प्रसिद्ध टीकाकार मल्लिनाथने जहांतहां हलायुधके कोशसे प्रमाण उद्धृत किये हैं। अत्यन्त सम्भव है कि ये हलायुध यही मुञ्जके समकालीन व्यक्ति होवें। धनिकने दशरूपकावलोकमें विद्धशालभञ्जिकासे श्लोक उद्धृत किये हैं जिससे स्पष्ट है कि यह राजशेखरकविसे पिछले हैं। दशरूपकावलोकमें रुद्र नामक किसी कविका उल्लेख मिलता है। अनुमान होता है कि ये रुद्र कदाचित् काव्यालङ्कारके रचयिता कश्मीरी कवि रुद्रट हैं। राजतरङ्गिणी आदिके अनुसार रुद्रटका समय संवत् ६०७के लगभग है अर्थात् रुद्रट कवि धनिकसे

।

भोजराज

ये महाशय मालवाधीश प्रसिद्ध भोजराज हैं। इनकी राजधानी धारा नगरी थी जो आजकल मालवेकी धार नामक छोटी रियासत है। भारतमें महाराज विक्रमके अनन्तर इन्हीं भोजराजकी प्रसिद्धि है। ये परम विद्वान् और गुणग्राही थे। इनके रचित ग्रन्थोंके नाम सरस्वतिकण्ठाभरण, रसकौमुदी और युक्तिकल्पद्रुम आदि हैं। सरस्वतिकण्ठाभरणमें विशाखदत्त विरचित मुद्राराक्षस नाम नाटकसे एक श्लोक उद्धृत किया है जिससे सिद्ध होना है कि भोजराज विशाखदत्तसे पीछे हुए हैं। मम्मट कविने काव्यप्रकाशमें एक श्लोक उद्धृत

किया है जो धाराके भोजराजके दानकी प्रशंसा करता है जिससे यह बात प्रमाणित होती है कि भोज मम्मटसे पहले हुए हैं।

प्राचीन लेखमालामें भोजराजका एक लेख छपा है जो संवत् १०७८में लिखा गया है उसमें भोजके पिताका नाम सिन्धुराज और पितामहका नाम वाक्पति श्रीराजदेव लिखा है। भोजके पितृव्य मालवाधीश मुञ्ज थे। एक कथानक प्रसिद्ध है कि मुञ्जने राज्यासन ग्रहण करके ज्योतिषियोंसे भोजके भावी प्रतापका वर्णन सुना और गुप्त रीतिसे उसके वधकी चेष्टा की। पर भोजके प्राण किसी प्रकार बच गये। मुञ्जको अपने जघन्य कार्यपर इतना अधिक पछतावा हुआ कि पीछेसे भोजके हाथ राज्य सौंप दक्षिण दिशाको चला गया। चालुक्य राजा तैलपने मुञ्जको बन्दी किया और अन्तमें मरवा डाला।

विद्वज्जनोंने निर्णय किया है कि धारानगरीमें महाराज भोजने प्रायः संवत् १०५३से लेकर ११०८तक राज्य किया होगा। ये महाराज भोज ग़ज़नीके प्रसिद्ध लुटेरे महमूदके समकालीन थे। जिस समय सोमनाथकी लूट हुई भोजराजने भी गजनवीको मार्गमें रोकनेकी चेष्टा की थी।

भोज बड़े प्रतापी, यशस्वी, न्यायी, धर्मात्मा, धनी, दानी, विद्वान् और गुणज्ञ थे। ये परमारवंशी राजकुमार थे और मालवेके परमारवंशी राजाओंके बीच इनका तथा इनके पितृव्य मुञ्जका वर्णन किया जा चुका है।

मम्मटभट्ट

कश्मीर देशमें जो संस्कृतके अनुपम विद्वान् पण्डित हो चुके हैं उनमेंसे मम्मटभट्ट भी एक हैं। इनके बनाये काव्यप्रकाश नाम ग्रन्थको संस्कृत साहित्यका कौन रसिक नहीं

जानता। लोग कहते हैं कि नैषधकाव्यके रचयिता श्रीहर्ष मम्मटके भांजे थे और श्रीहर्षने नैषधचरित नाम काव्य जब लिखा था अपने मातुलको भी दिखलाया था।

मम्मटने काव्यप्रकाशमें भट्टलोल्लट, श्रीशङ्कुक, भट्टनायक अभिनवगुप्त, आनन्दवर्द्धन (ध्वनिकार), वामन, रुद्रट और भट्टोद्भटका नाम लिखा है और पतञ्जलि, कात्यायन तथा भरतमुनि आदिके वाक्य जहाँतहाँ उद्धृत किये हैं। प्राचीन संस्कृत ग्रन्थ जैसे गाथासप्तशती, महावीरचरित, मालती-माधव, रघुवंश, कुमारसंभव, मेघदूत, शाकुन्तल, विक्रमोर्वशी बालरामायण, विद्धशालभञ्जिका, हनुमन्नाटक, ध्वन्यालोक, कुट्टिनीमत, महाभारत, विष्णुपुराण, किरातार्जुनीय, वेणी-संहार, काव्यादर्श, भर्तृहरिशतक, हयग्रीववध, रत्नावली, नागानन्द, अमरुशतक, सूर्यशतक, माघ पञ्चतन्त्र, हर्षचरित, भट्टिकाव्य इत्यादिसे अनेक अवतरण काव्यप्रकाशमें देख पड़ते हैं जिससे यह बात सिद्ध होती है कि उन सब ग्रन्थोंसे काव्य-प्रकाश पीछे लिखा गया है। शीलाभट्टारिका, विज्जिका आदि स्त्री कवि और भासके स्फुट पद्य भी इस पुस्तकमें उद्धृत हैं।

मम्मटके पिताका नाम जैय्यट और छोटे भाइयोंके नाम कैय्यट और उव्वट हैं। कैय्यटने पतञ्जलिके महाभाष्यपर टीका लिखी है। मम्मटभट्ट कश्मीरके निवासी हैं, यह प्रसिद्ध है कि इन्होंने काशीमें भी विद्याध्ययन किया था। मम्मटके पाण्डित्यकी जो कुछ बड़ाई की जाय थोड़ी है। वैयाकरण और दार्शनिक तो ये हैं ही पर साहित्यमें इनके विशेष ज्ञानका साक्षी स्वयं काव्यप्रकाश ग्रन्थ है। काव्यप्रकाशकी कारिका और वृत्ति दोनों मम्मटभट्टकी लिखी हैं। परन्तु उदा-हरणके श्लोक प्रायः ग्रन्थान्तरोंसे उद्धृत हैं। इस पुस्तककी कई

टीकाएं हैं जिनमेंसे माणिक्यचन्द्रकी सबसे प्राचीन है और संवत् १२१७में लिखी गयी है।

मम्मटभट्ट भोजराजके समकालीन और ग्यारहवीं शताब्दीसे कुछ पहलेके व्यक्ति जान पड़ते हैं।

क्षेमेन्द्र

यह एक प्रसिद्ध कवि कश्मीरके निवासी हैं। कुछ लोगोंका मत है कि संवत् ११०७में राजा अनन्तके राज्यकालमें क्षेमेन्द्रने समयमातृका बनायी। बूलर साहबका मत है कि क्षेमेन्द्रका विद्या सम्बन्धी जीवन १०८२से ११३२तक रहा होगा। क्षेमेन्द्रका जीवनकाल ग्यारहवीं शताब्दी स्थिर होता है। इनके बनाये अट्ठाईस ग्रन्थ सुन पड़ते हैं जिनमेंसे औचित्यविचारचर्चा, कलाविलास, दर्पदलन, कविकण्ठाभरण, चतुर्वर्गसंग्रह, चारुचर्या, वृहत्कथामञ्जरी, रामायणमञ्जरी, भारतमञ्जरी, समयमातृका और सुवृत्ततिलक बहुत प्रसिद्ध हैं।

इनके ग्रन्थोंसे विदित होता है कि ये बड़े विलक्षण और व्यवहारकुशल कवि थे। इन्होंने† कायस्थों और मुसलमानोंकी बड़ी निन्दा की है। समयमातृका नामक ग्रन्थका विषय दामोदरगुप्तके 'कुट्टनीमत'से बहुत कुछ मिलता है और बिलकुल उसी ढङ्गपर लिखा गया है। क्षेमेन्द्रने 'अवदानकल्पलता' नाम पुस्तकमें बौद्धधर्मके प्रसिद्ध महात्माओंके उपदेश और इतिहास लिखे हैं।

† क्षेमेन्द्रने और राजतरंगिणीकार कल्हणने जो कायस्थोंका उल्लेख किया है, वह जातिविशेषका नाम नहीं किन्तु वहां कायस्थसे अभिप्राय सरकारी अहलकारोंसे है। स्टाइन साहबने राजतरंगिणीकी टिप्पणियोंमें यह बात सिद्ध की है। — सम्पादक।

आर्यक्षेमीश्वर

चण्डकौशिक नाटक इन्हींका बनाया हुआ है। साहित्य-दर्पणको छोड और किसी ग्रन्थमें इस नाटकका उल्लेख नहीं पाया जाता अतएव संभव है कि आर्यक्षेमीश्वर संवत् १५२४से पूर्वके व्यक्ति हों। आर्यक्षेमीश्वरने राजा महीपालदेवकी आज्ञानुसार चण्डकौशिक लिखा और कार्तिकेय नाम किसी राजाके ये सभासद् थे। महीपालदेव बङ्गालके पालवंशी राजा थे और उनका राज्यकाल संवत् १०८३से १०६७नक रहा होगा। अतएव आर्यक्षेमीश्वरका समय ग्यारहवीं शताब्दीमें मान लेना चाहिये।

दामोदरमिश्र

हनुमन्नाटक वा महानाटकके देखनेसे अनुमान होता है कि उसका संग्रह दामोदरमिश्रने किया है। भोजप्रबन्धमें लिखा है कि राजाभोजके समयमें मल्लाहोंने नदीमें जाल डालकर एक पत्थर निकाला जिसमें कुछ लेख खुदा था। राजाने अपने सभासदोंसे उस लेखको पढ़वाया तो जान पड़ा कि रामायणकी कथाका कोई भाग है। लोगोंने अनुमान किया कि हनुमान् जीने कोई रामायण बना समुद्रमें डाल दी थी उसीका कुछ अंश यह है। दामोदरमिश्रने तदनन्तर एक नाटक रचके इसका नाम हनुमन्नाटक रखा। यह नाटक संस्कृतमें तो लिखा गया है पर कालिदास वा भवभूति आदिकी नाईं प्रौढ वा गम्भीर कविता इसमें नहीं है। नाटकके नियमोंका इस पुस्तकमें पालन नहीं किया गया है, और कहीं कहीं पर और और कवियोंके भी रचित श्लोक इसमें उद्धृत देख पड़ते हैं। वास्तवमें यह स्वतन्त्र रचना नहीं, संग्रह है। लोग हनुमन्नाटकको

वीररसप्रधान ग्रन्थ मानते हैं, पर इसमें सीतारामविषयक शृङ्गाररसकी भी भरमार है। द्वितीयअङ्कका नाम ही 'जानकी-विलास' है।

दामोदरमिश्र मम्मटभट्टसे प्राचीन वा उनके समकालीन जान पड़ते हैं परन्तु यह बहुत सम्भव है कि वे मालवेके भोज-राजके भी समकालीन रहे हों। इनका भी समय ग्यारहवीं शताब्दी ही माना जा सकता है।

कृष्णमिश्र

प्रबोधचन्द्रोदय नाम संस्कृत नाटक इन्हींका लिखा हुआ है। नाटकसे विदित होता है कि चंदेल राजा कीर्त्तिवर्माने युद्धमें त्रैदिमण्डलके राजा कर्णदेवको परास्त किया। बनारसमें इसी राजा कर्णदेवके नामसे खोदे गये लेख तांबेपर मिले हैं और उसका समय संवत् १०६६ निर्णय होता है। हेमचन्द्र और बिल्हणके ग्रन्थोंसे विदित होता है कि औरऔर राजाओंने भी इसे पराजित किया था। कर्णदेवको विजय करनेवाले चँदेल राजा कीर्त्तिवर्मदेव संवत् ११०७से ११७३तक विद्यमान थे। उन्हींके सभासद होनेके कारण कृष्णमिश्रका समय भी ग्यार-हवीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध मानना चाहिये।

सोमदेवभट्ट

यह एक प्रसिद्ध कश्मीरी कवि हुए हैं जो कश्मीरके राजा अनन्तदेवके राज्यकालमें विद्यमान थे। राजतरङ्गिणीके अनु-सार अनन्तदेवने संवत् १०८५से ११२१तक राज्य किया। सोमदेवका बनाया प्रसिद्ध ग्रन्थ कथासरित्सागर है जिसमें लगभग २२००० श्लोक हैं। ग्रन्थकी समाप्तिमें भट्टजी लिखते हैं कि उन्होंने इस ग्रन्थको राजा अनन्तदेवकी रानी सूर्यमती

वा सुभटाके मनोविनोदार्थ रचा। कथासरित्सागरमें जो उपाख्यान लिखे गये हैं वैसे अधिक मनोरम नहीं हैं जैसे कि अद्भुत व्यापारोंके निदर्शन हैं। ऐसे उपाख्यानोंका किसी समय भारतमें बहुत प्रचार था और अच्छे समझे जाते थे पर अब ऐसी कथाओंसे प्रायः लोगोंकी रुचि हटती जाती है। कथासरित्सागरमें बृहत्कथाके उपाख्यानोका समावेश किया गया है। बाणभट्टरचित कादम्बरीकी कथाका बीज भी कथासरित्सागरमें है। इसी प्रकार वेतालपञ्चविंशतिकी सभी कथाएँ कथासरित्सागरमें हैं। ग्रन्थ आरम्भसे अन्ततक पद्योंहीमें है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टिसे अधिक विश्वासयोग्य नहीं है। व्याड़ि, पाणिनि, वररुचि आदि वैयाकरण पण्डितोंके तथा नरवाहनदत्त, त्रिविक्रमसेन आदि राजाओंकी कथाएं पुस्तकमें जहाँतहाँ पायी जाती हैं। सोमदेवभट्ट भी ११वीं शताब्दीके व्यक्ति हैं।

बिल्हण

यह भी एक प्रसिद्ध कश्मीरी कवि हैं और लोगोंने चोरकवि भी शायद इन्हींका नामान्तर रखा होगा। इनके बनाये ग्रन्थोंके नाम चौरपञ्चाशिका, विक्रमाङ्कदेव चरित और कर्णसुन्दरी नाटिका हैं। इन्होंने और भी कई ग्रन्थ बनाये होंगे पर उक्त तीन को छोड़ शेष का पता नहीं लगता। कुछ पद्य सुभाषितावलिमें बिल्हण कविके नामसे उद्धृत देख पडते हैं पर वे उक्त तीनों ग्रन्थोंमें न पाये जानेसे यह अनुमान पुष्ट होता है। चौरपञ्चाशिका एक प्रसिद्ध ग्रन्थ है जिसके निर्माणके विषयमें एक ऊटपटाग कथानक मशहूर है कि बिल्हण जब गुजरातके राजा वैरिसिंहकी बेटी शशिकलाके शिक्षक नियत हुए

नो राजकन्याके यौवनसौन्दर्यपर मोहित हो गुप्त गान्धर्व विवाह कर लिया। यह समाचार अति शीघ्र राजाके कानों तक पहुँचा। राजाने कविको प्राणदण्डकी आज्ञा दी। वधस्थानपर पहुँचते पहुँचते कविने अपनी प्रियतमाके वर्णनमें ५० श्लोक रच डाले। जब राजाने इस काव्यरचनाका समाचार सुना तो प्रसन्न हो उसने न केवल कविके प्राण ही छोड़ दिये किन्तु अपनी कन्या भी उसे विवाह दी। परन्तु यह कथानक असम्भव सा जान पड़ता है क्योंकि गुजरातका राजा वैरिसिंह संवत् ९७७में मर गया और विक्रमाङ्कदेवचरितद्वारा विदित होता है कि विल्हण ११वीं शताब्दी प्रारम्भमें कश्मीरसे बाहर निकले थे। गुजरातमें उस समय चालुक्यवंशी भीमदेवका पुत्र कर्णदेव राज कर रहा था। इतना तो अवश्य सिद्ध होता है कि विल्हणको कुछ क्लेश मिला जिसे उन्होंने सोमनाथका दर्शन करके दूर किया। इस समय सोमनाथकी वह शोभा न रही होगी जैसी कि महमूद ग़ज़नवीकी चढ़ाईके पूर्व थी और जिसका वर्णन मार्शम्यान आदि इतिहासलेखकोंने किया है। यदि विल्हणने ग़जनीके लुटेरेके आगमनसे पूर्व सोमनाथका दर्शन किया होता तो संभवतः वैरिसिंहके समकालीन होते। राजतरंगिणी और विक्रमाङ्कदेवचरितसे यह बात नहीं सिद्ध होती कि महमूदसे पहले विल्हण गुजरातमें पहुँच सके हों। राजतरंगिणीके द्वारा ज्ञात होता है कि कश्मीरके राजा कलशने संवत् ११२१से ११४५तक राज किया। इसी राजाके समयमें विल्हण कश्मीर देशको छोड़ भ्रमणके लिए बाहर निकले। विक्रमाङ्कदेवचरितद्वारा जाना जाता है कि विल्हण, मथुरा, कन्नौज, काशी, प्रयाग, अयोध्या, धारा, गुजरात आदि

स्थानोंमें घूमते हुए सेतुबन्धरामेश्वरतक गये थे। बूलर साहब अनुमान करते हैं कि विल्हण लगभग संवत ११२२ में भारतवर्षको भिन्न भिन्न राजाओंके दरबारमें गये होंगे और अन्तमें जाके पश्चिमी चालुक्य राजा विक्रमादित्यके यहाँ रहे जिनके वर्णनमें उन्होंने विक्रमाङ्कदेवचरित नामक काव्य बनाया। पश्चिमी चालुक्य राजा विक्रमादित्य छठाँ संवत् ११२३में राज गद्दीपर बैठा था। विक्रमादित्यके पिताका नाम सोमेश्वर था। विक्रमादित्यके उत्तराधिकारीका नाम भी सोमेश्वर मिलता है विक्रमादित्य संवत् ११८३ तक राज्य किया होगा।

विल्हणने विक्रमाङ्कदेवचरितमें अपने वंशका कुछ वर्णन भी किया है। उन्होंने अपने पुरखोंका निवासस्थान खोन-मुख नाम कश्मीरका एक गाँव बतलाया है। खोनमुखमें कौशिक गोत्रोत्पन्न वेद शास्त्रादिमें निपुण मुक्तिकलश नाम एक पण्डित थे। मुक्तिकलशके पुत्रका नाम राजकलश और राजकलशके बेटेका नाम ज्येष्ठ कलश था ज्येष्ठकलशकी पत्नी नागा देवी विल्हण कविकी माता थीं। विल्हणके जेठे-भाईका नाम इष्टराम और कनिष्ठभाईका नाम आनन्द था।

विल्हण शरीरसे आदर्श सुन्दर थे। यदि चौरपञ्चाशिका-का कथानक सत्य हो तो अचरज नहीं कि राजकन्या इनके गुणोंमेंसे सौन्दर्य ही को प्रधान समझ इन पर मुग्ध हुई हो। बिल्हणने कर्णसुन्दरी नाटिकाके मङ्गलाचरणमें 'नागानन्द-की नाईं' जिन (अर्हन्तदेव)से सभासदोंके कल्याणार्थ प्रार्थना की है। इनका समय ग्यारहवीं शताब्दीका प्रथम भाग है।

जयदेव

ये महाशय गीतगोविन्दके रचयिता अत्यन्त मधुर और

ललित कविता बनानेके कारण प्रसिद्ध हैं। इन्होंने निज रचित गीतगोविन्दमें अपनी माताका नाम वामादेवी और पिताका नाम भोजदेव लिखा है। बंगालमें वीरभूमिसे कुछ दूर हट कर भागीरथीमें गिरनेवाला एक अजयनद है। इसी नदके तीर पर केंदुली नाम गांव जयदेवकी जन्मभूमि है। जयदेव बंगालके सेनवंशी राजा लक्ष्मणसेनकी राजसभामें उपस्थित थे और उमापतिधर आदिके समकालीन हैं। गीतगोविन्दमें जयदेवने उमापतिधर, शरण, और धोयी कविका नामोल्लेख किया है। जान पडता है कि ये सब कवि राजा लक्ष्मणसेनके सभासद थे।

पृथ्वीराजरासाके रचयिता कविचन्दने बारहवीं शताब्दीके अन्तिम भागमें जो अपना ग्रन्थ लिखा उसमें गीतगोविन्दका उल्लेख किया है। गीतगोविन्दकी संस्कृतमें अनेक टीकायें हैं। सबसे प्राचीन भगवती भवेशके पुत्र मैथिल कृष्णदत्तकी है। पण्डित लोग गीतगोविन्दको बड़ा आदर देते हैं। और लोग कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्णजी स्वयं इसके गानसे प्रसन्न होते हैं। संस्कृतसाहित्यप्रेमियोंके बीच जयदेव और गीतगोविन्दका बहुतही अधिक प्रचार है। जयदेव भगवानके परम भक्त और विद्याव्यसनी थे। उड़ीसा प्रान्तके किसी ब्राह्मणने अपनी पद्मावती नामक कन्याको जयदेवके हाथ समर्पण किया यह जयदेवकी परम प्यारी पत्नी और पतिव्रता स्त्रियोंके बीच आदर्श थी। अपने गुणोंसे जयदेव अनेक राजसभाओंमें पूजित और लब्धप्रतिष्ठ हुए। जयदेवका जीवनकाल ग्यारहवीं शताब्दीका माना जाता है।

गोवर्द्धनाचार्य

ये महाकवि गीतगोविन्दके रचयिता जयदेव तथा उमा-

प्रतिधर महाकवियोंके समकालीन हैं। गीतगोविन्दमें जयदेवने इनका उल्लेख करके बड़ाई की है कि शृंगाररसकी कविता करनेमें इनकी टक्करका कोई नहीं है। आर्यासप्तशती नाम ग्रन्थ इनका बनाया है। गोवर्द्धनने अपने पिताका नाम नीलाम्बर लिखा है। निज ग्रन्थमें वाल्मीकि, व्यास, गुणाढ्य, कालिदास, भवभूति आदिका उल्लेख भी किया है। राढ़देशमें मल्लभूमिकी राजधानी विष्णुपुर है वहाँके राजाके आश्रित मुरारिकवि संवत् १२३५के पूर्व विद्यमान था उसने अपनेको कवि गोवर्द्धनका पुत्र बताया है कौन जाने यह गोवर्द्धनाचार्य उन्हीं मुरारिके पिता हों। गोवर्द्धनने अपने शिष्यका नाम उदयन लिखा है। कदाचित् यही उदयन प्रसिद्ध नैयायिक उदयनाचार्य हों *। जयदेवके समकालीन होनेसे गोवर्द्धनाचार्यका समय भी ११ वीं शताब्दीका मानना उचित है। यह लक्ष्मणसेनकी सभा में थे।

श्रीहर्ष

ये महाकवि और दार्शनिक भी थे। कन्नौजके जिस राजा जयचन्द्रने कि संवत् १२०७से १२५१तक राज्य किया और अन्तमें भारतका विनाश किया उसीके दर्बारमें श्रीहर्ष उपस्थित थे। कुछ लोग इन्हें काव्यप्रकाशके रचयिता मम्मटभट्टका भांजा बतलाते हैं। बंगालमें आदिशूरने जिन पाँच ब्राह्मणोंको कान्यकुब्ज देशसे बुला भेजा था उनमेंसे श्रीहर्ष भी एक हैं। पर ये

* न्यायकुसुमाञ्जलिके कर्त्ता प्रसिद्ध न्यायाचार्य उदयन गोवर्धनाचार्यके शिष्य थे। बलभद्राचार्य गोवर्धनाचार्यके भाई थे, जिन्होंने "न्यायलीलावती" बनायी है। "आर्यासप्तशती"में इन्हीं दोनोंका उल्लेख "उदयन-बलभद्राभ्यां-शिष्यसोदराभ्याम्" कहकर किया गया है। सम्पादक।

श्रीहर्ष वही हैं या दूसरे इसका निर्णय कठिन है। श्रीहर्षने नैषधीयचरित नामक काव्य २२सर्गोंमें लिखा जिसमें विदर्भ देशकी राजकुमारी दमयन्तीका निषध देशके राजा नलके साथ विवाहका वर्णन है। यह काव्य बहुत ललित, मनोहर परन्तु क्लिष्ट है। श्रीहर्षने अपने पिताका नाम श्रीहरि और माताका मामल्लदेवी लिखा है। श्रीहर्षका लिखा एक और भी प्रसिद्ध ग्रन्थ खण्डनखण्डखाद्य नामक है जो दार्शनिकोंके लिये परमोपयोगी है। कन्नौजके राजा जयचन्द्रके समयमें होनेके कारण श्रीहर्षको १२वीं शताब्दीका व्यक्ति अनुमान करते हैं।

कविराज

ये प्रसिद्ध राघवपाण्डवीय नाम श्लेषकाव्यके रचयिता हैं। जिसमें इन्होंने एक ही शब्दोंमें रामायण तथा महाभारतकी कथाओंका वर्णन किया है। श्लेषरचनामें लोग इन्हें सुबन्धुका समकक्ष गिनते हैं। कविराज नाम ही जान पड़ता है, कदाचित उपाधि हो। ये कवि आसाम जयन्तीपुरके निवासी और राजा कामदेवके सभासद् थे। कामदेव संवत् १२३८में राजसिंहासन पर विराजमान थे। कविराजने अपनी पुस्तकमें भोजके चाचा मुञ्जका उल्लेख भी किया है। इनका समय बारहवीं शताब्दीका पूर्वार्द्ध अनुमान करते हैं।

कल्हण

ये महाशय कश्मीरके प्रसिद्ध और प्रामाणिक इतिहास लेखक हैं और इन्होंने संवत् ११४८में राजतरङ्गिणी लिखी। इस ग्रन्थसे कश्मीरका इतिहास जानने तथा भारतकी अनेक प्रसिद्ध घटनाओंके समयनिर्णयमें सहायता मिलती है। कल्हण बड़े पण्डित, अनुभवी और प्रवीण ग्रन्थकार थे। प्राचीन पुस्तकों की देख-

भाल करके ब्योरेवार कश्मीरका इतिहास इन्होंने बड़े निपुणतासे लिखा है।

ऊपर संस्कृत भाषाके केवल अत्यन्त प्रसिद्ध ग्रन्थकारों और तदीय पुस्तकोंके विषयमें यत्किञ्चित् लिखा जा सका है। विशेष विस्तार करनेका अवसर नहीं है। अतएव कुछ थोड़े कवियोंका नाम लिखके इस प्रकरणको समाप्त कर देते हैं—

अनन्त	मेरुतुङ्ग
अनिरुद्ध	यशोवर्मा
अभिनवगुप्त	रत्नाकर
अमलानन्द	रविकीर्त्ति
अर्जुनवर्मा	रुद्रट
आनन्दवर्द्धन	लल्ल
ईश्वरकृष्ण	लोलिम्बराज
उत्पल	वररुचि
उमापतिधर	वाक्पतिराज
कल्याणवर्मा	वाग्भट
कल्लट	वाचस्पतिमिश्र
कैयट	वामनाचार्य
क्षीरस्वामी	विज्ञानभिक्षु
गुणाढ्य	विज्ञानेश्वर
धावक	व्याड़ि
नागार्जुन	शङ्कुक
नारायण	शरण
प्रवरसेन	शाण्डिल्य
बिल्वमङ्गल	शिल्हण
बुद्धघोष	श्रीधराचार्य

भास्कराचार्य	हरिचन्द्र
मङ्ख	हलायुध
मण्डनमिश्र	हेमचन्द्र
मातङ्गदिवाकर	हेमाद्रि
मानगुप्त	
मानतुङ्ग	
मुकुल	

इन कवियोंके अतिरिक्त अनेक स्त्रीकवि भी रही होंगी जिनमेंसे महिला, विज्जिका, विकटनितम्बा और शीलाभट्टारिकाके नामसे संस्कृतसाहित्यमें विशेष प्रसिद्ध हैं। पर इनका विशेष वृत्तान्त कुछ भी उपलब्ध नहीं हो सका है।

अनेक बौद्ध और जैन कवि तथा ग्रन्थकार भी भारतभूमिमें प्रसिद्ध हो चुके हैं इनमेंसे जिनका सम्बन्ध संस्कृत साहित्यसे है उनका उल्लेख तो ऊपर किया जा चुका, प्राय उन लोगोंके विषयमें विशेष अनुसन्धान नहीं किया जा सका जिन्होंने अपने ग्रन्थ प्राकृत भाषामें लिखे हैं अथवा ब्राह्मण धर्मसे भिन्न धर्मोपर ग्रन्थरचना की है।

बहुतसे युरोपियन इतिहास लिखनेवालोंका यह भी सिद्धान्त है कि भारतवर्षके आर्य लोग प्रथम प्राकृतभाषाही बोलते थे और संस्कृतभाषाका प्रचार पीछेसे हुआ, परन्तु यह सिद्धान्त अप्रामाणिक होनेसे लोगोंको स्वीकृत नहीं है। बहुतोंका मत है कि प्राकृत भाषा संस्कृतहीसे निकली और विशेष सरल होनेके कारण शीघ्र भारतवर्षके अनेक भागोंमें प्रचलित हो गयी। प्राकृत भाषाके कवियों और ग्रन्थकारोंके विषयमें भी बहुत कुछ इतिहास एकत्र करके लिखा जा सकता है। पर संस्कृत भाषाके साहित्यका परिचय प्राप्त करके

अनन्तर प्राकृत ग्रन्थोंकी आलोचनासे इतिहास सम्बन्धी किसी विशेष ज्ञानकी उत्पत्तिमें बहुत अल्प सहायता मिलती है। कुछ तो इस कारणसे और कुछ विस्तारके भयसे यहाँपर प्राकृतभाषाका इतिहास वा कवि, ग्रन्थ या ग्रन्थकारोंके नाम नहीं दिये जाते। हाँ, जिन राजाओंने प्राकृतमें ग्रन्थ लिखे हैं उनका यथावसर उल्लेख ऊपर हो चुका है।

चवालीसवाँ अध्याय

प्रसिद्ध घटनावली

उपसंहाररूपसे इस ग्रन्थमें उल्लिखित प्रसिद्ध घटनाएँ कालक्रमसे दी जाती हैं। सन् ईसवीके अनुरागी यह याद रक्खें कि सन् ईसवी प्रायः ५६-५७ वर्ष संवत्से पिछडी हुई है।

विक्रमसे पहले

३०४५ कलियुग संवत्का आरम्भ
३०१८ सप्तर्षि संवत्का आरम्भ
२७०० महाराज मनुने अयोध्या बसायी
२४८५ इक्ष्वाकुने राज पाया
२०८३ मान्धाता अयोध्यामें राजा हुए
१६४३ श्रीरामचन्द्रजी अयोध्यामें राजा हुए
१४५७ श्रीकृष्णचन्द्रजीका जन्म
१३८६ अर्जुनके पुत्र अभिमन्युका जन्म
१३८३ युधिष्ठिरका इन्द्रप्रस्थमें राजसूय यज्ञ
१३७० कुरुक्षेत्रमें कौरव पाण्डवोंका युद्ध
१३३३ श्रीकृष्णचन्द्रजीका देहान्त
८४३ निरुक्तकार यास्कका प्रादुर्भाव
७४३ अष्टाध्यायीकार पाणिनिका समय
५४३ मगधमें शिशुनाग वंशका राज्यारम्भ
५४२ जैनाचार्य महावीरका जन्म
५१० गौतमबुद्ध सिद्धार्थका जन्म
४६० बुद्धने यशोधराको विवाहा
४८१ राहुलका जन्म, बुद्धका संन्यासग्रहण
४७५ काशीमें बौद्धधर्मप्रचार

५३४ कपिलवस्तुमें बुद्धकी पितासे भेंट
४९१ मगधमें बिम्बिसारका सिंहासनारोहण
४७० बुद्धके पिता शुद्धोदन और जैनाचार्य महावीरकी मृत्यु
४६४ ईरानी बादशाह दाराने सिंधुपारके देशपर अधिकार किया
४६० यशोधराका पिता सुप्रबुद्ध मरा
४४३ अजातशत्रुने मगधका सिंहासन लिया
४३० गौतमबुद्धकी मृत्यु हुई राजगृहमें बौद्धोंकी प्रथम सभा
३६५ मगधमें महापद्मनन्द सिंहासनासीन
३३० राजगृहमें बौद्धोंकी द्वितीय सभा
२७० यूनानी वीर सिकन्दरकी भारतपर चढ़ाई
२६६ बेबिलनमें सिकन्दरकी मृत्यु
२५५ मगधमें चन्द्रगुप्तमौर्यका सिंहासनारोहण
२४८ मगधमें यूनानी एलची मेगस्थनीज़
२३० मगधमें चन्द्रगुप्त मौर्यकी मृत्यु
२१६ मगधमें अशोकका राज्यारम्भ
२१२ अशोकका राज्याभिषेक
२०४ अशोककृत कलिङ्ग देश-विजय
२०२ अशोक बौद्धधर्ममें दीक्षित हुआ
२०० अशोकके शिलालेख
१९९ प्रस्तरलिपिमें आज्ञाप्रचार
१९८ नीलगिलीय स्तम्भपरका लेख
१९३ बराबर गुफाका लेख
१९२ अशोकका बौद्ध तीर्थोंमें भ्रमण
१८६ स्तम्भोंपरके लेख
१८५ सातों शिलालेख

१८३ पटनेमें बौद्धोंकी तीसरी सभा
१७१ अशोककी मृत्यु
१६७ संगत मौर्य मगधमें राजा हुआ
१६३ अन्ध्रवंशका दक्षिणमें राज्यारम्भ
१५६ मगधमें शालिशुक मौर्यका राज्य
१४६ सोमशर्मन् मौर्य
१४२ शतधन्वामौर्य
१४० अन्ध्रराजकृष्णका राज्यारम्भ
१३४ मगधमें वृहद्रथ मौर्य
१२७ मौर्यवंश विनाश, शुङ्गोंका मगधमें राज्य
१२२ आन्ध्रराज श्रीमल्ल शातकर्णि
११२ आन्ध्रराज पूर्णोत्सङ्ग
९८ मिलिन्द यूनानीकी भारतपर चढ़ाई
९४ आन्ध्र राजा शतकर्णि
९१ मगधमें पुष्पमित्र शुङ्ग मरा। उसका पुत्र अग्निमित्र राजा हुआ।
८३ सुज्येष्ठ शुङ्ग मगधमें राजा हुआ
७६ वसुमित्र शुङ्ग मगधमें राजा हुआ
६६ भारतके उत्तर पश्चिममें शक वा सीथियनोंकी चढ़ाई
६८ अन्धक शुङ्ग मगधमें राजा हुआ
६६ पुलिन्दक ,, मगधमें राजा हुआ
६३ घोषवसु ,, ,, ,,
६० वज्रमित्र ,, ,, ,,
५४ लम्बोदर आन्ध्र राजा हुआ
५१ भागवत शुङ्ग मगधका राजा
३६ अजीतक आन्ध्र राजा हुआ

२५ देवभूति शुङ्ग मगधका राजा
२४ सङ्घ आन्ध्र राजा हुआ
१५ मगधमें शुङ्गवंशका विनाश। काण्ववंशकी स्थापना
१ मगधमें भूमिमित्र काण्वका राज्यारम्भ दक्षिणमें शातकर्णि आन्ध्रका राज्य विक्रमी संवत् अवन्ती वा उज्जयिनीके महाराज विक्रमादित्यने शकोंको परास्त करके मालव वा विक्रम संवत् चलाया; कालिदास कविका प्रादुर्भाव।
८ मगधमें कण्ववंशी नारायणका राज्यारम्भ
१२ दक्षिणमें स्कन्दस्वति आन्ध्रका राज्य
१६ ,, मृगेन्द्र शातकर्णिका राज्य
२० मगधमें कण्ववंशी सुशर्माका राज्य
२२ दक्षिणमें कुन्तलशातकर्णिका राज्य
३० मगधमें कण्ववंशका विनाश, अन्ध्र राजा शातकर्णि
३१ आन्ध्र पुलुमायीका राज्यारम्भ
५७ मसीहका प्रादुर्भाव सन् ईसीकी कालगणनाका आरंभ। काठियावार तथा गुजरातमें पश्चिमी क्षत्रपोंका राज्य
९३ मेघ शातकर्णि आन्ध्र राजा
१०१ अरिष्ट शातकर्णि आन्ध्र राजा
१२६ आन्ध्र राजा और कविहाल शालिवाहनका राज्यारम्भ
१३५ शालिवाहनका शाका चला। कश्मीर आदि देशोंमें तुरुष्क राजा कनिष्कका साम्राज्य
१३६ पुरीन्द्रसेन आन्ध्र राजा
१४० मालवेमें उग्रसेन परमारका राज्य
१४१ सुन्दर शातकर्णि आन्ध्र राजा हुआ
१४२ चिलतयकूर (?) प्रथम आन्ध्र राजा शिवस्वकूर आन्ध्र राजा

१५७ पूर्वीय गाङ्गोंका उड़ीसामें राज्यारम्भ पश्चिमी गाङ्गोंका मैसूरमें राज्यारम्भ
१७० विल्वयक्कुर (२) आन्ध्र राजा
१८७ कश्मीरमें कनिष्कका उत्तराधिकारी हुविष्क
१८३ विल्वयक्कुर (२) ने शकों, पल्हवों और यवनोंको हराया
१६३ पार्थियन राजाओंने पंजाबपर अधिकार किया
१६५ पुलुमायी (२) आन्ध्र राजा
१६७ बौद्धोंकी चौथी सभा
२०२ पुलुमायी(२)ने पश्चिमी क्षत्रप रुद्रदामनको हरायो।
२०७ गिरिनारपर रुद्रदामनका संस्कृत शिलालेख
२१७ बौद्धाचार्य नागार्जुनका प्रादुर्भाव
२२७ आन्ध्र राजा शिवश्री
२३४ आन्ध्र राजा शिवस्कन्ध
२३५ पश्चिमी क्षत्रप जीवदामन् राजा हुआ
२३७ पश्चिमीक्षत्रप रुद्रसिंहका राज्य
२४१ यज्ञश्री आन्ध्र राजा
२४२ कश्मीरमें हुविष्कका उत्तराधिकारी वासुदेव हुआ
२५७ पश्चिमीक्षत्रप रुद्रसेन [१] राजा
२७० विजय आन्ध्र राजा
२७६ चाद्र आन्ध्र राजा
२७१ पश्चिमीक्षत्रप सङ्घदामन् राजा हुआ पश्चिमीक्षत्रप पृथ्वीसेन राजा हुआ
२८३ पश्चिमीक्षत्रप दामसेन राजा हुआ
२८६ पुलुमायी [३] आन्ध्र राजा
२८९ पश्चिमी क्षत्रप दामजयश्रीराजा
२६३ पश्चिमीक्षत्रप वीरदामन् राजा अन्ध्रवंश और राज्यका विनाश

२६५ पश्चिमी क्षत्रप यशोदामन् राजा
३०६ कलचुरि वा चेदि संवत् प्रारम्भ हुआ
३०७ पश्चिमी क्षत्रप विजयसेन राजा
३११ पश्चिमी क्षत्रप ईश्वरदत्त राजा
३१५ पश्चिमी क्षत्रप दामजयश्री [२] राजा
३३२ वाकाटक महाराज विन्ध्यशक्ति
३३३ पश्चिमी क्षत्रप रुद्रसिंह राजा
३३५ पश्चिमी क्षत्रप विश्वसिंह राजा
३३८ पश्चिमी क्षत्रप भर्तृदामन् राजा
३५१ पश्चिमी क्षत्रप विश्वसेन राजा
३५७ उत्तरीय पल्हवोंका राज्यारम्भ दक्षिणी पल्हवोंका राज्यारम्भ
३६२ श्रीगुप्तका उत्तराधिकारी घटोत्कच
३६४ गुप्तवंशीय राजा चन्द्रगुप्त [१]ने मिथिलाके लिच्छवी राजवंशकी कन्या विवाही
३६६ पश्चिमी क्षत्रप रुद्रसिंह [२] राजा हुआ
३७५ पश्चिमी क्षत्रप यशोदामन् राजा
३७६ गुप्त वा वलभी संवत्का आरम्भ
३८३ उत्तरीभारतको विजय करके समुद्रगुप्त राजा हुआ
३८४ समुद्रगुप्तकी सभामें लङ्काके राजा मेघवर्णका दूत आया
३९४ समुद्रगुप्तने दक्षिणी भारत विजय किया
३९८ समुद्रगुप्तने अश्वमेध यज्ञ किया
४०५ स्वामीरुद्रसेन पश्चिमी क्षत्रप हुआ
४३२ समुद्रगुप्त मरा और तत्पुत्र चन्द्रगुप्त [२] विक्रमादित्य भारतवर्षका सम्राट् हुआ
४४५ पश्चिमी क्षत्रप रुद्रसिंह राजा हुआ

४५६ चीनी यात्री फ़ाहियानका पश्चिमकी ओरसे भारतवर्षमे प्रवेश
४५७ चन्द्रगुप्त [२] ने काठियावारके पश्चिमी क्षत्रपको परास्त करके उनका राज्य ले लिया
४६२ फ़ाहियानका कन्नौजमे भ्रमण
४६७ बौद्धाचार्य बुद्धघोषका प्रादुर्भाव
४६८ फ़ाहियानने भारतसे प्रस्थान किया
४७० चन्द्रगुप्त [२]की मृत्यु; उसका उत्तराधिकारी कुमार-गुप्त राजसिंहासनपर बैठा
४७१ चीनमे फ़ाहियानकी मृत्यु
४७६ उच्छकल्पमें महाराज जयनाथका राज्य
४८० पश्चिमी मालवेमें नरवर्मन्‌का उत्तराधिकारी विश्ववर्मन् राजा हुआ
४८७ भड़ौंचमे गुर्जर राजवंशका प्रतिष्ठाता राजा दिद्दा [१] गद्दीपर बैठा
४६४ मालवेमें विश्ववर्मनका पुत्र बन्धुवर्मन् गुप्तसम्राट् कुमारगुप्तके अधीन था
४६८ उच्छकल्पके जयनाथकापुत्र सर्वनाथ राजा
५१२ कुमारगुप्तका पुष्पमित्रोंसे युद्ध, कुमारगुप्तके मरनेपर तत्पुत्र स्कन्दगुप्तने सम्राट् होकर पुष्पमित्रोंको परास्त किया
५१३ धरसेन ने कूटकका राज्य गिरनार परके तालका पुनरुद्धार
५१४ गिरनारके तालके पास एक मन्दिर बना
५१५ बन्धुवर्मन्‌का उत्तराधिकारी भीमवर्मन् मालवेका राजा स्कन्दगुप्तके अधीन था

५१६ बौद्धोंका ग्रन्थ महावश लिखा गया

५२२ अन्तर्वेदमें सर्वनाग नामक राजा गुप्तसम्राट् स्कन्द गुप्तके अधीन राज्य करता है हूणोंने पश्चिमी भारत-पर चढाई की किन्तु स्कन्दगुप्तसे परास्त हुए

५२७ हूणोंकी भारतवर्षपर पुनः चढाई और स्कन्दगुप्तको परास्त करना

५३२ दामोदरका उत्तराधिकारी हस्तिन् परिव्राजक महा-राज हुआ

५३३ पटनेमें प्रसिद्ध ज्यौतिषी आर्यभट्टका जन्म

५३५ भडौंचके गुर्जर राजा जयभट [१]का पुत्र दद्दा [२] प्रशान्तराग अपने पिताके राजसिहासनपर बैठा

५३७ गुप्तसम्राट् स्कन्दगुप्तकी मृत्यु हुई। उसका पुत्र प्रका-शादित्य स्थिरगुप्त अथवा पुरुगुप्त मगधमें सिहास-नासीन हुआ

५४१ मध्यदेशमें स्कन्दगुप्तका उत्तराधिकारी बुधगुप्त राजा हुआ। उसके अधीन यमुना तथा नर्मदाके बीच सुर-श्मिचन्द्र और ईरणमें मातृविष्णु राजा थे

५४२ बौद्धधर्मावलम्बी योगाचार मतवाले आसङ्गका जन्म इसके छोटे भाईका नाम वसुबन्धु था। आसङ्गकी आयु ७५ वर्षकी हुई।

५४७ प्रकाशादित्य स्थिरगुप्तका पुत्र नरसिहगुप्त वा बाला-दित्य मगधमें राजा हुआ

५५२ सेनापति भट्टार्कने काठियावार गुजरातमें बलभीको राजधानी बनाके बलभी वशका राज्य स्थापित किया। पहले यह राज्य गुप्तवशियोंके अधीन था पीछे स्वतन्त्र हो गया पजाब और पूर्व मालवेमें

गुप्त महाराजाओंके सोनेके सिक्के जिनका पता मिस्टर रिचर्ड बर्न, आर. सी एस, एम्. आर. ए. एस ने लगाया था "न्युमिसमैटिक क्रानिकिल", चौथी शृंखलाके दसवीं जिल्दमें छपा है।
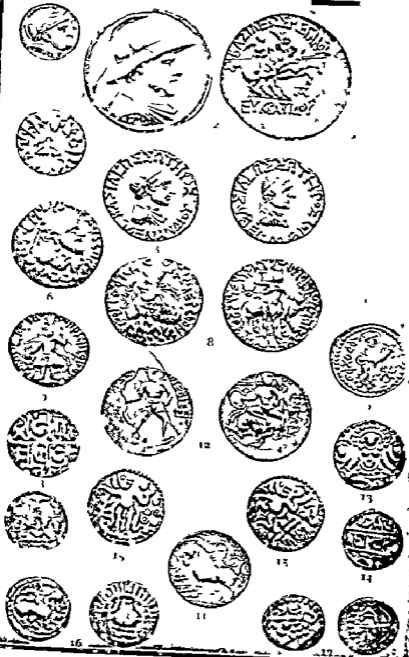
भारतीय सिक्के जो लण्डनके अजायब घरमें हैं (प्राचीन भारत पृ० ४०८)

हूणोंका राजा तोरमान सियालकोट वा सागलको अपनी राजधानी बनाकर सिंहासनपर बैठा। ईरणमें मातृविष्णुका भाई और उत्तराधिकारी धन्यविष्णु तोरमानके अधीन हुआ। सिन्धमें दीवाजीने अपना राज्य स्थापन किया जो ३६वर्षतक चला।

५५६ आर्यभट्टने निजरचित ग्रन्थमें गतकलि ३६००का उल्लेख किया। आर्यभट्टके शिष्य लल्ल ज्योतिषी हुए।

५५६ वराहमिहिर ज्योतिषीका जन्म हुआ।

५६७ शरभका नाती और माधवका पुत्र गोपराज प्रसिद्ध सेनापति हुआ। यह भानुगुप्तके पक्षपर लड़ा। हूणराजा तोरमान मरा उसका पुत्र मिहिरकुल राजा हुआ।

५७७ वलभी (काठियावार)में राजा द्रोणसिंह जो धरसेन (१) का भाई था उसका उत्तराधिकारी हुआ। वसु बन्धुका पुत्र दिङ्नाग और थानेश्वरके राजा हर्ष-वर्द्धनके गुरु गुणप्रभ इसी समयसे प्रायः ८० वर्षके बीचमें हुए।

५८२ जयसिंह(१)का पुत्र और उत्तराधिकारी रणराग वादामीमें (अहाते वम्बईके जिले बीजापुरमें) गद्दीपर बैठा। यह प्रश्चिमी चालुक्य है।

५८३ द्रोणसिंहका पुत्र और उत्तराधिकारी वलभीमें ध्रुव-सेन (१) राजा हुआ।

५८५ हूण राजा मिहिरकुलकी क्रूरतासे खिन्न होकर माल-वाके यशोधर्मन् और मगधके नरसिंह गुप्त वाला-दित्यने मुलतानके पास कोरूरमें उसे परास्त कर कश्मीरकी ओर भगा दिया। हस्तिन्का पुत्र

२७

१ भारतीय सिक्के जो लण्डनके अजायब घरमें हैं (प्राचीन भारत पृ०४०८)

हूणोंका राजा तोरमान सियालकोट वा सागलको अपनी राजधानी बनाकर सिंहासनपर बैठा। ईरणमें मातृविष्णुका भाई और उत्तराधिकारी धन्यविष्णु तोरमानके अधीन हुआ। सिन्धमें रीयाजीने अपना राज्य स्थापन किया जो ३६वर्षतक चला।

५१६ आर्यभट्टने निजरचित ग्रन्थमें गतकलि३६००का उल्लेख किया। आर्यभट्टके शिष्य लल्ल ज्योतिषी हुए।

५१६ वराहमिहिर ज्योतिषीका जन्म हुआ।

५६७ शरभका नाती और माधवका पुत्र गोपराज प्रसिद्ध सेनापति हुआ। यह भानुगुप्तके पक्षपर लड़ा। हूणराजा तोरमान मरा उसका पुत्र मिहिरकुल राजा हुआ।

५७७ वलभी (काठियावार)में राजा द्रोणसिंह जो धरसेन (१) का भाई था उसका उत्तराधिकारी हुआ। वसु बन्धुका पुत्र दिङ्नाग और थानेश्वरके राजा हर्ष-वर्द्धनके गुरु गुणप्रभ इसी समयसे प्रायः ८० वर्षके बीचमें हुए।

५८२ जयसिंह(१)का पुत्र और उत्तराधिकारी रणराग वादामीमें (अहाते वम्बईके जिले बीजापुरमें) गद्दीपर बैठा। यह प्रदिचमी चालुक्य है।

५८३ द्रोणसिंहका पुत्र और उत्तराधिकारी वलभीमें ध्रुव-सेन (१) राजा हुआ।

५८५ हूण राजा मिहिरकुलकी क्रूरतासे खिन्न होकर माल-वाके यशोधर्मन् और मगधके नरसिंह गुप्त वाला-दित्यने मुलतानके पास कोरुरमें उसे परास्त कर कश्मीरकी ओर भगा दिया। हस्तिन्का पुत्र

परिव्राजक महाराज संक्षोभ हुआ।

५९७ वलभीमें ध्रुवसेन(१)का पुत्र धरापट्ट राजा हुआ।

६०७ कान्यकुब्जके मौखरि ईश्वरवर्मन्‌का पुत्र ईशानवर्मन् राजा हुआ। इसकी रानीका नाम लक्ष्मीवती था। यह मगधके राजा कुमारगुप्तका समकालीन है। वादामीमें पश्चिमी चालुक्य पुलिकेशिन् (१) राजा हुआ।

६१६ वलभीमें धरापट्टका पुत्र गुहसेन राजा हुआ।

६२४ वादामीके पुलिकेशिन्‌के स्थानपर तत्पुत्र कीर्तिवर्मन् (१) रणपराक्रम गद्दीपर बैठा। इसने नन्दके सेनापति श्रीवल्लभकी भगिनी विवाही।

६२७ अरबमें मुसल्मान धर्मके प्रतिष्ठाता मुहम्मद साहिब जन्मे।

६२८ वलभीमें गुहसेनका पुत्र धरसेन राजा हुआ।

६३४ प्रज्ञारुचिका ज्येष्ठ पुत्र गौतमधर्म ज्ञान काशीमें उपासक था।

६३५ कल्याणवर्मन् नाम ज्योतिषी प्रकट हुए।

६३७ भड़ौंचमें गुर्जर राजा दिद्दा (३) हुआ। चेदिके कलचुरि राजा शङ्करगणका पुत्र बुद्धराज गद्दीपर बैठा। वासवदत्ताके रचयिता सुबन्धु प्रकट हुए। थानेश्वरमें वैसवंशी राजा प्रभाकरवर्द्धन सूर्यका उपासक था। प्रभाकरवर्द्धनके पिताका नाम आदित्यवर्द्धन था। प्रभाकरकी स्त्रीका नाम यशोमती देवी था।

६४४ वराहमिहिर ज्योतिषीका देहान्त हुआ। इनका निवासस्थान अवन्ती और रचे ग्रन्थ पञ्चसिद्धान्तिक और वाराहीसहिता हैं।

६४६ ज्येष्ठ कृष्णा १२ को थानेश्वरके हर्षवर्द्धन शीलादि-

त्यका जन्म हुआ ।

६४७ पश्चिमी मगधमें पूर्णवर्मन् राजा हुआ। के० टी० टेलङ्गके मतसे भगवत्पाद शङ्कराचार्य इसी समय प्रकट हुए।

६५२ पश्चिमी मालवा और वलभीका राजा शीलादित्य।

६५४ वादामीमें कीर्तिवर्मन् (१)के स्थानमें उसका भाई मङ्गलीश पश्चिमी चालुक्य राजा हुआ।

६५५ ब्रह्मगुप्त ज्यौतिषीका जन्म हुआ जिसने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त रचा।

६५७ कान्यकुब्जमें मौखरि अवन्तिवर्मन्का पुत्र ग्रहवर्मन् राजा हुआ। इसने थानेश्वरके राजा प्रभाकरवर्द्धनकी बेटी राज्यश्रीसे विवाह किया। पूर्वी मालवामें देव-गुप्त राजा था। चीनमें ह्वान्त्सांगका जन्म हुआ। बंगालके राजा शशाङ्कने बौद्धोंका उत्पीडन किया और गयाका प्रसिद्ध, पवित्र वटवृक्ष कटवा डाला।

६६२ थानेश्वरका राजा प्रभाकरवर्द्धन मरा। ज्येष्ठ पुत्र राज्यवर्द्धन गद्दीपर बैठा। वलभीका राजा शीला-दित्य (२) हुआ।

६६३ थानेश्वरके हर्षवर्द्धनका राज्यारम्भ, हर्ष संवत् प्रचारारम्भ।

६६३-६६ हर्षकृत उत्तरभारतका विजय।

६६६ मङ्गलीशके स्थानपर वादामीमें उसका भतीजा पुलिकेशिन् (२) सत्याश्रय श्रीपृथ्वीवल्लभ गद्दीपर बैठा।

६६७ जैन कवि रविकीर्त्तिका प्रादुर्भाव काल।

६६६ हर्षवर्द्धनका राज्याभिषेकोत्सव हुआ।

६७२ पुलिकेशिन् (२)ने विष्णुवर्द्धनको युवराज बनाया और पूर्वी चालुक्य वंशकी प्रतिष्ठा करायी। मौलापीका शीलादित्य मरा। वलभीका खरग्रह (१) राजा हुआ

६७७ पुलिकेशिन् (२)ने हर्षवर्द्धनको परास्त किया। वलभीका राजा धरसेन (३) अपने पिता खरग्रह (१) के स्थानपर गद्दीपर बैठा।

६७९ अरबमें मुहम्मद साहिबका मक्केसे मदीनेको चल देना हिजरी सन्का प्रचारारम्भ।

६८५ ब्रह्मगुप्तने ब्रह्मस्फुट सिद्धान्त रचा।

६८६ भड़ोंचका गुर्जर दिद्दा (४) राजा हुआ। वलभीका ध्रुवसेन (२) राजा हुआ।

६८७ चीनी यात्री ह्वान्तसांग भारतमे आया। वेङ्गीमें पूर्वी चालुक्य। वामनने कश्मीरी जयादित्यकी सहायतासे काशिकावृत्ति रची। वाक्यपदीयके रचयिता भर्तृहरिका प्रादुर्भाव काल।

६८८ चाच नाम ब्राह्मणने सिन्धका राज्य लिया।

६८९ मदीनामें मुहम्मद साहिबका देहान्त हुआ।

६९० पूर्वी चालुक्य विष्णुवर्द्धनका पुत्र जयसिंह सर्वसिद्धि निज पिताका उत्तराधिकारी हुआ।

६९१ थानेश्वरके हर्षवर्द्धनने प्रयागमें धर्ममहोत्सव किया। ख़लीफ़ा उमरने समुद्रीय सेना, थाना औरभड़ोंचको भेजी।

६९२ हर्षवर्द्धनने वलभी विजय किया। नयपालका लिच्छवी राजा शिवदेव (१) हुआ। पश्चिमी नयपालमें ठकुरी वंशका राजा अंशुवर्मन् हुआ।

६९३ उमरने फिर भारतपर समुद्रीय सेना भेजी।

६६७ चीनी यात्री ह्वान्तसांग वलभीमें पहुंचा।

६६८ वलभीमें ध्रुवसेन (२)का पुत्र धरसेन (४) राजा हुआ। हर्षने चीनमें एलची भेजा।

६६६ वादामीका पश्चिमी चालुक्य पुलिकेशिन् (२) मरा। पल्हव राजा नरसिंह वर्मन् गद्दीपर बैठा।

७०० गुजरातका चालुक्य विजयवर्मन् राजा हुआ। हर्षने गंजामपर चढ़ाई की।

७०१ हर्षवर्द्धनका प्रयागमें धर्ममहोत्सव हुआ।

७०२ चीनी यात्री ह्वान्तसांग भारतवर्षसे विदा हुआ।

७०५ थानेश्वरका हर्षवर्द्धन मरा। अर्जुनने राज्यासन दबा लिया। चीनी सेनाने उसे परास्त किया। वलभीके धरसेन (४) ने वलभी जीती।

७०८ वलभीमें ध्रुवसेन (४) का उत्तराधिकारी ध्रुवसेन (५) हुआ।

७११ पश्चिमी नयपालमें ठकुरी वंशका राजा जिष्णुगुप्त।

७१२ वादामीमें पश्चिमी चालुक्य विक्रमादित्य (१) रणरसिक राजा हुआ। लाट देशमें सेन्द्रकवंशी पृथ्वीवल्लभ निकुम्भगुप्त राजा हुआ।

७१३ वलभीका खरग्रह (२) राजा हुआ।

७१७ पल्हव राजा परमेश्वर वर्मन् हुआ। रविषेणने पद्म-पुराण रचा।

७१६ मुञ्जालने लघुमानस लिखा।

७२० पूर्वी चालुक्य इन्द्रभट्टार्क और विष्णुवर्द्धन (२) हुए।

७२१ चीनमें चीनी यात्री ह्वान्तसांगकी मृत्यु हुई।

७२४ वलभीमें शीलादित्य (२) राजा हुआ।

७२८ गुजरातका चालुक्य राजा धराश्रय जयसिंहवर्मन् हुआ।

चीनी यात्री इतसिङ्का भारतमें प्रवेश ।

७२६ मगधके माधवगुप्तके पुत्र आदित्य सेनने कोणदेवीसे विवाह किया । पूर्वी चालुक्य मङ्गी युवराज ।

७३७ पश्चिमी चालुक्य विनयादित्य सत्याश्रय राजा हुआ । पल्लव राजा नरसिंह वर्मन् (२) हुआ ।

७४७ कान्यकुब्जके राजा यशोवर्मन्के अधीन कविवाक्पतिराज और भवभूति आदिका आविर्भाव ।

७४८ वलभीका शीलादित्य (३) राजा हुआ । श्रीधर ज्योतिषी जन्मे ।

७५२ इतसिङ्चीनीयात्री भारतसे लौटा । कल्याणकण्टकमें भूराजने गुजरात लिया । पल्लव राजा परमेश्वर वर्मन्(२)

७५३ पश्चिमी चालुक्य विजयादित्य सत्याश्रय राजा हुआ । पूर्वी चालुक्य जयसिंह (२) राजा हुआ ।

७५७ काश्मीरके रणमल्लकी सिन्धपर चढ़ाई और उसका पराजय ।

७६१ भड़ौंचका गुर्जर जयभट्ट (४) राजा हुआ । उसने वलभीके राजा शीलादित्यको हराया ।

७६२ मानदेव लिच्छवी नैपालका राजा हुआ ।

७६६ पूर्वी चालुक्य कोकिली राजा हुआ । वह छः मास पीछे गद्दीसे उतारा गया उसके भाई विष्णुवर्द्धनने गद्दी ली ।

७६८ हेजाजने मुहम्मद बिन कासिम को सिन्धविजयार्थ भेजा ।

७६६ कासिमने सिन्धविजय किया ।

७७० कश्मीरका कर्कोटक वंशी चन्द्रापीड राजा हुआ ।

७७१ फ़ारसका हाकिम हेजाज़ मरा ।

७७२ मुहम्मद बिन कासिम मारा गया । थानेश्वरमें हरिश्चन्द्र

नाम राजा हुआ।

७७६ वलभीमें शीलादित्य (४) राजा हुआ।

७८२ पश्चिमी नैपालमें ठकुरी वंशी शिवदेव राजा हुआ।

७८३ कश्मीरका नागवंशी ललितादित्य राजा हुआ जो कान्यकुब्जके यशोवर्मन् तथा वाक्पतिराज और भवभूतिका समकालीन है।

७८८ कान्यकुब्जके यशोवर्मन्ने चीनमें एलची भेजे। पश्चिमी चालुक्य राजा युद्धमल्ल जयाश्रय मङ्गलराज हुआ।

७९० बादामीमें विक्रमादित्य (२) सत्याश्रय राजा हुआ। पूर्वी नैपालका लिच्छवी राजा महीदेव हुआ।

७९२ बापारावलके पुत्र गुहिलने प्रमरवंशी अन्तिम राजा मान मोरीसे चित्तौड़ छीन लिया। पल्लव राजा हिरण्यवर्मन् हुआ।

७९३ दिल्लीमें तोमरोंका राज्यारम्भ।

७९६ पश्चिमी चालुक्य ज्ञानाश्रय पुलिकेशिन् राजा हुआ।

७९८ कन्नौजका यशोवर्मन् कश्मीरके ललितादित्यसे परास्त हुआ।

८०३ चापोत्कटवंशी वनराजने अन्हलवाड़ापत्तन बसाया। पश्चिमी चालुक्य कीर्तिवर्मन् (२)। पूर्वी चालुक्य विजयादित्य (१) भट्टार्क।

८०८ पश्चिमी नैपालका ठकुरी वंशी जयदेव।

८१० मालखेद्का राष्ट्रकूट राजा दन्तिदुर्ग।

८११ पूर्वी नैपालका लिच्छवी राजा वसन्तसेन।

८१४ गुजरातका राठौर कक्कराज।

८१७ मालखेद्का राष्ट्रकूट राजा कृष्ण (१)। इसीकी सभामें हलायुध पण्डित थे।

८१८ कन्नौजके राजा भोजके पुत्र महेन्द्रपालका विवाह।
८२१ पूर्वी चालुक्य विष्णुवर्द्धन (४) राजा हुआ।
८२३ वलभीमें शीलादित्य (६) राजा हुआ। यवनोंने वलभी राजवंश विनाश किया।
८२७ मालखेड़का राष्ट्रकूट राजा गोविन्द (२)।
८३६ कश्मीरका राजा जयापीड़ था जिसकी सभामें क्षीर-स्वामी, भट्टोद्भट, दामोदर गुप्त और वामन आदि पण्डित विद्यमान थे।
८३७ मालखेड़का राष्ट्रकूट राजा ध्रुव हुआ।
८४० कन्नौजमें इन्द्रायुध राजा हुआ। जिनसेनने जैन हरि-वंशपुराण लिखा।
८४५ भगवत्पाद स्वामी शङ्कराचार्यजी जन्मे।
८५० मालखेड़का राष्ट्रकूट राजा गोविन्द (३) हुआ।
८५६ पूर्वी चालुक्य विजयादित्य (२) राजा हुआ।
८५७ कन्नौजका इन्द्रायुध राज्यच्युत हुआ। राजा चन्द्रकने बारन (बुलन्दशहर) में डोर राजपूत वंश स्थापित किया।
८६१ क्षीरग्रामका राजानक लक्ष्मणचन्द्र हुआ।
८६३ अन्हलवाड़ामें चापोत्कट योगराज गद्दीपर बैठा।
८६४ गुजरातका राठौर इन्द्रराज राजा हुआ।
८६७ कन्नौजमें चक्रायुध राज्यच्युत हुआ।
८६६ गुजरातका राठौर कर्कराज सुवर्णवर्ष तथा तत्पश्चात् गोविन्दराज प्रभूतवर्ष राजा हुआ।
८७० कश्मीरका नागवंशी अजितापीड राजा हुआ।
८७२ मालखेड़का राष्ट्रकूट अमोघवर्ष (१) राजा हुआ। उत्तरी कोङ्कणका शिलाहर राजा कपर्दिन् (१) हुआ।

८८२ कन्नौजमें रामभद्र राजा हुआ। देवगिरिमें यादव दृढप्रहारने राज्य स्थापन किया। मालवामें कृष्ण उपेन्द्रने (धारमें) प्रमरवंशका राज्य स्थापित किया। उत्तरी मलाबारमें कोल्लम अण्डू संवत्का आरम्भ।

८८५ सिन्धके हिन्दुओंने वहाँके मुसलमान हाकिमोंको निकाल बाहर किया।

८८८ नानिकने महोबामें चँदेलवंशका राज्य स्थापित किया

८९२ गुजरातका राठौर ध्रुवराज निरुपमधारावर्ष (१) राजा हुआ।

८९७ कन्नौजमें रामभद्रका राज्य समाप्त हुआ मिहिर भोज (परिहार) ने वहाँकी गद्दी ली। बंगालमें पालवंशी राजाधर्मपाल हुआ। वेणीसंहार नाटकके रचयिता भट्टनारायण इसीकी सभामें थे।

७९८ अन्हलवाड़ाका चापोत्कट क्षेमराज।

८०० पूर्वी चालुक्य विष्णुवर्द्धन (५) उत्तरी कोङ्कणका शिलाहार पुलशक्ति।

८०१ पूर्वी चालुक्य विजयादित्य राजा हुआ।

८०७ कश्मीरका नागवशी राजा अनङ्गापीड़ और गुजरातका राठौर अकालवर्ष शुभतुङ्ग राजा हुआ।

८०८ उत्तरी कोङ्कणका शिलाहर राजा कपर्दिन् (२) हुआ।

८१० कश्मीरमें नागवंशी उत्पलापीड़ राजा हुआ।

८१२ कश्मीरमें उत्पलवंशका राज्यारम्भ हुआ और प्रथम राजा अवन्तिवर्मन् सिंहासनपर बैठा।

८१६ कन्नौजमें रामभद्रका पुत्र भोजराज राजा हुआ।

८२४ अन्हलवाडाका चापोत्कट भूयड। गुजरातका राठौर राजा ध्रुवराज निरुपमधारावर्ष (२) और तत्पु-

श्चात् दन्तिवर्मन् राजा हुआ।

८२७ अरबवालोंसे सिन्ध और मुलतानको सीस्तां और किर्मानके साथ वहाँके मुसल्मान हाकिमको सौंप दिया।

८३२ सीनदस्तिका सर्दार पृथ्वीराज हुआ। चेदिका कलचुरि कोकल्ल (१) राजा हुआ।

८३६ नैपाली संवत् कार्तिक शुक्ल १ से आरम्भ हुआ। श्रीपति राठौर कन्नौजका राजा हुआ।

८३७ मालखेदका राठौर राजा कृष्ण (१) हुआ।

८४० कश्मीरका उत्पलवंशी शङ्करवर्मन् राजा हुआ।

८४५ पूर्वी चालुक्य भीम (१) राजा हुआ। गुजरातका राठौर राजा कृष्णराज अकालवर्ष हुआ।

८४७ कन्नौजमें मिहिर भोजका राज्यान्त हुआ।

८४६ कान्यकुब्जके पाँच ब्राह्मणोंका बंगालमें आदिशूरकी सभामें गमन और उसके राज्यमें निवास।

८५२ अन्हलवाडाका चापोत्कट वीरसिंह राजा हुआ।

८५७ चेदिका कलचुरि मुग्धतुङ्ग प्रसिद्धधवल राजा हुआ। हर्ष चंदेल राजा हुआ।

८५६ काबुलमें हिन्दू शाहिया राजा कमालू हुआ। कश्मीरमें उत्पल वंशी गोपालवर्मन् राजा हुआ।

८६० महेन्द्रपाल कन्नौजका राजा हुआ। संस्कृतके प्रसिद्ध कवि राजशेखर इन्हींके गुरु थे।

८६१ कश्मीरमें उत्पलवंशी राजा सकट हुआ तत्पश्चात् सुगन्धा।

८६३ कश्मीरमें उत्पलवंशी राजा पार्थ हुआ।

८६७ कन्नौजकी गद्दी महेन्द्रपालके भाई महीपालने ली।

९६६ इन्द्र (३) मालखेदका राष्ट्रकूट राजा हुआ।

९७२ मसऊदी सिन्ध वा मुलतानकी सैरको आया।

९७३ इन्द्र (३)ने कन्नौज विजय किया।

९७३-७४ अमोघवर्ष (२) मालखेदका राष्ट्रकूट राजा हुआ।

९७४ कन्नौजका राजा महीपाल। गोविन्द (४) मालखेद-का राष्ट्रकूट।

९७५ पूर्वी चालुक्य राजा विजयादित्य हुआ। अम्मर (१) पूर्वी चालुक्य।

९७७ अन्हलवाड़ाका चापोत्कट राजा रत्नादित्य हुआ।

९७८ कश्मीरका उत्पलवंशी निर्जितवर्म्मन् राजा हुआ।

९८० कश्मीरका राजा चक्रवर्म्मन् हुआ।

९८२ पूर्वी चालुक्य विक्रमादित्य (२) और पश्चिमी चालु-क्य विजयादित्य (२)

९९० चँदेलराजा यशोवर्मन् हुआ। चेदिका कलचुरि राजा केयूरवर्ष युवराजदेव हुआ।

९९१ पूर्वी चालुक्य भीम (२) उत्पलवंशी सुखवर्मन् राजा हुआ।

९९२ अमोघवर्ष (३) मालखेदका राष्ट्रकूट राजा। कश्मीर-का राजा पार्थ गद्दीसे उतारा गया और चक्रवर्मन् फिर राजा हुआ। अन्हलवाड़ाका चापोत्कट सामन्त-सिंह हुआ।

९९३ पश्चिमी चालुक्य भीम (३)। कश्मीरकी गद्दी शम्भुवर्मन्ने ली।

९९४ कश्मीरमें उन्मत्तावन्ती।

९९६ कश्मीरमें फिर सुखर्मन राजा हुआ। कश्मीरमें यश-स्करदेवका राज्य।

९९७ कृष्ण (३) मालखेदका राष्ट्रकूट राजा हुआ। कन्नौजके राजा महीपालका राज्यान्त और देवपालका राज्यारम्भ।
९९८ राष्ट्रकूटोंके अधीन चालुक्य अरिकेशरिन्।
१००२ पूर्वी चालुक्य अम्मर (२) राजा हुआ।
१००५ कन्नौजका राजा देवपाल था। कश्मीरमें यशस्करदेवके पीछे सङ्ग्रामदेव राजा हुआ।
१००६ कश्मीरमें पर्वगुप्त राजा हुआ।
१००७ अजमेरका चौहान राजा सिंहराज। मालवाका प्रमर वंशी हर्षदेव सीयक राजा हुआ। काबुलका हिन्दू शाहिया भीम। चेदिका कलचुरि राजा लक्ष्मणराज कश्मीरका राजा क्षेमगुप्त।
१०१२ कन्नौजके राजा देवपालका राज्यान्त। उसका भाई विजयपाल राजा हुआ। कालंजरका राजा धांगा चँदेल हुआ।
१०१५ कश्मीरमें अभिमन्यु राजा हुआ।
१०२२ खोट्टिग मालखेदका राष्ट्रकूट राजा हुआ।
१०२४ महमूद ग़ज़नवीका जन्म हुआ।
१०२५ नाडौलका चौहान राजा श्रीलक्ष्मण हुआ।
१०२७ पूर्वी चालुक्य दानार्णव। चेदिका कलचुरि शङ्करगणदेव।
१०२६ मालखेदका राष्ट्रकूट राजा कक्क। कश्मीरमें नन्दिगुप्त।
१०३० कल्याणका चालुक्य तैल (२)। कश्मीरमें त्रिभुवन राजा।
१०३१ अजमेरका चौहान राजा विग्रहराज (२) हुआ।
१०३२ चेदिका कलचुरि राजा युवराजदेव। कश्मीरका

राजा भीमगुप्त ।

१०३३ इब्नहाकलने सिन्ध और मुलतानकी यात्रा की ।

१०३४ लाहौरके राजा जयपालने गजनीपर चढ़ाई की।

१०३७ सौनदत्तिका सर्दार शान्तिवर्मन् । पीछेसे कार्त्तवीर्य (१) । कश्मीरमें दिद्दा राजा हुआ ।

१०४७ कन्नौजमें राजा विजयपालका राज्य समाप्त हुआ ।

१०५२ मालवाका प्रमरवंशी राजा सिन्धुराज हुआ ।

१०५४ कल्याणीका चालुक्य सत्याश्रय हुआ। उत्तरी कोङ्कणका शिलाहर राजा अपराजित हुआ । ग़ज़नीका सिबुकतगी मरा। बड़े भाई इस्माईलको क़ैद करके महमूद ग़ज़नवीने राज्य सिंहासनपर अधिकार किया।

१०५६ महमूद ग़ज़नवीने भारतकी पश्चिमी सीमापर चढ़ाई करके भारतवर्षको लूटना प्रारम्भ किया ।

१०५७ कालंजरका राजा गण्डा चँदेल । देवगिरिका यादव राजा भिल्लम (२) । महमूद ग़ज़नवीने पेशावरके निकट लाहौरके राजा जयपालको परास्त किया। चेदिका कलचुरि कोकल्लदेव (२) । गाङ्गवंशी राजा शिवमहाराजका राज्यारम्भ ।

१०५८ काबुलका हिन्दू शाहिया राजा अनन्दपाल लाहौरमें सिंहासनारूढ़ हुआ ।

१०६० पूर्वी चालुक्य शक्तिवर्मन् राजा हुआ । कश्मीरका राजा संग्रामराज हुआ ।

१०६१ झेलम नदीके बाएँ किनारेपर भेड़ा नाम स्थानपर महमूद ग़ज़नवीकी चढ़ाई ।

१०६२-६३ महमूद ग़ज़नवीने अनन्दपालको परास्त किया ।

१०६४ गोवाके कदम्ब राजा चट्ट या षष्ठदेव हुए । महमूद

गज़नवीने सुखपालको वशीभूत किया।

१०६५-६६ महमूद ग़ज़नवीने वाहिन्द लिया और नगर चेदिको लूटा।

१०६६ कल्याणीका चालुक्य राजा विक्रमादित्य (५) हुआ। दक्षिण कोङ्कणका शिलाहर रट्ट राजा हुआ। महमूद ग़ज़नवीने थानेश्वरको लूटा।

१०६७ मालवामें प्रमरवंशी राजा भोजका राज्य।

१०७० काबुलका हिन्दू शाहिया राजा त्रिलोचनपाल हुआ। महमूद ग़ज़नवीने सिन्ध सागर दोआबमें नन्दनको लूटा।

१०७१-७२ महमूद ग़ज़नवीने थानेश्वरको लूट लिया।

१०७२ पूर्वी चालुक्य विमलादित्य गद्दीपर बैठा।

१०७३ कल्याणीका चालुक्य राजा जयसिंह (२) हुआ। गाङ्ग राजा शिव महाराजका राज्यान्त।

१०७४ उत्तरी कोङ्कणका शिलाहर अरिकेशिन् राजा हुआ।

१०७५ महमूद ग़ज़नवीने कन्नौजपर चढ़ाई की और लौटते समय बारन और मथुराको लूट लिया।

१०७६ महमूद ग़ज़नवी कन्नौज होता हुआ बुंदेलखण्डको गया।

१०७६ पूर्वी चालुक्य राजराज हुआ। महमूद ग़ज़नवीने रुहेलखण्डपर चढ़ाई की।

१०८० महमूद ग़ज़नवीने ग्वालियर तथा कालंजरपर चढ़ाई की।

भीमपाल मरा।

१०८३ बंगालका पालवंशी राजा महीपालदेव हुआ। उत्तरी कोङ्कणका शिलाहर छिट्ट राजा हुआ।

१०८४ कन्नौजमें त्रिलोचनपाल राजा हुआ। महमूदग़ज़नवी-की १७वीं चढ़ाई भारतपर हुई।

१०८५ कश्मीरमें हरिराज और उसके पीछे अनन्तदेव राजा हुआ।

१०८७ ग़ज़नीमें महमूद ग़ज़नवी मर गया।

१०९३ कन्नौजमें कदाचित् यशःपाल राजा हुआ।

१०९४ चँदेल राजा विजयपालदेव हुआ।

१०९५ चेदिका कलचुरि राजा गाङ्गेयदेव हुआ।

१०९७ सौन्दत्तिका सर्दार एरेग हुआ।

१०९९ कल्याणीका चालुक्य राजा सोमेश्वर (१) हुआ। चेदिका कलचुरि राजा कर्णदेव हुआ।

११०५ द्वारसमुद्रका हयशल राजा विनयादित्य हुआ। सौनदत्तिका सर्दार अङ्क हुआ।

११०७ अजमेरका चौहान राजा वीर्यराम हुआ। चँदेलराजा देव वर्मदेवने गद्दी पाई।

११०८ सिन्धपर सुमरा लोगोंने अधिकार किया।

११०९ गोवाका कदम्ब राजा जयकेशिन् (१) हुआ।

१११२ मालवाका प्रमर राजा जयसिंह हुआ।

१११५ कोल्हापुरका शिलाहर राजा मारसिंह हुआ।

१११७ उत्तरी कोङ्कणका शिलाहर राजा मम्मुणी हुआ।

११२० कश्मीरमें कलश राजा हुआ।

११२५ हानगलके कदम्ब राजा जयसिंहका पौत्र कीर्तिवर्मन् (२) राजा हुआ।

११२६	देवगिरिका यादव सेउणचन्द्र [२] राजा हुआ। सौनदत्तिका सर्दार कन्नकैरव कार्त्तवीर्य [२] हुआ।
११२७	पूर्वी चालुक्य कुलोत्तुङ्ग चोडदेव [१]।
११३२	विक्रमादित्य [६] कल्याणीका चालुक्य राजा हुआ। हानगलका कदम्ब राजा शान्तिवर्मन् हुआ।
११३३	येलबर्गाका सिन्द सिङ्गा [२] राजा हुआ।
११३७	मालवाका प्रमर राजा उदयादित्य हुआ।
११३८	पिताकी मृत्युके पीछे कलशका राज्य काश्मीरमें।
११४२	अजमेरका चौहान राजा दुर्लभ [३] मालवाका प्रमर राजा लक्ष्म या लक्ष्मीदेव हुआ।
११४६	कश्मीरका राजा उत्कर्ष हुआ तत्पश्चात् हर्षदेवका राज्य।
११४७	चन्द्रदेवने कन्नौजको विजय किया।
११५२	उत्तरी कोङ्कणका शिलाहर राजा अनन्तदेव हुआ।
११५३	सौनदत्तिका सर्दार सेन [२]
११५५	चँदेल राजा कीर्तिवर्मदेव हुआ। कोल्हापुरका शिलाहर राजा भोजदेव [१] हुआ।
११५६	हांगलका कदम्ब राजा तैलप [२] हुआ।
११५७	चँदेल राजा सल्लक्षण वर्मदेव हुआ।
११५८	कश्मीरका लोहर राजा उच्छल हुआ।
११६०	द्वारसमुद्रका राजा बल्लाल [१] हुआ।
११६१	मालवाका प्रमर राजा नरवर्मन् हुआ।
११६५	विक्रम चोडदेव पूर्वी चालुक्य राजा हुआ।
११६६	कन्नौजमें मदनपाल राज्य करता था।
११६७	कोल्हापुरका शिलाहर राजा गण्डरादित्य हुआ।
११६८	कश्मीरका लोहर रड्डा एक रात्रि भर राजा रहा।

११६६ कश्मीरका राजा सुस्सल हुआ।
११७१ कन्नौजमें गोविन्दचन्द्र राजा हुआ। रत्नपुरका कलचुरि राजा जाजल्लदेव हुआ।
११७२ गट्टलका गट्टा राजा मल्लिदेव हुआ।
११७४ कीर्त्तिवर्मदेव [२] चँदेल राजा हुआ। द्वारसमुद्रमें त्रिभुवनमल्ल विष्णुवर्द्धन राजा हुआ।
११७६ गोवाका कदम्ब राजा जयकेशिन् [२] हुआ।
११७७ कश्मीरमें भिक्षाचन्द्र हुआ।
११७९ येलवर्गाका सिन्द अचुगी [२]। चेदिका कलचुरि राजा यशःकर्णदेव हुआ।
११८२ कल्याणीका चालुक्य राजा सोमेश्वर [३] हुआ।
११८४ पूर्वीय चालुक्य कुलोत्तुङ्ग चोडदेव [२] हुआ। कश्मीरमें जयसिंह युवराज हुआ।
११८५ कश्मीरमें जयसिंह महाराज हुआ। कल्याणका कलचुरि परमादि राजा हुआ।
११८६ मदनवर्मदेव चँदेल राजा हुआ।
११८७ अजमेरका चौहान राजा अजयराज हुआ।
११८८ हाँगलका कदम्बराजा मयूरवर्मन् हुआ।
११८९ हाँगलका कदम्ब राजा मल्लिकार्जुन हुआ।
११९० मालवाका प्रमरवंशी राजा यशोवर्मन् हुआ।
११९५ परम जगदेकमल्ल नाम कल्याणीका चालुक्य राजा हुआ। मालवाका प्रमर राजा जयवर्मन् हुआ। उत्तरी कोङ्कणका शिलाहर अपरादित्य [१] राजा हुआ।
११९९ बंगालका पालवंशी राजा महेन्द्रपाल हुआ।
१२०० कन्नौजमें राज्यपालदेवका राज्यारम्भ। कोल्हापुरका शिलाहर राजा विजयादित्य और सौनदत्तिका

सर्दार कार्त्तवीर्य [३] हुआ।

१२०१ येलवर्गाका सिन्द परमाडी [१] हुआ।

१२०२ रत्नपुरका कलचुरि पृथ्वीवर्मदेव राजा हुआ।

१२०४ गोवाका कदम्ब शिवचित्त परमादि और विष्णुचित्त विजयादित्य राजा हुए। हाँगलका कदम्ब राजा तैलम।

१२०६ कल्याणीका चालुक्य तैल [३] राजा हुआ। उत्तरी कोङ्कणका शिलाहर हरिपाल राजा हुआ। कश्मीरमें कल्हण पण्डितने राजतरङ्गिणी लिखी।

१२०७ अजमेरका चौहान राजा अर्णवराज हुआ। वारङ्गल-का काकटेय राजा प्रौढ़राज हुआ।

१२०८ चेदिका कलचुरि गयकर्णदेव राजा हुआ।

१२१० खान्देशका निकुम्भ राजा इन्द्रराज हुआ।

१२११ कन्नौजका राजा गोविन्दचन्द्र मरा।

१२१२ कल्याणके कलचुरि त्रिभुवनमल्ल विजल और चेदिका कलचुरि नरसिंहदेव राजा हुए।

१२१३ उत्तरी कोङ्कणका शिलाहर मल्लिकार्जुन राजा हुआ।

१२१५ पीठपुरम्‌का पूर्वी चालुक्य राजमल वामल्लम [३] हुआ।

१२१६ द्वारसमुद्रमें त्रिभुवनमल्ल नरसिंह राजा हुआ।

१२१७ मालवाका प्रमर राजा विन्ध्यवर्मन्। महमूद ग़ज़-नवीके सन्तान ग़ोरियोंके भयसे लाहौरमें शरणार्थ भाग आये।

१२१९ चङ्गेज़ खाँ तातारी जन्मा। गयासुद्दीन मुहम्मद बिन साम ग़ोरमें राजगद्दीपर बैठा। कल्याणीका चालुक्य राजा सोमेश्वर [४] हुआ। नाडोलका चौहान अल्ह-णदेव राजा हुआ।

१२२० वारङ्गलका काकटेय राजा प्रतापरुद्रदेव हुआ। यलबर्गाका सिन्द चावुण्डा [२] तत्पश्चात् अचुगी [३] हुआ

१२२३ अजमेरका चौहान राजा पृथ्वीभट और खान्देशका निकुम्भ राजा गोवन हुआ।

१२२४ महोबामें चन्देल राजा परमर्दिदेव [परमाल] हुआ।

१२२५ कन्नौजमें राज्यपालदेवका राज्यान्त और उसका उत्तराधिकारी विजयचन्द्रदेव हुआ। कल्याणका कलचुरि सोमेश्वर। रत्नपुरका कलचुरि जाजल्लदेव।

१२२६ येलबर्गाका सिन्द विज्जल।

१२२७ कन्नौजमें विजयचन्द्रका राज्यान्त और जयचन्द्र उसका उत्तराधिकारी हुआ। अजमेरका चौहान राजा पृथ्वीराज वा राय पिथौरा हुआ।

१२३० द्वारसमुद्रमें त्रिभुवनमल्ल वीर बल्लाल [२] राजा हुआ। ग़ज़नी गोरके राज्यमें मिला लिया गया

१२३२ ककरेडीका महाराणक कीर्त्तिवर्मन् राजा हुआ।

१२३२-३३ मुहम्मद ग़ोरीने मुलतान विजय किया।

१२३४ चेदिका कलचुरि जयसिंहदेव हुआ।

१२३५ कल्याणका कलचुरि राजा निःशङ्कमल्ल हुआ। मुहम्मद ग़ोरी अन्हलवाड़ापत्तनपर चढ़ाई करके परास्त हुआ।

१२३७ कल्याणमें कलचुरि राजा आहवमल्ल हुआ। चेदिका कलचुरि राजा विजयमल्ल हुआ।

१२३८ हाँगलका कदम्बवंशी कामदेव राजा हुआ। रत्नपुरका कलचुरि राजा नरसिंहदेव हुआ। मुहम्मदगोरीने लाहौरपर चढ़ाई की बहुतसा रुपया लिया।

१२३९ गट्टलके गट्टा राजा जायिदेव हुए। गट्टलके

आह्वादित्य और विक्रमादित्य हुए। दिल्लीके पृथ्वीराज चौहानकी लड़ाई महोवाके चँदेलोंसे हुई। मुहम्मद गोरीने सिन्धमें देवल लिया।

१२४० कल्याणका कलचुरि राजा सिंहण हुआ।

१२४१ उत्तरी कोङ्कणका शिलाहार राजा अपरादित्य [२] हुआ।

१२४३ वेलानाड़्का सर्दार पृथ्वीश्वर हुआ। मुहम्मद गोरीने लाहौर विजय किया।

१२४४ देवगिरिका यादव राजा भिल्लम [१] हुआ। गोवा-का कदम्ब राजा जयकेशिन् [३] हुआ।

१२४७ रत्नपुरका कलचुरि राजा पृथ्वीदेव हुआ।

१२४८ देवगिरिका यादव राजा जैत्रपाल [१] हुआ। मुहम्मद गोरीने थानेश्वरके निकट चौहान पृथ्वीराजसे पराजय पाया।

१२४६ मुहम्मद गोरीने दिल्ली और अजमेर विजय किया।

१२५१ मुहम्मदगोरीने कन्नौजके राजा जयचन्द्रको परास्त किया।

१२५६ सौनदत्तिका सर्दार कार्त्तवीर्य [४] हुआ। कोल्हापुर-का शिलाहर भोज [२] हुआ। मुहम्मद गोरीके सर्दार बखतियार खिलजीने बिहारको विजय किया।

१२५६ पीठपुरका पूर्वी चालुक्य विष्णुवर्द्धन [३] राजा हुआ।

१२६० बखतियार खिलजीने बंगालपर अधिकार किया।

१२६२ मुहम्मद गोरी सिन्धुनदके तीरपर गक्करों द्वारा मारा गया और उसका सेनापति कुतुबुद्दीन ऐबक दिल्लीके राजसिंहासनपर बैठा।

इति।

परिशिष्ट

प्राचीन भारतके बौद्ध कालतक छप जानेके बाद कुछ सामग्री ऐसी उपलब्ध हुई जिससे पाठकोंको परिचित करना आवश्यक जान पड़ा, परन्तु तदनुरूप स्थानोंपर उनका समावेश न हो सकनेके कारण उन्हें यहां परिशिष्ट रूपमें देते हैं।

सम्पादक

पहला अध्याय

श्रीरामचरितकी जन्त्री

मर्यादा पुरुषोत्तम भगवान रामचन्द्रजीके जीवनकी घटनायें अनेक प्रकारसे रामायण तथा पुराणादि ग्रन्थोंमें दी हैं। प्रत्येक घटनाका समय क्रम भी कथञ्चित एकत्र किया जा सकता है। कुछ संकेत तो वाल्मीकीय रामायण और विशेषतः पद्म पुराण पाताल खण्डके रामाश्वमेध तथा अग्निवेश रामायणसे सङ्कलित करके यहाँ पाठकोंके लाभार्थ भगवच्चरित्रका संक्षिप्त तालिका ऐतिहासिक दृष्टिसे दी जाती है।

श्री राम संवत् * १ चैत्र शुक्ल ६ गुरुवार पुनर्वसु नक्षत्र—श्री रामचन्द्रजीका जन्म।

---

* यह एक कल्पित संवत् है जो श्रीरामचन्द्रजीके जन्मदिनसे प्रारम्भ होता है।

चैत्रशुक्ल १० शुक्रवार पुष्य नक्षत्र–श्रीभरतजीका जन्म।

चैत्रशुक्ल ११ शनिवार आश्लेषा–श्रीलक्ष्मण तथा शत्रुघ्नजीके जन्म।

वैसाख कृष्ण ५, शनिवार—राम, भरत, लक्ष्मण तथा शत्रुघ्नजीके नाम करण।

सं० ६, वैसाख शुक्ल ६, उत्तरा फाल्गुनी नक्षत्र-श्रीसीताजीका जन्म।

सं०१५, मार्गशीर्ष शुक्ल १–विश्वामित्रके साथ राम लक्ष्मणका प्रस्थान।

" शुक्ल १२–शिव धनुर्भङ्ग।

" " १३–जनक द्वारा अयोध्याको दूत प्रेषण।

पौष कृष्ण १, आर्द्रा–राजा दशरथका वशिष्ठ और भरत शत्रुघ्न समेत मिथिलाको प्रस्थान।

४ आश्लेषा—दशरथजी मिथिला पहुँचे।

५ मघा–विवाह-प्रतिज्ञा।

७ उत्तराफाल्गुनी–सीतादिका विवाह।

स० २७, चैत्र शुक्ला १०, गुरुवार पुष्य नक्षत्र राज्याभिषेकमें विघ्न और रामचन्द्रजीका वनगमन।

चैत्र शुक्ला १४, उत्तराफाल्गुनी–राम शृङ्गवरपुर पहुँचे।

१५–प्रयागमें भरद्वाजसे भेंट।

" "—रात्रिमें राजा दशरथजीका प्राणत्याग।

वैशाख कृष्ण १,—वाल्मीकिजीसे रामकी भेंट चित्रकूटपर पहुंचना।

वै० कृ० ८–अयोध्याके दूतोंका केकय राजाके यहाँ पहुँचना।

वै० कृ० ३०,,–भरतजीका अयोध्यामें लौट आना।

वैशाख शुक्ला १३मन्थरा शासन (शत्रुघ्नजी कृत)

वै० शुक्ल १४-भरतजीका सेनादि समेत चित्रकूटको प्रस्थान।

ज्येष्ठकृष्ण ६-भरतजी चित्रकूट पहुंचे ।

ज्येष्ठ कृष्ण ३०,, चित्रकूटसे लौटे ।

ज्येष्ठ शुक्ला ४ भरतजीने नन्दिग्राममें वास किया ।

संवत् २७से ३६ तक रामचन्द्रजीने चित्रकूटसे चलके पञ्चवटीमें जा सीता लक्ष्मण सहित निवास किया ।

संवत् ३६ में शूर्पणखाके नाक कान काटे और खरदूषण तथा त्रिशिरा और मारीचादिका वध हुआ।

सं० ३६, फाल्गुन कृष्ण ८-रावण कृत सीता हरण ।

स० ४०,आश्विन शुक्ला १०,-रामका लङ्का विजयार्थ सङ्कल्प ।

" ४०, मार्गशीर्ष शुक्ल १०,-सपातीने सीताजीका पता बताया।

" १२-हनुमानजी पैरके समुद्र पार हुए ।

" १३-हनुमानजीने सीताको मुद्रिका दी और उपवन विध्वस किया ।

" १४-अक्षयकुमारका वध और लङ्कादहन ।

" १५-हनुमानजी सिन्धुपार लौट आये ।

पौष कृष्ण ६-वानर किष्किन्धाको लौटे ।

७-हनुमानजीने रामचन्द्रजीको सीताका आभूषण दिया ।

६-उत्तराफाल्गुनी, रामका लका विजयार्थ प्रस्थान ।

३०-राम समुद्र तटपर पहुँचे ।

पौषशुक्ल- ४-विभीषणको लकाके राज्यकी वाचा दी गयी ।

५-८-रामका समुद्र तटकी ओर प्रस्थान ।

६-सेतुबन्धका सकल्प ।

१०-दशयोजन सेतुनिर्माण ।

११-बीसयोजन " " " "

१२ तीस योजन " "

१३· चालीस योजन "

सेतुबंधकी समाप्ति।

१४ कपियोंका समुद्रपार गमन।

माघ कृष्ण ३—सब सेना पार पहुँची।

४ ११-लङ्काका घेरा किया गया।

१२-वानरोंने शुक सारणको बन्दी किया।

१३-३० रावण युद्धार्थ प्रस्तुत हुआ।

१—अंगदजी रावणकी सभामें गये।

२ ८—वानरों और राक्षसोंका परस्पर युद्ध।

६ मेघनादने नागपाश फेंका।

१० गरुडजीने नागपाश काटे।

१२ हनुमानजीने धूम्राक्षको मारा।

१३—राक्षसी सेनाका सहार।

१४ १५—प्रहस्त आदिका वध।

फाल्गुन कृष्ण १—रावण और वानरोंका युद्ध।

५ ८-कुम्भकर्ण जगाया गया।

९ १४-कुम्भकर्णकी लड़ाई।

३०-कुम्भकर्ण वध।

१५—रावणका युद्धार्थ प्रस्थान।

१४,—चैत्र शुक्ल १-६ वानरों और राक्षसोंका युद्ध।

६-८—महापार्श्व आदिका वध।

६—लक्ष्मणजीका शक्तिसे पुनरुत्थान।

१०—युद्ध विराम।

१२—मातलि इन्द्रका रथ लाया।

१२-१४—राम रावण युद्ध।

वैशाख कृष्ण १४—रावण वध।

३०—रावण शरीर दाह।

वैशाख शुक्ल १-विजयोत्सव।

२—विभीषणका राज्याभिषेक।

३—सीताकी अग्नि परीक्षा।

४—रामचन्द्रजी अयोध्याको लौटे।

५—रामचन्द्रजी भरद्वाजाश्रमको आये।

६—नन्दिग्राममें भरतसे भेंट।

७—अयोध्यामें रामचन्द्रका राज्याभिषेक।

भाद्र कृष्ण ६-सीताजीने गर्भ धारण किया।

सं० ५२, चैत्रशुक्ल, १२—सीताका परित्याग।

आषाढ़ ६—लवकुशका जन्म।

(वाल्मीकि रामायणके अनुसार लव तथा कुशका जन्म श्रावण शुक्ल १५ को सङ्केतित होता है।

सं० ५५-(तिथि नक्षत्रादि अज्ञात)—सीताका भूतलमें प्रवेश।

परन्तु पण्डित महादेवप्रसाद त्रिपाठीने भक्तिविलास नामक ग्रन्थमें श्रीरामचन्द्रजीके जीवन घटनाओंकी निम्न-लिखित रीतिसे तिथि दी है—

अश्विन कृष्ण ६ चन्द्रवार—विश्वामित्रजी आये—

अश्विन कृष्ण १२ रविवार—वे रामलक्ष्मणको लिवागये—
" शुक्ल ३ [शनिवार]—विश्वामित्रने यज्ञारम्भ किया—
" " ४ रविवार–सुबाहुकोमारा और मारीचको उडाया
" " ६ [शुक्रवार]-ऋषियोंसे भेंट हुई—
१० [शनिवार] अहल्याका उद्धार किया—
१२ सोमवार—रामचन्द्रादि जनकपुर पहुँचे—
१३ मङ्गलवार—रामचन्द्रजीने फुलवारीमें श्रीसीताजीको देखा—
१४ बुधवार—नगरकी शोभादेखी—
१५ गुरुवार—शिवजीका धनुष तोडागया—
कार्तिक कृष्ण ८ [शुक्रवार] अवधसे बरात चली—
१३ बुधवार–जनकपुर पहुँचके जनवासेमे टिके–
एक महीना सात दिन जनकपुरमें बरात रही–
अगहन शुक्ल ५ गुरुवार—राम सीताका विवाह–एक महीना पाँचदिन फिर रहके—
पौषशुक्ल ७ [रविवार] को अवध चले—
चैत्रशुक्ल ८ [सोमवार] राज्याभिषेककी तयारी (रामचन्द्रजीका वय ३१ वर्ष था)
चैत्रशुक्ल ९ मङ्गल वनगमन।
१० बुधवार तमसातटपर शृङ्गवेरपुरमें डेरा–
११ गुरुवार गङ्गापार उतरे
१० (१२)(शनि) प्रयागमें रहे—
१४ सोमवार चित्रकूट पहुँचे–
वैशाख कृष्ण ५ शुक्रवार—सुमन्त्र लौटके अयोध्या आया उसी दिन राजा दशरथ मरे—
६ शनि—भरतको बुलाने आदमी गया—

वैशाख कृष्ण ९ मङ्गल—भरतके यहाँ दूत पहुंचा—
१० —भरत अयोध्याको चले—
१२ —भरत अयोध्यामें आये—
१३ —भरतजीने पिताकी क्रियाकी—
वैशाख शुक्ल गुरु —भरतजी शुद्ध हुए—
११ शुक्र —भरत चित्रकूट चले—
१२ शनि भरत शृङ्गवेरपुर पहुँचे—
१३ रवि भरत प्रयाग पहुँचे—
वैशाख शुक्ल १५ मङ्गलवार —भरतजी चित्रकूट पहुँचे—
ज्येष्ठ कृष्ण १४ चरणपादुका लेके भरत लौटे—
शुक्ल ५ —भरत नन्दि ग्राममें रहनेलगे-
७ बुधवार —जयन्तने जानकीजीके चरण में चोंचमारी—
दूसरे वर्ष चैत्र शुक्ल ५ शुक्रवार—रामचन्द्र चित्रकूटसे चले—
८ विराध वध
११ गुरुवार —सुतीक्ष्णसे भेंट हुई—
१२ शुक्रवार —अगस्त्यसे भेंट हुई—
१५ —पञ्चवटीमें कुटी बनाकर रहे-
१३वें वर्ष माघ १३ —शूर्पणखा आई—
फाल्गुन कृष्ण २ शुक्रवार —खरदूषण त्रिशिरा मारे गये-
५ —लङ्कामें शूर्पणखाने रावणको समाचार दिया-
७ बुधवार —रावण मारीचके यहाँ गया-
८ शुक्रवार —मारीच कपटमृग बना-सीताहृ०
९ शनिवार —कबन्धका बध
११ मङ्गलवार —शबरीसे भेंट

फाल्गुन कृष्ण	१२ गुरुवार	—पम्पासर निवास
	३० शनिवार	—हनुमान्जीसे भेंट
फाल्गुन शुक्ल	२	—सुग्रीवका राज्यतिलक
"	४	—प्रवर्षणगिरि पर कुटी निर्माण—
"	५ गुरुवार	—प्रवर्षणगिरि पर निवास—
कार्तिक शुक्ल	१५	—सुग्रीवपर लक्ष्मणका कोप—
अगहन कृष्ण	१०	—सीताकी खोजमें वानर भेजे गये
" शुक्ल	१	—वानरोंकी सलाह—
" "	५ गुरुवारतक	—सीताको ढूंढना
"	६	—गिरिगुफामें प्रवेश—
"	७ शनिवार	—सम्पातीसे भेंट
"	१०	—हनुमानजीका समुद्रलङ्घन
"	१२	—पेड़पर बैठ हनुमान्जीने सीताजीको देखा
"	१३	—अक्षयकुमारका वध, उद्यानभङ्ग और लङ्कादाह
पौष कृष्ण	५ शुक्रवार	—हनुमान् चूडामणिले सीताजीसे विदाहुए
"	७ रवि	—रामचन्द्रजीको सीताका समाचार मिला
"	८ सोमवार	—उत्तरानक्षत्रमें लङ्काको सेना चली
" शुक्ल	शनि	—विभीषण शरणमें आया
पौष शुक्ल	६	समुद्रमन्थन
		— तीनदिनमें सेतुबँधा
"	१३	रामेश्वरकी स्थापना

माघकृष्ण	२ गुरुवार	—सेना पार उतरी
,,	१० शुक्रवार	सुवेलपर्वतपर उतरे
,,	१४ बुधवार	रावणने सभाकी
,, शुक्ल	१	अङ्गद सवाद
,,	२ मेलेके ८नव—घोर सग्राम	
माघ शुक्ल	६ गुरुवार	मेघनादने नागपाश फेंका
,,	१०	नारदजीने गरुड भेज नाग-पाशसे छुडाया
,,	१२	वानरोंकी लडाई
फाल्गुन कृष्ण	१	रावणका बेटा प्रहस्त मारागया
,,	५	कुम्भकर्ण जगाया गया
,,	६	कुम्भकर्णका वध
फाल्गुन शुक्ल		लक्ष्मणको शक्ति लगी
,,	७	हनुमान्‌जी सजीवनमूरि ल्याये-लक्ष्मणजी जागे और मेघनाद का वध
फाल्गुन शुक्ल	११ गुरुवार	—रावणका वध
	१०	विभीषणका राज्या-
	१४	वानरोंका पुनरुज्जीवन—सीतासमेत प्रस्थान
	४ रविवार	रामचन्द्रजी अगस्त्यसे मिले
	७	—निषादसे भेंट—
	६ बुधवार	भरत मिलाप
	१०	—रामराज्याभिषेक—

दूसरा अध्याय

श्रीकृष्णचरितकी जन्त्री

श्रीरामचन्द्रजीके चरितकी जन्त्रीकी नाईं श्रीकृष्ण चरितकी जन्त्री सुलभ नहीं है किन्तु अनुसन्धानद्वारा थोड़ा बहुत पता लगता है। प्रारम्भके बारह वर्षोंकी जन्त्री तो श्रीमद्भागवत दशम स्कन्ध ४५ अध्यायकी वैष्णवतोषणी टीकाके आधारपर प्रस्तुतकी गयी है। शेषभागका विवरण केवल कल्पना और अनुमानमूलक है। चरितावलीका क्रम प्रायः श्रीमद्भागवत दशम स्कन्धके अनुसार दिया गया है—

विक्रमसे पूर्व १४५८ वर्ष (भाद्रपदकृष्ण ८ बुधवार)–श्रीकृष्णचन्द्रजीका जन्म—इसी वर्षमें पूतना नाम राक्षसीका बध—

वि. पू. १४५७ में—तृणावर्त्त बध—
,, १४५५ (कार्त्तिकमास)– दामोदर लीला अर्थात् श्रीकृष्ण रस्सीसे उलूखलमें बाँध दिये गये थे—
,, ,, ब्रजवासियोंका वृन्दावनमें प्रवेश—
,, ,, (माघ)– वत्सचारणा रम्भ–
,, ,, वत्स, वक और व्योमका बध–
,, १४५४ (आश्विन)—बालवत्सहरण—
,, १४५३ (कार्त्तिकशुक्ल ८)—गोचारणा रम्भ—
वि. पू. १४५२ वर्ष (ज्येष्ठ)—कालियनागका दमन—
,, १४५० धेनुकवध—
,, ,, (ज्येष्ठ)— प्रलम्बवध—
,, १४४९ (आश्विन)—वेणुगीत—

वि पू १४४६ (का. शु. ३)—गोवर्द्धनोद्धारण—
" " (का शु. ११) गोविन्दाभिषेक—
" " (का शु. १२)-वरुणलोक गमन-
" " (का. शु १५)-ब्रह्महृदाव गाहन—
" १४४८ (ज्येष्ठ)-यज्ञपत्नीप्रसाद-
" " (आ. शु. १५)-रासलीला—
" " (फा कृ १४)-अम्बिका वनयात्रा—
" " (फा शु १५)-शङ्खचूड वध-
" १४४७ (चै. शु. १५)—अरिष्ट वध-
" १४४६ (चै कृ. १२)— केशिवध-
" " (चै. कृ १४)—कंस वध—
" " श्रीकृष्णजीने अपने माता पितासे भेंटकी उन्हें बन्दी गृहसे मुक्त किया। उग्रसेनको राज्यासन मिला।

वि पू. १४४० वर्ष (प्रायः) —सान्दीपनिसे विद्याध्ययन, योगादिकी अष्टसिद्धि प्राप्त—

समय अनिश्चित—जरासन्धकी मथुरापर चढाई—
" " कालयवन वध—
" १४१८ मथुरापुरी परित्याग, द्वारकाको पलायन-
" १४१५ रुक्मिणी परिणय प्रद्युम्नका जन्म—
" १४१० स्यमन्तकमणि ग्रहणका कलङ्क—
" " जाम्बवन्ती पाणिग्रहण—
" १४०८ सत्यभामाका पाणिपीडन—
" " शतधन्वा वध—
" १४०५ कालिन्दी आदिसे विवाह—

समय अनिश्चित—तारकासुर वध—

समय अनिश्चित—अनिरुद्धका जन्म—
,, ,, अनिरुद्धका उषासे प्रेम—बाणासुर भुज च्छेद—
वि पू १३७३ वर्ष—जरासन्ध वध—युधिष्ठिरका राजसूयय शिशुपाल वध—
,, १३७० शाल्वसे युद्ध और उसका वध—
,, ,, दन्तवक्र विदूरथका वध—
,, १३७० महा, भारतका युद्ध—
,, १३३३ यदुवंश विनाश श्रीकृष्णका शरीरत्याग—

तीसरा अध्याय

महाभारतकी जंत्री

महामहोपाध्याय प० हरप्रसादजी शास्त्री महोदयने लिखा है कि पाटलिपुत्र (पटना) के राज सिंहासनपर चन्द्रगुप्त मौर्य विक्रम से २५५ वर्ष पूर्व विराजमान हुआ। विनसेण्ट स्मिथ लिखते हैं कि चन्द्रगुप्तमौर्यका सिंहासनारोहण सन् ईस्वीसे ३२१ व ३२२ वर्षपूर्व होगा, इसमें २ वर्षसे अधिक की भूल नहोगी। परन्तु स्मिथका मत श्रद्धय नहीं है। जैन ग्रन्थकारोंने लिखा है कि वर्द्धमान महावीरकी मृत्यु विक्रमसे ४७० वर्ष पूर्व हुई और उनकी मृत्यु से २१० वर्ष पीछे अंतिम अर्थात् नवम नन्दके मंत्री स्थूल भद्रकी मृत्यु हुई और इसी वर्ष चन्द्रगुप्तने अंतिम नन्दको मार के राज सिंहासन लिया। निदान चन्द्रगुप्तने विक्रमसे २५५ वर्षपूर्व मगध राज्यपर चाणक्यकी सहायतासे अधिकार पाया। यही बात युक्तिसंगत बोध होती है। पुराणोंके अनुसार

महापद्म नन्दने ८८ वर्षतक और सुमाल्यो आदि उसके ८ बेटों-ने १२ वर्ष तक राज्य किया। अर्थात् महापद्म नन्दका राज्याभिषेक विक्रमसे ३५५ वर्ष पूर्व हुआ। विष्णुपुराणमें लिखा है कि महाराज परीक्षितके जन्मदिनसे लेके महापद्म नन्दके राज्याभिषेकके दिनतक १०१५ वर्ष व्यतीत हुए। यह वर्ष गणना सौर वर्षके अनुसार प्रतीत होती है अतएव वायुपुराणमें जो चान्द्र गणनानुसार महापद्म नन्दके राज्याभिषेकसे लेके परीक्षितके जन्म कालतक १०५० वर्ष लिखा है सो भी ठीक है। १०१५ सौर वर्ष लगभग १०५० चान्द्र वर्षके बराबर होते हैं। इसी समय को श्रीमद्भागवतमें जो १११५ वर्ष लिखा है सो भूल है अथवा नन्दोंके राज्यकी समाप्ति अर्थात् चन्द्रगुप्त-मौर्यके सिंहासनारोहणतक की अवधि होगी। निदान विष्णु-पुराणके निर्देशानुसार ३५५ से १०१५ का योग करनेसे १३७० वर्ष विक्रमसे पूर्व परीक्षितका जन्म काल सिद्ध होता है और इसी समयको महाभारत युद्धका वर्ष भी मानना न्याय्य है। राजतरङ्गिणीकार कल्हण पण्डित और ज्योतिषी वराह-मिहिरने जो युधिष्ठिर संवतको विक्रमसे २३६१ वर्ष पूर्व बतलाया है सो उन लोगों की भूल है। वृद्धगर्गने उस समयको कलियुग संवत्का आरम्भ काल बतलाया है, अतएव वास्तवमें कलियुग संवत्का आरम्भ विक्रमसे २३६१ वर्ष पूर्व है न कि उसका आरम्भ सन् ईस्वीसे ३१०२ वर्ष पूर्व जैसा कि साधारण-तया प्रचलित है। कलियुग संवत्के भूल का यही कारण प्रतीत होता है कि आर्यभट्ट आदिने श्रीकृष्णजीके अन्तर्द्धान होनेका समय विक्रमसे १८४३ वर्ष पूर्व (भूलसे) मानके उसमें १२०० वर्ष और जोड़के ३०४३ वर्ष ईस्वीसे पूर्वका समय कलियुगका आरंभ मान लिया होगा। आर्यभट्टादि की भूलका

कारण यह प्रतीत होता है कि जरासन्धका मागध राज्यवंश जो शिशुनागवंशके राज्यकालमें ही वर्तमान था और नष्ट नहीं हुआ था और प्रद्योतका राज्यवंशजो जरासंधके वंशजोंके पीछे भारतपर अधिकारी हुआ इन दोनों समकालीन राज्यवंशोंको क्रमसे एकके पीछे एक लिखके पुराणोंमें कुछ गोलमाल कर-दिया है। इस कारण प्रद्योतवंशके १३८ वर्ष और शिशुनाग वंश-के ३६२ वर्ष मिलाके दोनों राज्यवंशोंका समय ५०० वर्ष कर दिया है। इस कारण श्रीकृष्णजीके देहान्तका समयजो वास्तवमें विक्रमसे प्रायः १३४३ वर्ष पूर्व था आर्यभट्टादिने उसे १३४३+५००=१८४३ वर्ष विक्रमसे पूर्व कल्पित कर लिया। श्रीकृष्णजी-के देहान्तके समय संसारमें कलियुगने प्रवेश किया जो १२०० ब्राह्मवर्षोंके प्रमाणका है इस बातको समझनेमें भी टीकाकारों-ने भूल की है। वास्तवमें श्रीकृष्णजीके देहांतके समयमें अर्थात् लगभग १३४३ वर्ष ईस्वीसे पूर्व कलियुगको लगे १२०० वर्ष बीत गये थे यही अर्थ ठीक है। महाराज युधिष्ठिर महाभारत-के युद्धके अनंतर प्रायः ३६ वर्ष हस्तिनापुरके राजसिंहासन-पर विराजमान रहे तदनंतर श्रीकृष्णजीके अंतर्द्धान होनेका समाचार पाके अपने भाइयों सहित महाप्रस्थान किया ऐसा महाभारतमें लिखा है। इसप्रकार १३७०मेंसे ३६ घटानेसे प्रायः १३३४ विक्रमसे पूर्व श्रीकृष्णजीके अन्तर्द्धान होने का समय निकलता है। इससे १२०० वर्ष पूर्व कलियुग संवत्का आरम्भ है। परन्तु इन १२०० वर्षोंकी गणना सौर व चन्द्र नहीं किन्तु नाक्षत्र वर्षोंमें की गयी होगी अर्थात् १२०० वर्ष वास्तवमें ये १२०० वर्ष केवल १०५८ सौर वर्षोंके बराबर होते हैं। और १३३४ में १०५८ जोड़नेसे २३९२ विक्रमसे पूर्वका समय निकलता है। वृद्धगर्गने इसीको कलियुग संवत्का आरम्भ

माना है। सारांश यह निकला कि विष्णुपुराण निर्देशानुसार महाभारतकी लड़ाईका समय विक्रमसे १३७० वर्ष पूर्व ही स्थिर होता है। उद्योतकरने महाभारत कल्पद्रुम नाम छोटी सी पुस्तकमें प्रामाणिक रीतिसे जो १८ दिनके युद्धका विवरण लिख रक्खा है सो ऐतिहासिक दृष्टिसे परमोपयोगी है। उसके देखनेसे विदित होता है कि कुरुक्षेत्रमें १८ दिनतक लड़ाई तो हुई परंतु निरंतर नहीं बीच बीच में कारण विशेषसे कई कई दिनों तक लड़ाई बन्द भी रही। उद्योतकरने लिखा है कि कुरुक्षेत्रमें युद्धारम्भ कार्तिक कृष्ण अष्टमीसे हुआ और दुर्योधनकी जांघ भीमसेनने पौष शुक्ल तृतीयाके दिन तोड़ी। इतिहास प्रेमियोंके उपयोगार्थ उद्योतकरके मतानुसार महाभारत युद्धकी घटनाओंका विवरण नीचे लिखा जाता है। अधिक आश्विन शुक्ल १२ रेवती नक्षत्र-श्रीकृष्णजीका पाण्डवोंके दूत बनकर कौरवोंसे सन्धिके अर्थ हस्तिनापुर की ओर प्रयाण।

कार्तिक कृष्ण ६ पुष्य नक्षत्र-दुर्योधनने संधि करना स्वीकार न किया अतएव भगवान पाण्डवोंके शिविरमें लौट आये। इसी दिन दुर्योधनकी सेना कुरुक्षेत्रमें आ पहुँची। पाण्डवोंने भी कृष्णजीकी संमतिसे युद्धार्थ प्रस्थान किया। इसी दिन तीर्थयात्रारम्भमें बलरामजी भी कुरुक्षेत्रमें आये कार्तिक कृष्ण ७-आश्लेषा नक्षत्र-कुरुक्षेत्रमें युद्धार्थ कौरवों और पाण्डवोंकी सेनाका प्रस्तुत होना।

का० कृ० ८-मघा-युद्धके प्रारम्भमें अर्जुनको उदास देख श्रीकृष्णजीका उन्हे (श्री मद्भगवद् गीताको) उपदेश और युद्धार्थ प्रोत्साहन। इसी दिन प्रथम युद्ध और युधिष्ठिर की सेनाका भङ्ग।

का० कृ० ९-पूर्वा फाल्गुनी-भीष्मपितामहका पराक्रम देख

युधिष्ठिरको पराजयका भय और श्रीकृष्णजीके साथ युद्धार्थ मंत्र विचारण।

का० कृ० १०–उत्तरा फाल्गुनी–द्वितीय युद्ध।

का० कृ० ११–(हस्त और १२ चित्रा)—व्रतोपवास पारणादिके कारण युद्ध नहीं हुआ।

का० कृ० १२ (स्वाती)–तृतीय युद्ध।

का० कृ० १३ और ३० (विशाखा)-दीपोत्सवके कारण युद्ध नहीं हुआ।

का० शु० १ (अनुराधा)–चतुर्थ युद्ध।

का० शुक्ल २ (ज्येष्ठा)–अपने भाइयोंके मारे जानेसे उदास होके दुर्योधनने युद्ध न किया। और भीष्मजीके साथ मंत्र किया।

का० शुक्ल ३ (मूल)–पञ्चम युद्ध।

का० शुक्ल ४ (पूर्वा षाढ़ा)–षष्ठ युद्ध।

का० शुक्ल ५ (उत्तरा षाढ़ा)–भीमके प्रहारसे पीडित शरीर दुर्योधनने उदास हो युद्ध नहीं किया। भीष्मजीने पीडा निवारणार्थ औषधि बतायी।

का० शुक्ल ६ (श्रवण) सप्तम युद्ध।

का० शुक्ल ७ (धनिष्ठा,– अष्टम युद्ध।

का० शुक्ल ८ (शतभिषा)–शोकमें युद्धाभाव।

का० शुक्ल ९ (पूर्वा भाद्रपदा)–नवम युद्ध।

का० शुक्ल १० (उत्तरा भाद्र पदा)–अयुद्ध।

" १० (रेवती) दशम युद्ध भीष्मका पतन।

" ११ (अश्विनी)–भीष्मने शरशय्यापर पड़कर पानार्थ जल मांगा। इसी कार्यमें अर्जुनके फंसनेसे अश्विनीसे मृगशिरातक पाँच दिन युद्ध नहीं हुआ।

मार्ग० कृ० १ (मृगशिरा) द्रोणका सेनापति बनना।

मार्ग० कृ० २ (आर्द्रा)-एकादश युद्ध ।

" ३ (पुनर्वसु)-अनुत्साहसे युद्ध नहीं हुआ ।

" ४ (पुष्य) } अर्जुनका रण ।

" ५ (आश्लेषा) } स्थलसे दूर गमन

" ६ (मघा)-भगदत्तका वध ।

मार्ग कृष्ण ७ (पूर्वा फाल्गुनी)-अर्जुनका युद्ध स्थलसे दूर रक्खा जाना ।

" ८ (उत्तरा फाल्गुनी)— " "

" ९ (हस्त)— " "

" १० (चित्रा)—अभिमन्यु वध ।

मार्ग कृ० ११ (स्वाती)—जयद्रथ वध । उसी दिन रात्रि युद्धमें घटोत्कचका वध ।

" १३ (विशाखा)—द्रोणका वध ।

" १४ (अनुराधा)—कर्णका सेनापति बनना ।

" ३० (ज्येष्ठा)—षोड़श युद्ध ।

मार्ग शुक्ल १ (मूल)—कर्ण वध ।

" २ (पूर्वा अषाढ़ा)—शल्यका सेनापति बनना ।

" ३ (उत्तरा अषाढ़ा)—मध्याह्नमें शल्य रतन ।

" (श्रवण)—सायंकालमें दुर्योधनोरुभङ्ग ।

इसी रात्रिमें अश्वत्थामाने धृष्टद्युम्न और द्रौपदीके पांचों पुत्रोंका वध किया ।

मार्ग शु० ३ से १२ तक-पाण्डवोंका बन्धुओंके मरणके कारण अशौच ।

मा० शु० १३—एकादशाह श्राद्ध ।

" (वृद्ध) १३-युधिष्ठिरका राज्याभिषेकार्थ। उत्थानाधि मध्याह्नमें महाराज युधिष्ठिरका राज्याभिषेक ।

मा० शु० १४—पाण्डवों समेत श्री कृष्णजीका भीष्मके समीप गमन।

६ दिनतक राजधर्मादिका श्रवण।

मा० शु० ८—भीष्मपितामहका प्राणत्याग।

महाभारतके युद्धका समय विक्रमसे १३७० वर्ष पूर्व ठीक मान लेनेसे निम्नलिखित प्रसिद्ध घटनाओंके समय निकलते हैं।

विक्रम पूर्व १४५८—श्री कृष्णजीका जन्म।

१४२६—कंसका वध।

१३६८—द्रौपदीका स्वयंवर।

१३८६—अभिमन्युका जन्म।

१३८३—जरासन्ध वध। युधिष्ठिरका राजसूय।

१३७०—कुरुक्षेत्रमें युध, युधिष्ठिरका राज्याभिषेक। परीक्षितका जन्म।

१३३३—यदुवंशविनाश, श्रीकृष्णजीका शरीरत्याग, पांडवोंका महाप्रस्थान: परीक्षितका राज्याभिषेक।

चौथा अध्याय

शिशुनागवंशका कालनिर्णय

प्राचीन भारतके इतिहासमें इस वंशका नाम बड़े ध्यानसे लोगोंको स्मरण आता है। प्रसिद्ध इतिहासलेखक विन्सेण्ट स्मिथ तो इसी वंशको भारतवर्षका ऐतिहासिक और वास्तविक वंश गिनते हैं इसके पूर्वके राजवंशोंके इतिहासको वे दन्तकथा मात्र समझते हैं। वे महाभारतके इतिहासको रामायणके इतिहासकी अपेक्षा प्राचीनतर समझते हैं पर

स्मिथ अथवा किसी और प्राचीन इतिहास लेखकका कारण विशेषवश भ्रान्त हो जाना असम्भव नहीं है। अस्तु कतिपय प्रमाणोंसे रामायणका समय महाभारतकी अपेक्षा पिछला सिद्ध हो सकता है और शिशुनाग वंशसे भी प्राचीन महाभारत तथा रामायणमें वर्णित ऐतिहासिक राजवंश स्वीकार करने पड़ेंगे। हां, इतना अवश्य है कि शिशुनागवंश प्राचीन राजवंशोंमेंसे एक गिना जाता है। इतिहासमें इस राजवंशके प्रसिद्ध होनेके कई एक कारण हैं। एक तो इस राजवंशके राज्य-कालमें मगधराजकी प्रतिष्ठा भारतवर्षके शेष राज्योंके बीच बहुत अधिक चढ़ बढ़ गयी थी। दूसरे इस राजवंशके समयमें भारतवर्षमें ब्राह्मणोंके धर्मके विपरीत शिक्षा देके दो नये धर्मप्रचारक बौद्ध और जैन धर्मके अगुआ बने। इसी राजवंशके राजत्वकालमें पाटलीपुत्र [पटना] नामका नगर बसाया गया। इसी वंशके समयमें सिन्धु नदीके पश्चिम ओर पारसीकोंका अधिकार बद्ध मूल हो गया। इसी वंशके समयमें यूनानी वीर सिकन्दरने भारतपर आक्रमण किया था। इस प्रसिद्ध राजवंशका संस्थापक शिशुनाग नाम एक प्रतापी राजा था जो राजगृहको अपनी राजधानी बनाके मगध देशपर शासन करता था लोग बतलाते हैं कि यही राजगृह महाभारतके समयमें वृहद्रथके पुत्र जरासन्धकी राजधानी था। शिशुनागका राज्यकाल विक्रमसे ६०२ लगभग ६५६ वर्षपूर्वमें रहा होगा। इस राजा शिशुनागने ४० वर्ष तक राज्य किया। नाम और नूतन वंशके प्रतिष्ठापक होनेके अतिरिक्त इस राजाके विषयमें और कोई भी बात विदित नहीं है। हां, कुछ ऐसे प्रमाण पाये जाते हैं जिनके द्वारा राजा शिशुनागका ६०२ वर्ष विक्रमसे पूर्व होना सिद्ध होता है। वे प्रमाण निम्नलिखित हैं।

प्रामाणिक जैन ग्रन्थोंद्वारा विदित होता है कि जैनमतके प्रवर्त्तक वर्धमान महावीरकी मृत्यु विक्रमसे ४७० वर्ष पूर्व हुई और वर्तमान महावीरकी मृत्युसे २१५ वर्ष पीछे महा पद्मनन्दका पुत्र चन्द्रगुप्त मगधके राजसिंहासनपर विराजमान हुआ। उससे भी १०० वर्ष पूर्व महापद्मनन्दका राज्याभिषेक हुआ। महापद्मनन्दसे पूर्वके राजाओंका राज्यकाल पुराणद्वारा यों प्रकट है—

महापद्मनन्द और उसके सुमाली आदिके ८ पुत्रोंका राज्यकाल १०० वर्ष। पटना नगरके वसानेवाले राजा उदयनका राज्यकाल ३३ वर्ष। पद्मावतीके भाई राजा दर्शक (अथवा हर्शक) का राज्यकाल २५ वर्ष। मगधके प्रतापी राजा अजातशत्रुका राज्यकाल २५ वर्ष। निदान ठीक ठीक लेखा लगानेसे विदित हुआकि राजा अजातशत्रुने राजा महा॰ पद्मनन्दके राजसिंहासनपर बैठनेसे ८३ वर्ष पूर्व अर्थात् वर्ष ४२८ विक्रमसे पूर्व मगधके राजसिंहासनपर आरोहण किया। इसी अजातशत्रुके राज्यके ८ वें वर्षमें अर्थात् विक्रमसे ४३० वर्ष पूर्व बौद्ध मतके प्रवर्त्तक गौतम बुद्ध वा सिद्धार्थकी मृत्यु हुई। विन्सेण्टस्मिथ साहिबने कतिपय प्रमाणोंद्वारा सिद्ध कर दिया है कि गौतम बुद्धकी मृत्यु विक्रमसे ४३० वर्ष पूर्व ही हुई थी।

बौद्धोंके ग्रन्थोंसे जो पता चलता है कि बुद्धकी मृत्यु विक्रम ४८६ वर्ष पूर्व हुई उसके साथ विन्सेण्टस्मिथके मतके मिलानेके लिये एक और भी अनुमान सहायक होता है। प्राचीन कालमें भारतवर्षमें वर्ष-गणना बहुधा नाक्षत्र वर्षों॰ द्वारा हुआ करती थी। एक नक्षत्रवर्ष ३२४ दिनका हुआ

करता था। विक्रम संवत आरम्भ होनेसे पूर्व ऐसे ३२४ दिन-वाले ४८६ वर्ष बुद्धकी मृत्युके समयसे बीत गये होंगे।

अतएव लोगोंने वास्तवमें ४३० वर्ष विक्रमसे पूर्वके समय-को विक्रमसे ४८६ वर्ष पूर्व कल्पित करके समय निरूपणमें गोलमाल कर दिया। ३२४ दिनवाले ४८८ वर्ष ३६५¼ दिन-वाले ४३२ वर्षके प्रायः बराबर पड़ते हैं अतएव इन ५६ वर्षकी भूलका संशोधन करलेनेसे जो समय सन् ईस्वीसे ५४३ वर्ष पूर्व निर्दिष्ट किया गया है वह केवल सन् ईस्वीसे ४८७ वर्ष पूर्व स्थिर होता है।

इस रीतिसे पुराणों तथा विन्सेंएट स्मिथ आदि इतिहास-विषयक खोज करनेवालोंका मत परस्पर मेल खाता है। ऐसा अनुमान होता है कि पुराणोंमें महापद्मनन्दको जो शिशुनाग वंशी राजा महानन्दसे अभिन्न है, दो व्यक्ति मानके उनमें पिता-पुत्र सम्बन्धमें जोड़के गड़बड़ कर दिया होगा क्योंकि शिशु-नाग वंशमें नन्दिवर्द्धन नामका कोई राजा ही न था। हां, इसी महानन्दका समकालीन उज्जयिनीमें प्रद्योतवंशी नन्दिवर्द्धन नामक एक प्रतापी राजा था पुराणोंमें उसे शिशुनाग-वंशी उदयके पीछे और महानन्दके पूर्व जोडके भूलोंको और भी बढ़ा दिया। इसीसे वास्तविक इतिहासज्ञानमें खोज करनेवाले पेंचमें पड़ गये होंगे। अजातशत्रुका पिता बिम्बिसार २८ वर्ष तक मगधका राजा रहा, उसके पहिले उसके ४ पुरखोंने १३६ वर्षतक राज्य किया, ऐसा पुराणोंमें लिखा मिलता है। निदान अजातशत्रुके राज्यकाल अर्थात् ४४८ विक्रम पूर्वसे (१३६+२८) १६४ वर्ष पहिले शिशुनाग राजगृहमें राज्यासन ग्रहण करनेवाला हुआ होगा। अर्थात् शिशुनागका राज्या-राम्भ विक्रम ६०२ वर्ष पूर्व हुआ।

इस रीतिसे शिशुनाग वंशी राजाओंकी नामावली उनके राज्यकाल समेत ऐसी स्थिर और निश्चित होती है।

राजाका नाम	राज्यारम्भ	राज्यान्त	राज्यकाल
शिशुनाग	६०२ वि पू०	५६२ वि पू०	४० वर्ष
काकवर्ण	५६२ ,, ,,	५८३ ,, ,,	३६ ,,
क्षेमधर्मन	५२६ ,, ,,	५०६ ,, ,,	२० ,,
क्षत्रौजस्	५०६ ,, ,,	४६६ ,, ,,	४० ,,
विम्बसार	४६६ ,, ,,	४३८ ,, ,,	२८ ,,
अजातशत्रु	४३८ ,, ,,	४१३ ,, ,,	२५ ,,
दर्शक	४१३ ,, ,,	३८८ ,, ,,	२५ ,,
उदय	३८८ ,, ,,	३५५ ,, ,,	३३ ,,
महानन्द	३५५ ,, ,,	२६७ ,, ,,	८८ ,,
सुमालीआदि ८ भाई	२६७ ,, ,,	२५५ ,, ,,	१२ ,,

और विक्रमसे २५५ वर्ष पूर्व चन्द्रगुप्त मौर्यने मगधके राजसिंहासनपर अधिकार करके मौर्यवंशकी प्रतिष्ठा की जैसा कि विद्वद्वर पं० हरप्रसाद शास्त्रीने लिखा है।

वंशके प्रतिष्ठापक शिशुनाग और उसके पुत्र काकवर्ण पुत्र क्षेमधर्मन और प्रपौत्र क्षत्रौजस्के नामके अतिरिक्त उनके विषयमें और कोई बात विदित नहीं हुई है। आरम्भमें इस वंशका राज्य विस्तार केवल आजकलके पटना और गया-प्रान्तके आस पास रहा होगा और राजगृह उनकी राजधानी थी। शिशुनाग वंशका ५वाँ राजा विम्बिसार अपने पुरखोंकी अपेक्षा अधिक प्रसिद्ध हुआ। इस राजाके विषयमें बौद्ध ग्रंथों द्वारा कुछ कुछ बातें हम लोगोंको विदित हुई हैं। बौद्धोंने इस राज्यका नाम श्रेणिक लिखा है।

लोग कहते हैं कि इस राजाने पहाडके नीचे नवीन राज-

गृह बनाया जहाँ अब एक प्राचीन दुर्गके भग्नावशेष देखनेमें आते हैं। विम्बिसारने पूर्वकी ओरके छोटेसे अङ्ग देशको जिसकी प्राचीन राजधानी चम्पा (आधुनिक भागलपुर) थी विजय करके अपने राज्यमें मिला लिया था। मुङ्गेर भी कदाचित् विम्बिसारके अधिकारमें आ गया होगा। विम्बिसारने एक विवाह तो कोशलदेशकी राजकन्यासे किया और उसकी दूसरी रानी उत्तरमें तिरहुतके लिच्छवी राज-वंशकी कन्या थी। लिच्छवीकी राज-कन्यासे विम्बिसारके एक पुत्र उत्पन्न हुआ। विम्बिसारके ही राज्यकालमें गौतम बुद्धने भारतवर्षमें अपना नवीन मत-प्रचार प्रारम्भ कर दिया था। विम्बसारने गौतमबुद्धके सिद्धान्त सुने और उन्हें स्वीकार करके बौद्धमतकी दीक्षा ग्रहण करली। वृद्धावस्थामें विम्बिसारने अपने पुत्र अजातशत्रुको युवराज बनाके उसे सब राजकाज सौंप दिया। लोग कहते हैं कि बूढे पिताको अकर्मण्य समझके अजातशत्रुने उसे बन्दीगृहमें डाल दिया जहाँ वह बेचारा भूखों मर गया।

विम्बिसारके मरनेपर उसकी वह रानी जो कोशलराजवंशकी कन्या थी पति-वियोगसे विकल होके पञ्चत्वको प्राप्त हुई। कोशल देशका राजा प्रसेनजित् इस रानीका भाई था, उसने क्रोधमें आके मगध राज्यपर चढाई कर दी और अजातशत्रुसे युद्ध छेड दिया। यह युद्ध वर्षों चला कभी प्रसेनजित् विजयी होते थे और कभी अजातशत्रु। एकबार प्रसेनजित्ने अजातशत्रुको बन्दी कर लिया और अपनी राजधानीमें ले गया। कुछ लडाईयोंके पीछे मामा-भाञ्जोंमें परस्पर मेल हो गया और कोशलदेशकी एक राज कन्याके साथ अजातशत्रुका विवाह भी हो गया। कोशलदेशके राजाके साथ युद्ध

समाप्त होनेपर अजातशत्रुने उत्तरकी ओर तिरहुतके लिच्छवी राजाओंसे लड़ाई छेड़ दी और उनकी राजधानी वैशालिको जीत लिया। अब मगध-राज्यका विस्तार हिमालय पर्वतकी तराई तक पहुँच गया।

अजातशत्रुने अपने पिताके साथ जो निष्ठुर व्यवहार किया था उसके लिये उसे अवश्य पश्चाताप हुआ होगा। लोग कहते हैं कि अपने अपराधको क्षमा करानेके लिये अजात-शत्रु गौतम बुद्धके समीप उपस्थित हुआ था और अपने अप-राधको स्वीकार करके क्षमा माँगी। बुद्धने राजाको विनीत और शोकाकुल देखके बहुत मधुर शब्दोंमें उसे शिक्षा दी। बुद्धने कहा-"राजन्! यदि तुम सच्चे चित्तसे अपने अपराध को स्वीकार करते और उसे अपराध ही समझते हो तो भवि-ष्यमें तुम्हारे जितेन्द्रिय होनेकी आशा है।" अजातशत्रुको बुद्धके वाक्योंद्वारा बहुत कुछ शान्ति प्राप्त हुई।

बिम्बिसार और अजातशत्रुका ही समकालीन ईरान देश-का राजाधिराज दाराय हिस्तास्प था जिसने सिन्धुनदके पश्चिम भारतके भूभागको विजय कर लिया था। उस समयकी भारतकी यथार्थ दशाका अनुमान केवल इतनेसेही हो सकता है कि फारसके राजाको देशके केवल इस भागके करसे इतनी अधिक प्राप्ति होती थी कि जो उसके सम्पूर्ण राज्यके करकी तिहाई थी। अजातशत्रुके मरनेपर उसका पुत्र दर्शक मगधके राज-सिंहासनपर अपने पिताका उत्तराधिकारी हुआ।

इस राजाकी बहिन पद्मावतीका विवाह कौशाम्बीके राजा उदयनसे हुआ था। दर्शकने २५ वर्ष जो राज्य किया। उसका उत्तराधिकारी राजा उदय हुआ जिसने पाटलिपुत्र नाम नगर बसाया और उसे अपनी राजधानी बनाया। लिच्छवी वंशके

लोगोंको जीतके इसी स्थानपर अजातशत्रुने एक दुर्ग निर्माण कराया था। वशका अन्तिम राजा महापद्मनन्द बडा प्रतापी और प्रसिद्ध हुआ।

महानन्द ही शिशुनाग-वंशका अन्तिम राजा अत्यत प्रतापी हुआ है। पुराणोंमें लिखा है कि परशुरामजीकी नाईं यह क्षत्रियोंका सहारकर्त्ता था जिसका यही तात्पर्य निकलता है कि इसने भी युद्धमें कतिपय क्षत्रियराजाओंका वध किया। अत्यंत धनी होनेके कारण कदाचित लोगोंने इसे महापद्मनन्द ऐसा पद दिया होगा। कहीं कहीं लोगोंने इसे केवल नन्द राजा इस नामसे भी उल्लेख किया है। नन्द नाम देखके कई एक इतिहास-लेखकोंने इसे नन्दवंशका प्रवर्त्तक माना है परन्तु नन्दवश शिशुनागवशसे भिन्न कोई और वंश न समझना चाहिए। महानन्दने ८८ वर्षतक राज्य किया अर्थात् ३५५ वि० पू० से लेके २६७ वि० पू० तक इस राज्यका राज्यकाल रहा होगा। यह राजा धनका बडा लोभी था। इसकी सेनामें बीस सहस्र अश्वारोही, दो लाख पैदल, दो सहस्र रथ और तीन वा चार सहस्र हाथी थे। ऐसा यूनानी लेखकोंने निर्देश किया है। इसी राजाके राज्य-कालमें यूनानी वीर सिकन्दरने यूनानी सेना लेके भारतवर्षपर चढाई कर दी थी। झेलम नदीके किनारे सिकन्दरने पञ्चाम्बु देशके अधिकारी पुरुपसेनको युद्ध-स्थल में पराजित किया परन्तु उसकी अलौकिक वीरतासे प्रसन्न होके उसे अपना मित्र बनाया और उसका राज्य भी उसे फेर दिया। सिकन्दर सतलज नदीके आगे पूर्वकी ओर नहीं बढा कदाचित् महानन्दकी सेनाकी संख्या सुनके ही भयभीत हो गया हो। महानन्दके राज्याभिषेकके समय सप्तर्षि पूर्वाषाढा नक्षत्रपर पहुँच गये थे, और महाराज युधिष्ठिरके समय

मघापर थे, अतएव जब सप्तर्षि सौ सौ वर्ष एक नक्षत्रपर रहते हैं तो एक सहस्र वर्षोंमें मघासे पूर्वाषाढ़ा पहुँचे होंगे। विक्रमसे १३५५ वर्ष पूर्व महाराज युधिष्ठिर उत्तरी भारतके अधिकारी थे, यह बातभी सिद्ध होती है।

महानन्दके दो मंत्री शकटार और राक्षस थे। कारण विशेषवश अप्रसन्न हो महानन्दने शकटारको पहिले कुछ दिन बन्दी रक्खा फिर छोड़ दिया। बन्धनसे मुक्त होनेपर शकटारने महानन्दके विनाशकी प्रतिज्ञा की और चाणक्य नाम एक क्रोधी ब्राह्मणसे महानन्दका वैर उत्पन्न कर दिया। महानन्दकी एक रानी मुरा नामकी थी उसका पुत्र चन्द्रगुप्त था। चाणक्यने इसी चन्द्रगुप्तको अपना मित्र बनाके उसे मगधके राज-सिंहासनका लोभ दिलाया। अन्तमें महानन्द और उसके सुमाली आदि आठों पुत्र क्रमशः चाणक्यके क्रोधानलमें दग्ध हुए और जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है चाणक्यकी सहायतासे चन्द्रगुप्तने नन्दकुलका विनाश साधन करके विक्रमसे २५५ वर्ष पूर्व मगधके राज-सिंहासनपर आरोहण किया। चन्द्रगुप्त और उसके उत्तराधिकारी 'मौर्य' नामसे संसारमें प्रसिद्ध हुए।

पांचवां अध्याय

मेगास्थनीज़की साक्षी

यह यूनान देशका इतिहासवेत्ता था जो सिकन्दरके साथ यहां आया था और उस समय उसने हिन्दुस्तानको जैसा पाया वैसा ठीक हाल यहांका लिखा है—यह लिखता है हिन्दुस्तानी कभी किसी देशपर नहीं चढ़े न इनपर कभी

किसीने चढ़ाई की। सिकन्दर पहिले पहिल इस देशपर चढ़ा—यह बात मेगास्थानीज़की बहुत ठीक नही मालूम होती—हिन्दुस्तानियोंने किसी देशपर कभी चढ़ाई नहीं की यह तो किसी क़दर ठीक मालूम होता है पर हिन्दुस्तानपर सिकन्दरके पहिले किसीने चढ़ाई नहीं की कभी ठीक नहीं हो सकता इसे सोनेकी चिड़िया समझ इसके लिये कौन नहीं ललचाया—पुराणोंमें देवता दैत्यके सैकड़ों किस्से क्या हैं—यहां वाले देवता थे जो विदेशी यहां आये वे दैत्य हुए—देश तबतक आपसकी फूटसे ज़र्जरित और छिन्न भिन्न नहीं हुआ था-जो यहां चढ़कर आते थे खातिरखाह अपने कियेका फल पा यहांसे लौट जाते थे—कोई कोई लोग कहते हैं फ़ारसवालोंने कुछ अंश भारतका अपने अधिकारमें करलिया था—सिन्धुनदके पश्चिमके बहुतसे देश भारतकी ही सीमाके भीतर माने जाते थे। एरियन लिखता है उन सब देशोंमें हिन्दू लोग रहते थे और वे फारसके उस समयके बादशाहको कर देते थे। एरियनके मतसे सिन्धुनद भारतकी पश्चिमी सीमा न थी। महाभारतके समयतक गान्धार देश "कन्दहार" भारतवर्षमें ही गिना गया है। चन्द्रगुप्तके पहिलेसे ही हिन्दू लोग सिन्धुके पश्चिमी प्रदेशोंको विदेश समझने लगे थे। देश जुदे जुदे राज्योंमें बटा था जब कोई प्रतापी राजा होता था उसे चक्रवर्ती या संम्राट कहते थे वह जीते हुए राजाओंसे कर ले सन्तुष्ट रहता था और उनके राज्य प्रबन्धमें कुछ हस्तक्षेप न करता था। इसलिये चक्रवर्ती राजाका यदि कोई उत्तराधिकारी न रहता था तो उसके उपरान्त उसका राज्य सरदारोंमें बँटके छिन्नभिन्न हो जाता था। मेगास्थनीज़के समय यहांका चक्रवर्ती राजा चन्द्रगुप्त था। उसके पुत्र अशोक

वर्द्धनने अपने पिताकी अपेक्षा राज्यको अधिक बढ़ाया और मुसल्मानोंकी चढ़ाईके कुछ पहिले ही कोई चक्रवर्ती राजवंश हिन्दुस्तानमें न रह गया था। भारतवर्षमें असंख्य छोटे बड़े नगर नदीके तटपर थे उनमें प्रायः काठ और लकड़ियोंके घर बने थे और जो शहर पहाड़ या किसी ऊँचे स्थानपर थे वहां मकान मिट्टी या ईंटके बने होते थे। मेगास्थनीज़के समय यहांका सबसे प्रधान नगर पटना था जो सोन और गंगाके तटपर भारतके पूर्व भागकी राजधानी थी। इसकी बस्ती लम्बाईमें ८ और चौडाईमें डेढ़ मील थी। सम्पूर्ण नगरको घेरे एक बड़ी खाई थी जो चार सौ हाथतक फैली थी और २४ हाथ गहरी थी। ६४ तोरण और ५०० बुर्ज भी इसमें थे। मेगास्थनीज़के मतसे भारतके लोग ७ श्रेणीमें बँटे हुये थे। उनमें पदवीके अनुसार तत्वचित सबसे ऊँची श्रेणीके थे। वे यज्ञ आदिके समय लोगोंकी सहायता करते थे और वर्षके प्रारम्भमें राजसभामें बुलाये जाते थे। उस समय यदि वे कोई भलाईकी बात सोच रखते थे या कोई भलाईका उपाय आविष्कार कर पाते थे तो उसे सर्वसाधारणको बतलाते थे। उनमेंसे जिसकी बात तीस बार झूठ हो उसे जन्म भरके लिये मौन रहनेका दण्ड भोगना पडता था। मेगास्थनीज़ लिखता है कि तत्ववेत्ता दो प्रकारके थे ब्राह्मण और श्रमण अर्थात् बौद्धसन्यासी। ब्राह्मण सबोंकी अपेक्षा माननीय थे क्योंकि वे जन्म भर पढ़े लिखे लोगोंके बीच रहते और सीखते थे। इसलिये ब्राह्मण जितनाही उम्रमें बड़े होते थे उतनाही विशेष माननीय होते थे। वे नगरके बाहर उद्यान आदिमें रहते थे—कुशासनपर बैठते थे और मृगचर्मपर सोते थे। मांस भोजन और विषय भोगसे अलग थे नीति-

पूर्ण उपदेश देते हुए जीवन बिताते थे इस तरह ३३ वर्ष बिताके प्रत्येक ब्राह्मण अपने घर लौटता था और शेष जीवन सुखसे काटता था। तब वे चिकने कपड़े पहनते थे अँगुली और कानोंमें सोनेके गहने पहनते थे और अधिक सन्तान होनेकी इच्छासे जितना चाहते थे उतना विवाह करते थे। मेगास्थनीजने हिन्दू और बौद्ध दोनोंको देखा था पर श्रेष्ठ उसने ब्राह्मणोंको लिखा क्योंकि वे ब्रह्मचर्य गार्हस्थ्य और वानप्रस्थ तीनोंके भेद जानते थे जो तैंतीस वर्षके उपरान्त गृहस्थधर्म ग्रहण करते थे वे फिर नगरके बाहर जा वानप्रस्थ हो वनमें रहते थे। इतना अनुसन्धान मेगास्थनीज़को न था और यह भी ठीक नहीं जान पड़ता कि सब लोग ३३वर्ष ब्रह्मचारी रहते थे। मनुने ३६वर्ष लों ब्रह्मचर्यकी सीमा रक्खी है। कदाचित मेगास्थनीज़ने इसे साधारण नियम समझ लिया होगा। अब इस समय ब्रह्मचर्यकी कौन कहे ३६वर्षमें लोग यहाँ बुढ़ा जाते हैं। उस समय तबतक ब्याह नहीं करते थे। अब ३६ वर्षमें पोते नाती हो जाते हैं। मेगास्थनीज़ समझता था कि ब्राह्मण लोग स्त्रियोंको आध्यात्मिक ज्ञान नहीं सिखाते थे कि पीछेसे वे गूढ़ तत्वोंको जानके पराधीन रहना न चाहेंगी। वे सदा मृत्यु विषयक चर्चा करते थे। उनलोगोंके मतसे मनुष्यका जीवन गर्भावस्थाके समान था। उनकी समझ थी कि आदमीपर जो कुछ आ पड़े सुख वा दुःख दोनों एकसाँ माने भला वा बुरा कुछ न था एक ही पदार्थ किसीको सुखदायक किसीको दुःखदायक जान पड़ता है और एक ही मनुष्यको भिन्न भिन्न समय भिन्न भिन्न पदार्थ सुख या दुःखदायक हो जाते हैं—स्वाभाविक घटनाके सम्बन्धमें हिन्दुओंका मत यूनान देशवालोंके मतसे मिलता है। यूनानी मानते थे कि जगतकी उत्पत्ति और नाश दोनों हैं। इसका आकार

गोल है जिस ईश्वरने इसे बनाया और पालन करता है वह सर्वत्र व्याप्त है। और भी वे मानते हैं कि भूमण्डलमें असख्य तत्वोंकेद्वारा कार्य होते हैं और जलके द्वारा जगत सृजा गया है-मेगास्थनीज़ कहता है कि आत्माकी उत्पत्ति उसका स्वभाव उसकी अमरता उनमें भविष्य विवेक और इसी प्रकारके विषय हिन्दुओंने भी यूनानियोंमें प्लेटोके समान प्रश्नोत्तरकी भांति -चना रक्खे हैं।

श्रमणोंके इसने दो भेद किये हैं, जिनमेंसे एक वनमें बसते थे फल फूल खाते थे, पत्ते पहिनते थे, मद्य तथा विषय भोगसे बचे रहते थे-सांसारिक विषयोंके मर्म जाननेको राजा लोग उनके पास दूत भेजते थे-दूसरे प्रकारके श्रमण वैद्य होते थे वे यद्यपि वनवासी तो न थे पर मिताचारी थे-उनका प्रधान भोजन चावलका भात और यवका मांड था वे अतिथि समझे जाते और भोजन पाते थे-उनकी औषधिके प्रतापसे लोगोंके सन्तान उत्पन्न होते थे और यहां लों स्थिर हो जाता था कि बेटा होगा या बेटी। औषधि प्रयोगकी अपेक्षा उनके पथ्यानुसारी रोगी अधिक शीघ्र आरोग्य हो जाते थे। वे लोग तैलमर्दन और प्रलेप सबसे बड़ी औषधि मानते थे। पहिले दलवाले श्रमण लोगोंका आचरण हिन्दू वानप्रस्थोंके समान था। इससे जाना जाता है कि हिन्दू और बौद्ध सन्यासियोंके आचरणमें बहुत भेद न था-मेगास्थनीज़ दोनोंके भेदको भली भांति जानता न था। श्रमण वैद्य लोग जैसी चिकित्सा करते थे आजकल भी वही प्रचलित है। इससे अनुमान होता है कि आजकलके चिकित्साकी परिपाटी चन्द्रगुप्तके समयसे भी पहिलेसे चल निकली रही होगी। मेगास्थनीज़का सूर्यवंशके विषयमें जैसा

मत है उससे वेदान्तकी विद्या स्पष्ट झलकती है। मेगास्थनीज़ने भारतवर्षके निवासियोंको जो सात श्रेणियोंमें बांटे हैं उनमेंसे किसान लोगोंकी दूसरी श्रेणी थी। देशके अधिकांश लोग इस वृत्तिके थे। वे धीर और नम्र होते थे। उन्हें लड़ाईके लिये नहीं जाना पड़ता था। युद्धके समय इनके किसी कामकी हानि न होती थी। जहां दो दलोंमें युद्ध होता रहता था उनके निकट ही किसान लोग स्वच्छन्दतासे विना रोकटोक खेती करते हुए देखनेमें आये। भूमिका स्वामी राजा था, और किसानोंसे उत्पत्तिका चतुर्थांश कर लेता था। तीसरी श्रेणीके लोग अहेर वा शिकारी थे। ये शिकार पशुपालन तथा व्यापार आदि कर्म करते थे। इन लोगोंका कोई नियत स्थान न था। चतुर्थ श्रणीके लोग बनिये होते थे। इन सबोंको राजाको कर देना पड़ता था पर जो लोग युद्धका अस्त्र या नौका बनाते थे उन्हें राजासे वेतन मिलता था। पाँचवें श्रेणीके लोग योद्धा थे इन लोगोंकी सख्या केवल किसानोंसे कम थी। उनके पालनपोषणका व्यय राजकोषसे होता था। इस कारण जब आवश्यक पड़ा उसी समय वे लोग युद्धक्षेत्रमें उतर पड़ते थे। शांतिके समयमें वे सुरापन करके सुख चैनमें समय विताते थे। छठी श्रेणीके लोग चर या जासूस थे। वे सब बातका समाचार गुपचुप राजाको सुनाते थे। सप्तम श्रेणीके लोग मंत्री थे। न्यायालय, राजाके ऊँचे ऊँचे पद और सामान्य शासनके कार्य इन लोगोंके अधिकारमें थे। येही लोग कोषाध्यक्ष (ख़ज़ाञ्ची वा मुनीम) और सेनापति आदिके स्थानमें भी नियुक्त होते थे। एक श्रेणी और दूसरी श्रेणीके लोगोंके बीच विवाह न होता था। एक श्रेणीके जन दूसरी श्रेणीमें नहीं मिल सकते थे।

था उनका कार्य नहीं उठा सकते थे हाँ अलवत्ता तत्ववित सब श्रेणीके लोग हो सकते थे।

इस प्रकार श्रेणीविभाग देखनेसे जान पड़ता है कि व्यवसाय [रोजगार]के साथ जातिका ठीक ठीक सम्बन्ध न जाननेके कारण मेगास्थनीज कई भाँतिके भ्रममें पड़ गया था। उसने जातिके अभिमानी ब्राह्मणोंको और बिनाजातिवाले श्रमण लोगोंको एक ही तत्ववितकी श्रेणीमें गिना। श्रमण सब जातिके लोग हो सकते थे। इससे सब श्रणीके लोग तत्ववित भी हो सकते थे। वह यह न जान सका कि चर और मन्त्री लोग ब्राह्मण ही होते थे। उनके लोगोंके कार्य्योंमें विद्या और ज्ञानविषयक चर्चा न देख उन्हें मेगास्थनीज़ने ब्राह्मणोंके बीच नहीं गिना। इस प्रकारके और कई भ्रम शुद्ध कर लेनेसे विश्वास होता है कि मेगास्थनीज़के समयमें यहाँ जातिका वैसा ही क्रम था जैसा कि मनुके स्मृति अनुसार जाना जाता है। किसान लोग शूद्र और बनिये वैश्य होते थे योद्धा लोग क्षत्रिय होते थे। चर मन्त्री और तत्ववित लोग ब्राह्मण और शिकारी लोग चाण्डाल आदि नीच जातिके थे। मेगास्थनीज़ने आश्चर्यमें आकर लिखा है कि हिन्दू लोग सब स्वतन्त्र थे कोई किसीके परवश न था। इससे जाना जाता है कि मनुके समयमें शूद्रोंकी जैसी अवस्था थी मेगास्थनीज़के समयमें उसमें अनेक भेद पड़ गये थे। और जातिकी सेवा करना उन शूद्रोंका मुख्य उद्देश्य पीछेसे न रहा। हमारे जान वे ही लोग पीछेसे किसान हो गये होंगे।

मेगास्थनीज़ने देखा था कि हिन्दू लोग कपासके सूतका कपड़ा पहिनते थे। वे [नीचे] देहके अधोभागमें एक कपड़ा पहिनते थे जो जांघ लों पहुँचता था और एक दुपट्टा कन्धे

पर रख लेते थे और कुछ माथेमें बाँधते थे। हम लोग इन्हीं कपडोंको धोती और चादर कहते हैं, पर हम लोग चादरसे माथा नहीं ढाँपते पर प्रयोजनानुसार टोपी कुर्ता आदि पहनते हैं।

चन्द्रगुप्तके समयमें जो लोग अच्छी अवस्थामें थे उनके वस्त्र सज धजके थे। लिखा है कि उनका पहनाव बहुत अच्छा था। उनके कपडोंमें सोने और मणि आदिके गोटे लगे रहते थे और वे चिकने तथा पतले वस्त्र पहनते थे।

सेवक लोग उन्हें छाता लगाये रहते थे। क्योंकि वे लोग सुन्दरताका बडा आदर करते थे और सर्वतोभावसे अपनी कान्तिको बढ़ाना चाहते थे। सामान्य लोग छाता भी लगाते थे। श्वेत चमडेका खडाऊँ पहिनते थे। रुचिके भेदसे लोग कपडे भाँति भाँति के रंगोंसे रङ्गते थे। खडाऊँ भाँति भाँतिकी तथा ऊँची खूँटीकी होती थी। साधारण लोग ऊँट घोडे गदहे पर चढते थे। राजा बाबू लोग हाथीपर सवार होते थे। हाथी सबसे अच्छा वाहन गिना जाता था। उनके नीचे चार घोडेकी गाडी तदनन्तर ऊँट थे। एकाश्वयानपर चढना कोई बडी बात न थी। कदाचित आजकलके एक्के इसी एकाश्वयानके स्थानापन्न होंगे। मेगास्थनीजके समयमें प्यादे लोग साधारण धनुषबाण रखते थे। धनुष मनुष्यके डीलके समान और बाण तीन गज लम्बा होता था।

धनुषको भूमिपर धरके बाएं पाँवसे दबाके वे लोग बाण छोडते थे और ऐसी कोई ढाल या कवच न था जो बाणसे छेदा न जा सके। पैदल लोग गोचर्मकी ढालें रखते थे। कोई कोई धनुषके स्थानमें बरछा काममें लाते थे पर तलवार सब धारण करते थे। यह तलवार तीन हाथसे अधिक लम्बी

नही होती थी। और मुठभेडकी लडाईमें तलवार दोनों हाथोंसे चलायी जाती थी। घुड़चढ़े लोग चमड़ेकी ढाल और दो बरछा रखते थे। उनके पास जीन न थी, पीतल वा चमड़ेकी लगामसे घोड़ा चलाते थे। रथमें सारथीके सिवाय और दो रथी रहते थे और हाथी पर महावतको छोड़ और तीन योद्धा बैठते थे। मेगास्थनीज़ने भारतवासियोंको परिमिताचारी लिखा है। उन लोगोंके भोजनकी वस्तु भात था। यज्ञको छोड़ और कभी वे मद्य न पीते थे। उन लोगोंके बीच चोरी बहुत कम थी। चन्द्रगुप्तकी छावनीमें चार लाख जन थे पर डेढ़ सौसे अधिक रुपयेकी चोरी कभी नहीं हुई—चोरी आदिका मुक़दमा बहुत कम राजाके न्यायालयमें होता था। दलील वा साक्षी न लेके केवल विश्वासपर मुक़दमा फ़ैसल होता था। दूसरेके पास बन्धक वा गिरो रखनेमें कुछ सोच विचार नहीं होता था। उनका सब घरद्वार तथा माल असबाब सम्पत्ति सुरक्षित थी। वे सत्य और धर्मका आदर करते थे, स्त्रियोंको मोल ले विवाह कर लेते थे। पिता कन्याको सबके सामने लाके उपस्थित कर देता और जो कोई मल्लयुद्ध वा और किसी भाँतिकी वीरता प्रकाश करता था कन्या उसीको वरण करती थी। ये हम लोगोंके देशका प्राचीन स्वयंवर था। मेगास्थनीज़ लिखता है कि इस देशमें लिपिबद्ध नीतिशास्त्र [क़ानून] न थे। जान पड़ता है कि व्यवस्था पुस्तकोंका नाम स्मृति सुन उसे धोखा पड़ गया था। राजा युद्ध और विचारके समय महलसे बाहर आते थे और सारा दिन विचारमें लगा देते थे। इसके सिवाय यज्ञ और अहेरके लिये भी राजा लोग बाहर निकलते थे। राजाके शरीर रक्षिणी स्त्रियोंके दल भी थे। मृगयाके समयमें वे सब राजा-

को घेरके चलती थी। उनमें कोई रथपर कोई हाथीपर भाँति भाँति के अस्त्र लेकर चलती थीं और राजा हाथीपर चलते थे। द्वो देवताओंकी पूजा होती थी जिनका नाम मेगास्थनीज़ हरक्लिश और डायोनिशस लिखता है। अनुमान होता है कि हरक्लिश तो श्रीहरिकृष्णजी और डायोनिशस दयावान शिवजी होंगे।

श्रीः ।

विषयानुक्रमणिका

ज्ञानमण्डल काशीकी प्रकाशित पुस्तकें ।

१—स्वराज्यका सरकारी मसविदा । दो भाग । श्रीयुत श्रीप्रकाश जी, बी ए., एल्-एल् बी. (केम्ब्रिज), बैरिस्टर द्वारा सम्पादित । डबल-क्रौन १६ पेजीके ५५० पृष्ठ । साधारण जनोंमें भी इसकी सुलभ रीतिसे पहुंच करानेके अभिप्रायसे मूल्य इसका केवल १॥।) रक्खा है।

२—बिहारीकी सतसई । डबलक्रौन १६ पेजी ३६८ पृष्ठ । सजिल्द, मूल्य २) कवि सम्राट् बिहारीकी सतसईपर — सोनेमें सुगंध चरितार्थ करनेवाली — हिन्दी संसारके सुप्रसिद्ध विद्वान प० पद्मसिंह शर्म्माकी अपूर्व समालोचना ।

३—अब्राहम लिंकन । डबलक्रौन १६ पेजी पृष्ठ १८२, मूल्य ॥)। जीवनमें नवयुग पैदा करनेवाली अपूर्व पुस्तक । अँग्रेज़ीमें इसकी लाखों प्रतियाँ प्रति वर्ष बिकती हैं । मध्य प्रदेशके शिक्षाविभागने इसे अपने पाठ्य ग्रन्थोंमें रक्खा है ।

४—प्राचीन भारत सचित्र । ग्रन्थमालाका चौथा ग्रन्थ । लगभग १००० विक्रमाब्दतकका सचित्र इतिहास । प्रायः एक मासमें निकलेगा ।

५—इटलीके विधायक महात्मागण सचित्र । मालाका पांचवाँ ग्रन्थ । छपगया । यूरोपकी राजनैतिक चालोंका उल्लेख और इटलीके सच्चे देशभक्तोंके जीवन तथा कार्य्यक्रमका वर्णन । स्वदेशका उद्धार करनेवाले युवकोंके सिखने अनेक शिक्षाएँ इसमें मिलती हैं । मूल्य २।) सजिल्द ।

ज्ञानमण्डल काशीकी प्रकाशित पुस्तकें ।

१—स्वराज्यका सरकारी मसविदा । दो भाग । श्रीयुत श्रीप्रकाश जी, बी. ए., एल्-एल्. बी. (केम्ब्रिज), बैरिस्टर द्वारा सम्पादित । डबल-क्रौन १६ पेजीके ५५० पृष्ठ । साधारण जनोंमें भी इसको सुलभ रीतिसे पहुंच करानेके अभिप्रायसे मूल्य इसका केवल १॥) रक्खा है।

२—बिहारीकी सतसई । डबलक्रौन १६ पेजी ३६८ पृष्ठ । सजिल्द, मूल्य २) कवि सम्राट् बिहारीकी सतसईपर — सोनेमें सुगंध चरितार्थ करनेवाली — हिन्दी संसारके सुप्रसिद्ध विद्वान पं० पद्मसिंह शर्म्माकी अपूर्व समालोचना ।

३—अब्राहम लिंकन । डबलक्रौन १६ पेजी पृष्ठ १५२, मूल्य ॥) । जीवनमें नवयुग पैदा करनेवाली अपूर्व पुस्तक । अँग्रेज़ीमें इसकी लाखों प्रतियाँ प्रति वर्ष बिकती हैं । मध्य प्रदेशके शिक्षाविभागने इसे अपने पाठ्य ग्रन्थोंमें रक्खा है ।

४—प्राचीन भारत सचित्र । ग्रन्थमालाका चौथा ग्रन्थ । लगभग १००० विक्रमाब्दतकका संक्षिप्त इतिहास । प्रायः एक मासमें निकलेगा ।

५—इटलीके विधायक महात्मागण सचित्र । मालाका पांचवाँ ग्रन्थ । छपगया । यूरोपकी राजनैतिक चालोंका उल्लेख और इटलीके सच्चे देश भक्तोंके जीवन तथा कार्य्यक्रमका वर्णन । स्वदेशका उद्धार करनेवाले युवकोंके हितकी अनेक शिक्षाएँ इसमें मिलती हैं । मूल्य २।) सजिल्द ।

६-यूरोपके प्रसिद्ध शिक्षा सुधारक–मालाका छठवाँ ग्रन्थ । मू० १॥=)

७–विलुप्त पूर्वीय सभ्यता–मालाका सातवाँ ग्रन्थ–छप रहा है ।

अन्य और शीघ्र ही प्रकाशित होने वाले महत्वके ग्रन्थ (१) जापानकी राजनैतिक प्रगति (२) वैज्ञानिक अद्वैतवाद (३) पश्चिमीय यूरोप, सचित्र (४) अर्थशास्त्रका उपक्रम (५) राष्ट्रीय आयव्यय (६) भौतिक विज्ञान (७) रसायन शास्त्र ।

व्यवस्थापक—ज्ञानमण्डल कार्यालय, काशी ।